आर्यावर्त की महागाथा—२

भगवान् परशुराम

कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

प्रथम संस्करण १९४८
द्वितीय आवृत्ति १९५१

मूल्य साढ़े छः रुपये

गोपीनाथ सेठ द्वारा नवीन प्रेस दिल्ली से मुद्रित। राजकमल
पब्लिकेशन्स लिमिटेड बम्बई द्वारा भारतीय
विद्या भवन बम्बई के लिए प्रकाशित।

प्रस्तावना

सन् १६२१-२२ में महाभारत और पुराणों से प्रेरणा प्राप्त करके मैंने पौराणिक विषयों पर नाटक लिखना प्रारम्भ किया। उस समय से मेरा सङ्कल्प था कि मैं महाभारत के प्रसङ्गों की पूर्व-कथा-कृतियों की एक माला लिखूं। इसके लिए जो मैंने थोडा-बहुत अभ्यास किया वह नीचे लिखे लेखों में प्रगट किया है।

१ प्राचीन भारतीय इतिहास के सीमा चिह्न (समालोचक १६२२)

2 Mahismati (Indian Antiquary, 1923).

3 Early Aryans in Gujarata.
(Vassanji madhavji Lectures delivered in the University of Bombay, 1938).

4 The Legend of Parashurama.
(Address at the Bhandarkar Oriental Institute Poona, 1944).

5 The Aryans of the West Coast.
(Glory That Was Gurjardesh Vol. I).

पहले चार नाटकों का एक (इसको महाकाव्य भाग्य से ही कहा जा सकता है) महानाटक लिखने का सङ्कल्प किया था, उसी के अनुसार १६२२ में 'पुरन्दर पराजय', १६२३ मे 'अविभक्त आत्मा', १६२४ मे 'तर्पण' और १६२६ में 'पुत्र समोवडी' लिखा। १६३२ में इस महानाटक के उपोद्घात के रूप में विश्वरथ नाम से एक उपन्यास लिखा। इसके पश्चात् 'शम्बर कन्या', 'देवे दीधेली', और 'विश्वामित्र ऋषि' यह तीन नाटक लिखे। यह चारो लोपामुद्रा के चारों भागों मे प्रगट हुए हैं।

फिर मुझे ज्ञात हुआ कि नाटक गुजराती पाठकों के लिए सुगम

नही है, रुचिकर भी नहीं है। क्योंकि 'देवे दीधेली' जैसे नाटकों ने भाग्य से पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया इसलिए इस महानाटक का उत्तरार्ध उपन्यास के रूप मे मैने लिखने का विचार किया। इसको मैने दो भागो मे बांटा—'लोमहर्षिणी' और 'भगवान् परशुराम।'

यह महानाटक चार स्वाभाविक स्कन्धो मे विभक्त हुआ है।

(प्रथम स्कन्ध)

(१) देवो और दानवो मे युद्ध। मानवो के राजा ययाति ने दानवों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से विवाह किया। ययाति इन्द्रासन प्राप्त करके खो देता है। दानव और मानवों की कायरता से शुक्राचार्य उसको छोडकर चले जाते है। अपुत्र पिता के लिए पुत्र के समान प्रिय देवयानी उसके साथ चली जाती है। इस प्रकार भृगुओ मे आद्य श्री शुक्राचार्य जी की कथा प्रारम्भ होती है। (पुत्र समोवडी)

(२) सप्तर्षियों के साथ अरुन्धती ने किस प्रकार स्थान प्राप्त किया, आर्यों के सप्तसिन्धु मे आने पर क्या-क्या कठिनाइयां हुईं; पति और पत्नी की तन्मयता का आदर्श संस्कृति रूप से किस प्रकार फैला—इसका दर्शन। (अविभक्त आत्मा)

(३) नर्मदा के तीर पर बसते हुए शर्याति की राजकन्या सुकन्या भृगुओं मे श्रेष्ठ च्यवन ऋषि के साथ विवाह करती है। इन्द्र ने च्यवन को भगाया। (पुरन्दर पराजय)

इस स्कन्ध की वस्तु ऋग्वेद काल मे भी कथा रूप मे थी, इस प्रकार मानव इतिहास के उषःकाल मे आर्य संस्कृति के दर्शन करने का प्रयत्न इस स्कन्ध में है।

(द्वितीय स्कन्ध)

इसमें ऋग्वेद काल का प्रारम्भिक दर्शन है जो वास्तविकता से ओत-प्रोत है। कुछ-कुछ कथायें तो ऋग्वेद के मंत्रो से ली गई हैं।

(१) आर्यों और दस्युओं मे युद्ध चला करता है। तृत्सुओं का राजा

दिवोदास दस्युओं के राजा शम्बर को मारकर उसका दुर्ग छीन लेता है।

(२) ऋषि लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य से प्रेम करती है और उसको वरण कर लेती है।

(३) तृत्सुओं का पुरोहितपद जो वशिष्ठ के पास था वह विश्वामित्र को मिल जाता है।

(४) ऋषि विश्वामित्र गायत्री मंत्र का दर्शन करते हैं।

इसके साथ कुछ पुराणों की कथाओं का आधार भी ग्रहण किया गया है।

(१) भार्गव ऋचीक नर्मदा तट पर वास करती हुई माहिष्मती की हैहय जाति के राजा महिष्मत को शाप देकर नर्मदा तट से सरस्वती नदी के तट पर आते हैं, तथा गाधी राजा की कन्या को स्वीकार करते हैं। उससे जमदग्नि नाम का पुत्र उत्पन्न होता है। मामा और भाञ्जे का साथ ही भरण-पोषण होता है।

(२) विश्वामित्र और वशिष्ठ मे वैर-भाव बढता है।

(३) विश्वामित्र राजपद छोडकर ऋषि बन जाते है और ऋषि विश्वामित्र नाम से प्रसिद्ध हो जाते हैं।

इन वस्तुओं के आधार पर 'विश्वरथ', 'शम्बर कन्या', 'देवे दीधेली' और 'विश्वामित्र ऋषि' की रचना हुई है।

(तृतीय स्कन्ध)

ऋग्वेद मे आये हुए मुनि वशिष्ठ और महर्षि विश्वामित्र के मन्त्र जिस समय प्रसिद्ध हुए थे वही वास्तविक ऋग्वेद का काल है। 'लोमहर्षिणी' उसी समय की कथा है। इसकी रचना का आधार निम्नलिखित है।

(१) तृत्सुओं के राजा सुदास का पुरोहितपद विश्वामित्र से वशिष्ठ ले लेते है।

(२) वशिष्ठ की प्रेरणा से सुदास का विश्वामित्र से प्रेरित दशराज

के साथ जो युद्ध प्रारम्भ होता है उसको दाशराज्ञ कहा जाता है।

(३) विश्वामित्र आर्य और दस्युओं के भेद का विवेचन कर रहे थे। उधर वशिष्ठ मुनि आर्यों की सनातन शुद्धि और विद्या के प्रतिनिधि थे।

(४) अजीगर्त के पुत्र शुनःशेप का नरमेध हो रहा था। उसमें विश्वामित्र ने अड़चन डाल दी। यह प्रसङ्ग ऐतरेय ब्राह्मणों में भी मिलता है।

(५) राजा सुदास की सहायता के लिए जो वीतहव्य थे वे पुराणों में निर्दिष्ट नर्मदा तट के हैहय तालजंघ जाति के लोग ही थे। पुराणों में किसी भी स्थान पर परशुराम के बालकपन की कथा नहीं आई।

आगामी स्कन्ध में परशुराम के बालकपन का वर्णन किया गया है।

(चतुर्थ स्कन्ध)

(१) इसमें परशुराम का जीवन आ जाता है। इसकी कथा हमने पुराणों से ली है। ऋग्वैदिक काल और ब्राह्मणों में निर्दिष्ट समय में जो व्यवधान पड़ जाता है उसी समय की यह कथा है।

(२) इसके उपसंहार रूप में 'तर्पण' लिखा गया है जिसमें और्व ऋषि परशुराम के पास से जामदग्न्यास्त्र प्राप्त करते हैं। इसमें शुक्राचार्य से सगर राजा तक कथाओं का चार स्कन्धों में समावेश हुआ है। इन महानाटकों के लिए जो आधार प्राप्त हुए हैं उनमें से कुछ तो श्री दुर्गाशङ्कर शास्त्रीजी से प्राप्त टिप्पणियों में और कुछ मेरे उपर्युक्त संशोधनात्मक लेखों में प्राप्त हो सकेंगे। यह पुराण-कथा एक अर्वाचीन उपन्यासकार के पिछले २५ वर्षों के प्रयत्नों का फल है। महाभारत, रामायण और भागवत् के रचयिताओं ने पुष्कल काल्पनिक सामग्री प्रस्तुत कर दी है। किन्तु अब पिछली शताब्दियों ने इस पर अपनी मोहर लगा दी है। मैंने जो सामग्री प्रस्तुत की है उसको कई लोग अक्षम्य मानेंगे।

किन्तु मेरे सामने तो एक ही प्रश्न था—वैदिक और पौराणिक समय का दिग्दर्शन कराना। इस स्वनिर्धारित कर्तव्य के लिए सामग्री की खोज

में मैंने यथासाध्य ऋग्वेद और पुराण की सहायता ली है। इन महा-नाटकों की रचना मेरी स्वतन्त्र कलाकृति है; मानव जीवन के मेरे आदर्श और सृजनशक्ति ने इनका निर्माण किया है। १९२२ से १९४५ तक २३ वर्ष में यह महानाटक पूर्ण हो गए हैं। प्रचण्ड मानवों के प्रचण्ड प्रसङ्गों के मेरे स्वप्न इनमे समाविष्ट हैं।

वशिष्ठ अरुन्धती के उद्‌गार, शम्बर कन्या और विश्वरथ का प्रेम, लोपामुद्रा का प्रेम, परशुराम की बालचेष्टा, विश्वामित्र का अभय संशोधन और परशुराम के कितने ही जीवन प्रसङ्ग मेरे इन नाटको में सफल हुए है, अधिक चमत्कृत हुए हैं ऐसा मैं मानता हूँ।

शुक्राचार्य से और्व तक अविच्छिन्न धारा इनमे बह रही है। इस प्रकार की गगनस्पर्शी मानवता सनातन आर्य संस्कृति का सहारा लिये बिना पूर्ण नही हो सकती। आर्यत्व और आर्यावर्त इसके द्वारा मुझे दोनों के दर्शन हुए हैं।

मुझ पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि इन महानाटको मे मैंने जो भृगुवंश के महापुरुषो का चित्रण किया है, वह इसलिए कि मैं स्वयं भडौंच का भार्गव ब्राह्मण हूँ। सम्भव है कि कुछ गुजराती लोग ऐसा समझे। किन्तु विवेचनशील लोग मानेंगे कि वैदिक काल मे भृगुवंश एक महाप्रचण्ड शक्ति था। शुक्राचार्य, देवयानी, च्यवन, सुकन्या, सत्य-व्रती और रेणुका, ऋचीक, जमदग्नि, शुन.शेप, परशुराम और कवि चायमान और्व और मार्कण्डेय यह महाप्रतापी व्यक्ति थे। भार्गव लोगों का स्थान-स्थान पर उल्लेख है। महाभारत तो भार्गवों के वर्णन से भरा पडा है। डाक्टर सुखतनकर ने कहा है कि ऋषियों में यदि कोई ईश्वर का अवतार स्वीकृत हुआ है तो वह केवल भगवान् परशुराम थे। हिमालय मे निर्मित परशुराम-शृङ्ग से लेकर त्रावनकोर तक के स्थान इनके पुण्य स्मरणों से अङ्कित हैं; सम्पूर्ण महाभारत इनके प्रताप से ज्वलन्त हो उठा है।

वर्षों बीते मैंने परशुराम पर एक लेख लिखा था, उसीको यहाँ

उद्धृत कर रहा हूँ। इसमें परशुराम के सम्बन्ध में नई खोज है—

आर्य-जीवन का प्रातःकाल था। आर्यों की मुख्य जातियाँ पंजाब में निवास कर रही थीं। कितनी ही जातियों ने आगे बढ़कर गङ्गा और यमुना के किनारे राज्य स्थापन कर लिये थे। दूसरी जातियों ने मथुरा के प्रदेश को छोड़कर नर्मदा के तीर पर अपने आवास बना लिये थे। धीरे-धीरे इस देश के असल निवासी नाग, दस्यु, दैत्य पीछे हटते जा रहे थे। सरस्वती और दृषद्वती का प्रदेश जो आजकल सरहिंद जिले के आस-पास है, आर्य-जीवन का केन्द्र स्थान था। यही वास्तविक आर्यावर्त था। आर्यों की पवित्र भूमि में जहाँ यदु और पुरु, भरत और तृत्सु, तुर्वसु, अनु और द्रुह्यु, जह्नु और भृगु जातियाँ निवास कर रही थी, वहाँ आर्य संस्कार और धर्म के संस्थापक महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र, जमदग्नि और अङ्गिरा, गौतम और कण्व के आश्रमों से निकलती दिव्य ऋचाओं की ध्वनि आर्यों की उत्कृष्ट आत्मा को शब्दों में व्यक्त कर रही थी।

इस भूमि में जो राजा लोग सत्ता भोगते थे वे चक्रवर्ती, जो तप करते थे वे ऋषि और जिन्होंने ऋचाओं का उच्चारण किया था वे मन्त्र द्रष्टा, प्रचलित प्रथाओं का स्तर ऊँचा करते थे। जो संस्कार प्रगट हुए वे सब धर्म-कर्म के मूल थे। और उधर वाराणसी के तट से नर्मदा के तट तक फैली हुई दूसरी आर्य जातियाँ युद्ध करती, राज्य स्थापन करती हुई आगे बढ़ रही थीं। फिर प्रेरणा के लिए, उत्तेजना और शान्ति के लिए आर्यावर्त की ओर लौटती थीं।

इस आर्यावर्त में रहने वाले ऋषियों में श्रेष्ठ और सुसंस्कृत भरत जाति के विश्वामित्र थे। वे ऋग्वेद की मुख्य ऋचाओं के कर्ता भी थे, तथा पुरु और तृत्सु जाति के युद्ध में एक-दूसरे के सामने कभी-कभी भाग लेते थे। संस्कार और पवित्रता में जो हेर-फेर कर सकते थे ऐसे तो केवल-मात्र वशिष्ठ मुनि ही थे।

विश्वामित्र के पिता गाधिन् (गाधी) जन्हु कुल के थे। एक बार

उनके घर भृगु जाति और काव्य कुल के और्व ऋचीक आये। ऋचीक ने हज़ार श्याम वर्ण के घोड़े गाधी को देकर प्रसन्न किया और उसकी पुत्री सरस्वती के साथ विवाह किया। जिन भृगुओ के नेता ऋचीक थे वे अग्निपूजक भी थे। वे मन्त्र-यन्त्र विद्या मे कुशल माने जाते थे। अथर्ववेद पर उनका अधिकार था, और उनमे से अग्नि ने अग्नि उत्पन्न की ऐसा उनका दावा था।

उनमे एक पूर्वज कवि उशनस् (शुक्राचार्य) अनार्य जाति के आदि गुरु थे। वे पुरु, यदु, अनु, द्रुह्यु और तुर्वसु इन पांच जातियो के मूल पुरुष माने जाने वाले ययाति राजा के श्वसुर भी थे। उनके आचार-विचार आर्यावर्त की दृष्टि में विश्वामित्र और वशिष्ठ के समान शुद्ध नहीं थे। परन्तु यह आर्यावर्त के बाहर जहां आर्यों के संस्कार बहुत शुद्ध नहीं थे वहां अनार्यों के साथ सम्बन्ध भी करने लगे थे। वहां भृगुओं का धार्मिक बल बहुत दृढ था।

यह भृगु गुरुओं की पदवी ही नहीं अलंकृत करते थे, अपितु यह लोग महान् योद्धा भी थे, और आर्यावर्त मे बसने वाली बहुत-सी आर्य जातियो के समान सम्मुख युद्ध करते थे। यह तुर्वसु और द्रुह्यू जाति के सहायक थे। पक्थ और शार्यातो के यह शिष्य थे। यही कारण है कि आर्यावर्त के सांस्कारिक जीवन में उनको उच्च स्थान प्राप्त था। किन्तु उनके राजकीय जीवन मे तो भार्गवो का ही अनन्य स्थान था। गाधी के जामाता ऋचीक और सरस्वती से जमदग्नि उत्पन्न हुए। जमदग्नि और विश्वामित्र ने साथ ही जन्म लिया और साथ ही उनका पालन-पोषण हुआ। इन भाञ्जे और मामा ने आर्यावर्त के ऊँचे आर्य संस्कार प्राप्त किये। ऋग्वेद मे एक ही ऋचा के संयुक्त मन्त्रद्रष्टा जमदग्नि और विश्वामित्र दोनो ही हैं।

किन्तु ऋचीक और्व की महान् सत्ता और प्रभाव आर्यावर्त के बाहर भी था। सिन्धु से भागीरथी तक, मदुरा से नर्मदा तक उनका बोल-बाला था। ऋचीक ऋषि के आत्मज जमदग्नि सात्विक वृत्ति के थे।

पिता के देवलोक जाने पर जमदग्नि इक्ष्वाकु वंश की राजकन्या रेणुका के साथ विवाह करके निर्मल और सांस्कारिक जीवन बिताने लगे। उनके चार या पांच पुत्र हुए; उनमें सबसे छोटे परशुराम थे। ज्ञात होता है परशुराम का जन्म वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन हुआ था। वे सर्वशास्त्र सम्पन्न थे। उनकी नसों मे जगद्विजयी अग्निपूजक भृगुओं का प्रतापी रुधिर बह रहा था। और ऋचीक ने सहस्राजु न-जैसो द्वारा आहत भयानक युद्ध मे भाग लेकर शौर्य और महत्त्वाकांक्षा को प्राप्त किया, और उन्हीं से पोषित परशुराम ने विश्वामित्र और जमदग्नि की गोद में सरस्वती और दृषद्वती के तीर पर जीवन की सफलता प्राप्त की—जहां पर वाणी की शुद्धि के समान जीवन की संस्कारिता भी प्रिय समझी जाती थी, जहां साम्राज्यों के सिंहासन के सामने ऋषित्व ऊँचा समझा जाता था, और जहाँ आर्य संस्कारो की रक्षा जीवन की सफलता थी। इस युवक की पहली परीक्षा पिता ने ली। परशुराम की मां के रुधिर मे इक्ष्वाकुओं की स्वच्छन्दता थी। उसने आर्यों के निर्मित नीति-पन्थ का मान त्याग किया। मृतिकावती के राजा चित्ररथ पर वह आसक्त हो गई। इस अपराध को उस समय के आर्य पुरुषों के समान जमदग्नि ने भी अक्षम्य समझा। जमदग्नि ने अपने पुत्रो को आज्ञा दी कि माता का वध करो। बड़े भाइयों ने पिता की आज्ञा को स्वीकार नहीं किया। परशुराम के हृदय में पिता की आज्ञा और माता की शुद्धि की भावना मातृ-स्नेह से भी कहीं ऊँची थी। उसने पिता की आज्ञा को स्वीकार करके माता का सिर काट डाला।

इस समय मथुरा से नर्मदा तक के प्रदेश में जिन आर्यों का अधिक प्रभाव था उनका नृपति था हैहय जाति का स्वामी सहस्राजु न। उसका नाम अजु न कार्तवीर्य भी था। इस स्थान का नाम अनूप देश था। अनूप देश की सीमा पूर्व में चर्मण्वती (चम्बल), पश्चिम मे समुद्र, दक्षिण में नर्मदा और उत्तर में आनर्त (उत्तर गुजरात) देश तक थी।

महिष्मती नगरी भडौंच से दस-बारह मील पूर्व, पश्चिम में रेवा के तट पर होगी, ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

सहस्त्रार्जुन की दुर्जय सत्ता से असली निवासी नाग जाति के लोग कांपते थे; उसकी पोतवाहिनी से रावण तक डरता था।

अनूप देश में पहले से ही भृगु लोग आकर बस गए थे। इस कारण प्रारम्भ में हैहयों और भृगुओं में मित्रता थी। लेकिन जैसा सहस्त्रार्जुन का प्रताप था वैसा ही उसमें अभिमान भी था। इस प्रकार अनेक जाति वाले और महान् साम्राज्य के धनी सहस्त्रार्जुन को छोटे-छोटे राजाओं की जहां कोई चिन्ता नहीं थी वहां वह तपस्वी महात्माओं की भी परवाह नहीं करता था। उनके संस्कार के लिए भी उसके हृदय मे मान न था। अपने राज्य में रहने वाले भृगुओं के प्रति उसका तिरस्कार बढता जाता था।

मथुरा से आर्यावर्त थोड़ी दूर था। उसने वशिष्ठ का आश्रम जला दिया, भृगुओं की गायें लूट लीं, आर्यावर्त मे चारों दिशाओं के आश्रम छिन्न-भिन्न हो गए। किसी को यह ध्यान भी न था कि आर्य जाति का एक राजा ब्रह्मवर्त की यह दशा कर देगा।

एक दिन परशुराम पिता के आश्रम मे आये; आश्रम में अर्जुन के द्वारा किये गए विध्वस को देखा। ऋषिगण कहीं भी दिखलाई न दिए; गायें अदृश्य हो गई थी, पर्णकुटियाँ जल रही थीं। परशुराम ने इसका कारण समझ लिया। उन्होंने सहस्त्रार्जुन का पीछा करके उसे मार डाला। हैहय लोग बदला लेने के लिए बेचैन हो उठे और परशुराम की अनुपस्थिति में हैहय लोगों ने जमदग्नि को मार दिया। जब परशुराम ने अपने सतोगुणी पिता को मरा हुआ देखा तब उसके हृदय मे क्रोध की प्रचण्ड ज्वाला धधक उठी।

परशुराम के गर्जन से आर्यावर्त के त्रस्त योद्धाओं मे जीवन संचरित हुआ। नर्मदा से सिन्धु तक भृगु लोग खून के प्यासे बन बैठे। क्रुद्ध आर्यावर्त की मूर्ति के समान यह वीर हैहयों के पीछे पड गया, स्थलन्त

पञ्चक क्षेत्र में हैहयो के रुधिर से पांच सरोवर भर दिये, महिष्मती नगरी पर अधिकार कर लिया और पिता का श्राद्ध सहस्रार्जुन के पुत्रों के रुधिर से किया।

मानो ज्वालामुखी पर्वत फट गया हो इस प्रकार आर्य योद्धाओं ने परशुराम के नेतृत्व मे संगठित होकर युद्ध किया। इस विजयी सेनानी के पीछे आते हुए आर्यावर्त के ऋषियो ने आर्य संस्कार, आचार-विचार चारों दिशाओं मे प्रसारित कर दिए। आगे बढती हुई आर्य जातियो ने, जो मातृभूमि से दूर होने के कारण आर्य संस्कारो को भूलती जा रही थीं, फिर आर्य संस्कृति को अपनाया। परशुराम के प्रताप के आगे हिमालय से नर्मदा तक के राज्यों में उथल-पुथल मच गई। बहुत-सी जातियाँ नष्ट होकर आर्यों की विजयिनी जातियो मे मिल गईं।

महाभारत के युद्ध के समय जो राज्य थे उनका बीज इस समय बोया गया। परशुराम की युद्ध की परम्परा से इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन आर्यों की संस्कृति सम्पूर्ण प्रदेश में इस प्रकार फैल गई कि एक महान् आर्यावर्त की कल्पना की जा सकती थी। उसकी सीमा सरस्वती और दृषद्वती नहीं किन्तु हिमालय से नर्मदा तक गिननी चाहिए। कृतज्ञ होकर आर्यों ने इस वीर को ईश्वर का अवतार मानकर सदा के लिए देव मन्दिर मे प्रतिष्ठित कर दिया। इसने नर्मदा के उत्तर में आर्य सत्ता प्रतिष्ठित करके सम्पूर्ण देश को नया जीवन, नई संस्कृति और नई एकता प्रदान की, और स्वयं अनूप देश मे आकर रहने लगा। पुराणो में लिखा है कि परशुराम ने कश्यप को पृथ्वी दान में दी, और उनसे समुद्र के पास शूर्पारक देश मांगकर अपना निवास बनाया।

सहस्रार्जुन का जो अनूप देश था उसका बहुत-सा भाग—खम्भात के अखात मे सोपारा तक नदी के किनारे का देश—शूर्पारक देश माना जाता है। इस शूर्पारक का मुख्य स्थान भृगुतीर्थ था जिसका पीछे से भृगुकच्छ (भडौंच) नाम पड गया है। जामदग्नेयतीर्थ नर्मदा के संगम से आगे परशुराम का क्षेत्र अभी तक है। और एक क्षेत्र है नासिक

के आगे, जिसका अभी तक निर्णय नहीं हो पाया है। शूर्पारक नाम आज भी सोपारा से मालूम होता है।

जिस समय धर्मराज बनवास जाने के लिए निकले तब वे इन तीर्थों में घूमते रहे, और राजा जामदग्नेय के स्मरण को ताजा करके पवित्र हुए। महाभारत के युद्धकाल तक परशुराम के वंशज और शिष्य युद्ध-कला मे इतने प्रवीण माने जाते थे कि बड़े-बडे वीर उनसे शिक्षा प्राप्त करके अपने आप को गौरवान्वित समझते थे। परशुराम के पश्चात् कई शताब्दी तक आर्यों के जीवन मे ज्वलन्त उत्साह बना रहा। वे लोग विजेता के रूप मे चारों तरफ घूमते रहे। अपना राज्य स्थापन करना तथा आर्य संस्कृति का प्रचार, ये दोनो लक्ष्य निरन्तर उनके सामने रहे। उनमे संसार, व्यवहार, राज्याधिकार की अनियन्त्रित मानवीय प्रतापी ज्योति जगमगाती रहती थी। उस समय उनका आदर्श भिन्न था किन्तु उस आदर्श को जिसने ईश्वर के अवतार मे मूर्तिमान किया वे परशुराम थे।

परशुराम महर्षि थे तथा उच्च संस्कृति के प्रतिनिधि भी थे और बली, भयंकर, दुर्जेय, प्रतापी और दृढ़ विजेता थे। कृष्ण पूजा के समय पहले के हिन्दू लेखकों की कल्पना-शक्ति भूतकाल के पट पर चित्रित क्षत्रिय-विहीन करने वाले परशुराम की महत्ता के गुण की दासी थी। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने आर्यावर्त के जीवन और साहित्य में उदात्त और अपूर्व स्थान प्राप्त किया वैसा ही गौरव ईसा सम्वत् से चौथी, पांचवीं सदी पहले परशुराम ने भी प्राप्त किया था। इसके पश्चात् देश से शौर्य का नाश हो गया। जब विलासिता बढी, जब तत्वज्ञान का प्रचार हुआ, भक्ति मार्ग का प्रचार हुआ, तब वह स्थान श्रीकृष्ण को मिला; तब वह मनुष्य से विष्णु बन गया, योद्धा से ईश्वर बन गया, शासक से योगीन्द्र बना, विलासी से बाल-ब्रह्मचारी गिना गया। तब ईश्वर का आठवां अवतार वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन के रूप मे हुआ, वासुदेव कृष्ण के रूप में नहीं।

आर्यों की कल्पना-शक्ति इस वीर जामदग्नेय से इतनी प्रभावित हुई कि अनेक गुण, लक्षण और पराक्रम के स्थान परशुराम माने गए। वह विश्वामित्र ऋषि की बहन के पोते थे और इच्वाकु राजा के दौहित्र, परशुराम ऋषि के रक्षक और अजेय सहस्रार्जुन के काल बने। इन्होंने स्वामी कार्तिकेय से स्पर्धा करके क्रौंच पर्वत को अपने बाणसे बेध डाला। इन्होंने पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय-विहीन कर दिया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण वसुन्धरा यज्ञ के समय दान रूप में दे डाली। एक युग के बाद भी उनका धनुष रावण से न उठाया जा सका। ईश्वर के अवतार दाशरथी राम ही केवल उस धनुष को तोड सके। उन्होंने भीष्म, बलदेव, तथा कर्ण को शस्त्रविद्या सिखाई, विदेश में रहते हुए श्रीकृष्ण को परामर्श दिया, सहस्रार्जुन से लेकर श्रीकृष्ण-जैसे वीरों की परम्परा में, कितना लम्बा काल, कितने प्रतापी युग-युगान्तर, और उनमें आर्यों के आदर्श, और उन आदर्शों में विजय की प्रचण्ड महेच्छा की ज्वलंत मूर्ति के समान महर्षि-धर्म का अभ्युत्थान करने के लिए शिवावतार परशुराम थे। कविवर बाल्मीकि ने इस महापुरुष का अद्भुत चरित्र लिखा है। सीता का विवाह हो जाने के पश्चात् दशरथ राम को लेकर लौट रहे थे।

तेषां संवदतां तत्र वायुः प्रादुर्बभूव ह ॥
कम्पयन् मेदिनी सर्वां पातयंश्च महाद्रुमान्।
तमसा संवृत्तः सूर्य्यः सर्वे नावेदिषुर्दिशः ॥
भस्मना चावृतं सर्वं संमूढमिव तद्बलम्।
वसिष्ठो ऋषयश्चान्ये राजा च ससुतस्तदा ॥
संसंज्ञादव तमासन् सर्वमन्यद् विचेतनम्।
तस्मिस्तमसि घोरे तु भस्मच्छन्नेव स्मा चमूः ॥
ददर्शा भीमसङ्काशं जटामण्डलधारिणम्।
भार्गवं जामदग्नेयं राजा राजविमर्दनम् ॥
कैलासमिव दुर्द्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम्।
ज्वलंतमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्जनैः ॥

स्कन्धे चासज्य परशुं धनुर्विद्युद् गुणोपत्रम् ।
प्रगृह्य शरमुग्रञ्च त्रिपुरघ्नं यथाशिवम् ॥

लोमहर्षिणी मे परशुराम का बाल्यकाल चित्रित हुआ है। उसी के अनुरूप इस पुस्तक मे परशुराम का यौवन भी चमका है। मेरे सामने बालकपन से एक प्रश्न था कि परशुराम में ऐसा कौनसा व्यक्तित्व काम कर रहा था कि सम्पूर्ण प्रजा के स्मरण मे इनकी प्रचण्डता अंकित हो रही है।

यह वीरो मे वीरोत्तम किस प्रकार गिने गए; अघोरियों के पूज्य किस प्रकार बने; शस्त्रविद्या के महागुरु के रूप मे सम्पूर्ण आर्य जाति ने इनको कैसे स्वीकार किया? इनके नाम से तीर्थ-स्थानों की स्थापना हुई। इनमे ऐसी क्या विशेषता थी कि राम और कृष्ण के समान इनको ईश्वर का अवतार माना गया? ऋषियो के वंशज होते हुए भी ये ऋषि क्यो नहीं कहलाये? इनके पुत्र महर्षि थे और माता सती कहलाई। पृथ्वी को निःक्षत्रिय करने की दन्तकथा के पीछे ऐसे कौनसे पराक्रम छिपे थे जिनके कारण इनकी स्मृति अमर हो गई?

और इससे भी बडी बात यह हुई कि जमदग्नि से ही ऋग्वेद का काल पूरा होता है, शतपथ ब्राह्मण का काल प्रारम्भ होता है। ज्ञात होता हैं उस समय आर्य कोई जाति नही थी, एक बडी प्रजा थी। शंकर को देवाधिदेव रूप मे स्वीकार किया गया। छोटे-छोटे राज्यो के बदले बडे-बडे राज्य बने। सरस्वती नदी भी लुप्त हो गई थी। आर्य लोग नर्मदा से मगध तक फैले हुए थे।

इन दोनो समयों के बीच में बहुत-से हेर-फेर हुए। इन दोनो कालों को संकलन करने पर एक ही पराक्रम की बात प्रतीत होती है—वह है परशुराम का पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन करना। इसी कारण कदाचित ऋग्वेद का जीवन समाप्त हुआ और ब्राह्मण काल प्रारम्भ हुआ। मेरा मत है इस संक्रान्ति काल के अधिष्ठाता परशुराम थे। इस विषय की

मामग्री मैंने Early Aryans in Gujarat मे प्रस्तुत की है। इसी घटना को आज मै जीवन-रूप दे रहा हूँ।

आर्यावर्त की महागाथा की जो अन्तिम कृति का मैंने निश्चय किया था उसको उपसंहार रूप में तर्पण के नाम से वर्षों पहले पूरा कर दिया है। किन्तु इस कथा मे परशुराम के पहले तीस वर्ष पूरे हुए है। भीष्म, द्रोण और कर्ण के गुरु रूप मे इनका चित्रण रह गया है। यदि ईश्वर की इच्छा हुई तो वह भी पूरा होगा। इस पुस्तक से आर्यावर्त की महा-गाथा की बहुत-सी कड़ियाँ पूरी होगी ऐसा मुझे मान लेना चाहिए।

फिर भी इन महात्माओ की परम्परा मे अगस्त्य और लोपामुद्रा, वशिष्ठ और अरुन्धती वशिष्ठ और विश्वामित्र, शृंगारानी और डडुनाथ के पात्रो मे ओछी मानवता नही है।

भारतीय कल्पना ने सहस्रो वर्ष तक इस महत्ता के आदर्श को सजीव रखा है। इस सजीवता में आधुनिक युग के अनुरूप, यदि मैंने अणुमात्र भी अभिवर्धन किया तो मेरे पच्चीस वर्ष का उल्लासमय तप सफल हुआ, ऐसा मैं मानूंगा।

रिज रोड, बम्बई
१ अप्रैल, १९४६

—कन्हैयालाल मुन्शी

क्रम

पहला भाग

आमुख

अभी विक्रमादित्य के प्रादुर्भाव मे पन्द्रह सौ वर्ष का विलम्ब था। सिकन्दर का आक्रमण अभी भावी के गर्भ मे था और उसी प्रकार बारह सौ वर्ष और भी बीतने थे। बुद्ध भगवान् का जन्म होने मे अभी एक सहस्र वर्ष का विलम्ब था, महाभारत के युद्ध के लिए अभी कई शताब्दियाँ बीतनी थीं।

आज जो आर्यावर्त है वह तब नही था। पंजाब उस समय सप्त-सिंधु कहलाता था। आज जिस नदी का चिह्न तक अवशेष नहीं, उस विद्वत्ता की जननी सरस्वती के विशाल तट पर वशिष्ठ, विश्वामित्र, भृगु और कण्व के आश्रम फैले हुए थे।

सप्तसिंधु में आर्यों की भिन्न-भिन्न जातियाँ द्वेष से प्रेरित होकर एक-दूसरे से मार-काट करने पर तत्पर हो रही थीं। दो महात्मा एक दूसरे से टक्कर ले रहे थे—एक थे वशिष्ठ, दूसरे थे विश्वामित्र। वशिष्ठ थे तृत्सुओं के राजा सुदास के गुरु।

दासों के राजा दिवोदास का पुत्र भेद, राजा सुदास के सम्बन्धी की स्त्री शशियसी को उड़ा ले गया था। एक दास आर्य राज-कन्या को उठा ले जाय यह कार्य वशिष्ठ को अधर्म जान पडा और भेद पर उग्र प्रकोप करके उन्होंने आर्यों की एक विशाल सेना खडी की।

भेद ने जाकर पुरुओं के राजा कुत्स की शरण ली। उसने दस राजाओ का समूह एकत्रित किया और विश्वामित्र ने उनका गुरुपद स्वीकार किया।

आज जहाँ राजपूताना है वहाँ स्थान-स्थान पर मरुस्थल और पानी के पोखरे फैले हुए थे। जहाँ आज बंगाल है वहाँ बड़ी-बड़ी नदियो के

विस्तृत मुख समुद्र मे आकर मिला करते थे ।

आज के गुजरात-काठियावाड और मालवा मे हैहय और ताल-जंघ नाम की आर्य जातियो का एक बडा समुदाय, जगलो को भेदता हुआ, नागो का संहार करता हुआ, नदियो को लाँघता हुआ और परस्पर लडने मे शक्ति का व्यय करता हुआ रहा करता था ।

इस जाति-समूह मे हैहय, तालजंघ, शार्यात, आनर्त, अवन्ती, तु डीकेरा और यादव आदि गोत्र थे ।

काठियावाड उस समय सुराष्ट्र कहलाता था, और उत्तर गुजरात को आनर्त कहा जाता था । मालव का नाम तब आवंती था । सोपारा से खभात तक का प्रदेश अनूप देश के नाम से प्रसिद्ध था । इन सभी प्रदेशो मे बसनेवाली जातियो को हैहय जाति के राजा महिष्मत ने बलात् एक चक्र मे बाँध लिया था और नर्मदा-तटवर्ती अनूप देश मे उसने माहिष्मती नगरी बसाई थी । उसके पुत्र का नाम कृतवीर्य था । कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन इस समय हैहय जाति-समूह का चक्रवर्ती राजा था । उसका प्रताप एक सहस्र राजाओ के समान था, इसलिए सहस्रार्जुन कहलाता था ।

आज के काठियावाड मे—सौराष्ट्र में—द्वारिका के पास पुण्यजन राक्षस बसा करते थे । उनकी बस्ती के पश्चिम मे तालजंघ गोत्र के लोग बसते थे । इनके बीच शार्यात गोत्र का निवास था । उज्जयंत अथवा गिरनार की तलहटी मे यादव गोत्र की मुख्य छावनी थी । जिस गोत्र की मुख्य छावनी जहाँ होती थी, वहाँ उसके आसपास अनेक योजनों तक उसी गोत्र की चौकियाँ बनी रहती थी ।

एक

गिरनार की छाया में

: १ :

"बाप रे बाप, न जाने क्या होने वाला है ? ऐसा बवंडर तो अपने जन्म मे मैंने देखा नहीं," एक वृद्ध नाविक ने कहा ।

"यह तो मरुत कुपित हुए हैं," एक युवक ने योग दिया ।

"कुपित नहीं तो क्या हों ? सहस्त्रार्जुन ने क्या कम पाप किये हैं ? उसके दिन पूरे हो चले हैं," एक लम्बे, दुबले, दाढी वाले आदमी ने कहा । उसके एक हाथ मे भाला था और दूसरे हाथ से वह अपने घोडे को खींच रहा था ।

"पर अपने साथ वह भार्गव को भी तो पकड़ कर ला रहा है । अरे देख तो, वह पोत डूब रहा है, या कुछ और बात है," कहकर युवक चिल्ला उठा ।

द्वारावती के समुद्र तट पर खडी हुई मेदिनी स्तब्ध हो गई । क्षितिज पर से निकट आते हुए कोई दस-पन्द्रह पोत डांवाडोल हो रहे थे, और सब यही समझ रहे थे कि बस अब डूबे, अब उलटे ।

"सहस्त्रार्जुन किस पोत में आ रहे होंगे ?" युवक ने नाविक से पूछा ।

"यह जो सबसे आगे पोत आ रहा है उसी में होंगे," नाविक ने कहा ।

"देखना है कितने पोत किनारे आते हैं । सभी डूब जायँ तो ?"

घोडे वाले पुरुष ने तिरस्कारपूर्वक युवक की ओर देखा । "मूर्ख न बनो ! महाअथर्वण ऋचीक के पौत्र राम आ रहे हैं, जानते हो, पचास वर्ष पहले जो तुम्हे शाप मिला था उसे उतारने के लिए ।"

"तो फिर समुद्र क्यों कुपित हुआ ?"

"तुम्हारे पाप का स्मरण दिलाने के लिए," घोडे वाले ने कहा।

इतने ही मे लगभग पन्द्रह अश्वारोही, लोगो की उपेक्षा करते हुए बढते चल आए। "जय ! पशुपति की जय !" दो-एक व्यक्तियों ने जय-घोषणा की।

आगे घुसे आ रहे एक घोडे को उस दाढीवाले जटाधारी घोडे वाले ने लगाम पकडकर रोका—"देखना, कहीं लोगों को कुचल न देना।"

जिस घोडे को रोका गया था, उस पर बैठने वाले सैनिक ने खड्ग उठाया—"चल दूर हट !"

दाढी वाले जटाधारी ने बिना कुछ बोले ही सैनिक के घोडे की लगाम को पकडकर ऐसा झटका दिया कि घोडा एकदम पीछे हट गया और घुडसवार गिरते-गिरते बचा।

"तेरा राजा तो वहा मृत्यु की घडियां गिन रहा है और तू यहां बडी-बडी डींग हांक रहा है ?" कहकर जटाधारी ने माला हाथ मे ली। चार-पांच अश्वारोही आस-पास आ लगे। कुछ लोग बवंडर मे फंसे पोतो को देखना छोड यह झगडा देखने के लिए घिर आए।

सबके बीच वह जटाधारी अडिग होकर खडा था।

"पापियो ! तीन पीढियो के बाद तुम्हारे पाप धोने के लिए गुरुदेव आ रहे हैं। तब भी तुमको भान नहीं है ?"

"भृगु ! भृगु ! भृगु !" लोगों की भीड मे से कुछ लोग बोल उठे।

"हाँ, हाँ, मै भृगु हूँ, तुम सबका गुरु, जो देव तुम पर कृपा करें तो ! और मेरा कुलपति आ रहा है। तीन पीढियो तक गुरु के बिना इतने अधिक दुखी हो गए हो, फिर भी तुम्हारा मद नही उतर रहा है ?" उसने उग्रतापूर्वक सैनिको को लक्ष्य करके कहा।

हैहय सैनिको का नायक आगे बढ आया।

"क्यों इतने उग्र हो रहे हो ?"

इतने में किनारे पर जमी हुई मेदिनी ने हर्षनाद किया तो उन

झगडने वाले अश्वारोहियों का ध्यान समुद्र की ओर गया। डाँवाडोल हो रहे पोतों में से एक पोत अन्य सब पोतों से आगे, बड़े द्रुतवेग से किनारे की ओर आ रहा था।

"चक्रवर्ती इसमें होंगे," नायक ने कहा। भृगु ने आँखों पर हाथ रखा। सभी एक-टक देख रहे थे। पोत झपटता हुआ निकट आने लगा।

"वह लड़का-सा कोई खड़ा दीख रहा है, वह कौन है? उसके हाथ मे फरसा है," नायक ने कहा।

"कोई गौरवर्ण है।"

"पोत डोल रहा है, पर वह तो ज्यों-का-त्यों खडा है।"

"हैहयराज! मैं बताऊं वह कौन है?" जटाधारी ने सूक्ष्म दृष्टि से उस पोत पर खड़े लड़के को पहचानने का प्रयत्न किया।

"यही है भार्गव, महर्षि जमदग्नि का पुत्र राम, महाअथर्वण का पौत्र।"

"कैसे जाना?" नायक ने पूछा।

"अपने बचपन मे मैं महाअथर्वण की सेवा मे था। वैसा ही शरीर, वैसा ही रङ्ग, वैसी ही छटा है। सागर उन्हे इस प्रकार मार्ग दे रहा है, मानो वरुणदेव सागर पर शासन कर रहे हो," एक वृद्ध सैनिक ने कहा।

"इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है?" भृगु हँस पडा, "महाअथर्वण का पौत्र जहां होगा, वहां देव निश्चित रूप से होगे ही।"

पास आ रहे पोत के मस्तूल पर एक पन्द्रह वर्ष का पर प्रचण्ड-सा लगने वाला लडका हाथ मे परशु लिये दिखाई पड़ा। पोत डोल रहा था, पर वह स्थिर खडा था। उसके लम्बे बाल उसके कंधो पर फैले हुए थे। अन्तिम प्रहर की सूर्य-किरणें उसके श्वेत अङ्गो को देदीप्यमान कर रही थीं।

पोत निकट आया। लड़के का सुरेख मुख स्पष्ट हो गया। उस पर उग्रता थी। किनारे पर खडे हुए स्त्री-पुरुषो को कुछ ऐसा आभास हो रहा था, मानो वह लडका एकाग्र दृष्टि से, बवण्डर पर चढे हुए सागर के जल को अपने वश में रख रहा है।

मेदिनी के हृदय मे एकबारगी ही दर्प और आनन्द के भाव जाग उठे। "भार्गव", "राम", "महाअथर्वण का पौत्र" सभी बोलने लगे।.

माहिष्मती के राजा हैहय, यादव, शार्यात, तालजंघ तथा अवन्ती जैसी प्रबल जातियों के चक्रवर्ती राजा महिष्मत के अधर्म से व्याकुल होकर उनके गुरु महाअथर्वण ऋचीक, शाप देकर, इस भूमि को छोड आर्यावर्त को चले गये थे। बहुत-से लोगों का मानना था कि वही शाप इन जातियों को लगा था और उसी के परिणामस्वरूप चालीस वर्ष तक इस प्रदेश पर देव का प्रकोप व्याप रहा था। महिष्मत राजा का पुत्र कृतवीर्य अकाल मृत्यु का ग्रास हुआ, और उसके पश्चात् उसका पुत्र सहस्रार्जुन चक्रवर्ती पद भोग रहा था। वह तीन सहस्र सैनिक लेकर आर्यावर्त गया था और वहाँ से ऋचीक जमदग्नि के पुत्र राम को साथ लेकर आ रहा था।

सुराष्ट्र और अनूप देश मे बसने वाली आर्य जातियो मे कई दिनो से ये बातें फैली हुई थीं। मदमत्त युवकों को छोडकर सभी के हृदयो मे आनन्द व्याप्त हो गया था, क्योंकि उन्हे ऐसा प्रतीत होने लगा था कि पापाचार के युग का अन्त आ पहुंचा है। चालीस वर्ष के उपरान्त ये प्रदेश शाप-मुक्त होने जा रहे थे।

: २ :

पन्द्रह पोत डॉवाडोल हो रहे थे। उनमे से एक ही पोत निर्भय हो सका! बवण्डर के होते हुए भी एक देव-सा लडका मस्तूल पर से लहरों को आज्ञा दे रहा है! और वही भार्गव राम हो सकता है, एक अबूझ धाक प्रेक्षक-वृन्द मे व्याप गई।

सबके चित्त को हरण करने वाला वह बालक, पर्वत के समान निश्चल, उस मस्तूल पर खडा था।

पोत डूबने-डूबने को होने लगे तो वह परशु हाथ में लेकर नाविक बन गया। उसके पोत में बैठे हुए व्यक्तियों को लग रहा था

कि दिन और रात वह बालक अथक रूप से मस्तूल पर अडिग खडा रहकर सागर को आज्ञा दे रहा है।

यादव गोत्र का राजा और सहस्रार्जुन का सेनापति राजा भद्रश्रेण्य उसके साथ था। सहस्रार्जुन मानता था कि भार्गव राम को और तृत्सुओ के राजा सुदास की बहन लोमहर्षिणी को वह बलात्कारपूर्वक अपने देश उडा लाया था, और भद्रश्रेण्य उनका चौकीदार था।

पर कई महीनों के संसर्ग से भद्रश्रेण्य राम का परम भक्त हो गया था। वह उसे महाअथर्वण से भी सवाया मानता था। उसके आगमन से सुराष्ट्र और अनूप मे शान्ति स्थापित हो सकेगी, यह विश्वास उसके मन मे जाग उठा था।

सहस्रार्जुन ने जब लोमहर्षिणी पर अत्याचार करना आरम्भ किया तब राम ने बीच मे पडकर उसे उबार लिया था। क्रोधांध सहस्रार्जुन ने जब उन्मत्त होकर अपने गुरुपुत्र को मारने का प्रयत्न किया तब भद्रश्रेण्य ने अपने प्राणों को खतरे मे डालकर राम को बचा लिया था। जब सहस्रार्जुन ने मदान्ध होकर लोमहर्षिणी जैसी राजकन्या का हरण करने का निश्चय किया तब राम ने उसके साथ सुराष्ट्र आने की तत्परता प्रकट की; और कुछ करके महाअथर्वण का शाप उतर सके, इसी आशा से भद्रश्रेण्य राम का साथ ले आया था।

सहस्रार्जुन तो राजा सुदास की बहन का हरण करना चाहता था। गुरुपुत्र को साथ लाने की इच्छा उसकी नहीं थी। पर भद्रश्रेण्य उसका मामा था, साथ ही उसका शिक्षक भी था। वही उसे गद्दी पर बिठाने वाला भी था; और वही आज उसका सेनापति भी था। सारे जगत को त्रास देने वाला सहस्रार्जुन दो ही व्यक्तियो से डरता था—एक राजा भद्रश्रेण्य से, और दूसरे अपनी रानी मृगा से। इन दोनों के चातुर्य और राजकौशल के बिना उसकी गति नहीं थी। इसलिए उसने सेनापति की बात मान ली और राम को साथ लेता आया।

पर यह मूर्खता सहस्रार्जुन के हृदय मे बराबर खटक रही थी।

राम लोमहर्षिणी का रक्षक हो गया। राम जब भद्रश्रेण्य और उसके सैनिको के सम्पर्क मे आया, तो वे भक्ति से विह्वल हो गए। अनायास ही वह सबका गुरुदेव हो गया, और सहस्रार्जुन का अभिमान पल-प्रतिपल घायल होने लगा। पर जैसा वह विकराल था, वैसा ही धूर्त भी था। भद्रश्रेण्य को छोडने मे उसे कुशल न जान पडी।

पच्चीस अश्वारोहियो को लेकर वह अकेला आगे बढता ही चला गया। भद्रश्रेण्य राम और लोमा सहित, दूसरे सैनिको के साथ पीछे-पीछे आ रहा था।

ज्यों ही कोई बस्ती आती और लोगो को जमदग्नि के पुत्र के आगमन का पता लगता कि उसका सत्कार-समारम्भ शुरू हो जाता। पाताल नगर तक तो सहस्रार्जुन का प्रयाण मानो भार्गव और भद्रश्रेण्य का विजय प्रयाण ही बना रहा। जब द्वारिका आने के लिए वे सब पोत मे बैठे, तब वरुणदेव ने भी उनका पक्ष लिया। बंधे हुए शार्दूल की भांति सहस्रार्जुन क्रोध से व्याकुल हो उठा। अब अपने देश में पहुँचकर वह भद्रश्रेण्य और राम को कुचल डाले, यही आकुलता सोते और जागते उसे सताने लगी।

इस समय उसका पोत संकट में था। उसके पाल टूट गए थे। नाविक निराश हो गए थे। एक सहस्र समरों का सेनानी वह स्वयं माथे पर हाथ रखकर, इस घडी उस बवण्डर से आक्रान्त समुद्र के अधीन हो गया था। तभी राम का पोत सनसनाता हुआ आगे चला जा रहा था। उसने विषाक्त भाव से दांत किटकटाकर मस्तूल पर खड़े भार्गव को मन-ही-मन सहस्रों गालियाँ दीं। कई बार उस लड़के को मार डालने का विचार मन में आया। उस विचार को सक्रिय रूप न दे सकने की अपनी निर्बलता पर भी उसे क्रोध आया। पर उस भयंकर मानस को धारण करने वाले हृदय में भी संदेह था। राम महा-अथर्वण का पौत्र था, उसके परम्परागत गुरु का पुत्र था। भले ही उसने अपने गुरु का त्याग कर दिया हो, पर इस छोकरे में कुछ ऐसी चीज़

थी जो उसे मात किये दे रही थी। उसे मारने का साहस उसमें नहीं था.। माहिष्मती जाकर उसे वश मे करने की कोई युक्ति उसे खोज निकालनी थी।

पोत किनारे के पास आकर खडा रह गया।

"प्रतीप," राम ने भद्रश्रेण्य के पुत्र से कहा, "तू लोमा को उठा कर ले आ।"

वह समुद्र में कूद पडा और द्रुतवेग से हाथ मारता हुआ किनारे पर आया। उसके पीछे भद्रश्रेण्य भी तैरता हुआ आया।

घुटने तक के पानी में आकर राम खडा हो गया कुछ लोग पानी में ही उसका स्वागत करने लगे। वह जटाधारी भृगु दौड़ता हुआ जाकर पैरों पडा।

"गुरुदेव! महाअथर्वण के पौत्र! मैं, भृगु विकुल, आपको प्रणाम करता हूँ।"

पानी में से निकलकर राम ने उस वृद्ध के माथे पर हाथ फैला दिए। "शत शरद् जियो," गंभीरता से, ममता से, उसने कहा।

इतना छोटा-सा बालक ऐसे वृद्ध को आशीर्वाद दे, यह बात किसी को भी हास्यास्पद नहीं लगी। राम के व्यक्तित्व पर अभेद्य अधिकार की छाया थी।

वहां जमी हुई मेदिनी उसे प्रणिपात करने के लिए और उसके चरणो की रज सिर पर चढाने के लिए दौड आई। हैहय सैनिक भी, भद्रश्रेण्य को उसके पैरों पड़ते देखकर, उसके पैर छूने लगे।

तभी कुछ अश्वारोही आ पहुँचे। उनमें से दो को आते देखकर लोगों ने उनके लिए मार्ग छोड दिया।

"शार्यातराज!" भद्रश्रेण्य ने कहा, "ये हैं गुरुदेव भार्गव।" और तालजंघा के राजा से कहा—"राजन्! ये हैं महाअथर्वण के पौत्र।"

दोनों राजाओं ने घोडे पर से उतरकर राम के चरण छुए।

दो मल्लाह अपने हाथो पर लोमहर्षिणी को उठाकर ले आए। वह वमन कर-करके अचेत हो गई थी।

"राजन्! लोमादेवी को महालय मे भिजवा दीजिए," राम ने कहा। "प्रताप, तू इसके साथ जा।"

एकाएक मेदिनी मे हाहाकार मच गया। सब लोग समुद्र की ओर घूम गए। तीन पोत उलट गए थे, और उनमे से एक में सहस्रार्जुन स्वयं था।

"भद्रश्रेण्य! हमे चलकर उन्हे बचाना होगा। चलो नावें छोड दो, मल्लाहो!"

"गुरुदेव! हम जा रहे हैं। आप यहीं रहिए।"

"नही," कहकर राम फिर पानी में झपट पडे।

: ३ :

सहस्रार्जुन को थकान जब उतर गई तो उसके क्रोध का पार न रहा। वह तो मानता था कि वह राम को बन्दी बनाकर लिये आ रहा है। लेकिन अब तो ऐसा लगने लगा है जैसे राम उसका भी गुरुदेव है। राम को मारने की युक्तियां जब वह सोच रहा था, ठीक तभी राम ने उसे जल-समाधि से उबार लिया था। सुराष्ट्र मे चार राजा थे, उनमे से तीन राजा तो गुरुदेव का सत्कार कर रहे थे, और इस सबका मूल कारण था भद्रश्रेण्य का दासत्व। सबसे पहले उसीको दण्ड देने का उसने संकल्प किया।

माहिष्मती से एक नायक रानी मृगा और गुरु भृकुण्ड का संदेशा लेकर आया था। लंका का राजा रावण एक विशाल सैन्य लेकर नर्मदा के दक्षिण तट के प्रदेशो पर चढा आ रहा था। तत्काल ही उसका सामना करना आवश्यक था, इसलिए भद्रश्रेण्य को साथ लेकर तुरन्त ही आ पहुंचो, यही उनका संदेशा था।

सहस्रार्जुन को सहारा मिल गया। उसने दो सौ सैनिक शार्यात के राजा से लिये, दो सौ तालजंघा के राजा से लिये तथा और भी जितने

आदमी सम्भव हो सके, उसने तैयार करवाये।

सारी व्यवस्था करके उसने भद्रश्रेण्य को बुलाया—"मामा, मैं रावण के साथ युद्ध करने जा रहा हूं।"

"मैं भी तैयार हूं।"

"तुम्हारा काम दूसरा है।"

"क्या ?" भद्रश्रेण्य चकित हो रहा। आज तक कोई भी युद्ध उसके बिना नहीं लडा गया था।

सहस्रार्जुन की आँखों मे अग्नि चमक उठी—"तुम्हारा काम अपने गुरुदेव और लोमा को साथ रखने का है। गिरनार के आगे तुम्हारे यादव गोत्र का थाना है, वहीं इन दोनो को ले जाओ और मेरे लौट कर आने तक इन दोनों मे से किसी एक को भी यदि कहीं जाने दिया तो—"

भद्रश्रेण्य कुछ क्रोध मे भर आया—"तो ··?"

"तो एक भी यादव को जीवित नहीं लौटने दूंगा," सहस्रार्जुन ने भयंकर स्वर मे कहा।

"मुझे छोडकर तुम युद्ध पर जाओगे ?"

"मै तुम्हारा शिष्य हूँ, क्यों न ?" सहस्रार्जुन ने विनोद किया, "यादव गोत्र मे जितने घोडे और युवक हैं, सबको मै साथ ले जाऊंगा।"

"परन्तु—"

"मामा, मैं कह चुका। धीरे-धीरे गिरनार चले जाना। मै चला।"

भद्रश्रेण्य चुप रहा। सहस्रार्जुन ने उसे पद-भ्रष्ट कर दिया और एकमात्र राम का प्रहरी बना दिया। इसका अर्थ यह होता है कि अब वह एक मात्र छोटे-से यादव गोत्र का कंगाल राजा-भर रह गया है।

सहस्रार्जुन खिलखिलाकर हंस पड़ा, और वहां से माहिष्मती जाने के लिए प्रस्थान कर गया।

चार-पांच दिन के बाद लोमा का स्वास्थ्य जब ठीक हुआ तो बचे हुए सैनिकों को साथ लेकर भद्रश्रेण्य, राम, लोमा और प्रतीप यादव-

गोत्र को जाने के लिए निकल पडे । शार्यात और तालजंघा के राजा इस घटना से सावधान हो गए, और उन्होने समझ लिया कि भद्रश्रेण्य का दिन-मान अब अस्त हो गया है । अब वह सहस्रार्जुन का शिक्षक और सेनापति नही रह गया था, वह तो अब एक छोटी-सी जाति का राजा था और चक्रवर्ती का रोष उस पर उतरा था । इन दोनो राजाओ के गात्र सबल थे, इसीमे उन्हे निश्चय हो गया था कि अब वह सहज ही यादवो को झुका सकेंगे ।

राम ने भद्रश्रेण्य की निस्तेज मुद्रा का अर्थ परखा । वह अपना घोडा राजा के घोडे की बगल मे ले आया ।

"राजन् !" उसने स्नेह और सरलता से पूछा, "सहस्रार्जुन ने आपको सेनापति-पद से च्युत कर दिया, क्यो न ?"

'हाँ ।"

"मेरे कारण ?" बडे सौकुमार्य और नम्र भाव से उसने पूछा, राजा को कही बुरा न लग जाय ! भद्रश्रेण्य चुप रहा ।

"अच्छी बात है, हम लोग यहीं धर्म का प्रवर्त्तन करेंगे," राम ने हँस कर कहा । उसके हास्य मे माधुर्य था । वह जब हँसता तो निर्मल-कौमुदी का मनोहर प्रकाश फैल जाता ।

भद्रश्रेण्य भी हँसा । उसके हृदय का भार हलका हो गया । राम के सौम्य सम्पर्क मे एक अद्भुत आकर्षण था ।

"गुरुदेव ! मै तो केवल तुम्हारी सेवा का भूखा हूँ ।"

"हमे अभी सहस्रार्जुन को धर्म सिखाना होगा ।"

भद्रश्रेण्य इस लडके को देखते हुए थकता ही नहीं था । उसके स्वभाव मे भय या द्वेष का एक छींटा भी नही था । वह किसीसे भी ठगा नही जा सकता था । मीठे या कटुवचन का उस पर कोई प्रभाव नही पडता था । उसकी आत्मश्रद्धा अडिग थी । उसे विचार नही करना पडता था । वह आप धर्म से चलित नही होता था, और न किसी दूसरे को ही होने देता था ।

"यादवो का उद्धार करना ही अब हमारा धर्म होगा," धीरे से

राम ने कहा ।

"मेरे यादव तो गरीब हैं ।"

"बन में जैसे बनराज संचरण करते हैं वैसे हो यादव संचरण करेंगे," राम ने कहा ।

भद्रश्रेण्य के हृदय मे साहस जागा । उस लडके के बोल उन्हे संजीवनी के समान लगे ।

"मुझे एक ही चिन्ता हो रही है," भद्रश्रेण्य ने कहा, "मै अब सेनापति नहीं रहा, ऐसी स्थिति में मेरे यादवो की क्या दशा होगी ?"

"राजन्, कौन है जो यादवो को छेड सकता है ? मैं हूँ न ?" राम ने कहा ।

भद्रश्रेण्य विचार में पड गया । यह लड़का इस विदेश में अकेला था । उसे भय नहीं था, चिन्ता नहीं थी, किसी की परवाह भी नहीं थी । जब वह निश्चय पर आ जाता तो स्वस्थता और उग्रता की मूर्ति बन जाता । जहाँ भी अधर्म दिखाई पडता, और उसका नाश करने के लिए जब वह शक्ति एकत्रित करता, तो वर्षा ऋतु में नर्मदा में आने वाली पानी की बाढ के समान उसका प्रभाव मनोवेग से भी आगे बढकर चारों ओर जल-जलाकार कर देता । क्या वह यादवों का उद्धार करेगा ?

: ४ :

उज्जयंत अथवा गिरनार पर्वत की तलहटी मे यादव-गोत्र की मुख्य छावनी थी । वहाँ बारहों महीने झरने का पानी मिला करता था, लेकिन इस वर्ष तो वे भी सूखने लगे थे और ग्रीष्म ऋतु अभी सामने खडी थी ।

सैकड़ो छूटी हुई गाडियां उस छावनी मे पडी थीं । धूप से बचने के लिए उन पर ताड के पत्तों के चंदोवे तान दिये गए थे । दोपहर में स्त्रियां और बालक उनके भीतर घुसकर बैठ जाया करते थे ।

प्रत्येक कुटुम्ब ने अपनी-अपनी गाड़ियों के आगे सूखे पत्तों और शाखाओं की नीची झोंपड़ियां बना रखी थीं। उनमें दोपहर में पुरुष बैठते और रात में पति-पत्नी सोया करते। थोड़ी दूर पर प्रत्येक कुटुम्ब के अलग-अलग चूल्हों पर भोजन बनाया जाता।

सन्ध्या होने आई थी।

प्रत्येक कुटुम्ब के चूल्हे के आस-पास स्त्रियां कोलाहल मचा रही थीं। खुली जगह में बच्चे खेल रहे थे और परस्पर लड़-झगड़ रहे थे। समृद्धिवान् कुटुम्बों के लोग जंगली नागों पर गालियों की वृष्टि कर रहे थे या फिर उन्हें लकड़ियों से मार रहे थे। इन सारी ध्वनियों से वातावरण व्याकुल था।

यादव लोग आर्य थे, पर सप्तसिंधु के आर्यों की अपेक्षा श्यामल थे। अधिकांश पुरुष लंगोटी पहने हुए थे। स्त्रियों ने एक ओछा-सा कछौटा मार रखा था। शायद ही किसी स्त्री ने स्तनों को ढांक रखा हो। समृद्ध लोगों ने मृग-चर्म पहन रखे थे, पर गरीब स्त्री-पुरुष गंदे थे और दुर्गन्धि दे रहे थे।

मिट्टी के बर्तनों में से मांस के पकने की गन्ध आ रही थी। यह गन्ध चारों ओर की हलचल, कोलाहल, गाय-घोड़ों की हिनहिनाहट तथा चूल्हों में से निकलते हुए धुँए में मिलकर वातावरण को कलुषित कर रही थी।

यादव ढोर चराकर अभी-अभी लौट रहे थे। उनकी दैनिक दिन-चर्या की यह एक धन्य-घड़ी थी। बकरे, भेड़ें, गायें और भैंसें यही यादवों की सम्पत्ति थी। घोड़े उनके सर्वस्व थे। वे देव की भांति उनका पूजन करते थे। वे उनके परम आनन्द और गर्व का आधार थे, क्योंकि उनके बिना उन्हें युद्ध में विजय प्राप्त नहीं हो सकती थी। कुत्ते उनके प्रहरी थे। इन सबका परिपालन, शिक्षण और उपयोग यही इस गोत्र का मुख्य कर्तव्य था।

सूखे अरण्य में गहरी सुनहली धूल के बगूले घर लौटते हुए

यादवों और उनके जानवरों के मार्ग की सूचना दे रहे थे। स्त्रियां आगे आकर खडी हो गईं। उनमें कुछ गाय दुहने के लिए हाथ मे भाण्डी लिये खडी थी। कुछ स्त्रियां तीखे स्वर में अपने पतियों और पुत्रो को झिडकने लगीं या फिर उन्हे आज्ञाएं देने लगीं।

कुछ यादव रस्सी की लगाम और खुली पीठवाले घोडो को दौडाते हुए तथा शोर मचाते हुए आ पहुंचे। घोडे को वश में रखने के लिए वे निर्बाध रूप मे लकडी का उपयोग करते थे। घोडे प्रचण्ड और तूफानी थे। उनकी बिना कांट-छांट की हुई लम्बी पूंछ और भाल पर धूल लगी हुई थी। धरती पर खेलते हुए बच्चे दूर हटकर या फिर गाडियों पर चढकर सीटियां बजाते हुए और शोर मचाते हुए अश्वारोहियो का आवाहन करने लगे। घोडों को थका देने वाले युवको की मां-बहनें तीखे और गरमागरम शब्दों मे उन्हे उलाहना देने लगीं।

एक बडी गाडी में से बीजा नाम का मुखिया नीचे उतर आया। इस वय में उसके लिए दोपहर मे सोना अनिवार्य हो पडा था। पांच वर्ष तक पानी के लिए यादव गोत्र सारे सौराष्ट्र मे भटका था, कई दिनों तक वह शार्यात और तालजंघ गोत्रों की कृपा पर जिया था। पर इस वर्ष तो सुन्दर पानी के समान गतिवाले घोडे और दूध देने वाली गायो की परम्परा ही नष्ट होने लगी थी। पिछला चौमासा सूखा ही गया था। सो अब तो गिरनार की तलहटी मे रहना कठिन हो गया था। अब क्या करना होगा, कुछ सूझ नहीं पड रहा था।

राजा भद्रश्रेण्य सहस्रार्जुन के साथ सप्त-सिन्धु चला गया था। चक्रवर्ती के सेनापति होने के कारण इस छोटे-से गोत्र की प्रतिष्ठा बढ गई थी, पर वह प्रतिष्ठा निरर्थक थी। भद्रश्रेण्य यहां रह नहीं पाता था। सहस्रार्जुन के निरन्तर चलते रहने वाले युद्धो मे उसे उपस्थित रहना पड़ता था। लेकिन आस-पास के गोत्रो के लोग कृपादृष्टि रखा करते थे। इधर मुखिया इतना अधिक थक गया था कि वह इसी प्रतीक्षा में था कि कब भद्रश्रेण्य आकर उसे इस दायित्व से मुक्त करे। गोत्र को किसी

दूसरे स्थान पर ले जाने की उसकी बडी इच्छा थी। पर कहां जाना होगा? क्या करना होगा?

उसने निःश्वास छोडा।

सहस्रार्जुन चार दिन पहले यहां आकर एक रात रह गया था, तब से तो उसकी चिन्ता का पार ही नही था। मुखिया से उसने चार सौ अश्वारोही मांगे थे। बहुत ही अनुनय-विनय करके अन्त मे उसने साढे तीन सौ अश्वारोही देकर सहस्रार्जुन को विदा किया था।

सहस्रार्जुन की आज्ञा मानकर ही छुटकारा था। उसकी ललकार से सारा जगत् कांपता था। आंधी की भांति उसके अश्वारोही चारो ओर विनाश प्रसारित किया करते थे। जहां भी वे जा धमकते टिड्डी-दल की तरह सारा रस चूस लिया करते।

पर मुखिया से जब उसने अन्तिम बात कही तो मुखिया के छक्के छूट गए। उसने भद्रश्रेण्य का समाचार पूछा था। उत्तर मे सहस्रार्जुन के मुख पर क्रोध छा गया। उसकी बडी-बडी आंखो मे रक्त तैर आया।

'भद्रश्रेण्य ' राजा ! हा-हा-हा !" क्रूर हास्य के साथ उसने कहा, "आयगा, आयगा, मैं जल्दी से आया हूं। उसे पीछे से धीरे-धीरे आने को कह आया हूं।"

"युद्ध पर राजा नही आयेंगे?" मुखिया ने पूछा। विश्वस्त सेनापति को बिना साथ लिये ही सहस्रार्जुन रण पर जा रहे थे, यह सचमुच आश्चर्य की बात थी।

"युद्ध के लिए वह अब निकम्मा हो गया है। बहुत वृद्ध हो गया है वह। और जब वह आये तो उसे साफ-साफ कह देना—मै जब तक उसे न बुलाऊं तब तक मेरे दोनो अतिथियो को वह संभाल कर रखे; उन्हे जाने न दे। और," सहस्रार्जुन ने क्रोध से मूंछ पर ताव दिया, "मेरी आज्ञा का यदि रंचमात्र भी उल्लंघन हुआ तो एक भी यादव को जीता नही छोडूंगा।"

यादवो के दुर्भाग्य का कोई पार नही था। वे भी दिन थे जब यादवो

का प्रताप और पराक्रम बहुत बढा-चढा था। पशुपति सोमनाथ महादेव का मेला जब भरा करता, तो यादवों को दो सहस्र गाडियां गिरनार की तलहटी मे छूट जाया करतीं। जब सहस्राजुंन छोटा था तो भद्रश्रेण्य सारे राज्य का संचालन किया करता था। पर युद्धो मे सैंकड़ों यादव मर मिटे थे। कुछ यादव गोत्रों ने श्वभ्रमति के तीर पर हैहयों और आनर्तों का आश्रय लिया था। गोत्र अब क्षीण हो गया था, और ऊपर से अनावृष्टि ने त्रास फैला दिया था।

बीजा मुखिया ने सिर हिलाया। देवों ने यादवों पर कोप किया है। निश्चय ही अब उनका सर्वनाश होने को है। और इस सबका कारण नये गुरु थे। जब महाअथर्वण ऋचीक शाप देकर चले गये, तो सहस्राजुंन ने भृकुंड ऋषि को गुरु-पद पर स्थापित किया था। उनका शिष्य कुक्षिवंत यादवों के गुरु-पद पर था। उसीके कारण देव की कृपा उन्हें प्राप्त नहीं हो रही थी। अब यादवो के मरने की घड़ी आ पहुँची थी और भद्रश्रेण्य अभी भी नहीं लौट रहे थे।

: ५ :

बहुत प्रखर धूप पड रही थी। प्रतिवर्ष की तरह इस बार अकाल था। वर्षा भी नही हुई थी। मुखिया ने कपाल का पसीना पोछा, निश्वास छोड़ा और व्याकुल होकर थूक का घूंट पिया। सारा संसार ही नष्ट हो गया था। उसका एक पुत्र राजा भद्रश्रेण्य के साथ था। उसके अन्य तीन पुत्रो को सहस्राजुंन अपने साथ ले गया था। दो छोटे पुत्र यहां थे, ये घोडो को चराकर लौटते ही होगे। उसने काले और सूखे गिरनार पर दृष्टि डाली। अंगारो की भांति वह दहक रहा था। उसकी एक चट्टान पर भगवान् पशुपति सोमनाथ की ध्वजा पवन के अभाव में ढुलकी पडी थी।

तीन लड़के घोड़े दौड़ाते हुए चले आ रहे थे। मुखिया कुछ दूर खिसक गया। सबसे आगे भद्रश्रेण्य का छोटा पुत्र मधु आ रहा था। उसके

पीछे उसके दो पुत्र कूर्मा और उज्जयंत आ रहे थे। तीनों लडके किलकारियां भरते हुए घोडों को लकडियों से मार रहे थे। मुखिया का जी कचोट उठा। मधु उपद्रवी, क्रोधी और लुच्चा था। उसकी माँ रेवती उसका पक्ष लिया करती थी। वह सबको मारता, डराता और स्वच्छन्दतापूर्वक दूसरे लडकों को बिगाडा करता था। मुखिया के स्वयम् के लडके सयाने थे, फिर भी मधु के सम्पर्क का प्रभाव तो उन पर था ही।

जिस घोडे पर मधु बैठा था, उसका नाम 'गांडा' था। वह अत्यंत वीर्यवान और उपद्रवी था, तथा अनेक वीर अश्वों और अश्विनियों का पिता था। यादव गोत्र के उस शृङ्गार को मधु बडी स्वच्छंदता से मार रहा था, यह देखकर मुखिया व्याकुल हो उठा।

"ठहर" उसने चिल्लाकर अपनी लाठी उठाई।

मधु ने घोडे को रोक दिया। फटी आंखों और फटे नथुनों से 'गांडा' खडा रह गया।

"गांडे को ऐसे क्यों मार रहा है, क्या वह बैल है?"

मधु ढीठतापूर्वक हँस दिया—"यह तो बैल से भी निकम्मा है।"

तेरे बाप जब आयंगे तो क्या कहेंगे? जा, जाकर गांडा को बाँध दे,' मुखिया ने कहा, "और कूर्मा, तू जाकर ऋषि कुक्षिवंत से कह दे कि मैं अभी आ रहा हूँ।"

"अच्छा बापू," कहकर कूर्मा वहाँ से चला गया। मधु और उज्जयंत हँसते-हँसते आगे बढने लगे।

मुखिया अपनी लाठी ठोकता हुआ आगे चलने लगा। मधु का उद्धत हास्य सुनकर फिर उसका हृदय उद्विग्न हो गया। यह ढीठ लडका बीस वर्ष का हो गया था, पर अभी भी उसमें सयानापन न आया था। कुक्षिवंत के हाथ में वह खेला करता था। राजा भद्रश्रेण्य जिस दिन न रहेंगे, यह अवश्य ही भाइयों को मारकर गोत्र का स्वामी बनने का प्रयत्न करेगा। और जिस दिन यह राजा हो जायगा, उस दिन निश्चय

ही यादव निर्मूल हो जायंगे। "पशुपति जो करें सो ठीक है," वह बुदबुदाया।

कुछ आगे बढने पर मुखिया ने एक महा भयानक युद्ध होते देखा। सात-आठ स्त्रियां परस्पर भिडकर जूझ रही थी। उनकी गालियो और चिल्लाहटों की बाढ मर्यादा लांघ गई थी। नखो और दांतो का निर्बाध रूप से उपयोग हो रहा था। केशो की खींचातानी से इन चंडिकाओ के युद्ध में और भी अधिक उत्तेजना आ गई थी। पास ही खडी हुई कुछ वृद्ध स्त्रियाँ प्रोत्साहन दे रही थी। कुछ बच्चे हँस-हँसकर कूद रहे थे। समरांगण मे उतरी हुई स्त्रियो के बच्चे चिल्ला-चिल्लाकर रो रहे थे। "तेरा सत्यानाश जाय""""पकड रंडा की चोटी""""तेरी आँखें फोड दूं, खड़ी रह।" ऐसी प्राग्-ऐतिहासिक भयानक रण-गर्जना सुनाई पड रही थी। चारो ओर प्रेक्षकवृंद जमा हो गए थे। रुधिर की सरिता के-स्थान पर फूटी हुई मटकियो का पानी चारो ओर फैल गया था।

देखकर मुखिया भयानक क्रोध से भर आया। ये शंखिनियां सदा ही लडा करती हैं। लाठी लेकर झपटते हुए उसने प्रेक्षक-वृन्द में से रास्ता बनाया और युयुत्सु चंडिकाओं से तीव्र स्वर में पूछा—

"क्या कर रही हो कुलटाओ ?"

रणोन्मत्त चंडिकाओ का उत्साह यो ही शमित हो जाने वाला नहीं था। गोत्र के मुखिया की अपेक्षा प्रतिस्पर्धी की चोटी की उन्हें अधिक चिन्ता थी। मुखिया ललकारता हुआ आगे बढ आया और लाठी दिखाकर चंडिकाओ को फटकारने लगा। पहले दो स्त्रियाँ अलग हुईं, फिर तीन और फिर एक। लेकिन दो युद्धाकांक्षिणियाँ तब भी उत्साह-पूर्वक युद्ध में जूझती ही रहीं। दोनो ने एक-दूसरी की चोटी पकड रखी थी।

दोनों के मुख पर दाँत और नख के घाव लग गए थे। "देहं पातयामि" का भयंकर संकल्प लेकर ये दोनो वीरांगनाएँ सारी सृष्टि को

भूलकर एक-दूसरे के विनाश मे तल्लीन हो रही थी। मुखिया के बाप की भी चिता उन्हे नही थी।

मुखिया ने तडातड वार किये। स्त्रियाँ लडती-लडती धरती पर गिर पडी, तब भी जूझती हुई वे एक-दूसरी को घसीटने लगी। वृद्ध मुखिया की नसो मे भी शौर्य उभर आया। भूमि पर पडी हुई चंडिकाओ को उसने चार पत्नियो के पति की कुशलता से मारना आरम्भ किया। अन्त मे लाठी का प्रभाव पडा ही और चंडिकाएँ एक-दूसरी से अलग होकर बैठ गईं।

"कुलटाओ, कुछ लाज आती है तुम्हे ? यह क्या कर रही हो ?" मुखिया ने हाँपते हुए पूछा।

"बापू," एक स्त्री रोती, हाँपती हुई कहने लगी, "मैंने तीन घडे पानी इस राड को दिया। मैं पानी वापस लेने आई, तो न कहने जैसी बाते इसने मुझसे कही। और मेरी गाय मरने को पडी है 'मेरी एक मात्र गाय।" वह चिल्लाकर रोने लगी।

"और बापू," दूसरी ने रोते-रोते कहा, "यह मुंहजली मुझसे कहती है कि मेरा पति नही है सो मैं सारे गोत्र की रखेल हूँ। ओ मेरी माँ ......मेरे बाप ......" उसने भी विलाप करना आरम्भ कर दिया।

"तुम दोनो चुप भी रहोगी या नही ?" बूढे का स्वर गरज उठा, "नही तो मैं तुम्हारे सिर फोड दूंगा। कुछ तो शरम रखो। कल आना, मैं जाँच-पडताल करूँगा।"

"लेकिन बापू ! मेरी गाय तो मर रही है।"

"दूध देती है ?"

"हां बापू।"

"तो दो घड़े मेरे यहाँ से भर ला। मरती हुई गाय को छोड़कर यहाँ लडने मे जुटी है। और यह कितने घडे पानी यहाँ ढुलका दिया ? धिक्कार है तुम्हारी जाति को!" कहकर खिन्न हृदय से वह चल

पडा। किसको दोष दिया जाय ? पानी के बिना ढोर नहीं रह सकते और ढोरों के बिना जीवन नहीं रह सकता। आज तो इस लडकी की गाय मरेगी। पर कल कौन जाने किसकी न मरे ? ...

: ६ :

यादव गोत्र का गुरु और पशुपति सोमनाथ का पुजारी कुत्तिवंत मार्कण्डेय कोई चालीस वर्ष का एक दुबला और लम्बे कद का व्यक्ति था। वह अपने आपको ऋषि कहलवाता था, पर जो उसे ऋषि कहते थे वे ताने और कटाक्ष मे ही कहते थे। उसके धूर्त मुख पर चंचलता थी। तप ने उसका स्पर्श भी नहीं किया था। अच्छा खाना, अच्छा पीना और आनन्द करना यही उसे अच्छा लगता था। जैसे-तैसे दो-चार मंत्रो को उच्चारित कर लेने तक ही उसकी विद्वत्ता सीमित थी। एकमात्र गुरु की पाखंड-कला में ही बस वह प्रवीण था। वह सबकी निर्बलता जानता था, और इसी कारण आडम्बर और कूट-कौशल से वह डरपोक और अज्ञानी यादवों को अपने वश मे रखता था। मधु को वह अपने हाथ पर नचाता था। कितने ही कुटुम्बो में वह क्लेश खडे करता, और गोत्र के भीतर दलबंदियां खड़ी करके वह शासन चलाता था। किसी भी यादव की उस पर प्रीति नही थी। किन्तु गुरु के बिना देव प्रसन्न नही हो सकते हैं, इसीसे कुछ लोग उसका आदर करते थे। वह सहस्रार्जुन का विश्वासपात्र व्यक्ति समझा जाता था, और इसीसे लोग उससे डरा करते थे।

कुत्ति की झोपडी के सामने एक जैसे-तैसे बनाई हुई वेदो थी। उसमे कई दिनों की राख इकट्ठी हो गई थी। वह झोपडी मे भोजन करने बैठा था। एक स्त्री बाहर भोजन बना रही थी और एक दूसरी स्त्री ला-लाकर उसे परोस रही थी। और कल्विणि, एक तीसरी स्त्री जो कि यौवनवती, स्वरूपवान और स्थूलकाय थी, सामने बैठी उसे अधिक खाने के लिए प्रेरित कर रही थी। अन्य लोग चाहे भूखों मरते,

पर देव के इस परम भक्त के यहां तो आनन्द ही आनन्द था। गोत्र की सबसे अच्छी गायें उसे प्राप्त होतीं उसे गौदान किये बिना किसी का भी पितर देवलोक को प्राप्त नहीं कर सकता था। आवश्यकता पड़ने पर मनचाही वस्तु जिससे वह चाहता मंगवा लेता, और देव तथा उनकी अवकृपा से डरने वाले यादव उसे लाकर उपस्थित कर देते।

"आओ, मुखिया ! आज चिन्तातुर दीख रहे हो ?"

"रयशी !" मुखिया ऋषि को सदा 'रयशी' ही कहा करते, "मैं तो अब हार मान गया हूं। बस बापू के आने की राह देख रहा हूँ।"

"क्यों, क्या बात है ?" कुक्षि ने खीर को सपोटते हुए कहा।

"दुःख का पार नहीं है अब तो बाबा," मुखिया ने सामने बैठते हुए कहा, "पानी नहीं है, घास नहीं है, ढोर मरने लगे हैं। कौन जाने क्या होने को है ?"

"अरे, घबड़ाते क्यों हो ? महादेव जी सब आनन्द-मंगल ही करेंगे।"

"महादेवजी तो कुछ भी नहीं कर रहे हैं," मुखिया बुदबुदाया।

"देख क्या रही है," कुक्षि ऋषि अपनी पत्नी पर चिल्लाये, "और खीर है कि नहीं ?"

"अभी लाई," कहकर कल्विणी बिजली की तरह झपटकर खीर लेने चली गई।

"मुखिया, मुझ पर श्रद्धा रखो। सब-कुछ अच्छा ही होगा," कहकर कुक्षि ने मीठे ओंठों पर जिह्वा फेरी।

"रयशी, यदि शीघ्र वर्षा नहीं हुई तो साबरमती के किनारे जाना पड़ेगा।"

"ऐसे कैसे जाया जा सकता है यहां से ? मैं बैठा हूँ तब तक क्या होने को है ?" कुक्षि ने निश्चिन्ततापूर्वक कहा।

"क्या नहीं हो रहा है ? एक पानी की मटकी के लिए वह रवी और विजी एक-दूसरी के केश नोंच-नोंचकर लड़ रही थीं। यह दु:ख

देखना अब मुझसे सहन नहीं हो सकता। आनर्तराज का संदेशा आ गया है। चौमासे तक के लिए वे हमारे गोत्र को उस नदी के किनारे पर स्थान दे सकेंगे।"

"संदेशा कब आया?" किंचित् धूर्तता से उसने पूछा। उसकी जानकारी के बाहर गोत्र मे कुछ हो, यह बात उसे पसन्द नहीं थी। उसकी और मुखिया की दृष्टि विद्वेष से भरकर टकरा गई।

"आज ही।"

"मुझे क्यो नहीं पूछा?"

"इतनी छोटी-सी बात के लिए तुम्हे क्यो कष्ट दूं?" मुखिया ने कहा।

"यहां से हम जा नही सकते," कुचि ने सिर हिलाया, "राजा अर्जुन की आज्ञा है।"

"मुझे तो ऐसी कोई आज्ञा उन्होने नहीं दी," मुखिया ने व्याकुल स्वर मे उत्तर दिया। "हमने कौनसा अपराध किया है कि वे जहां कहे वहां रहकर हमे मर जाना पड़ेगा? वे तो शायद दस बरस तक भी वापस न लौटें।"

"उनकी आज्ञा का उल्लंघन करोगे, तो तुम्हारा क्या होगा?"

"आज्ञा दे गए है तो साथ ही पानी के घडे क्यों नहीं भिजवाते गए?" मुखिया ने ताना मारा। "हमसे हमारे युवक ले रहे है, घोड़े ले रहे हैं, गायें ले रहे हैं, अब तो केवल प्राण लेने बचे हैं। परसो दोपहर के बाद मै तो अपने बोरे-बसने बांधकर चल दूंगा, यदि बापू नही आये तो।"

"मुखिया, थोडा धैर्य से काम लो। मैं आदमी को माहिष्मती भेजकर आज्ञा मंगवाता हूँ।"

"अपनी गाड़ियां मै जहां चाहे हाँकूं। उसमें भला आज्ञा किसकी लेनी पडेगी?" उग्रभाव से मुखिया ने पूछा।

"मधु से पूछ लिया है?"

"वह तो बालक है। उससे पूछकर क्या होगा?"

"तब भी राजा का पुत्र तो है ही न?"

"वह भी तो तुमसे पूछकर उत्तर देगा न? उसे ऐसा सिर चढाया है कि कौन जाने उसका क्या होने को है?"

"वह और उसके युवक साथी न माने तो?" कुक्षि ने पूछा।

"मुखिया मैं हूं कि वह? कल आप प्रयाण-यज्ञ करवाइये," कहकर मुखिया वहां से चल दिया।

उन्होंने निश्चय कर लिया था। जब तक उजाला रहा, वे धीरे-धीरे चारों ओर घूम गए। जहां देखा वहीं बस एक ही कर्म-कथा थी—पानी की तंगी। खीर की कटोरियां उडाते हुए कुक्षि पर उसे भयंकर क्रोध हो आया। वह गुरु नहीं था, वह तो काला नाग था। उसी के कारण देव कुपित हुए थे और उन्हें आनर्तों की शरण में जाना पड रहा था।

निदान मुखिया अपनी झोपडी पर पहुँचे, पंचों को बुलवाया और उनकी सम्मति ली। तीसरे दिन दोपहर के पश्चात् सारा गोत्र साबरमती की ओर अपना प्रयाण आरम्भ कर दे, यह निश्चय हो गया।

उजियाली रात थी। सारे गोत्र में जब यह सम्वाद फैल गया, तो सब लोगों में उत्साह जाग उठा। एक स्थान पर बैठकर मरने की अपेक्षा तो दौड़कर आग में कूद पडना ही अच्छा है। स्त्रियां और बच्चे आनन्द से नाच उठे।

थका हुआ मुखिया लेट गया। उसके लडके और भाई-भतीजे उसके आस-पास सोने की तैयारी कर रहे थे। उसकी बुढ़िया धीरे-धीरे कुछ बात कह रही थी। एकाएक मधु और दूसरे चार लडके खड्ग लेकर आ पहुँचे। मुखिया के कुटुम्बी चौंककर खडे हो गए।

"मुखिया!" मधु ने उद्धत भाव से पूछा, "यह क्या है? किससे पूछकर गोत्र को यहां से उठाये लिये जा रहे हो?"

"मुझे किससे पूछना पडेगा?" मुखिया ने हठीले स्वर में उत्तर दिया।

"यहां से नही जा सकते, सावधान।" मधु ने क्रोधावेश से भरकर आज्ञा दी।

"तेरे गद्दी पर आने में अभी देर है। मेरे साथ तेरे बाप और चार भाई है।"

"तू मुझे कहने वाला कौन होता है?" कहते हुए ओंठ पीसकर मधु आगे बढ आया। मुखिया उठकर सामने खडा हो गया—"तेरे बाप को मैने पाला-पोसा है, यह तुझे पता है? तू अपनी राह जा। तेरा सिर बेठिकाने हो गया है।"

"और तेरा सिर अभी बेठिकाने होगा।" कहते हुए खड्ग उठाकर मधु पास सरक आया। हाहाकार मच गया। मुखिया ने लाठी की आड देकर बचाव किया। मुखिया के पुत्र कूर्मा ने मधु पर पीछे से आक्रमण किया और पैर पकडकर उसे फेंक दिया। चारों ओर से लोगो ने आकर मधु का खड्ग छीन लिया।

उस खड्ग के समान चन्द्रिकामय मध्यरात्रि की शांति शंख-नाद से भंग हो गई। "राजा आ गए!" सबके मुंह से निकल पड़ा। सभी के हृदयों मे आनन्द का सागर उमड पड़ा और काम तथा नींद छोडकर स्त्री-पुरुष और बालक राजा भद्रश्रेण्य का स्वागत करने के लिए दौड़ पड़े। अकेला मधु ही चोर की भांति अपनी गाडी में जाकर छिप गया।

गोत्र के सीमान्त पर यादवों की मेदिनी जमा हो गई। सभी अधीर होकर हँस-बोल रहे थे। केवल छोटे बच्चे इस हलचल का कारण न समझ पाने से रोने लगे। बडे बालक कूद-फाँद करने लगे। "राजा आ गए! राजा आ गए!" की हर्ष-ध्वनि होने लगी। गांव मे घोडे और ढोर भी रंभाने-हिनहिनाने लगे। चंचल कुत्ते बिना भोंके, एकटक क्षितिज निहार रहे थे।

मुखिया ने शंख-नाद किया। उसके प्रत्युत्तर स्वरूप भद्रश्रेण्य ने भी शंख-नाद किया और एक तीसरा शंख-नाद और हुआ—यादवों के शंख-नाद से अधिक प्रौढ, स्पष्ट, निराला। बहुतो को वह नाद परिचित

नहीं जान पडा। मुखिया भी उसे न पहचान सका। तभी स्मरण-भंडार के भीतर सोये संस्कार जाग उठे। उसने आश्चर्य-चकित होकर सिर पर हाथ दे लिए—"ओ मां मेरी!"

"क्यों? यह किसका शंख-नाद है?" दो-तीन जनों ने पूछा।

"महाअथर्वण भार्गव का! मैं छोटा था, तब मैंने सुना था। मैंने भी सीखा था।"

"महाअथर्वण भार्गव! ऋचीक! जिन्होंने इस भूमि को शाप दिया था, वे? यह क्या? देव और भी अधिक रूठ गए हैं, या फिर प्रसन्न हुए हैं?"

अश्वारोहियों की एक छोटी-सी टुकडी आगे आती हुई दीख पडी। यादवों ने हर्ष-नाद किया। सामने से आते हुए अश्वारोही प्रेम-विह्वल हो पुकार उठे।

अश्वारोही अपने-अपने अश्वों पर से कूदकर अपने स्वजनों से मिलने के लिए दौड पडे। राजा भद्रश्रेण्य ने उतरकर मुखिया से भेंट की। सभी के भीतर भेंट करने की उत्कंठा जाग उठी थी। स्वजनों से मिलने का लाभ न मिलने के कारण कुछ लोग घोड़ों से जाकर भेंट करने लगे।

दो अश्वारोही घोडों पर से उतरकर एक-दूसरे का हाथ पकड़कर कंधे-से-कंधा सटाये खडे हुए थे। उन्हें कोई पहचानता नहीं था। विदेश में वे दोनों ही एक-दूसरे के अपने थे। लेकिन भद्रश्रेण्य तुरन्त ही मुखिया को और अपने काका को उनके पास ले आया।

"वीजा काका!" भद्रश्रेण्य ने गद्गद् कण्ठ से कहा, "आओ पैरों पडो। ये हैं महाअथर्वण के पौत्र—हमारे गुरुदेव—भार्गव श्रेष्ठ जमदग्नि के पुत्र। वीजा, पचास वर्ष के उपरान्त शाप उतरा है। मुझ पर कृपा करके गुरुदेव यहां पधारे हैं। पैरों पडो, इनके पद-धारण से हमारा उद्धार होगा।

कुछ लोग समझे, बहुत-से लोग न भी समझे, पर प्रणिपात सभी ने किया।

उन दोनो अश्वारोहियो में से एक दीर्घकाय अश्वारोही ने स्वाभाविक गौरव से बीजामुखी को उठाकर भेंट की, और हाथ फैलाकर आशीर्वाद दिया—"यादवो ! अग्नि, वरुण और इन्द्र तुम्हारा कल्याण करें !"

भार्गव राम के साथी ने उन जैसा ही पुरुष वेष धारण कर रखा था; तब भी वह एक लावण्यवती स्त्री थी, यह स्पष्ट ही प्रकट हो रहा था। उसके सुकुमार मुख पर और रोष दिलाने वाली उद्धत नाक की रेखाओ मे जगत को जीतने के लिए सृजी गई सुन्दरी की मोहिनी थी। वह छोटी और सुडौल थी।

"ये है तृत्सुओ के प्रतापी राजा सुदाम की बहन लोमादेवी," भद्रश्रेण्य ने परिचय दिया।

राम और लोमा को ले जाकर राजा ने अपने पास की ही एक झोपडी में स्थान दिया। आधी रात को भी चूल्हे चेत उठे। भोजन रांधकर खाना-पीना हुआ और न जाने कितनी रात गये तक रंग-राग चलते रहे।

राजा आ पहुँचे है और महाअथर्वण के पौत्र ने लोगों को शाप से मुक्त कर दिया है, इन दोनों घटनाओ ने यादवो को हर्ष से पागल बना दिया।

: ७ .

कुछ दूर पर एक वृक्ष के तले भद्रश्रेण्य, मुखिया, राजा के काका तथा पंच लोग परस्पर एक-दूसरे से नये-पुराने समाचार कहने-सुनने लगे।

"मैं जानता हूँ, सहस्रार्जुन मुझ पर बहुत क्रुद्ध हो गए हैं," भद्रश्रेण्य ने कहा। "मैं अब नाम मात्र का ही सेनापति रह गया हूँ।

लेकिन वीजा, किसी दिन तो इस शाप से छुटकारा पाना ही था न ? देवों ने हम पर कृपा की है। जिनके दर्शन भी दुर्लभ हैं, ऐसे भृगुश्रेष्ठ का पुत्र हमें मिल गया है। कल देख लेना ! मैं तो दिन और रात उसके साथ रहा हूं। जहां भी हम गये हैं, आनन्द-ही-आनन्द हुआ है। यह गुरु के पुत्र नहीं, यह तो स्वयम् ही देव है। राजा अर्जुन भले ही कुपित हों। हमें तो किंचित् भी आंच नहीं आने वाली है। और आये तो आये, अपने बाप-दादों के किये पातक का प्रायश्चित करेंगे।"

"लेकिन यह राजा की बहन क्यों आई है ?"

भद्रश्रेण्य ने लोमहर्षिणी के सम्बन्ध में सारी बातें उन्हें सविस्तार बताईं।

"सहस्रार्जुन के मन में खोट है। इस लडकी के साथ विवाह करने के लिए वह इसे यहां ले आया है, लेकिन भृगुश्रेष्ठ जमदग्नि ने इस विवाह के विरुद्ध खडे होने की प्रतिज्ञा की है। अर्जुन का भाग्य फूट गया है। यदि मानव देव के साथ लडेगा तो हारेगा ही, इसमें अचरज की बात ही क्या है ?"

"लेकिन अब यहां से चलना होगा या नहीं ? बापू, तुम आ गए हो सो अब तुम ही इस बात का निर्णय करो।"

"कल सवेरे देखा जायगा।"

इतने में ही कुत्सि आ पहुँचा, और सब लोगों ने बात को उड़ा देने की चेष्टा की। निदान कुत्सि ने कहा—"राजन्, मुझे तुमसे बात करनी है, अकेले में।"

"अभी ही ? कल करें तो नहीं चलेगा ?"

"नहीं, अभी ही," कुत्सि अपने हठ पर दृढ बना रहा। सब उठ खडे हुए।

"राजन्, चक्रवर्ती सहस्रार्जुन यहाँ आकर आपके लिए संदेशा छोड़ गए हैं।"

"क्या ?"

"वे जब तक लौट कर न आयें, तब तक आपको यहाँ से जाना नहीं है।"

कुक्षि की मृदु वाणी से जो विष टपक रहा था, उसे भद्रश्रेण्य ने स्पष्ट ही पहचान लिया।

"मै जानता हूं। मुझसे सहस्रार्जुन ने कहा था। पर तुमसे भी कह गए हैं, यह सचमुच आश्चर्य की बात है," राजा ने कटाक्ष करते हुए कहा।

"मुझे वे आज्ञा दे गए हैं कि आपके लौटने पर, आपकी इच्छा क्या है यह जानकर, उसकी सूचना मुझे रानी मृगा और गुरु भृकुण्ड को दे देनी चाहिए।"

"कुक्षिवंत, आप हमारे गुरु होकर, हमें बन्दी बनाकर, हमारे प्रहरी बन गए है, क्यों न?"

"चक्रवर्ती सहस्रार्जुन की आज्ञा का उल्लंघन मै नहीं कर सकता। युद्ध पर जाते समय वे आपको मुझे सौंप गए हैं।"

"कुक्षिवंत, सो तो मैं जानता हूं। मैं अब सहस्रार्जुन का सेनापति नहीं रहा। उनका कोप मुझ पर उतरा है। मैं अब यादवों का राजा नही, पर तुम्हारा बन्दी हूँ। और भी कुछ कहना है?"

"यह क्या कह रहे हो?" विष-भरी मिठास के साथ कुक्षि ने कहा, "मैं तो तुम्हारा पुरोहित हूँ।"

"मुझ पर पहरा देने के लिए, रानी मृगा को गुप्त संदेश भेजने के लिए और मेरे यादवो को निराधार बना देने के लिए?"

"मुखिया ने परसो साबरमती के तीर जाने की घोषणा की है। मैंने उन्हे बहुत मना किया है। अब आप क्या निर्णय करते हैं? जो भी करें विचारपूर्वक करें।"

"कुक्षिवंत, मैं तो साठ वर्ष का हो गया हूँ। बिना विचारे काम करने का अधिकार तो तुम युवकों का है। मैं कल सवेरे निश्चय करूंगा।"

"यहाँ से आप चले जायंगे तो परिणाम बहुत बुरा होगा।"

"कुत्सिवत, मुझे क्या करना होगा, सो तो मै जानता हूं," किंचित अधीर होकर भद्रश्रेण्य ने कहा।

"आप नहीं जानते है, इसीसे तो कह रहा हूं। आपने उस भार्गव का गुरुदेव के रूप मे परिचय दिया है, तब मै कौन हूँ। गुरु भृकुण्ड कौन है? सहस्रार्जुन तो इन दोनो अतिथियो का बन्दी बनाकर रखने को कह गए है, और आपने उस लडके को गुरु बनाकर बिठा दिया, सो भी गुरु भृकुण्ड से या मुझसे पूछे बिना ही।"

भद्रश्रेण्य खिलखिलाकर हँस पडा।

"कुत्सिवंत, अपना चातुर्य अपने पास ही रहने दो, या फिर उसे अज्ञानी यादवो के आगे जताओ। मै तो बूढा हो गया हूं। मैने तो अगस्त्य और लोपामुद्रा के, वशिष्ठ और कण्व के तथा विश्वामित्र और जमदग्नि के दर्शन किये है। अपना गुरुपद अपने पास ही संभाल कर रखे रहो।"

"तो आप क्या कहना चाहते है?" कुत्सिवंत ने क्रोधपूर्वक पूछा। राजा फिर हँस पडा।

"तुम भी मार्कण्डेय हो सो भृगु ही हो, और भृगुओ के कुलपति है भृगुश्रेष्ठ जमदग्नि। उनके पुत्र ने इस देश के आर्यों का गुरुपद तो जन्म से ही पाया है। चापलूसी और छल-छन्द से वह उसे नही प्राप्त करना पडा है। तुम्हारे धन्य भाग्य है कि जीते-जी अपनी आँखो से तुमने उनके दर्शन कर लिये।"

"याद रखिये, आपको इसके लिए बहुत अधिक सहन करना पडेगा?"

"रक्षा करने वाला और मारने वाला तो देव है, मनुष्य नहीं।"

"और मै देव का मंत्र-दर्शन करने वाला हूं।"

"कुत्सि," भद्रश्रेण्य ने ओठ काटकर उग्र स्वर मे कहा, "गुरु भार्गव के पैर धोकर पानी पी, तब तुझे समझ में आयगा कि मंत्र किसे कहते हैं।" उनकी आंखो से प्रतिहिंसा उभर आई—"और यदि भार्गव का

बाल भी बांका हुआ, तो तेरा रक्त पी जाऊँगा। जा—"

कुत्ति वहां से चला गया। यह तो निश्चित था कि भद्रश्रेण्य का पुण्य समाप्त हो गया था। वह अब सहस्त्रार्जुन का मान्य सेनापति नहीं रह गया था, प्रत्युत वह तो एक बन्दी के समान था। उसका प्रहरी स्वयम् गुरु भृकुण्ड और रानी मृगा का मान्य व्यक्ति था। भद्रश्रेण्य यदि नियंत्रण मे न रहे तो यादवो का नाम चिह्न भी शेष रहना सम्भव नही था। और नाम चिह्न न रहे इसीमे उसे लाभ भी था। गुरु भृकुण्ड अस्सी बरस के हो गए थे। और यदि वह सहस्त्रार्जुन को प्रसन्न कर सके तो उनके बाद वह माहिष्मती का पुरोहित-पद प्राप्त कर सकता था।

अपनी गाडी की ओर जाते हुए कुत्ति ने अनेक युक्तियां सोचीं और अपने किये हुए संकल्पों को सिद्ध करने के लिए उसने अपने विश्वसनीय आदमियो को भोर होने से पहले ही सहस्त्रार्जुन की रानी मृगा और गुरु भृकुण्ड के पास संदेशा देकर भिजवा दिया।

: ८ :

भद्रश्रेण्य ने अपने पास ही की एक झोपडी राम और लोमा को दे दी थी। राम ने लोमा की शय्या बिछाकर बडी मृदुता से उसके मृग-चर्म व्यवस्थित कर दिए। लोमा उसका अंग थी। उसे छोडकर खाना-पीना, सोना, शस्त्र फिराना या घोड़े पर बैठना उसे नहीं रुचता था। तिस पर भी उसकी ओर किंचित् मात्र भी पुरुष वृत्ति नही थी।

दोनो बालकपन से एक साथ ही खेल-कूदकर बडे हुए थे और दोनों देहों मे एक ही आत्मा हो, ऐसा वे अनुभव करते थे। वह लोमा के मन की बात समझ जाता और लोमा उसके मन को बात जान जाया करती।

राम जानता था कि सहस्त्रार्जुन लोमा को हरण करके लाया है, और इसीसे वह भी साथ आया था। सहस्त्रार्जुन जब दोनों को ले आया तो कुछ दिन तो लोमा बहुत घबराती रही। पर राम ने उसके साथ रहकर उसे अभयदान दिया था।

उसके पास से वह क्षण-भर के लिए भी दूर न होता। रात को भी जब वह सो जाती, तब वह उसका पहरा देता। उसका निःश्वास भी सुनाई पड जाता, तो तुरन्त हाथ मे खड्ग लेकर खडा हो जाता। लोमा उससे बडी थी, फिर भी सुकुमार और नन्ही थी। उसे तनिक-सा भी कष्ट होता, तो राम उसे उठा लेता।

राम को अनुभव होता था कि लोमा कुछ बदल गई है। छोटी-छोटी बातों मे अब वह शरमाने लगती। कभी-कभी उसके स्पर्श से वह काँप उठती। अब जो वह कभी राम से चिपटती तो उसमे उमे एक अनजान उर्मिलता का अनुभव होना। पहले तो लोमा मित्र भाव से उपद्रव भी किया करती। पर अब तो वह उसकी ओर पूज्य भाव रखती थी। राम की मान्यता थी कि स्त्रियां निर्बल होती हैं। इसीसे वह मान लिया करता था कि लोमा मे यह परिवर्तन स्त्रियो के न समझे जा सकने वाले स्वभाव के कारण ही हुआ होगा।

लोमा के सो जाने पर राम भी उसके पास ही सो गया। मुँह-अँधेरे उठकर वह सोई हुई लोमा की ओर देखने लगा। मानो दृष्टि-संदेश का उत्तर दे रही हो, लोमा ने इस प्रकार आँखे खोल दी।

"चल, नहा आएं।"

"पर नदी कहाँ होगी ?"

"प्रतीप कह रहा था कि गोत्र के निकट ही गोमती नदी है।"

दोनों झोपडी से बाहर निकले। सारा गोत्र अभी सो रहा था। चारो ओर गंदगी, दुर्गन्धि और गरीबी दिखाई पडी।

दोनो ने हाथ में मिट्टी के घडे उठा लिए और बाहर निकले। उन्हें देखकर कुत्ते भोंकने लगे।

दूर पर एक वृद्ध स्त्री गीत गाती हुई चक्की पीस रही थी।

"मांजी, यहां नदी कहां है ?"

'ऐसे भाग्य हमारे कहां कि नदी पास ही मे हो। गिरनार पर जाना पडेगा। भाई तू कौन है ?"

"मै भार्गव हूँ। कल जो आया था वही," हँसकर राम ने कहा।

"भार्गव! ओहो, महाअथर्वण का बेटा? भाई, तेरे पैर यहां पडने से ही पानी आ जाय तो अच्छा हो। गोमती में से तो पानी बूंद-बूंद आता है। घडा भरते हुए घडियां बीत जाती है। यह लड़की कौन है, भाई?"

"यह लोमहर्षिणी है, राजा दिवोदास की पुत्री।"

"तू तो, अरी, बडी सुन्दर और रूपवान है। चलो, मै भी घडा लिये लेती हूं।"

बुढिया कमर झुकाकर चल रही थी, पर उसके पैरों मे बहुत शक्ति थी। वह बातूनी भी थी। पानी का कैसा दुःख था, एक घडा पानी के लिए स्त्रियाँ किस प्रकार मुष्टा-मुष्टी और केन्शा-केन्शी करती थी, मुखिया कैसा भला आदमी था और गोत्र का गुरु कुत्सिवन्त कितना दुष्ट व्यक्ति था, बड़ी रानी, प्रतीप की माँ और सेठानी कैसी अच्छी थीं तथा छोटी रानी रेवती कैसी लुच्ची थी, ये सारी बातें बुढ़िया ने बिना पूछे ही कह डालीं।

जंगल की पगडण्डी पर होकर वे गिरनार पर चढ गए। वहां सूखी हुई गोमती के पथरीले पाट पर होकर एक छोटा-सा प्रवाह बह रहा था।

वे सब वहाँ गये। बुढ़िया कपडे धोने चली गई। लोमा ने मृगचर्म उतारकर स्नान किया। वह जब स्नान करती तो रक्षा करने के लिए राम पास ही खडा रहता, पर आँखें मींचकर और मुँह फेरकर।

फिर राम नहाने गया, और लोमा वैसे ही खड़ी रही। वे दोनों छोटे थे तब राम की माँ रेणुका ने, जिसे वे दोनो 'अंबा' कहा करते थे, यह शिष्टाचार उन्हें सिखाया था। वे अभी भी उससे विचलित नहीं हुए थे। यह देखकर बुढिया खिलखिलाकर हँस पडी और पास आकर तालियां पीटने लगी। राम को लगा कि यह बुढिया कुछ पागल है।

"माँजी, खडी रहो, हम अर्घ्य देकर आते है।"

अर्घ्य-विधि समाप्त होने पर, राम और लोमा भरे हुए घड़े लेकर

पर्वत पर से उतरने लगे। बुढिया के सिर पर भी पानी का घडा था।

पर्वत की तलहटी में, पगडण्डी के पास झाडों का एक झुण्ड था। उसमें कुछ बच्चे खडे हुए दिखाई पडे। अचानक लकडी की मार का शब्द सुनाई पडा और किसी बच्चे की भयानक चीख सुनाई दी। मन्द-मंद हँस रहे राम की मुद्रा गम्भीर हो गई। उसकी आँखें स्थिर हो गईं।

"यह क्या?"

"भाई, यह तो छोटी रानी के मधु का उपद्रव जान पडता है। चलो, चले चलो यहाँ से। वह बहुत खराब लडका है।"

इस चेतावनी पर ध्यान दिये बिना ही राम झाडों के झुण्ड की ओर बढा। उसके पीछे-पीछे लोमा और बुढिया भी गईं। वहाँ पन्द्रह-बीस लडकों का झुण्ड खडा हुआ था। दो लडकों ने एक लडके के हाथ पकड रखे थे, और एक युवक जो प्रतीप के भाई-सा लग रहा था, उस पकडे हुए लडके को कोडे मार रहा था।

कोडे मारने वाला मधु एक लम्बा, दृढ गठन का लड़का था। इस समय उसका मुख क्रोध और द्वेष से लाल हो गया था। जिस लडके को वह कोडे मार रहा था, उसका छोटा भाई दूर खडा सिसक-सिसक कर रो रहा था। अन्य सब लडके आनन्द से खडे थे।

"यह मुखिया का लडका कूर्मा है। और वह जो रो रहा है, वह उसका छोटा भाई उज्जयन्त है," बुढिया ने राम से कहा।

"चुगलखोर, बदमाश, मेरा होकर मुझे ही तूने कल गिरा दिया?"

"क्षमा करो, क्षमा करो!—" कूर्मा ने रोते हुए स्वर में कहा।

उत्तर में मधु ने फिर कोडा खींचा, कूर्मा चिल्लाकर रोने लगा। आस-पास खडे हुए लडके हँस पडे।

राम का मुख निश्चल हो गया। उसकी तेजस्वी आँखे सिंह की आँखो के समान विकराल हो गईं। धीरे से, स्वस्थतापूर्वक उसने लडकों की टोली के बीच जाकर मधु का हाथ पकड लिया।

"बस कर !" वह ललकार उठा ।

आस-पास खडे लडके स्तब्ध हो गए । राम काफी रात बीतने पर आया था, सो कोई उसे पहचानता नहीं था । मधु का हाथ पकडने वाले की हिम्मत देखकर वे अवाक् हो गए । कूर्मा की चीख उसके गले मे ही अटक गई । उज्जयंत अपना रोना भूल गया ।

मधु भी विस्मित होकर क्रोध-भरी दृष्टि से देखता रह गया । यादव गोत्र मे कोई भी ऐसा व्यक्ति उसकी जान मे नही था जो उसे रोक सके । और रात को जब राम का स्वागत-सत्कार हुआ था, तब वह वहां उपस्थित नही था, सो राम को वह पहचान न सका । उसने ज़ोर से अपना हाथ राम के हाथ मे से खींच लिया, और राम के मुँह की ओर अपना कोडा तान दिया। लडके अपने नेता की वीरता को देखकर हँस पडे ।

राम के मुख पर रुधिर की रेखा-सी तैर आई । कुछ ऐसा आभास होने लगा मानो उसकी स्थिर विकराल आँखो मे से आग की सरिता बह रही हो । एकाएक सिंह की तरह झपटकर उसने मधु का गला पकड लिया और उसे धरती पर डाल दिया । गिरता हुआ मधु राम से भिड पडा और दोनो भूमि पर आ गिरे ।

लडके चकित हो गए । कूर्मा ने अपना हाथ पकडने वालो से हाथ छुडा लिये । उज्जयन्त रोना भूलकर साहस से भर उठा । लोमा ने बडे नीचे रख दिए और कमर से गोफन निकाली ।

वयस्क, प्रबल और क्रोधाविष्ट मधु का राम को डर नही था । दोनो भूमि पर से उठकर एक-दूसरे से जूझ पडे । राम ने देखा कि मधु फिर से अपनी प्रतिष्ठा स्थापित करने को उत्सुक था, और वह अपने बल से राम को कुचल डालना चाहता था ।

राम चपलतापूर्वक मधु को छकाने लगा । उसके पैर नर्तकी की भांति नाच रहे थे, अतएव धीमे पैरों वाले मधु को छकाना उसके लिए बहुत सरल हो गया । स्वस्थ और सचोट राम के लिए, जिसने बचपन से ही चायमान और विमद जैसो के पास शिक्षा पाई थी, मधु तो केवल

बालक के समान था। मधु का श्वास रुँधने लगा। तब राम शान्ति-पूर्वक श्वास ले रहा था।

लोकवृंद की प्रशंसा और निन्दा दोनो ही चंचल होती हैं। लड़के राम की शक्ति देखकर मुग्ध हो गए। मधु को भी निदान कोई अपने से सवा-सेर मिला तो!

राम ने मधु को अपने पाश मे जकड लिया। उसे दूर करने के लिए मधु की सारी छटपटाहट व्यर्थ हो गई। वह भूमि पर लुढक गया। राम उसकी छाती पर चढ बैठा, और जब तक वह अचेत न हो गया वह उसे घूँसे मारता ही चला गया।

मधु जब मूर्छित हो गया तो राम ने उठकर लोमा से पानी लिया, उसके मुँह पर बह आया रक्त साफ किया, और उसे सचेत किया।

"लडके, इधर आ!" राम ने कूर्मा को आज्ञा दी, "यह कोड़ा ले।"

कूर्मा डरते-डरते पास आया और उसने कोडा ले लिया।

"इसने तुझे कितने कोडे मारे?"

"पॉच।"

"चल, तू भी इसे पॉच कोडे मार।"

"पाँच कोडे?" बेजान-सा होकर कूर्मा ने कहा। राजकुमार को और वह पाँच कोडे मारे? उसके हाथ मे से कोडा गिर पडा।

"चल!" राम ने गर्जना की, "कोडा उठा मैं इसे पकडे रखता हूँ। मार!"

कूर्मा ने राम की भयंकर मुख-मुद्रा देखी और डरते-डरते कोडा फिर उठा लिया।

"चल, मार इसे।"

कूर्मा राम से भयभीत हो उठा। उसने कोडा लेकर कुछ-कुछ भान मे आ रहे मधु को छुआया।

"एक, चल!" राम ने कहा, "दो, तीन, चार, पॉच," वह बोला और मधु को छोडकर खडा हो गया।

"ले अपना कोडा। फिर कभी किसी छोटे लडके को अगर कोडे मारे, तो जितने मारेगा उतने ही खाने पडेंगे। चल उठ।" राम ने हाथ पकडकर मधु को उठा दिया।

"जा—"

लंगडाते पैरों से मधु जंगल की ओर चला गया। कुछ लडके गोत्र की ओर भाग गये।

बुढिया ने राम की बलायें लीं, "जियो, मेरे बेटा! आज तूने मधु की मति ठिकाने ला दी है।"

राम ने स्वस्थतापूर्वक मुंह धोया, जटा में से धूल झाडी और अपना मृग-चर्म ठीक किया।

: ६ :

राम जब सोकर उठा, तो उसका अंग-प्रत्यंग दुख रहा था। उसके पास लोमा और भद्रश्रेण्य चिन्ताग्रस्त बैठे थे।

वह उठ बैठा और उसने खाने के लिए मांगा। प्रतीप द्वार के पास पहरा दे रहा था। तुरन्त ही वह गया और अपनी माँ—बड़ी रानी से कुछ खाने को ले आया।

"गुरुदेव," भद्रश्रेण्य ने कहा, "मधु ने आपको कोडा मारा, यह पातक मैं कब धो सकूंगा!"

"राजन्, इस निमित्त को लेकर ही मुझे उसे धर्म सिखाने का अवसर मिला।" राजा को बुरा न लग जाय, इसलिए सकुचाते हुए राम ने कहा, "उसे किसके यहाँ शिक्षा पाने को भेजा था?"

"उसने तो यहाँ कुक्षिवंत पुरोहित के पास ही शिक्षा पाई है।"

"अच्छा ही हुआ, अब सारी दुर्वृत्ति भूल जायगा। चारों ओर त्राहि-त्राहि मचा देता था।" बडी रानी ने कहा।

"रेवतीदेवी को बहुत बुरा लगा होगा?" राम ने कहा।

"उसने तो मधु को सिर चढा रखा है," भद्रश्रेण्य ने कहा।

"गुरुदेव ! पुरोहित और मुखिया आपसे मिलने आ रहे हैं।"

कुचिवंत पुरोहित अधेड़ वय का व्यक्ति था। वह भी भृगुवंशी था, और माहिष्मती के राजगुरु भृगुरुण्ड का शिष्य था। राम नये व्यक्ति को देखकर तुरन्त ही उसे पहचान लिया करता था। अज्ञानी, अभिमानी, कुचक्री और लोभी व्यक्ति को ऋषि-पद पर बैठा देखकर, उसे बहुत ही बुरा मालूम हुआ। वृद्ध मुखिया उसे चतुर और समझदार जान पड़ा। शिष्टाचार संपन्न हो जाने पर राम ने कूर्मा की कुशल पूछी।

"उसे ज्वर आ गया है, पर आपके दर्शनों के लिए अधीर हो रहा है।"

"मैं अभी उसकी कुशल पूछने चलूंगा।"

"नहीं, नहीं राम अभी सोया रह," लोमा ने कहा, "आज रात को उत्सव है। तू थक जायगा।"

'मुझे हुआ ही क्या है ? कुछ भी तो नहीं है।' कहकर राम उठ खड़ा हुआ।

राम ने झोपड़ी से बाहर आकर देखा कि लड़कों और नवयुवकों की भीड़ वहाँ जमा है। उसने देखा कि सबकी दृष्टि में उसकी धाक जमी हुई है और व्यवहार में सद्भाव है। वह हँस पड़ा और उसने सबको आशीर्वाद दिये।

वह जब मुखिया की झोपड़ी में गया तो कुछ युवक उसके पीछे-पीछे चले आये। गंदे रास्ते, पुरानी गाड़ियां, फटे कपड़े और निस्तेज स्त्री-पुरुषों को देखकर राम का हृदय द्रवित हो उठा। स्थान-स्थान पर पुरुषों की टोलियां जमा होकर उसकी कान्ति को विद्वेष-भरी दृष्टि से देख रहे थे।

"ऋषि जी !" उसने कुचिवंत से कहा, "यहाँ लोग बहुत त्रस्त जान पड़ते हैं।"

"पानी के बिना किसका जी ठिकाने पर रह सकता है !" कुचिवंत ने कहा।

"कल तो एक घडे के लिए सात स्त्रियां लड मरी," मुखिया ने कहा। "सबको अब यहाँ से किसी अच्छे स्थान पर चले जाना है। राजन् यदि न आ पहुँचते तो उपद्रव हो जाता।"

"सो तो चक्रवर्ती आकर तीन सौ घोडो और युवको को ले गए हैं, इसी से इतने पानी में ही किसी तरह पूरा पड़ रहा है," कुत्सिवंत ने कहा।

भद्रश्रेण्य ने निःश्वास छोडा और कहा, "मेरे सर्वश्रेष्ठ मनुष्य और घोड़े युद्ध पर चले गए है। कौन जाने कब लौटेंगे।"

राम कुत्सिवंत के मुँह की ओर देखता रह गया। इन सबमे यही उसे निकम्मा प्रतीत हुआ।

"ऋषि," राम ने कहा, "क्या देव का आराधन नहीं करते हो?"

ऐसा लगा कि इस प्रश्न से कुत्सि का अभिमान घायल हुआ है। "कुछ ऐसा जान पडता है कि देव की अवकृपा हो गई है।"

"अधर्म का आचरण होने पर ही देव की अवकृपा हो सकती है," राम ने निश्चयपूर्वक कहा।

"भार्गव!" भद्रश्रेण्य ने कहा, "हमारे यहां तो अधर्म और दुःख का पार ही नहीं है। मै तो सदा माहिष्मती में या फिर चक्रवर्ती के साथ रहता हूँ, और इस बार तो युद्ध जीतकर भी नही आया हूँ कि अपने साथ सबके लिए धन और कीर्ति बटोर लाता।"

राम चुप हो गया। उसकी आंखो के आगे यादव गोत्र का चित्र खडा हो गया। बिना पानी और बिना खेतो के एक स्थान से दूसरे स्थान पर भकटते हुए स्त्री-पुरुष, अभिमानी और अज्ञानी गुरु, विदेशों में प्रवास करता हुआ राजा, गंदगी, असंस्कार और अज्ञान—ऐसे हैं ये सब मूर्ख, जिन्होने उसके पितामह को त्यागा था, और जो उनके शाप के ग्रास बने थे; और जिनका उद्धार करने के लिए वह स्वयम् आया था।

रात को उत्सव मे जाने के लिए, बडी रानी और प्रतीप जब राम

और लोमा को लेने आये, तो भक्ति से आर्द्र कुछ लडकों का समारोह उनके साथ हो लिया। यज्ञ का आयोजन जहां हो रहा था, वहाँ पहुँचने पर राजा को सूचना मिली कि कहीं जंगल मे से मधु मिल गया है। कुछ समय के उपरान्त उसे लाकर राजा के सामने खडा कर दिया गया। वह मलिन मुरझाई हुई मुद्रा बनाये रक्त मे भीगा हुआ, विद्वेष-भरी आँखे और भयंकर सूजा हुआ मुख लेकर सामने आ खडा हुआ।

क्रोध से भद्रश्रेण्य की आँखे भी लाल हो गई थीं—"अत्याचारी, अधर्मी, कुलकलंक, गुरु भार्गव को हाथ लगाते हुए तेरे हाथ क्यो नहीं जल गए ? प्रतीप, इसे बांध दे। मैं अभी इसे ठीक किये देता हूँ।"

घायल, निस्तेज मधु की ओर राम ने ममता-भरी दृष्टि डाली—'राजन्, इसे अब दण्ड देना अन्याय होगा। इसने कूर्मा को सताया, उसके लिए मैंने उचित न्याय कर दिया है। इसने सवेरे से खाया भी नहीं होगा। प्रतीप, इसे ले जा। रेवतीदेवी, इसे भोजन कराओ !"

मधु के विद्वेष की सीमा नहीं थी। उसके दास, वे सब गोत्र के लडके हँस रहे थे। जिसने उसे मारा था और उसकी प्रतिष्ठा छीन ली थी, वही उसे क्षमा कर रहा था। रेवती भी क्रोध भरी आँखों से रो रही थी। वह उठकर मधु को अपने घर ले गई।

राम ने यज्ञ के आयोजन की ओर दृष्टि डाली तो उसे दया आ गई। कुक्षि तो कुछ भी नहीं जानता था। वेदी का एक भी भाग सीधा और शास्त्र-प्रमाणित नहीं था। अस्पष्ट स्वर में वह कुछ गुनगुना रहा था, जिसमें केवल मंत्रोच्चार का अभिनय था। उसके शिष्य भी कुछ नहीं जानते थे। यह बात भी उसकी दृष्टि के बाहर नहीं थी कि कुक्षि जब-तब भय और विद्वेषपूर्वक उसकी ओर देख लेता था। अब राम की समझ मे आया कि यादव क्यो निस्तेज हो रहे थे।

जैसे-तैसे यज्ञ पूरा हुआ। हवि का प्रसाद बांटा जाने लगा। चारों ओर कोलाहल, अव्यवस्था, गाली-गलौज और खींचातानी होने लगी।

लोमा के मुख पर विरक्ति छा गई। राम दया-भरी आँखो से यह सब देखता रह गया।

"भार्गव!" भद्रश्रेण्य ने पूछा, "यह सब आर्यावर्त से कितना भिन्न है! नहीं?"

राम की आँखों में एक गम्भीर तेज भर आया—"यह भी आर्यावर्त ही है," उसने कहा, "धर्म के अभाव मे यहाँ के संस्कार लुप्त हो गए हैं। बस इतनी-ही-सी बात है।"

भद्रश्रेण्य यह विचित्र उत्तर सुनकर राम की ओर देखता रह गया। आज पहली बार उसके गोत्र को किसीने आर्यावर्त में मान्य ठहराया है। क्या उसका गोत्र आर्यावर्त मे गिना जा सकता है?

इसके पश्चात् स्त्री-पुरुष रास-नृत्य करने लगे। सुरा-पान आरम्भ हो गया। पहले हँसी-विनोद चलता रहा, फिर कुछ मार-पीट हो गई। स्त्री-पुरुष निर्लज्ज होकर परस्पर गाली-गलौज करने लगे। स्त्रियाँ जो मुँह मे आया, बकने लगीं। भद्रश्रेण्य, कुत्सि और मुखिया पर भी रंग छा गया।

राम ने सुरा को स्पर्श करने से इन्कार कर दिया। लोमा तो छूने ही क्यो लगी थी? उन्हे देखकर लडकों ने भी इन्कार कर दिया। इस अधःपतन को देखकर राम के हृदय में होली जल उठी। ये जानवर आर्य कब हो सकेंगे? भरत, तृत्सु और भृगुओ के संस्कार ये कब प्राप्त कर सकेंगे?

धक्कम-धक्का करते हुए लोग आगे बढे। उनमे से चार व्यक्ति राजा के पास आकर, जो मन में आया कहने लगे—"यहाँ अब हम नहीं रहेंगे। गायें मर गईं। घोडे मर गए। मुखिया ने कहा था कि कि साबरमती के तीर चलो। चलो, अब यहाँ नही रहा जा सकेगा।"

"बैठ, बैठ अभी," राजा ने तरंग में कहा, "कल की बात कल देखी जायगी।" "नैष्ठ लोगों के पैर यहाँ पडे हैं," एक व्यक्ति ने कहा, "अब हम यहाँ नहीं रहेंगे।" "हाँक दो गाडियां। आज दो-दो बरस से

जो गिरनार के आस-पास भटक रहे है," तीसरे व्यक्ति ने कहा ।

"आज सात गायें मर गईं । देव रूठ गए है । नैष्ठ जनो के पैर पड़ने पर और हो ही क्या सकता है ?" पहले व्यक्ति ने कहा ।

"कल रात हम यहाँ से चलने वाले थे," मुखिया ने आश्वासन दिया, "लेकिन अब राजा आ गए है । वे कल पंचो को बुलाकर निर्णय करेंगे ।"

"झूठी बात है—झूठी बात है । नैष्ठ लोगो के पैर इस धरती पर पड़े है । हम तडप-तडपकर मरना नही चाहते ।"

राम को अच्छी तरह समझ मे आ गया कि यह निर्देश उसके और लोमा के सम्बन्ध मे था । उसने भद्रश्रेण्य की ओर देखा । राजा का नशा उतर गया था और वे इस लोक-वाणी के पीछे की प्रेरणा के मूल को ताड गए । कुक्षि मौन पर आनन्द में निमग्न होकर बैठा था ।

"कल सवेरे विचार किया जायगा," राजा ने कहा ।

"नहीं, नहीं," सब एक साथ बोल उठे । "अभी ही हम गाडियां जोत देंगे । चाँदनी रात है । देव कुपित हो गए हैं । नैष्ठ व्यक्तियो के पैर इस भूमि पर पड गए हैं । जो यहां रहेगा उसका सत्यानाश हो जायगा ।"

"लेकिन यशस्वी कुक्षिवंत भी जाने के विरुद्ध हैं," मुखिया ने कहा ।

कुक्षि ने मुँह मटकाकर दाढी पर हाथ फेरा—"कल मै विरुद्ध था," उसने कहा, "पर आज यज्ञ करते समय अपशकुन हो गया है ।" उसने राम की ओर दृष्टि डाली, "अग्निदेव ने हवि स्वीकार करने मे विलम्ब किया । कल झरने सूख जायंगे । सूर्य सौ-सौ सूर्यों के ताप से तपेगा, लोकवाणी मे देवो की वाणी समाई है । गाड़ियाँ हाँके बिना छुटकारा नहीं है ।" कुक्षि ने एक द्वेष-भरी दृष्टि राम की ओर डाली ।

राम को सारी बात समझ मे आ गई । किसी को भी राजा के आने की आशा नही थी । उनकी अनुपस्थिति मे मधु और कुक्षि सत्ता भोग

रहे थे। और अब राजा आ गए थे और मधु का गौरव भंग हो गया था, इसीसे कुत्ति वैर ले रहा था। उसके हृदय मे उग्रता का एक झंझा-वात-सा व्याप्त हो गया। भद्रश्रेण्य को दुःख देने के लिए ही क्या वह यहाँ आया था?

भद्रश्रेण्य भी कुत्ति के इस षड्यन्त्र को समझ गया और वह लोगों को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। यह झिक-झिक चल ही रही थी कि इतने में मधु की माँ रेवती दौड़ती हुई आ पहुँची, और क्रोध से पति को सम्बोधन करती हुई बोली—"लो, सुन रहे हो?"

"क्या?"

"कह रहे थे न कि शाप से मुक्त होकर आये हो? इन दोनों व्यक्तियों को साथ लेकर आये हो कि हमारा तो भाग्य ही फूट गया। मेरा रतन-सा बेटा मरने को पड़ा है और गोमती सूख गई है।"

"सूख गई?" सब चकित होकर बोल उठे।

"अभी-अभी दो स्त्रियाँ रीते घड़े लेकर लौटी हैं।"

सूख गई! जिसके झरनों के आधार पर वे सब जी रहे थे, वह गोमती सूख गई! सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। कुत्ति अपनी तरंग से दाढी पर हाथ फेरता रहा—"मैंने कहा नहीं था कि देव कुपित हो गए हैं। यहां से गये बिना छुटकारा नही है।" उसने विद्वेष-भरी दृष्टि से राजा की ओर देखा।

"चलो, चलो, चलो!" सब लोग बोल उठे।

जाज्वल्यमान रेवती कमर पर हाथ देकर चंडिका के समान राजा के सामने खडी थी—"जिसे रहना हो वह रहे, मैं और मेरा मधु तो यह चले।"

भद्रश्रेण्य खड़े हो गए—"जिसे जाना हो वह जाय। कुत्तिवंत, आप पधारिये। रेवती! तू भी जा। मैं यह भूमि नहीं छोड़ूंगा। आवश्यक जान पडेगा तो हम ऊपर के गढ में जाकर रहेगे।"

राम लोमा के साथ दूर खड़ा-खड़ा ये सारी बातें सुन रहा था। वह

समझ गया था कि भद्रश्रेण्य यह स्थान छोड़कर जानेवाला नहीं था. और उसकी सत्ता को नष्ट करने के लिए ही यह सब उपद्रव हो रहा था।

"प्रतीप ! तू सब लोगो के साथ जायगा ?" राजा ने कहा।

"नही बापू, जहाँ आप रहेगे वहीं मै रहूँगा," प्रतीप ने कहा।

"मै भी आपके साथ ही रहूँगी," बडी रानी ने कहा।

राम के मस्तिष्क मे एक विचित्र झंझावात व्याप्त हो गया। यह सारा उपद्रव उसी को लेकर हो रहा था। उसके यहाँ आने से ही वरुण रूठ गए हैं और उन्होने पानी छीन लिया है। उसकी प्रत्येक नस और प्रत्येक तंतु का बल एकाग्र हो गया। उसकी आँखें विकराल, स्थिर और ज्वालामय हो उठी। उसकी अवगणना ! भृगु, शुक्र और च्यवन के प्रताप के उत्तराधिकारी, महाअथर्वण और महर्षि जमदग्नि की विद्या के अधिकारी की अवगणना ! गोमती की क्या सामर्थ्य है कि वह पानी न दे ?

उसने लोमा का हाथ पकडा—"चलो !"

राजा ने सुना—"भार्गव ! कहाँ जा रहे हैं आप ? क्षमा करिये। यह अपमान मुझे भयंकर आघात-सा लग रहा है, पर मेरे यादव पागल हैं।" उसका स्वर खिन्न हो गया था।

स्पष्ट सत्तावाही स्वर मे राम ने कहा—"मै गोमती के पास जा रहा हूँ।"

चलने को तत्पर स्त्री-पुरुष खिलखिलाकर हँस पडे। राम उनके बीच आकर खडा हो गया। उसकी दाहक दृष्टि के तेज को देखकर सब चुप हो गए। विडम्बना से उसके अनिमेष नेत्र रंचमात्र भी विह्वल नहीं हुए थे। हास्य के शमित हो जाने पर उसने निष्कम्प गुरु-गम्भीर स्वर में कहा—

"गोमती के पास जा रहा हूँ, उसे दण्ड देने के लिए।"

लोमा का हाथ पकडकर वनराज के समान डग भरता हुआ राम

चला गया। उसके जाते ही वह पल-भर का जादू लुप्त हो गया।

"उसके दण्ड देने से गोमती पानी देगी!" एक लबाडी ने कहा।

"चलो, चलो।" कहकर बहुत से लोग चल पडे।

"बापू, मै राम के साथ जा रहा हूँ; उनकी रक्षा करने के लिए कोई चाहिए न?" प्रतीप ने कहा, और वह वहाँ से चल पडा। कूर्मा और उज्जयन्त भी उसके साथ हो लिये।

गोत्र के तीन चौथाई लोग गाडियां जोतकर प्रस्थान करने की तैयारी करने लगे।

: १० :

उग्रता से आवेष्टित राम, किसी विलक्षण सृष्टि से उतर आने वाले निराले व्यक्ति की भांति गिरनार पर चढा। उसका मुख शांत और निश्चल था। उसकी आँख के अंगारे स्थिर भाव से धधक रहे थे। उसके क्रोध की आग एकाग्र हो गई थी। उसे एक ही वस्तु दीख रही थी—गोमती धर्म से च्युत हो गई है और उसको दण्ड देना उसका धर्म है।

साथ चलती हुई लोमा की ओर वह नहीं देख रहा था। पीछे आते हुए प्रतीप, कूर्मा, उज्जयंत तथा अन्य लड़कों की ओर भी वह नहीं देख रहा था।

वह ऊपर चला आया। कल जहाँ उसने स्नान किया था, वहाँ के झरने सूख गए थे। केवल दो कगारो के बीच से एक डोरी-सी पतली धार आ रही थी।

कुक्षि का अनुमान ठीक निकला। सूर्य भी प्रखर ताप से तपने लगा था। वृक्षो के पत्ते रंचमात्र भी हिल नहीं रहे थे। पक्षी अदृष्ट हो गए थे।

सहसा उसने पीछे लौटकर देखा—"प्रतीप! कूर्मा! गोमती लोगों को प्यासा मार रही है, अधर्म का आचरण कर रही है, इसे पूर देना चाहिए। ये पत्थर उठा-उठाकर इसमे डालो।"

उसकी बात का अर्थ कोई समझ नहीं सका, पर उसके कहे अनुसार सभी करने लगे। पास ही पशुपति का स्थानक था। उसमे सोमनाथ का एक बडा लिंग था। चारो ओर नाग लोगो के चढाये हुए प्रसाद के अवशेष पडे थे। राम ने वहाँ कुछ जगह साफ कर ली। लोमा समिधा बीन लाई और वेदी तैयार करने लगी।

राम ने यज्ञ आरम्भ किया। भद्रश्रेण्य, बडी रानी और दूसरे भी जो लोग पीछे ठहर गए थे वे राम को खोजते-खोजते वहाँ आ पहुँचे और निःशब्द, स्वस्थ तथा उग्र राम को यज्ञ की तैयारी करते देखकर चुपचाप खडे रह गए। उन्होने ऐसा व्यवस्थित यज्ञ नहीं देखा था, अतएव उनके असंस्कारी हृदय मे भक्ति जाग उठी।

राम मानो नींद मे चक्कर काटता हुआ बोल रहा हो, ऐसे मंत्रोच्चार करता ही जा रहा था। उसकी काली भौहो के नीचे से अग्नि की ज्वाला निकलकर वातावरण को भय से परिपूर्ण किये दे रही थी। उसने पूर्णाहुति की, और उसका गहरा, नाभि मे से आता हुआ गम्भीर स्वर शाप दे रहा था—

"गोमती ! मै महाअथर्वण का पौत्र, भृगुश्रेष्ठ जमदग्नि का पुत्र तुझे शाप देता हूं। तूने मेरे यादवो को प्यासा मार दिया। मेरे आने से तू सूख गई। मैं तुझे शाप देता हूं। तेरा पाट सदा सूखा और पत्थरो से भरा रहे। तेरे तीर पर काटे उगें। देवो और ऋषियो का क्रोध तेरे ऊपर उतरे। मनुष्य को पावन करने वाली तेरी शक्ति नष्ट हो जाय। मैं जमदग्नि का पुत्र राम तुझे शाप देता हूं।"

राम कगार की चट्टान पर जा पहुँचा और भव्य लय से मन्त्रोच्चार करने लगा।

"वरुण, देवाधिदेव ! आओ और यादवो का उद्धार करो ! पक्षियो के पथ को जानने वाले, असुरश्रेष्ठ ! आओ, मै जमदग्नि का पुत्र राम, तुम्हारा आवाहन करता हूँ।"

तीसरा पहर हो आया था। भूखे-प्यासे यादव, जिनमें एक शब्द

बोलने की भी शक्ति नहीं रह गई थी, चुपचाप देख रहे थे। और आत्म-श्रद्धा में अडिग वह बालक, अथक शान्ति से आवाहन करता ही जा रहा था।

सन्ध्या होने आई। राम की उग्रता और उसके नेत्रों की हृदय-वेधकता बढ़ती ही चली गई। सूर्य अब अस्त होने ही जा रहा था कि तभी, मानो राम के आवाहन के उत्तर के रूप में ही, एक काला बादल पश्चिम के क्षितिज पर घिर आया और बिजली कड़क उठी।

यादव भयभीत होकर, कगार की चट्टान पर जटा फैलाकर आवाहन करते हुए उस भार्गव को प्रणिपात करने लगे।

बादल विस्तृत हो चला। चारों ओर बिजली चमकने लगी; हवा बहने लगी।

मंत्रोच्चार होता ही चला गया।

मरुतों ने झाड़ों को हिला-हिला दिया। गिरनार की गुफा में भयंकर ध्वनि होने लगी। अँधेरा घिरने लगा। कगार की चट्टान पर बिजली की लगातार चमक के बीच, पशुपति महारुद्र के अवतार-सा भार्गव खड़ा था—तीनों लोकों को कम्पित करता हुआ, विद्युल्लता से आवेष्टित।

वर्षा की धाराएं फूट पड़ीं, और यादव लोग ढोरों को गुफाओं में ले जाने के लिए नीचे चले गए।

बिजली गिरी, दिशाएं कंपायमान हो गईं। एक बड़ा-सा शृंग भिद गया। जहां से शिखर टूटा था, वहीं से नई नदी का झरना, नया पाट खोजता हुआ नीचे की ओर बहता चला गया।

राम ने आवाहन पूर्ण किया, और पास ही खड़ी लोमा की कमर पर हाथ रखकर उसके साथ गिरनार से उतरने लगा। दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला। नीचे सांत्वना पाये हुए यादव, अपने ढोरों और घोड़ों के साथ पानी में किल्लोलें कर रहे थे।

दो

नागमोचन

: १ :

संध्या होने आई थी। यादव गोत्र के लडके ढोर और घोडे चराकर लौट रहे थे। उनके आगे-आगे पांच आदमी घोडो पर चले आ रहे थे।

बीच मे दो व्यक्ति थे। एक सत्रह वर्ष का स्वरूपवान्, प्रचंड युवक चारो ओर चमकती हुई दृष्टि डालता हुआ जगत को निहार रहा था—स्वस्थ, शान्त और दुर्धर्ष। देवो की अभेद्य शक्ति उसके मुख पर थी।

उसके पास का अश्वारोही छोटा, सुकुमार और सुडौल था। मृगचर्म के भीतर से उभरता हुआ स्तनमण्डल उसके स्त्रीत्व को प्रमाणित कर रहा था।

उसके पास ही तीसरा दीर्घकाय युवक, भक्ति-भीनी दृष्टि से इन दोनो सवारो को देख रहा था और सम्मानपूर्वक बातचीत कर रहा था।

चौथा एक छोटे कद का नवयुवक था, जो इन सबसे अधिक सुदृढ दिखाई पड रहा था। और पांचवां इन सबसे छोटा और छैल-छबीला लग रहा था। उसके गले मे हार था, और जब-तब सीटी बजाकर अन्य लडको को आज्ञा देता जा रहा था।

यह राम, लोमा, प्रतीप, कूर्मा और उज्जयन्त का पंचायतन यादव गोत्र की शक्ति और सुख का मूलाधार बन गया था।

राम-गोमती को बहते हुए दो साल हो गए थे। जो यादव चले गए थे, वे वर्षा और कीचड मे फँसकर जैसे-तैसे पुन. लौट आये थे और भार्गव के चमत्कार से पराजित होकर उसकी भक्ति करने लगे थे।

सहस्रार्जुन युद्ध करके अभी लौटे नहीं थे, और भद्रश्रेण्य के लिए

अब चिन्ता का कोई कारण नही रह गया था। यादव गोत्र का उद्धार हो गया था। अब नदी के तीर पर गांव बस गया था। गाडियो में बैठ-कर पानी की खोज में पूरे वर्ष-भर इधर-उधर भटकने की अब यादवों को आवश्यकता नही रह गई थी।

राम ने भृगु-आश्रम की स्थापना कर दी थी, जहाँ वह सब नवयुवकों को शस्त्र, अस्त्र और मंत्रविद्या में कुशल बना रहा था। चारों ओर से लोग आ-आकर इस गांव मे बसने लगे थे। भार्गव राम की ख्याति से आकर्षित होकर बहुत से लोग उसके दर्शन और आशीर्वाद की वांछा ले कर आया करते।

अब यादव महाजन सूखे शाखा-पत्रों की झोपड़ियों मे नहीं रहते थे; उन्होने महालय बना लिये थे। ढोरों के लिए अलग एक बड़ा-सा स्थान बना दिया गया था। कवि चायमान की अश्व-विद्या मे निष्णात राम अब स्वयं ही घोड़ों का पालन-पोषण किया करता, और उन्हे शिक्षा भी दिया करता। महिष्मत के क्रोध से बचे हुए इक्के-दुक्के भृगु भी जब-तब यहाँ आकर अथर्वणों की विद्या की अभिवृद्धि कर जाया करते थे।

राम हँसा करता—अपने उसी निराले आकर्षक ढंग से। वह हँसता तब लोमा भी हँसती। दोनो एक-दूसरे से अलग नहीं होते थे, और एक-दूसरे की सारी प्रवृत्तियों मे भाग लेते थे। पांचों जने एक-से वस्त्र पहनते, और एक-से आयुध धारण करते। सभी हँसा करते, लेकिन राम कम बोलता और हँसता भी मंद-मंद, पर आत्मा की कल्लोल से।

राम ने कभी से धर्म का प्रवर्त्तन आरम्भ कर दिया था। लड़के अनुशासनपूर्वक कठोर परिश्रम करते, और राम उन्हे अश्व-विद्या सिखाया करता।

राम ने पहले से देख लिया था कि यादव स्त्रियो मे संस्कार नहीं थे। लड़ना, गालियाँ देना, बाल खींचना, यही उनका व्यवहार था।

बडी रानी और लोमा उन्हे सुधारने का प्रयत्न करतीं, पर यह काम सरल नही था।

"चोटियां खींचे बिना उन्हे खाना नहीं पचता है," लोमा ने कहा।

"किसका पति किसके साथ क्यो बोला, बस इसी बात की इन्हें पडी रहती है," रेवा बुढिया ने कहा। वह अब भृगु के आश्रम की व्यवस्थापिका हो गई थी।

राम चुपचाप सुन रहा था।

"पति उनका सर्वस्व है। वही पति इनके वश मे नही रहता है, आधा झंझट तो इसीसे खडा होता है।"

राम ने गम्भीरता से कहा—"पति मे लीन होना जो उन्हे नहीं आता है।"

लोमा मानो शरमा गई हो, ऐसे नीचे देखने लगी।

"मुझे इन्हे सिखाना ही पडेगा," राम ने कहा।

थोडे दिनों बाद गोत्र मे हलचल मच गई। एक अच्छे घर की स्त्री सोमा, अपने पति और बच्चो को छोडकर रुरु के घर मे घुस गई थी। उसके पति और रुरु के बीच झगडा हुआ। सगे-सम्बन्धियों मे परस्पर मार-पीट हुई। बात मुखिया के पास पहुँची। पंचो मे पक्ष खडे हो गए। दोनों ओर के सम्बन्धी बडे लोग थे। भद्रश्रेण्य भी कुछ नही कर सका। सोमा बिलकुल ढीठ, निर्लज्ज होकर रुरु के घर रहने लगी।

राम को जान पड़ा कि अधर्म व्याप रहा है। मध्यरात्रि मे लोमा, प्रतीप तथा लगभग पच्चीस अन्य युवको को लेकर उसने चुपचाप रुरु के घर को घेर लिया, और उसमें आग लगा दी। रुरु और सोमा नग्नावस्था में चिल्लाते हुए बाहर निकले। उन्हे पकड़कर आश्रम मे लाया गया और आमने-सामने के दो झाड़ों से बाँध दिया गया।

दूसरे दिन सारे गाँव मे हाहाकार मच गया। सभी स्त्रियां इस दण्ड-विधान से प्रसन्न हुईं। गांव के लोग इन अपराधियों को देखने के लिए आये। कई लोग राम के इस कार्य से बहुत क्षुब्ध हुए, और वे कुत्सि-

वंत के पास गये; पर राम का सामना करने का साहस कोई नहीं कर सका।

छः दिन तक रुरु और सोमा को हाथ बांधकर रखा गया। तदुपरांत राम ने सोमा को शुद्ध करके उसे उसके पति के हाथों सौंप दिया।

रुरु की अप्रतिष्ठा की सीमा न रही। आठवें दिन राम ने उसे छोड दिया और कहा—"जा, इस बार जीवित ही जाने दे रहा हूँ। जो दूसरे का घर नष्ट करेगा, उसे तो स्वयं ही नष्ट होना पडेगा।"

इस प्रसंग से राम का आतंक घर-घर मे व्याप गया। उसका धर्म-शासन वरुण के व्रत की भांति सर्वमान्य गिना जाने लगा। गुरुदेव की आज्ञा का पालन अनजाने ही यादवो का निर्माण करने लगा।

इस बात को भी अब आठ महीने बीत गए थे।

आज जब पंचायतन जंगल से वापस लौट रहा था, तब यादव रत्तपाल नागो से लकडियाँ फडवा रहे थे। आर्यावर्त के दस्युओ की अपेक्षा यहाँ के नाग अधिक गरीब, अज्ञानी और निर्बल थे। यादव उनसे मजूरी करवाते, उन्हे पीटते और उनकी स्त्रियो पर अत्याचार किया करते।

राम ने अपने घोडे को मोड दिया और नाग जहाँ लकडियाँ फाड रहे थे, वहाँ जा पहुंचा। पंचायतन की अन्य मूर्तियो ने भी उसका अनुसरण किया।

राम घोडे से उतरकर एक नाग के पास गया। नग्न, निर्बल, छोटी काया वाला नाग त्रस्त हरिण की-सी आँखों से उसकी ओर देख रहा था, और भागने का रास्ता खोज रहा था। रत्तपाल ने अपना चाबुक तैयार कर लिया—

"रत्तपाल, तू यहाँ से दूर हट।"

"गुरुदेव, यह नाग दुष्ट है।"

"तू क्यो घबराता है?" राम ने कहा और वह नाग के पास चला गया।

नाग उसके पैरों पडकर जीवन-दान मांगने लगा। राम ने स्नेह-

पूर्वक पकडकर खडा किया और पूछा—"तू कहां रहता है ?"

"गुरुदेव," रक्षपाल ने कहा, "यह हमारी बोली नहीं समझता है। यह पास के ही एक खेत मे रहता है।"

"ये सब कैसे रहते है, सो मैंने बहुत कुछ सुन रखा है। रक्षपाल, मुझे इनके खेत पर ले चलो।"

रक्षपाल चौंका। ऐसे पवित्र महापुरुष और नाग के खेत पर आवें, इस बात की तो उसे स्वप्न मे भी कल्पना नहीं थी। "जी, हाँ," कहकर उसने नागों को जिन रस्सो से बाँध रखा था उनके छोर हाथ मे लेकर, एक पगडंडी से वह खेतों की ओर ले चला।

"प्रतीप !" लोमा ने कहा, "तुम नागों को जानवरो की भांति रखते हो। आर्यावर्त में तो दस्यु महालयों मे रहते हैं।"

"ये तो ढोरो के समान है," प्रतीप ने कहा।

"नहीं, वे मनुष्य हैं," राम ने कहा।

"उन्हे मनुज कैसे कह सकते है ?"

"जो मंत्रोच्चार कर सके वही मनुज है," राम ने कहा।

"ये लोग मंत्रोच्चार नहीं करते है।"

"मैं करवाऊँगा," राम ने कहा।

जंगल के बीच सिर तक ऊँची कांटो की बाड वाला एक खेत था। वहां दो रक्षपाल तलवार लेकर खड़े थे। उनके हाथों मे भी कोडे थे।

"गुरुदेव, यह कुक्षिवन्त का खेत है," कूर्मा ने कहा।

राम की आँख में बिजली चमक उठी—"मै उसका कुलपति हूँ।"

कूर्मा को लगा कि वातावरण भयानक हो गया है, और उसकी आंखें अँगारे-सी धधक रही थीं।

"रस्सियाँ छोड दे," उसने कहा।

"जैसी आज्ञा," रक्षपाल बोला।

छूटे हुए नाग राम की ओर ताकते रह गए। रक्षपाल को छोड़कर अन्य यादवों को उन्होने देखा नहीं था, पर इस मृदु-मृदु हँसते हुए

और स्नेह-भरे युवक की ओर वे आकर्षित हुए और उसके पैरो मे पड़ गए। राम ने एक नाग के कन्धे पर हाथ रख दिया।

फाटक खुलवाकर राम खेत में प्रवेश कर गया। प्रतीप, कूर्मा और उज्जयंत को अन्दर प्रवेश करते कपकंपी आ गई। अन्दर एक झाड के तले एक वर्तुल बनाकर बैठी हुई नाग स्त्रियों का भयानक विलाप सुनाई पडा। लोमा उस ओर गई। बीच मे पडी हुई कोई वस्तु उसने देखी और वह भी चिल्ला उठी।

एक छलांग मे राम वहां जा पहुँचा। लोमा का शरीर कांप रहा था। रोती हुई स्त्रियो के बीच, एक पन्द्रह वर्ष की अवसन्न बालिका, अत्याचार का ग्रास बनी, रक्त मे लथपथ पडी हुई थी। उसे देखकर साथ आये हुए नाग भी क्रन्दन कर रहे थे।

झंझावात आने से पहले जैसे गिरिराज शान्त और स्वस्थ खडा रहता है, वैसे ही राम था।

"किसने अत्याचार किया है?' उसके स्वर में भयंकर हुँकार थी।

अचेत पडी बालिका के मुख से वेदना-भरी सिसकियो का स्वर सुनाई पड़ रहा था। लोमा भी सिसक रही थी।

"यह किसी रक्षपाल का ही काम जान पडता है," प्रतीप ने कहा। रक्षपाल का नाग कन्याओ पर अत्याचार करना एक जानी-मानी बात थी।

"यहां आओ," राम ने रक्षपालो को बुलाया, "यह तुमने किया है?"

इसमें रक्षपालो को कोई असाधारण बात नहीं जान पडी।

"लडकी बहुत हठीली थी," एक ने कहा।

शान्तिपूर्वक, विकराल आँखें लिये राम उस बोलने वाले के निकट गया।

"उज्जयंत! कोई रक्षपाल भाग न जाय," कहकर एक रक्षपाल के हाथ में से कोडा लेकर वह उसे पीटने लगा।

रक्षपाल चिल्ला रहा था। लहूलुहान होकर जब तक वह अचेत नही हो गया, तब तक राम उसे पीटता ही गया।

दूसरा रक्षपाल राम के पैरों मे गिर पडा। तीसरा उज्जयन्त की दृष्टि चुकाकर भाग गया। राम ने दूसरे रक्षपाल को भी लहूलुहान कर दिया और कोडा फेंक दिया।

"लोमा! अश्विनो का आवाहन कर और इस लडकी को स्वच्छ कर।"

लोमा ने जब वैसा कर लिया, तो अपने शस्त्र लोमा को देखकर उस लडकी को राम ने उठा लिया और नागो से अपने साथ चलने को कहा।

यादव गोत्र ने वह देखा जिसकी उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। एक नाग-कन्या को उठाकर भार्गव चले आ रहे हैं। साथ मे लोमादेवी नाग-स्त्रियो के बीच चल रही है, उनके पीछे-पीछे प्रतीप, कूर्मा और उज्जयन्त लज्जित से होकर चले आ रहे है, और गलियों मे होकर सारे गॉव को अपवित्र करते हुए भृगु के आश्रम की ओर जा रहे है। देखकर आश्चर्य को सीमा न थी।

गांव मे हलचल मच गई। कुक्षिवंत के नागो का खेत राम ने खोल दिया और रक्षपालों को पीटा। कुक्षिवंत के क्रोध का पार न रहा। उसने पंचों से मिलकर इस सीमान्त पापाचार की पुकार उठाई। उसने धमकी दी कि तुम देवो के शापों का आवाहन कर रहे हो।

सभी बडे यादवों के पास अपने-अपने नागो के खेत थे। वे नागों को पकडवाते, बेचते और उनसे काम करवाते। एक प्रकार से वे यादवों की सम्पत्ति ही थे। कुक्षिवंत का खेत लुट गया है, तो फिर उनका क्या होगा?

राम आश्रम में गया। वहाँ सौ लडके रहते थे। उनके स्थान पर उसने पाँच-सात लडकों को दूर खड़े हुए देखा। उसने प्रतीप की ओर मुडकर कहा—"प्रतीप! मेरा धर्म तुझे नहीं दीख पड रहा है। तू अपने महालय में जा।"

"गुरुदेव—"

"प्रतीप, तुझे ये मनुष्य नही दिखाई पडते, पर मुझे दीख रहे हैं। उज्जयन्त ने रत्नपाल को भाग जाने दिया। जिसे मै धर्म समझता हूँ, उसमे तुम्हे श्रद्धा नही है। जाओ!"

कोई भी वहाँ से नही हिला।

"जाओ!" उसने कहा, और मौन समाधि मे बैठ गया।

प्रतीप, कूर्मा और उज्जयन्त लज्जित होकर, भारी पैरों से वहाँ से चल पडे। राम के धर्म मे उन्हे श्रद्धा नहीं थी।

: २ :

लोमा रो रही थी। राम ने उसकी पीठ पर हाथ रखा। लोमा उससे चिपट गई।

"राम, मैं यहाँ नहीं रहूँगी; आर्यावर्त जाऊँगी। ये लोग तो राक्षसों के समान हैं।" वह मुक्त-कण्ठ से रो पडी।

"लोमा, तू बहुत थक गई है।"

"हाँ, तू तो कठिन वज्र के समान है। महर्षि की याद नही आती और अम्बा की याद भी तुझे नहीं आती। और वृद्धा तो तुझे याद आने ही क्यो लगी?" उसने सिसकते हुए कहा।

"लोमा, यज्ञ करता हूँ तो भृगुश्रेष्ठ दिखाई पडते हैं; घोड़ो की साल-सम्हाल करता हूँ तो वृद्धा सामने दीख पडती है; और तुझे देखता हूँ कि मानो अम्बा को देख लेता हूँ।"

कई महीनो से लोमा ने राम को घूँसे मारना छोड दिया था। अब वह सिसकियाँ भरती जाती थी।

"अम्बा? मैं हूँ तेरी अम्बा? तू मनुष्य है कि राक्षस?"

राम ने माँ के स्नेह से लोमा को छाती से चिपका लिया—"मार, ले मार, यदि तेरे जी को इसी मे सुख मिलता हो तो।"

"मुझे यहाँ नहीं रहना है। मैं तो आर्यावर्त जाऊँगी।"

"कल भद्रश्रेण्य से कहकर भिजवा दूंगा।"

"और तू यहीं रहेगा? तुझे लज्जा नही आती? मै अकेली जाकर क्या करूँगी?"

"लोमा," राम ने कहा, "यदि मै भी चला जाऊँगा तो मेरे इन धर्म-भ्रष्ट शिष्यो का क्या होगा?"

"तू तो पगला है। क्या ये लोग किसी दिन आर्य होने वाले है?"

"गुरु यदि आर्यत्व सिखाये, तो शिष्य अवश्य ही सीखेंगे।"

"पर मै कहती हू, ये लोग तुझे गुरु मानने वाले ही नही है।"

"पर मै इनके कहने से तो गुरु हुआ नहीं हूँ, मै तो गुरु हूँ ही। अच्छा, अब तू सो जा। सवेरे हमे यह आश्रम त्याग देना है।"

"क्यों?" चकित होकर लोमा ने कहा।

"मै, तू और रेवा बुढ़िया, बस हम तीन जने रह गए है। हम नागो के खेत में अपना आश्रम बनायंगे।"

: ३ :

राजमहालय मे मंत्रणा चल रही थी। राजा, मुखिया और कुत्सिवन्त तो वहाँ थे ही, पर प्रतीप, कूर्मा और पच लोग भी वहाँ जा पहुँचे।

"आज तो वे नागो को गांव में लाये हैं। और कल उठाकर यज्ञ में ले आयंगे," कुत्सि कह रहा था, "और परसों उनसे मंत्रोच्चार करवायंगे। और चौथे दिन शायद हमारी लड़कियों के विवाह उनसे करवायंगे।"

"वे तो कहते हैं कि जो मंत्रोच्चार कर सकता है वही मनुज है, और नाग मनुज हैं," कूर्मा ने कहा।

"दो-चार नाग स्त्रियाँ क्या मर-मरा गई हैं, ओहो-हो कोई बडा भारी काण्ड हो गया है!"

"आर्य तो आर्य ही हैं, और नाग नाग ही रहेंगे।"

आर्यावर्त में विश्वामित्र ऋषिमंत्र के बल से दासो को आर्य बनाते हैं,'' भद्रश्रेण्य ने कहा।

"मुनि वशिष्ठ उनका विरोध करते है। वशिष्ठ मुनियो के भी मुनि है।" कुक्षि ने कहा—"ये नाग तो पशुओ से भी गये-बीते है, गुरु भृकुण्ड तो सदा से यही मानते आये हैं।"

"कल सवेरे हम लोग भार्गव को समझायेंगे," मुखिया ने कहा।

"क्या हमारे कहे से भार्गव मान जाने वाले है ?" कूर्मा ने कहा।

"उन्हे मनाने का काम तो राजा के बस का ही है," कुक्षि बोला, "इन्हे भार्गव बहुत प्यारा है।"

"हाँ है, क्या कहना चाहते हो ?" उत्तप्त होकर भद्रश्रेण्य ने कहा, "मै उन्हें पूजता हूँ। यदि तुममे रंच-मात्र भी कृतज्ञता हो तो तुम्हें भी उन्हे पूजना चाहिए। आर्यावर्त मे दासो को मैंने राजमहालय में घोडे नचाते देखा है। तुम्हारी तरह अंधा नहीं हूं। लेकिन अभी जाने दो, कल देखा जायगा।"

: ४ :

कूर्मा घर आया, पर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। वह बहुत दृढ़ स्वभाव का था। राम के कारण यादवो की कितनी वृद्धि हुई थी, ढोरो और घोडो की सम्पत्ति की कितनी समृद्धि हुई थी, कितना बल बढ़ा था, यह सब उसकी उंगलियों पर गिना हुआ था। यादवों की प्रतिष्ठा कितनी बढ़ गई थी, सो भी वह अच्छी तरह जानता था। और······आज यदि राम चले जायं तो यादव फिर से केवल ढोर चराने वाले हो जायंगे, यह निश्चित है। राम के बिना वह स्वयम् और यादव निर्बल हो जायंगे। राम तो देव ही थे न ! प्रतीप और उज्जयंत मूर्ख थे। राम यदि चले जायं, तो उसके पश्चात् फिर वही कुक्षि की सेवा बच रहेगी। कभी नहीं, कूर्मा शस्त्रों से सज्जित होकर भृगु के आश्रम की ओर चल पड़ा।

आश्रम मे पहुँचकर उसने देखा कि आश्रम निर्जन पडा है। उसने पुकारा, पर कोई उत्तर नही आया। केवल घुडसाल मे राम का प्रिय घोडा 'गांडा' हिनहिनाया।

"गुरुदेव कहाँ गये है, गांडा ?"

गांडा फिर हिनहिनाया। कूर्मा ने गांडा को खोल दिया, और उसके पीछे-पीछे चलने लगा।

नागो का खेत जल रहा था। प्रलय की मूर्ति-सा राम बांस से आग को संवार रहा था। कुछ दूर पर लोमा, रेवा बुढिया, वह लडकी और कुछ नागिने बैठी थी।

कूर्मा ने साक्षात् पशुपति के दर्शन किये।

वह दौडकर उनके पैरो पड गया—"गुरुदेव, भार्गव, क्षमा करो।" राम ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया।

कूर्मा ने समझ लिया कि राम ने उसे फिर से स्वीकार कर लिया है।

: ४ :

प्रतीप जब अपने आवास पर गया तो उसकी स्त्री विशाखा, जो आनर्तराज की भतीजी थी, आश्चर्य मे पड गई। दोनो जने नित्य भार्गव के आश्रम मे ही सोते थे।

"मैं अभी आ रही थी, तुम कैसे चले आए ?"

"भार्गव ने मुझे छुट्टी दे दी है।"

"क्यों ?"

"मुझे शिष्य रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं।"

"मै तो जानती ही थी कि तुम उल्टा-सीधा करोगे।"

"नहीं, राम नागों के खेतों में से नागों को यहाँ ले आये।"

विशाखा क्रुद्ध हो गई—"तुम्हारे यादव तो जानवर हैं। बेचारी उस गरीब नागिनी पर अत्याचार किया, सो कुछ नहीं ? अच्छा ही हुआ कि

भार्गव ने पापियों को दण्ड दिया है।" वह प्रतीप के सामने जाकर खड़ी हो गई—"तुम तो यादवों के पक्ष में खड़े हो गए क्यों ? तुम्हें कुछ लाज भी आती है या नहीं ? दुत्, मैं तो सचमुच प्रसन्न हुई यह जान कर कि राम ने तुम्हें निकाल दिया है। तुम-जैसे शिष्यों को रखकर उन्हें क्या मिलने वाला है—धूल-मिट्टी ?"

"विशाखा," इस शब्द-प्रवाह को रोकने में असमर्थ प्रतीप ने कहा—"नाग-नागिनियों को गाँव के बीच होकर वे ले गए, इसी से गांव में उपद्रव मच गया है। इस पापाचार को कोई सहन नहीं कर सकता है।"

"क्यों सहन करने लगे ? भार्गव जिस कन्या को लिये जा रहे थे, उसे मैंने देखा था। तुम्हारी बहिन-बेटियों पर ही यदि कोई ऐसा अत्याचार करे तो तुम क्या करोगे ?" विशाखा ने शय्या बिछा दी और हताश प्रतीप उस पर बैठ गया।

"और अब तुम क्या करने जा रहे हो ?"

"कल बापू राम को मनाने जायंगे," प्रतीप ने कहा।

"और वे मान जायंगे ? सब तो तुम्हारे-जैसे नहीं हैं ? तुम्हें कुछ भान भी है कि इन दो वर्षों में भार्गव के कारण तुम्हारे गोत्र का रूप-रंग कितना बदल गया है ? आज तुम्हें यह विद्या कहाँ से मिली है ? प्रतिदिन तुम्हें ये बड़े-बड़े भगीरथ काम किसने दिये हैं ? भार्गव तो तुम्हें सगे भाई से भी अधिक मानते हैं। कोई दूसरा उन्हें छोड़े, उससे पहले तो तुम्हीं उन्हें छोड़ आये !" विशाखा का प्रत्येक शब्द उसे बींधे दे रहा था। उसका मुँह धरती में गड़ गया।

"और जब मधु अपने ननिहाल से लौट आए, तो फिर उसके साथ भटका करना।" प्रतीप रुआँसा हो आया।

"विशाखा, मैं गधा हूँ, मैं भार्गव का शिष्य होने के योग्य नहीं हूँ।"

"सो तो मैं जानती हूँ," आनर्तराज की बेटी बोली। "तुम तो कुक्षि के ही योग्य हो। उसके यहाँ नित्य नागिनियों पर अत्याचार होते हैं। तुम्हारे गुरु होने के योग्य तो बस कुक्षि ही है।"

प्रतीप पागल-सा हो गया—"मै राम को नहीं छोड़ूँगा।"

"तो फिर बैठे क्यों हो ?"

प्रतीप खड़ा हो गया। झपटता हुआ वह भृगु के आश्रम को गया। वहाँ कोई नहीं था। कगार पर चढकर देखा कि नीचे नाग का खेत जल रहा था, और आसपास लोग नाच रहे थे।

जीवन और जगत् दोनो ही उसे सूने प्रतीत होने लगे। वह भद्रश्रेण्य के आवास पर गया और उसने पिता को उठाकर सूचना दी।

"प्रतीप, हम अभागे हैं। ऐसे गुरु को पाने का सौभाग्य हमें कैसे मिल सकता है ?"

"क्या वे चले जायंगे ? क्या वे लौटकर नही आयंगे ?" प्रतीप ने शंकित मन से पूछा।

"वे जायंगे नही, वे मुझे छोड़ेंगे नहीं। पर हमारे भी भाग्य फूटे है। आज जब कि मै सहस्त्रार्जुन का कृपापात्र नहीं हूँ, तब भी शार्यातराज हमसे ईर्ष्या करते हैं, और आनर्त लोग हमारी मित्रता पाना चाहते हैं। यह सब भार्गव के प्रताप से ही सम्भव हुआ है। सहस्त्रार्जुन के आने से पहले यदि हमने अपने को बलवान नहीं बना लिया तो वह यादवों का नाम-चिह्न भी नहीं रहने देगा।"

"मै उनके पास जा रहा हूँ।"

"बेटा, उनके साथ रहने मे ही हमारी विजय है। वे ऋषि नहीं, देव हैं। वे तो पशुपति के अवतार के समान हैं।"

मुँह अंधेरे ही प्रतीप नाग के खेत पर जा पहुँचा। सब कुछ जल चुका था, और नाग और नागिनियां एक पंक्ति मे खड़े होकर आग बुझाने के लिए हाथों-हाथ पानी के घड़े ला रहे थे। स्वस्थ और अश्रान्त राम घड़ों में से पानी ढुलकाकर आग को बुझा रहा था।

प्रतीप वहाँ गया और राम के पैरों में गिरकर रोने लगा। राम ने उसे उठाकर एक हाथ से छाती से दाब लिया, और बिना बोले ही उसके हाथ मे घड़ा पकड़ा दिया।

प्रतीप को आग बुझाने का काम सौंपकर राम उस घायल नाग-कन्या के पास गया। उसकी अंतिम घडी आ पहुंची थी।

: ६ :

विशाखा के मन मे अपने ससुराल के गोत्र के प्रति जो तिरस्कार का भाव था, वह और भी तीव्र हो गया। नागिनी पर होने वाले अत्याचार से उसका स्त्री-हृदय भी क्षुब्ध हो उठा था। किस पर वह अपना क्रोध उडेले, बस यही उसे नहीं सूझ रहा था।

भोर होने से पहले ही वह नदी पर नहाने गई। वहाँ उसे कुक्षि की तीसरी स्त्री कल्विणी मिली। उन दोनों के बीच बहनापा-सा था। कल्विणी बडे नखरे वाली थी और स्वभाव से प्रमत्त थी। विशाखा भी नखरेली थी और स्वभाव से तीखी थी। दोनों रंगीली थीं, और दोनों ही की यह मान्यता थी कि यादव लोग जंगली हैं।

विशाखा सदा राम के आश्रम मे ही रहा करती थी, अतएव वह राम की सारी बातें कल्विणी को सुनाया करती। कल्विणी ने जब से राम का मोहक रूप देखा था, तभी से वह राम के सम्बन्ध की प्रत्येक बात रसपूर्वक सुनती थी। राम और लोमा के सम्बन्ध को लेकर भी इन सखियों के बीच चर्चा हुआ करती।

विशाखा कहा करती कि वे भाई-बहन हैं। कल्विणी का यह निश्चित मत था कि वे पति-पत्नी हैं।

विशाखा ने कल्विणी से सारी बातें कहकर अपने क्रोध को हल्का किया। कल्विणी कुक्षि की चहेती स्त्री थी, और उसे वह प्रसन्न भी रखा करती, पर भीतर से उसके प्रति उसके मन मे संपूर्ण तिरस्कार का भाव था। विशाखा की बात सुनकर वह भी राम के पक्ष मे मिल गई। उसके पति का अपमान होने पर भी उसे आनन्द ही हुआ करता था।

दोनो सखियाँ बातें कर रही थीं, तभी दूसरी स्त्रियाँ पानी भरने को

आने लगी। नाग कन्या पर होने वाले अत्याचार से सभी स्त्रियों के हृदय नो दुखी ही थे। यादव लोग नागिनियो क साथ दुर्व्यवहार करते थे उससे भी उनकी पत्नियो के मन मे बडी विरक्ति थी। सोमा तथा रुरु को दण्ड देकर घरो को टूटने से बचा लेने वाले तथा नागिनी पर अत्याचार करने वाले को कोडे मारने वाले राम और लामा को यादवो ने आश्रम से निकाल दिया है, यह बात कही से सुनकर सभी स्त्रियां उद्विग्न हो उठी।

इतने ही मे एक स्त्री नहाने के लिए आई और उसने खबर सुनाई—"राम ने नागो का खेत जला दिया है और वही बैठे है।"

"हमे भार्गव के दर्शन करने को जाना चाहिए," विशाखा ने कहा। उसके पति को राम ने फिर से स्वीकार कर लिया है या नही, यह जानने को वह उत्सुक थी।

"हाँ, भार्गव के दर्शन करने को चला जाय," कलिवणी ने भी समर्थन किया। राम के दर्शन करने के लिए वह सदा ही तैयार रहती।

बहुत-सी स्त्रियाँ इस बात से सहमत हो गई और माथे पर घडे धरकर घर जाने के बदले वे सब राम के दर्शन करने के लिए नागो के खेत की ओर चल पडीं।

यह स्त्री-समूह जब नाग के खेत पर पहुँचा, तब सूर्योदय हो गया था। खेत की आग प्रायः बुझ चुकी थी। कुछ दूर पर नागो का समूह, रोता-अकुलाता, वर्तुल बनाये खडा था। उनके बीच राम, लोमा, कूर्मा और प्रतीप के श्वेत मुख दिखाई पड रहे थे। यादव स्त्रियो को आते देखकर, नागों ने उनके लिए रास्ता छोड दिया।

बीच में राम घायल नागिनी का शव ममतापूर्वक चिता पर धर रहा था। उसके मुख पर बड़े भाई की वात्सल्यपूर्ण संरक्षक वृत्ति थी, और उसकी आँखो मे आर्द्रता थी। धीरे-धीरे मंत्रोच्चार करते हुए, उसने हल्के हाथ से नागिनी का माथा ठीक किया। सुकुमार स्पर्श से उसके बाल सँवार दिए।

फीकी, कृशांगी नागबाल के शव को देखकर यादव स्त्रियों के हृदय भर आए। उनमें से बहुत-सी तो सिसकने लगीं। सबने अपने घडे दूर रख दिए।

विशाखा आँसू टपकाती हुई लोमा के पास आकर खडी हो गई। कल्विणी पास ही खडी हृदय-विदारक रुदन करने लगी।

एक आर्या के उपयुक्त मंत्रोच्चार से राम ने नाग-कन्या का अग्नि-संस्कार किया। आँसू टपकाते हुए उस मानव-समूह के बीच वह अकेला अश्रुविहीन था, पर उसके मुख की स्नेह-भरी भावांजलि के सौभाग्य का वरण करने की ईर्ष्या से प्रेरित होकर बहुत-सी यादव स्त्रियां ऐसी ही मृत्यु की कामना करने लगी।

सवेरा होते ही यादव-गोत्र मे कोहराम मच गया। घर-घर दौड-धूप होने लगी। राम चले गए। नाग भी चले गए। रात को नागो का खेत राम ने जला दिया। सभी घरो की स्त्रियां नदी से लौटकर नहीं आई थीं। कई घरो में बिना माँ के बच्चे रोने-बिलखने लगे। घर मे कल्विणी को न देखकर ऋषि कुशिवंत ने अपनी पत्नी पर अनेक देवो के प्रकोप को आमन्त्रित किया। किसीकी भी समझ मे नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है!

जब अग्रणियो को पता लगा तो वे भद्रश्रेण्य के आवास पर जा पहुँचे। लडके राम के आश्रम मे प्रतीप को खोजने गए। और वहाँ जब वह नही मिला तो वे कूर्मा और उज्जयन्त को टोह में गये, जब वे भी नहीं मिले तो वे राम का पता लगाने के लिए नाग के खेत की ओर दौडे। राजा ने अग्रणियों का स्वागत किया।

"राम चले गए।"

"हाँ, हम सब मिलकर उन्हे समझाने जा रहे थे न? अब हमें उस कष्ट से मुक्ति मिल गई," उसने विनोद मे कहा।

"नहीं, उन्होंने तो नाग का खेत जला दिया है। कोई कह रहा था कि उन्होंने नाग-कन्या का अग्नि-संस्कार किया है। हमारे घरो को

स्त्रियां चली गई है। लोग भी वहां जाने लगे है।"

"तब हमे क्या करना होगा?" राजा ने पूछा।

"जो आप कहे वही करे," मुखिया ने कहा।

"कुत्सि गुरु क्या कहते है?" राजा ने पूछा।

"यह तो बडी अद्भुत बात है। नाग-कन्या का दाह-संस्कार, और वह भी भृगु-श्रेष्ठ जमदग्नि के पुत्र ने किया! आकाश-पाताल एक होने जा रहा है। और कलिवरणी भी सवेरे से कौन जाने वही चली गई है, कि क्या बात है?"

"मेरे घर तो सवेरे से बच्चे बिलबिला रहे है," एक यादव अग्रणी ने कहा।

"और मेरे घर में कोई रांधने वाला ही नही रहा है," भद्रश्रेण्य ने विनोद मे अपनी विपत्ति का प्रदर्शन किया।

"हमें वहाँ जाना चाहिए," एक पंच ने कहा।

"जाकर हम क्या करेंगे?" राजा ने फिर पूछा।

"वे नागो को छोड दें। और क्या होगा? और गाँव को जो अपवित्र किया है, उसके लिए प्रायश्चित करें," कुत्सि ने समाधान का मार्ग सूचित किया।

"अब उन्हे छोडने का प्रश्न ही कहाँ रह गया है? वे तो हमे ही छोड गए हैं।"

"तब फिर क्या होगा?" दो-चार व्यक्ति बोल उठे।

"और हमारी पत्नियो को भी साथ लेते गए है। बडी रानी भी इस बुढापे मे उनके पीछे चली गई, और वह सुपर्ण—वह पगला—भी उनके साथ हो लिया है। घोडा तक जब पागल हो गया है, तो भला गांव के लोग पागल क्यों न होगे?" उस व्यंग में राजा ने भी कुछ रस लिया।

"हमें उन्हें समझाकर वापस ले आना चाहिए," मुखिया ने कहा।

"और आज तालजंघा गोत्र के लोग उनके दर्शन करने आयंगे, तो कौनसा मुँह लेकर हम उनके सामने खडे होंगे ?"

"वह आपका लाडला है," कुत्ति ने कहा, "आप मनाएँगे तभी वह मानेगा।"

"लाडला तो वह देवो का है। तुममे यदि शक्ति हो तो तुम्हीं देवों से उसे मनाने के लिए कहो," भद्रश्रेण्य ने कहा।

निदान राजा, मुखिया और दूसरे कुछ अग्रणी जाने को तैयार हो गए। कुत्ति ने कहा—"मुझे तो इस सबमे पाप दीख रहा है। मुझे तो इससे दूर ही रहने दो।"

दोपहर मे भद्रश्रेण्य और यादव अग्रणी जब नागो के खेत पर गये, तब यादव लडके वहाँ प्रतीप की देख-रेख मे बाड की तपती राख को दूर हटा रहे थे। कुछ यादव भी उसमे सहायता कर रहे थे। नाग और नागिनियां वहां झाडू लगा रहे थे। खेत के बीच लोमा, कूर्मा, विशाखा और कलिवणी आदि लीप-पोतकर एक बडा-सा यज्ञ-कुंड तैयार कर रहे थे। यह सब देखने के लिए लोगों की भीड चारो ओर जमा हो रही थी और उनमे मे कुछ लोग उनकी सहायता करने को भी आ रहे थे।

"भार्गव कहां है ?" राजा ने पूछा।

"नाग-कन्या की अस्थियो को गोमती मे विसर्जित करने गये है।"

"यह सब क्या चल रहा है ?" मुखिया ने पूछा।

"भार्गव अब यहां आश्रम बनाकर रहेंगे।"

राजा और यादव अवाक् होकर एक झाड के नीचे बैठ गए। थोडी देर मे राम जब अस्थि-विसर्जन करके लौटे तो सबने प्रणिपात करके उनका स्वागत किया।

"गुरुदेव! आप यह क्या कर रहे हैं ?"

"भद्रश्रेण्य," राम ने धीरे-से हँसकर कहा, "यादवो को अपना धर्म जब तक समझ मे नहीं आ जाता, तब तक मैं यही आश्रम बनाकर रहूँगा। मै उनका जी नहीं दुखाना चाहता।"

"पर भार्गव, हम तो आपको लेने आये हैं," मुखिया ने कहा।

"नहीं, मैं यहीं रहूँगा। जहाँ मैं बसूँगा वहाँ धर्म का प्रवर्त्तन ही होगा। गुरु पर से तुम्हारी श्रद्धा विचलित हो गई, मुझे इसीमें अधर्म दिखाई पड रहा है। जिसे श्रद्धा हो वह मुझे यहां आकर मिल सकता है।"

"गुरुदेव!" भद्रश्रेण्य ने कहा, "तो मैं भी यहीं रहूँगा।"

राम की आँखें स्नेह से हँस आईं। "राजन्, मैं जानता हूँ। पर यादवों को तुम पर भी पूरी श्रद्धा नहीं है। अब मुझे यज्ञ का आयोजन करना है।"

"हम भी उसमे भाग लेंगे," राजा ने कहा।

"पर एक बात याद रखना," राम ने निश्चयात्मक स्वर मे कहा, "मेरे आश्रम मे जो नागो को सतायगा, उसे मरना पडेगा।"

अग्रणी लोग उस स्वर की भयंकरता से कॉप उठे। सारे गांव ने मिलकर खेतों को आश्रम की भूमि मे परिणत कर दिया। यज्ञ-कुण्ड के सामने बैठकर राम ने विधि का आरम्भ किया। भद्रश्रेण्य ने अतिथि सत्कार की तैयारी करने के लिए आज्ञा दी।

एक ओर नाग अपरिचित स्वातंत्र्य का अनुभव करते हुए बैठे थे। दूसरी ओर यादव अग्रणी बैठे थे। पास ही यादव स्त्रियां भी बैठी थीं। केवल कल्विणी नहीं थी। कुक्षि ने उसे इस आश्रम में आने से मना कर दिया था।

यज्ञ की आहुति अभी पूरी हुई ही थी कि इतने मे दौडता-हांपता हुआ उज्जयन्त आ पहुँचा। वह उस भागे हुए तीसरे यादव रत्नपाल को रस्से से बांधकर लाया था।

"गुरुदेव! गुरुदेव! मैं आ गया हूँ," कहकर उज्जयन्त हर्षित होकर राम के पैरों पडा।

"उज्जयन्त, मैं तेरी ही राह देख रहा था।"

"जो रत्नपाल भाग गया था, उसे मैं पकड लाया हूँ।"

"अच्छा किया," हँसकर राम ने उसकी पीठ थपथपाई, "लेकिन इसे यहां क्यों ले आया ?"

"क्यों ?"

"नागों को सताने वाला यदि यहाँ आयगा तो उसे मरना ही पड़ेगा, ऐसा मेरा वचन है।"

"गुरु का वचन सदा अभंग रहेगा," उसके पैरों पर गिरकर उज्जयन्त ने कहा। तरकश में से उसने तीर निकाला और पलक भरते ही, पास ही जो बँधा हुआ तीसरा रक्षपाल खड़ा था उसकी छाती में भोंक दिया।

इस न्याय की निश्चलता देखकर यादवों के हृदय पल-भर के लिए काँप उठे। राम शांत और स्वस्थ, मानो कुछ न हुआ हो, ऐसे बैठा था।

: ७ :

राम का नया आश्रम पहले की अपेक्षा बहुत विशाल और समृद्ध था। सौ यादव लड़कों का शतक दिन और रात वहाँ रहकर कसरत, शस्त्र-विद्या और अश्व-विद्या का अभ्यास करने लगा। प्रतीप और विशाखा ने तथा कूर्मा और उज्जयन्त ने भी वहीं अपना घर बसा लिया। एक ओर की झोंपड़ियों में निश्चिन्ततापूर्वक रहकर नाग भी आश्रम की सेवा करने लगे। वह स्थल नागों का अभय स्थान है, यह पता लगते ही कोई भी नाग यदि कहीं से दुख का मारा निकलता था, तो रक्षण के लिए वहीं आ पहुँचता था।

लोमा को यह नया आश्रम अधिक सुहावना लगता था। विशाखा के समान संस्कारी स्त्री के साथ उसकी मैत्री हो गई थी, पर उसके अन्तर की उद्विग्नता बढ़ने लगी।

हरिश्चन्द्र राजा के यहाँ से लौटते हुए एक रात राम का मुख देखकर उसके हृदय में एक विचित्र ही भाव-सृष्टि उठ खड़ी हुई। तब से केवल उसके सान्निध्य से उसे सुख न मिलता। राम के शरीर में समा जाने

की एक विकल उत्कंठा उसके मन मे जाग उठी थी। पर कही राम जान लेगा तो वह उससे विरक्त हो जायगा, इस भय से वह अपने एक भी शब्द या आचरण मे राम को यह नहीं मालूम होने देती थी कि अब वह बाल-सखी नही रह गई, प्रत्युत वह तो एक विह्वल प्रणयिनी बन गई थी।

उसके साथ रहना, खाना, मंत्र-पाठ करना, घांडे पर घूमना, शस्त्र-विद्या सीखना, सोना—एकान्त में और सबकी उपस्थिति में—और तिस पर हृदय मे जलता हुआ ज्वालामुखी ढांककर रखे रहना अब उसके लिए बहुत ही असह्य हो गया था। राम ज्यों-ज्यो देव के समान देदीप्यमान और प्रतापी होता जा रहा था, वैसे ही देवत्व की तटस्थता भी उसमे अधिकाधिक प्रकट होती जा रही थी। लोमा के प्रति उसके स्नेह का पार नही था। दोनो के स्वभाव के संवाद को वह किंचित् मात्र भी बेसुरा नही होने देता था। उसे सुलाकर ही वह आप सोता। स्वयम् जाग जाने पर वह तुरन्त ही उसे जगाता, पर निरन्तर कर्तव्य की धुन में ही वह घूमा करता . वह मंत्रो की शिक्षा देता, घांडो की साल-सँभाल मे व्यस्त रहता, कुश्ती लडता, नये शस्त्र तैयार करता और जाने कितनी-कितनी देर वह भद्रश्रेण्य और प्रतीप आदि के साथ परामर्श करने मे व्यस्त रहता; और कुछ काम न हुआ तो लोगो को दर्शन देता। इस सबमें लोमा उसके साथ ही रहा करती। पर उसकी दृष्टि सहजीवी बाल-सखा की थी; न तो वह कभी बढ़ती ही और न कभी घटती ही।

कल्विणी आश्रम में तो नहीं आती थी पर विशाखा के कारण लोमा के सम्पर्क में प्रायः आया करती। यह कुक्षि की स्त्री नखरे वाली, मद-भरी और आकर्षक थी। वह सारे दिन लोमा से राम ही की बातें किया करती और किसी कारण से यदि राम गांव मे चला जाता तो लुक-छिप कर उसके दर्शन भी कर लेती। लोमा के मन मे इस स्थूल, मद-भरी, विलासाकांक्षिणी, मद-मत्त स्त्री के प्रति अविश्वास जाग उठा।

जिस रस के साथ कल्विणी भार्गव के सम्बन्ध में बातचीत किया करती थी, उसे देखकर लोमा का जी व्याकुल रहा करता।

प्रतीप नें अब यादवो को सबल बनाने का काम अपने सिर पर उठा लिया था। विशाखा तो भृगु के आश्रम की अधिष्ठाता भी बन गई थी। उसकी व्यवस्था-शक्ति और तेज का रूप-रंग चारो ओर दिखाई पड़ता। साथ ही अपने काका आनर्तराज के साथ सन्देश-व्यवहार करने के लिए राम ने उसे दूत नियुक्त कर दिया था। कूर्मा अपने बाप से भी बडा राजनीतिक बन गया था। वह चारो ओर के संवाद जुटाया करता। रंगीला, स्वरूपवान और वीर उज्जयन्त, राम द्वारा बनाये हुए शिष्यों के सशस्त्र शतको का नेतृत्व कर रहा था। इन छः व्यक्तियो के षट्क का एक ही प्राण था—राम। राम शस्त्र-विद्या मे नवीन आविष्कार किया करता। उसने सामान्य कुल्हाडी को नया ही रूप दे दिया। वह अब झाड काटने और सिर फाडने का शस्त्र-मात्र ही नही रह गई थी। अपने बडे पतले फलक,तीक्ष्ण धार और लंबे डंडे के कारण वह घोडे पर बैठकर शिरच्छेद करने का परशु बन गई।

अपने शिष्यों को राम ने शतको मे बॉट दिया था। सभी के साथ वह भाई-जैसा ही सम्बन्ध रखता था। वह सबसे अधिक परिश्रम करता, सबको खिलाकर वह आप खाता और सबको सुलाकर वह आप सोता; पर सौंपा हुआ काम करने मे यदि कोई चूक जाता तो अपने एक शब्द से जलाकर उसे राख कर देता। कोई निर्वीर्य या कायर जान पडता तो वह तुरन्त ही उसे स्थान-भ्रष्ट कर वह काम दूसरे को सौंप देता। एक दिन एक युवक ने कुछ बकवास की, राम ने तुरन्त ही उसे दोनो हाथो पर उठाकर एक कगार पर से नीचे फेक दिया।

सभी राम की बराबरी करने का प्रयत्न करते, पर उसकी अडिग स्वतन्त्रता, आक्रमण करने की फुर्ती और तीखापन, उसकी निर्भय संलग्नता और प्रतिद्वंद्वी की चूक को पकड लेने की उसकी चपलता को कोई नहीं पहुँच पाता था। उसके धनुष, बाण और परशु सबसे अधिक

धारदार हुआ करते। दूसरे के लिए उसका प्रयोग करना कठिन हो जाता। और सुन्दर घोड़े पर बैठ अपने शतक को साथ ले जब वह घूमने निकल पड़ता तो उसे देखकर यादवों की छाती फूल जाती।

कभी-कभी वह और लोमा जब भृगुग्राम और तृत्सुग्राम की बातें करते तो अपने स्वजनों को याद करके लोमा आँसू टपकाने लगती, और राम तब ऐसी तटस्थता से बातें करता जैसे अम्बा, वृद्धा और पिताजी मानो किसी बीते हुए जन्म की स्मृतियाँ हों। कभी-कभी वह चुपचाप गिरनार के सबसे ऊंचे शिखर पर चला जाता और प्रहरों तक स्थिर नयनों से क्षितिज निहारा करता। सदा लोमा उसके साथ जाती। कभी-कभी प्रतीप, कूर्मा और उज्जयन्त भी जाते। ज्वलन्त आँखों से अकेला राम चारों दिशाओं की थाह लिया करता। उसके मन में तब क्या हुआ करता था, यह तो कोई भी जान नहीं पाता था, पर उस समय उसकी भेद-भरी मूक भव्यता उसके आसपास किरणों के अंबार बरसाया करती।

मधु की माँ रेवती शार्यात-राज की पुत्री थी। शार्यात गोत्र की सीमा यादव-गोत्र की सीमा का स्पर्श करती थी। राम ने जब मधु को पीटा था, तभी से रेवती रूठी हुई थी। कुछ ही दिनों के पश्चात् वह मधु को लेकर अपने पीहर चली गई। भद्रश्रेण्य ने उन्हें वापस नहीं बुलाया। उनका विचार था कि मधु यादवों के उत्कर्ष में बाधा-स्वरूप है।

राजा ने यह संकल्प कर लिया था कि सहस्रार्जुन के युद्ध से लौटने और मृगारानी तथा गुरु मार्कण्डेय को कोई सन्देह होने से पहले, यादवों को सशक्त बना देना है। राम ही के कारण उनका संकल्प उनकी धारणा से पहले ही सफल होता जा रहा था।

राम की दृष्टि और उसका संकल्प सर्वग्राही था। कुक्षि के ऊपर दृष्टि रखने का काम उसने कूर्मा को सौंपा था, और शार्यात-राज, मृगारानी तथा गुरु मार्कण्डेय के साथ कुक्षि जो संदेश-व्यवहार किया करता था, उसका उसे पता था। मनुष्य-मात्र किस परिस्थिति में कैसा व्यवहार करेगा, यह बात राम अचूक रूप से जानता था।

यादवो के थाने जहां समाप्त होते थे, वहीं से शार्यातो के थाने लग जाते थे। इस सीमा पर स्त्रियो का अपहरण और गोचरो की लूट सदा ही हुआ करती थी। एक-दूसरे के नाग भी लूट लिए जाते।

पहले जब भद्रश्रेण्य सहस्रार्जुन का मान्य सेनापति था तो उसकी धाक से यादवो पर आक्रमण करने से सभी डरा करते। उसके पश्चात् शार्यातो और तालजंघो के लिए यादवो को सताने का काम सरल हो गया था। पर राम की सर्वव्यापी प्रवृत्ति से वह सरल काम भी अब कठिन हो गया था। वह जिस किसी भी थाने पर जाता, वहां घोडो के व्यवस्थित पालन-पोषण को प्रोत्साहन देता, वहां शस्त्र तैयार किए जाते और वहां के युवक शिक्षा पाने के लिए उत्सुक हो उठते। राम-शतक के शस्त्र-सज्जित योद्धा थानो के बीच फेरी लगाया करते। इस कारण यादवो का लूटा जाना अब उतना सरल नही रह गया था।

सब थानो का रक्षण उज्जयन्त के हाथ मे था। प्रत्येक थाने पर चौकीदार चौकी दिया करते। स्थान-स्थान पर ढोल रख दिये गए, जिनके नाद से सबको चेतावनी दी जा सकती थी। प्रत्येक थाने से पांच युवक शिक्षा के लिए भृगु-आश्रम मे आया करते और प्रतिमास अपने थाने मे लौटकर वहां औरो को शिक्षा देते। देखते-देखते ही यादवो की सीमा अभेद्य हो गई और शार्यातराज की चिन्ता का पार न रहा।

राम को उसकी आवश्यकतानुसार युवक मिलने लगे। उसके नाम और प्रताप के कारण नवयुवक अपने आप ही उसके पास खिंचे चले आते। पर वह तो घोडों का पुजारी था। बिना घोडे के मनुष्य मे उसे शक्ति न दिखाई पडती।

पाताल (सिंध-हैदराबाद) से व्यवसायी लोग द्वारका तक अपने पोतो पर माल लादकर लाया करते। साथ ही वे घोडे भी लाया करते। वहां से बनजारे गूने लादकर तालजंघा, शार्यात, यादव, आनर्त और माहिष्मती (भरूच) तक माल बेचने के लिए ले जाया करते।

जब तक बनजारो के रथे द्वारका से साबरमती के किनारे तक

पहुंच जाते, आर्यों के थाने उन्हें लूट लेते, या फिर उनसे मनचाहा माल निकलवा लेते। इस लूट मे प्रायः तालजंघा, शार्यात और यादवो के थाने साझेदार हुआ करते। राम ने इस लूट को बन्द कर दिया। जत्थे के मार्ग पर शतक के चुने हुए योद्धा उज्जयन्त के नेतृत्व मे चौकी लगाया करते, बिना पैसो के बनजारो को अभयदान देते और बिना कुछ लिये ही उन्हे साबरमती तक पहुँचा आते। यह चौकी लगाने का काम प्रत्येक यादव थाने को करना पडता था। पहले तो लुटेरे घबडाये, पर राम की आज्ञा का भंग होने पर परशुधर राम के शिष्य विधि की निश्चलता से विरोध को निर्मूल कर दिया करते। भयमुक्त बनजारे यादवों को भेंट देने लगे। राम ने वह लेना अस्वीकार कर दिया। भेंट मे वह केवल घोडे ही लिया करता।

सौराष्ट्र मे तथा भद्रश्रेण्य के राज्य की सीमा में पहली ही बार लूट-खसोट बंद हुई और समृद्धि का विस्तार होने लगा। सीमा के बाहर भी बडी दूर तक जंगलों के रास्ते सुरक्षित होने लगे। कृतज्ञ बनजारे चाहे जहां से घोडे ले आया करते और भार्गव के चरणो पर लाकर धर देते। ये घोडे भिन्न-भिन्न थानो की अश्वशालाओ में शिक्षा पाते और प्रतीप के नेतृत्व मे शिक्षण लेने वाले राम के शिष्यो के काम आते। यह सारा काम अबाध रूप से षट्क की आज्ञा-तले चला करता। इस सबका अधिष्ठाता चुपचाप, तेजस्वी दृष्टि लिये रात-दिन चारों ओर घूमा करता, शिक्षा देता, आज्ञाएं सुनाता और नई व्यवस्था प्रसारित करता।

यादवों के बढते हुए प्रताप के कारण शार्यातराज की चिन्ता का पार नहीं था। उसने अपने छोटे पुत्र ज्यामघ को मंत्रियों के साथ यादव गोत्र में भेजा। ज्यामघ ने संदेश सुनाया—यादव शार्यातों को बहुत सताते हैं; हमारे नागो को यादव संरक्षण प्रदान करते हैं, हमारी राज्य-सीमा में प्रवेश करके यादव लूट-खसोट करते हैं; शार्यातराज दो महीने बाद यज्ञ करने जा रहे हैं, अतएव रेवती और मधु उसके अनन्तर ही आयेंगे; उस प्रसंग पर भद्रश्रेण्य को अवश्य ही आना चाहिए इत्यादि।

ज्यामघ साँवला और छोटे कद का था। वह बड़ा ही बुद्धिशाली था, और बातचीत करने के अपने चतुर ढंग के कारण वह सबको मुग्ध कर देता था। चारों ओर जो यादवों का प्रताप और ऐश्वर्य प्रकट हो रहा था, उसे उसने अच्छी तरह देख भाल लिया।

भद्रश्रेण्य उसे राम के दर्शन करने को ले आया। राम के सारे लड़ाके शिष्यों को लेकर उज्जयन्त दूर के थानों की व्यवस्था करने गया था। कूर्मा एक जगह कुछ लडकों को मंत्रोच्चार सिखा रहा था। लोमा, विशाखा तथा अन्य स्त्रियां अपने-अपने कामों मे लगी थीं। नाग बिना किसी नियंत्रण के स्वतंत्रतापूर्वक कुछ-न-कुछ काम करते दिखाई दे रहे थे। ऐसी स्वच्छता और व्यवस्था ज्यामघ ने कभी न देखी थी। वह राम के पैरों पडा—"गुरुवर्य, पिताजी ने प्रणाम कहलवाया है, और वे स्वयम् दर्शन करने न आ सके, इसके लिए क्षमा-याचना की है। पिता जी यज्ञ करने वाले हैं और उन्होने आपसे विनती करते हुए कहा है कि आप वहां पधारकर यज्ञ को पावन करें।"

राम ने कुशल-समाचार पूछा—"ज्यामघ! महाअथर्वण के शाप से मुक्त होकर तुम सुखी बनो, यही मेरा आशीर्वाद है," उसने कहा।

"तो आप पधारेंगे?" इस तेजस्वी युवक को देखकर ज्यामघ के मन मे आदर का भाव जाग उठा। क्या यही लडका है गुरुवर्य, जिसके नाम से सौराष्ट्र गूँज रहा था। ऐसे गुरु के पास रहने का धन्य-भाग्य प्राप्त करने के लिए वह प्रतीप की ओर ईर्ष्या-भरी दृष्टि से देखता रह गया।

"आऊंगा, आऊंगा क्यों नहीं? पर तेरे पिताजी अधर्म का त्याग करेंगे तभी आऊंगा," राम ने कहा।

"अधर्म? हम कौनसा अधर्म कर रहे हैं?" खेदपूर्वक ज्यामघ ने कहा।

गहरे स्नेह से राम हँस पडे—"भाई, अपने पिताजी से कहना कि

धर्म-प्रवर्त्तन का सकल्प वे करे, फिर मुझे बुलाने की आवश्यकता नही पडेगी, मै स्वयम् ही चला आऊंगा ।"

राम के अभेद्य गौरव को देखकर ज्यामघ के मन मे पूज्यभाव जागा ।

"आपकी क्या आज्ञा है ?"

राम कुछ देर तो चुप रहा, और फिर धीरे से स्पष्ट होकर बोलने लगा—"यादवों के साथ वैर करना छोड दो । पचास शार्यात युवकों को लेकर तू यहाँ आकर छः महीने रह और प्रतीप का साथ दे । शार्यात थानों को लूट-खसोट करने और स्त्रियों का अपहरण करने से रोको । नाग-स्त्रियों पर अत्याचार करना बन्द करो और जैसे महाभाग भद्रश्रेण्य बनजारों को अभयदान दे रहे हैं, वैसे ही तुम भी दो । जिस दिन इस धर्म का प्रवर्त्तन हो जायगा, मैं कच्चे सूत से बंधा तुम्हारे यहाँ खिचा चला आऊँगा ।"

ज्यामघ ने गर्दन हिलाई—"यह काम सरल नहीं है, फिर भी मैं पिताजी से कहूँगा ।"

"यादवों ने उसे सरल बना दिया है ।"

"हमारी प्रजा बहुत तेजवान है," ज्यामघ ने कहा ।

"इसमे तो मुझे कहीं भी तेज नही दिखाई पडता । तेरे पिताजी से मुझे बस एक ही संदेश कहलवाना है । भद्रश्रेण्य जिस प्रकार धर्म का प्रवर्त्तन कर रहा है, ठीक वैसे ही उसके साथ रहकर सारे सौराष्ट्र में धर्म का प्रवर्त्तन करो ।"

"पर आप आकर पिताजी से मिलें तो," ज्यामघ ने फिर से प्रार्थना की ।

"तू यहाँ आकर रह, मैं वहाँ जाकर रहूँगा," राम ने हँसकर कहा । राम के स्नेह-भरे निमंत्रण से उसका जी यहाँ आकर रहने का हुआ ।

"पिताजी से पूछ देखूंगा," कहकर ज्यामघ ने विदा ली ।

"अपने पिताजी से कहना कि जैसा वे मानते हैं, मैं भद्रश्रेण्य की

महत्ता बढाने का साधन नहीं हूं । भद्रश्रेण्य धर्म-प्रवर्त्तन का एक निमित्त-मात्र है।" राम के स्वर मे एक गहरी गूँज थी, भद्रश्रेण्य पर यदि आक्रमण होगा तो मैं उसे धर्म पर आक्रमण हुआ मानूंगा।"

श्यामघ ने दृष्टि नीची कर ली। उसके पिता के हृदय मे चल रहे विचारो को यह चुनौती थी।

श्यामघ के जाने के उपरान्त षट्क एकत्रित हुआ, तब राम ने एक वाक्य कहा—"मेरी चेतावनी निरर्थक है। यज्ञ के बाद शार्यात आक्रमण करेंगे।"

प्रतोप ने पूछा—"सचमुच ?"

"आक्रमण यदि वे करना चाहते हैं, तो मेरे निर्धारित किये हुए समय पर ही वे करेंगे। हम तैयार हैं।"

"तुम कैसे समय निश्चित करोगे ?" लोमा ने पूछा।

राम हँस पडा—"अभी मैं निश्चित किये देता हूं। उज्जयन्त, कुत्ति ऋषि से जाकर कह आ कि एक बहुत ही महत्व के काम से मैं उनसे मिलने आ रहा हूं।"

राम अकेला ही कुत्ति के आवास पर गया। कल्विणी ने हँस-हँस कर उसका स्वागत किया। इस स्थूल, [illegible], क्रीडाशील युवती को बहुत दिनो से राम से मिलने की तीव्र उत्कण्ठा थी। दूर से ही इस देदीप्यमान युवक को देख-देखकर उसके हृदय में जाने कितने ही अकथ्य भावो का उदय हुआ था। आज उसके सत्कार करते समय कल्विणी के दुलार का पार नहीं था।

राम नमस्कार करके बैठ गया और कल्विणी कुशल समाचार पूछने लगी—

"लोमादेवी कैसी है ? मै तो आज उनसे मिली ही नहीं। आज मेरे अहोभाग्य हैं कि आपने मेरा आँगन पावन किया।"

लोमा सप्त-सिंधु के राजा की बहन है। राम के साथ इस प्रकार अकेली रहती और घूमती है, उसके साथ विवाह नहीं किया है तब भी

दोनों एक-दूसरे से ऐसे बरतते है जैसे एक-दूसरे के अपने ही हों, इस बात मे कल्विणी की कल्पना को बहुत उत्तेजना मिली थी। रात को स्वप्न मे राम उसे अनेक रूपों मे दिखाई पडता, और दिन मे राम के सम्बन्ध मे बाते कर-करके वह रस के घूँट पिया करती।

"लोमा राजा के यहाँ बैठी है।"

"मै एक दिन आपके आश्रम मे आने वाली हूँ। मै उस पहले दिन आपसे मिली थी। याद है न? मैने लोमादेवी को यज्ञ-कुण्ड बनाने मे सहायता दी थी। अब आश्रम कैसा हो गया होगा, सो तो मैने देखा ही नही है। ऋषि जी की सेवा से मुझे तो समय ही नही मिलता है।" वृद्ध पति की सेवा मे उसका यौवन मानो जलकर भस्म हुआ जा रहा हो, ऐसा भाव मुख पर लाकर, नि.श्वास छोडकर, कल्विणी बोली।

इस कथन के भीतर की ध्वनि को मानो समझ ही न पाया हो, ऐसी सरलता से राम ने कहा, "तुम और ऋषि आकर मेरे आश्रम को पवित्र करो, जब तुम्हारा जी चाहे। मै कृतार्थ हूंगा।"

"ओहो, भार्गव!" कुचि ने अन्दर प्रवेश करते हुए हँसकर कहा, "पधारिये, पधारिये, आप भला कैसे आए? और आपके कृतार्थ होने मे अब शेष ही क्या रह गया है?" पहली ही बार भार्गव उसके यहां आये थे, इसीसे उसका गर्व संतुष्ट हुआ था।

राम हँसकर खडा हो गया और उसने नमस्कार किया। इस असत्य भाषण करने वाले व्यक्ति पर उसे चिढ थी, फिर भी उसने विनय से हाथ जोड लिए।

"मैं आप दोनो को अपने आश्रम मे आने के लिए आमन्त्रित कर रहा था।"

"बडा सौभाग्य है हमारा! कल्विणी, दूध ले आ। महर्षि जमदग्नि के पुत्र और हमारे यहां पधारें!"

कल्विणी शरीर को हिलाती हुई, बडे हाव-भाव दिखाती हुई दूध लेने दौड़ी—"कुशल तो है न? और लोमादेवी कैसी हैं?"

"अच्छी है," राम ने कहा, "मै आपसे एक विनती करने आया हूँ।"

"क्या बात है? आप और भला विनती करें? आप तो आज्ञा ही दे सकते हैं।"

"ऋषिवर्य! ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्र के द्वारा देव वरुण ने जो नरमेध यज्ञ रुकवा दिया था, वह तो आप जानते ही होंगे। उस दिन मैंने इस सम्बन्ध मे चर्चा की थी।"

"हां," कुछ विचार मे पडकर कुत्सि ने कहा।

"नरमेध से भी भयंकर नर-हत्या कुछ यादव और शार्यात करने जा रहे है। आपको चाहिए कि उसे रोक दें।"

"भार्गव, नर-हत्या बहुत ही निकृष्ट बात है। उसे रोकने के लिए मैंने बहुत हाथ-पैर मारे है, लेकिन जंगली यादव और शार्यात हमारे वश के नहीं है। वे बहुत असंस्कारी हैं। यह होना सम्भव नहीं है।" कुत्सि के बातचीत करने के ढंग मे जो एक विनम्रता का आडम्बर था, वह राम को न रुचा।

"आप यदि रोकना चाहेगे तो अवश्य रुक सकेगा। तब यादव गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकेंगे।"

"मेरा बस चले तो मैं सब-कुछ करने को तैयार हूँ। पर जानता हूँ यह सब मुझसे नहीं हो सकेगा," चतुराई से कुत्सि ने कहा।

"जो आखेट पर जायं, उन्हे शाप दो।" राम ने स्पष्ट बात कही।

"शाप! ओह-हो क्या कह रहे है आप? मैं क्या कोई महर्षि हूँ? यह तो आप-जैसे ही लोग कर सकते हैं और वनवासियों का आखेट तो पूर्व-परम्परा से चला आ रहा है। प्रचलित रूढि का अनुसरण करने वाले को शाप कैसे दिया जा सकता है?"

"देवों का आवाहन करिए, वे शक्ति प्रदान करेंगे।"

"देवो ने मुझे शक्ति तो दी है, पर इसमे मेरी शक्ति काम नहीं आ सकती," फिर एक कृत्रिम विनम्रता से कुत्सि ने कहा। इतने ही में

कल्विणी दूध लेकर आ पहुंची—"लो, यह दूध पियो भार्गव !"

राम ने दूध ले लिया।

"ऋषिवर्य ! मनुष्य के आखेट से वरुण देवता का व्रत भंग होता है।"

"आप जब कह रहे हैं, तो मै कैसे अस्वीकार कर सकता हू ?" कुत्ति ने मानो खिल्ली उडाते हुए कहा। "पर ये बनवासी देवो के शत्रु हैं। इनके आखेट मे देव असंतुष्ट नही होते। नाग का दान तो सदा से ही स्वीकार्य माना गया है। ये लोग एक-दूसरे का नरमेध भी करते है।"

"नरमेध और नर-आखेट पापाचार है। आप यदि नहीं रोक सकेंगे तो देव रोकेंगे," राम ने निश्चयपूर्वक कहा।

"अर्थात् आप....?"

"यदि देवो की इच्छा हुई तो।"

"भार्गव, मैं अनुभवी व्यक्ति हूँ। आप अभी बालक है। अनुभवी का कहा मानो तो इस बात के बीच मे न पडना। शार्यातों के जंगलो में नाग पकडे जाते है और उनके पण्यो मे बेचे जाते है, उन्हें कैसे रोक सकोगे ? और रोकने जाओगे तो शत्रुता हो जायगी।"

राम की दृष्टि किंचित् कठोर हो गई, उसके मुख पर हास्य जैसा था वैसा ही बना रहा—"आज क्या शत्रुता नही है ? पर देवो की आज्ञा ही जब होगी, तो मेरी क्या बिसात है ? ऋषिवर्य, आज्ञा लेता हूँ।"

: ८ :

राम अपने मित्र के पास गया।

"क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं। हमे ही यह नर-आखेट रोकना होगा।"

"क्या करना होगा हमें ?" प्रतीप ने कहा।

"सौ आदमी तो हम लोग यहां हैं ही। अपने पचास मित्रो को

और यहां ले आओ। और कूर्मा! नर-आखेट में कुशल कोई व्यक्ति मिल सके तो उसे तू ले आ।"

"जैसी आज्ञा।"

दूसरे दिन चुने हुए पचास युवक राम के आश्रम मे रहने के लिए आ पहुँचे और शस्त्रोपयोग की शिक्षा लेने मे कडा परिश्रम करने लगे। साथ ही नर-आखेट करने का शिक्षण भी उन लोगो ने लेना आरम्भ किया। राम ने आज्ञा दी कि सबको पन्द्रह दिन के अन्दर-अन्दर अपनी शक्ति से सवा गुना तीर फेंकने, और जितना बडा परशु अब घुमाते हैं उससे सवा गुना बड़ा परशु घुमा लेने की कला पर अधिकार कर लेना चाहिए। पन्द्रह दिनों मे डेढ सौ युवक शिक्षा लेकर तैयार हो गए।

शुक्ल पक्ष आ पहुँचा। एक थाने पर से सम्वाद मिला कि आज रात को नर-आखेट करने के लिए यादवों और शार्यातों की एक टोली शार्याती के जंगल में जाने वाली है। मध्य-रात्रि में राम की छोटी-सी सेना कंधे पर तीर धारण कर हाथ मे परशु ले, कमर पर रस्सियां बांध घोडे पर बैठकर उस थाने के पास के जंगल मे जा पहुंची। वहां अपने मे मे कुछ व्यक्तियो को अपने घोडे सौंपकर, शेष व्यक्ति दबे पैरों जंगल की ओर चल पडे। राम रात को भी सब कछ देख सकता था, इसीसे जिस दिशा मे आखेटक जा रहे थे, ये लोग भी उस ओर सरलता से पहुँच गए।

कोई चालीस शार्यात तथा यादव ढोरो की गेल से अन्दर घुस आए। जब सवेरा होने आया, तो एक झरने का पानी जिस स्थल पर एकत्रित हो गया था, वहां एक झाड की ओट मे छुप गए। प्रत्येक के पास नाग-पाश था।

मुंह-अंधेरे एक कोटर में से दो बनवासी नागो ने बाहर मुंह निकाल कर झांका। जब चारों ओर निर्जन दिखाई पडा, तो वे बाहर आ गए। दोनों पुरुष काले, छोटे कद के और नग्न थे। हरिण की आंखों के

समान उनकी आंखें भयग्रस्त थी। जंगली जानवर की भांति किलकारी करके वे पानी पीने के लिए झरने की ओर के ढाल से उतरने लगे।

उस किलकारी के उत्तर मे दो-तीन नाग झाडो पर से उतर आए। उनमे एक नग्न स्त्री थी, वह भी दो बच्चो को लेकर पानी पीने के लिए आई। ऐसे ही और भी पांच-छः मनुष्य दूर से दौडते हुए आये। अज्ञात भाषा मे वे कुछ बोल रहे थे, पानी पी रहे थे, और कही से कोई आ न जाय, इस भय से चारो ओर देख रहे थे। दो और भी स्त्रियां आ पहुँचीं। उनके साथ भी बालक थे।

दूर पर झाडो के पीछे छिपे हुए आखेटक वर्तुलाकार होकर बाहर आये और पानी पीते हुए नागो की ओर व्यूह-बद्ध रूप से टूट पडे। बनवासियो की भयानक चिल्लाहटो से जंगल का शांत वातावरण हृदय-वेधक हो उठा। उनके बालक भय मे रो पडे। दो बनवासी झाड पर चढ़ गए। बचे हुए व्यक्ति घबडाए-से, भ्रमित-से, शशक की भांति इधर-उधर दौडने लगे। आखेटकों ने कमर पर बांधे हुए रस्से खोलकर उनके फंदे बनवासियो पर फेंके और उनकी कमर, गले और कंधो को फांस लिया। कानों के परदे फाड देने वाली चिल्लाहटो से बनवासी क्रंदन कर उठे। जो नाग झाडो पर चढ़ गए थे, उन्हे आखेटको ने पत्थर मार-मारकर नीचे गिरा दिया और पकड़ लिया। एक बनवासी लहूलुहान होकर भूमि पर गिर पडा। प्रहारो से घायल होकर दो बालक मर गए। आखेटकों ने आनन्द का अट्टहास करके उनकी मरण-वेदना को दबा दिया।

किन्तु तुरन्त ही 'महाअथर्वण की जय' की गर्जना के साथ राम और उनके साथियों ने वर्तुलाकार होकर आक्रमण किया और अपने नागपाशों से आखेटकों के गलों को फांस लिया। बनवासी जिस प्रकार चिल्ला रहे थे, ठीक वैसे ही अब आखेटक भी चिल्ला उठे। उग्र और गम्भीर राम उनके सामने आकर खडा हो गया। उसके हाथ मे प्रचण्ड परशु था।

"सावधान ! यदि कोई भागा तो।"

पर यह वाक्य पूरा होने के पहले ही एक आखेटक गले में से फंदा छुडाकर भागने लगा। राम ने उसे देखा। उसके हाथ का फरसा विद्युत् वेग से उछल पड़ा। उस भागने वाले का गला भिदकर भूमि पर गिर पडा। राम धीरे-धीरे परशु के पास गया, उसे हाथ मे उठाकर, सूखे पत्तो से उसका रक्त पोछ डाला और सबके बीच वह आकर खडा हुआ।

"जो भागने की चेष्टा करेगा, उसकी यही दशा होगी," उसने धीमे से कहा, "तुम नागो का आखेट करते हो, मुझे तुम्हारा करना पडा। लोमा, तू और उज्जयन्त इन नागों को आश्रम मे ले जाओ। मैं इन लोगों को राजा भद्रश्रेण्य के पास लिये जा रहा हूँ।"

दूसरे दिन यादव गोत्र दिग्मूढ होकर देखता रह गया। वेगवान घोडो पर बैठे हुए राम के शिष्य, हाथों में चमकते हुए परशु लेकर, रस्सियों से बँधे हुए यादवो और शार्यातो को खींचकर यादव गोत्र ले गए।

राम और प्रतीप भद्रश्रेण्य के साथ बातें कर रहे थे। लोमा, विशाखा, कूर्मा और उज्जयन्त भी वहाँ बैठे हुए थे। बडी रानी भी वहाँ बैठी हुई थी।

"राजन् शार्यात् राजा के साथ युद्ध होगा," राम के नेत्र स्थिर हो गए थे।

"मैं उससे डरता नहीं हूँ। उसके साथ मैं बहुत लडा हूँ।"

"तो इस बार अब हमे लडने दो।"

"वह बहुत बलवान है। हमसे अधिक योद्धा उसके पास हैं।"

"भद्रश्रेण्य ! साठ वर्ष मे तुमने उन्नीस युद्ध लडे हैं; सहस्रो मनुष्य मारे गए और सैकडो स्त्रियो का हरण हुआ। पर अभी भी इस वैर का अन्त नहीं हुआ। यह एक युद्ध मुझे लड लेने दो।"

"उससे क्या अन्तर पड जाने वाला है ?"

राम कुछ देर चुप हो रहा। उसका स्वरूप गहन और अगेय गूढ शक्ति के मूलाधार के समान हो रहा। उसकी आँखें जो कोई नही देख पा रहा हो, वह देखती-सी लगी।

"यह तुम्हारे बीच अन्तिम युद्ध ही होगा।"

"अन्तिम ?"

"हाँ, इसके बाद फिर एक भी पुरुष नही मरेगा, एक भी स्त्री का हरण नही होगा, एक भी गाय नही लुटेगी," भयंकर निश्चलता से राम ने कहा, "इस युद्ध के साथ अमित्रता नष्ट हो जायगी। तत्पश्चात् यादवों और शार्यातो के बीच धर्म का प्रवर्त्तन हो जायगा।"

"कैसे ?" चकित होकर भद्रश्रेण्य ने पूछा।

"देवो में अटूट सामर्थ्य है।" इन शब्दो मे दीनता नहीं थी, चुनौती थी। अनजाने ही भद्रश्रेण्य के हृदय मे भय का संचार हो गया। इन भयंकर आँखो के सामने कौन-कौनसे दृश्य खडे है ?

राम फिर कुछ देर चुप रहा और फिर धीरे से बोला—"सहस्रार्जुन जब लौटेगा, तब मानो तुम्हारा काल ही आ पहुँचेगा। उसके पहले हमें निर्भय हो जाना चाहिए।"

उपकार के वशीभूत होकर भद्रश्रेण्य की आँखों मे आँसू आ गए। उसने इस अठारह वर्ष के युवक को पूज्य भाव से प्रणिपात किया—"गुरुदेव ! मै आपकी शरण में हूँ। जो उचित समझें, करें।"

"कूर्मा !" राम ने स्थिर नेत्रो से कहा, "शार्यातराज के यज्ञ मे जाना और उनसे एक बात कह देना।"

"क्या ?"

"पहले तो पकडे हुए शार्यात भेंट रूप में उन्हे सौंप देना और फिर कहना कि अब से जंगलों में मनुष्य का आखेट करने वाले को गुरु भार्गव का शाप है।"

"जैसी आज्ञा।"

"दूसरे यह कहना कि राजा भद्रश्रेण्य ने रेवती-रानी और मधु-

कुमार को वापस बुलवाया है, सो तेरे साथ वे उन्हें भेज दें।"

"जी" •

"और तीसरी बात यह कहना—भूल न जाना—कि वैशाख शुक्ला पूर्णिमा के दिन महर्षि-श्रेष्ठ भृगु की जन्मतिथि का उत्सव मनाने के लिए सभी भृगुवंशी आनर्तराज के सीमान्तवर्ती गोकर्ण-तीर्थ मे एकत्रित होंगे। दो दिन पहले—तेरस के दिन—भार्गव तथा उनके शिष्य जायंगे और कृष्ण पंचमी को वहां से वापस लौटेंगे। आप यदि कृपा करके जो कृष्णा दशमी को यहां पधार जायंगे, तो राजा भद्रश्रेण्य आपके साथ सारी बातों का अन्तिम निर्णय कर सकेंगे।"

"वैशाख कृष्णा दशमी—लगभग दो महीने बाद!" भद्रश्रेण्य ने कहा।

"हाँ, चिन्ता न करो।" फिर राम का स्वर स्पष्ट और भयंकर हो उठा—'वैशाखी पूर्णिमा को तुम्हारे और शार्यातराज के बीच का वैर निःशेष हो जायगा।"

सब लोग इन शब्दों के भीतर अनजान, पर भयंकर, अर्थ को अनुभव कर काँप उठे।

"राजन्, कूर्मा के साथ विशाखा को भी भेजिए। रेवती रानी को आमंत्रित करने के लिए आपके कुटुम्ब मे से भी तो किसीको जाना चाहिए। और उज्जयंत! मैंने जो सदेशा अभी कूर्मा को दिया है, उसका संवाद आज सांझ तक सारे गांव को मिल जाना चाहिए। विशाखा, आज कुक्षिवंत के यहां से शार्यातराज और मृगा रानी के पास छिपे संदेशे भेजे जायंगे। कल्विणी से उसका पता निकालकर लाना।"

सब थोडी देर चुप रहे।

"विशाखा, रेवती रानी तेरी सास है। मन न माने तब भी उसकी सेवा करना। मैं यह जानता हूं कि तेरी आंखें और कान कभी बंद नहीं रहते हैं, पर शार्यातराज के यहां तो उन्हें खोलकर ही रखना," हँसकर राम ने कहा।

"लेकिन अब हमें क्या करना होगा?"

"प्रतीप! हमें अपने धर्म का आचरण करना चाहिए। करने को और हो ही क्या सकता है? आज लगभग पौने दो सौ शिष्य सब प्रकार से तैयार हो रहे हैं। वैशाख शुक्ला तेरस के सवेरे जब हम गोकर्ण-तीर्थ प्रस्थान करें तो हमारे पाँच सौ शिष्यों में से प्रत्येक अपने घोड़े, शस्त्र और शिक्षा में अपूर्व रूप से तैयार होना चाहिए। उज्जयंत, तू सभी थानों पर घूम जा। जितने युवक तैयार हो गए हों, उन सब के शतक बना दे। यादव गोत्र की सीमा में कोई प्रवेश न कर पाए, कोई किसी को पीडित न करे, बनजारों को कोई लूट न पाए।" फिर राम ने पूर्ति की—"यादवों के पास दूसरे गोत्रों की अपेक्षा कम पुरुष हैं। स्त्रियों से सहायता लेनी चाहिए। माँ, आपको और अन्य स्त्रियों को क्या करना होगा, सो लोमा जानती है।"

: ६ .

लोमा भी रात-दिन अविरत उत्साह से काम करती, साथ-साथ विचरती, और यों निरंतर सहयोग के भीतर से प्रकट होने वाली निकटता का लाभ लिया करती। पर वह तो सब ऊपर-ऊपर का शुष्क आवरण मात्र था। राम को लेकर जो उसकी भूख थी, शांत नहीं हो पाती थी और कल्विणी के सम्बन्ध का भय बढ़ता जाता था।

कल्विणी अब प्रतिदिन आश्रम में आया करती। राम उसके घर हो आया था, अतएव शिष्टाचार-वश कुक्षि भी अपनी तीनों स्त्रियों के साथ भृगु के आश्रम में एक बार आ चुका था कल्विणी, लोमा और विशाखा की सखी होने के अपने अधिकार के कारण, आश्रम में ऐसे बरतने लगी, जैसे अपने घर में ही हो, और बहुत ही ललक-चलक कर राम से बातें करने लगी।

कुक्षि शार्यातराज के यहाँ यज्ञ में गया। कल्विणी ने जब अस्वस्थता का बहाना किया, तो अपनी तीसरी स्त्री को सांगोपांग संताप

हो सके, इस आशा से उसे वहीं छोड गया। पति के जाने पर कल्विणी प्रतिदिन आश्रम मे आने लगी। अनुनय-विनय करके लोमा को अपने घर ले गई। विशाखा की अनुपस्थिति मे उसने कुछ काम भी अपने ऊपर उठा लिया था। राम जहाँ भी होते, वहीं वह जा पहुँचती और मानो वर्षों का परिचय हो, इस प्रकार बीच-बीच मे बोलने लग जाती। और काम करने की उत्सुकता तो वह निरन्तर दरशाया ही करती। राम प्रायः उसको सामने देखकर अपनी स्वाभाविक, स्नेह-युक्त, संकोचपूर्ण और शर्मीली हँसी हँस दिया करता।

उसे प्रतिदिन आश्रम मे आते देखकर लोमा के हृदय का भय बढ गया। वह प्रतिदिन उनकी तुलना अपने साथ किया करती। कल्विणी की बड़ी-बडी मोह-भरी आँखें, उसके प्रौढ़, उछलते हुए, नुकीले स्तन, उसकी लचकती चाल और उछलते नितम्ब तथा उसकी अर्थ-भरी दृष्टि, यह सब देखकर उसकी ईर्ष्या का पार नहीं था। घोड़े पर बैठकर और दौड़-दौडकर लोमा के नितम्ब पुरुष के नितम्ब के समान कठोर हो गए थे। धनुष और चक्र की शिक्षा लेने के कारण उसके हाथ कर्कश हो गए थे। पुरुषो के साथ, और विशेषकर राम के साथ दिन-रात रहने के कारण उसकी आँखो में अब लज्जा नहीं रह गई थी। उसके व्यवहार मे ललक पड़ने की कला नहीं थी। उसके स्वर में कामोद्दीपक मार्दव नही था। वह स्वयम् एक लड़के के समान थी। राम उसे अपने छोटे भाई के समान मानता था। उसके हृदय मे उसके लिए प्रणय का भाव कैसे जाग सकता था? कल्विणी उसके साथ होड ले रही थी, और वह हार चुकी थी। लोमा मे न तो स्पर्धा करने की शक्ति ही थी और न साहस।

एक दिन राम आहुति दे रहे थे, और उनके पास दर्भ नही था। कल्विणी तुरन्त चेत गई, उठकर जल्दी से दर्भ ले आई और राम को लाकर दे दिया। देते समय वह हँस पडी—सुमधुर, सूचनात्मक हँसी; उसके मन्द हास्य ने उन्माद-कौमुदी प्रसारित कर दी। राम मंत्रोच्चार कर रहा था, उसने हँसकर दर्भ ले लिया। राम की आँखो का

भाव लोमा ने देख लिया और वह हताश हो गई। उसका मुख गहरा लाल हो उठा। यज्ञ पूरा होने पर वह वहाँ से उठकर अश्वशाला में चली गई। इस अपरिचित जगत मे राम के अतिरिक्त उसका और कोई नहीं था, और वैसे ही उसके सारे जीवन मे भी राम को छोड दूसरा कोई नही था। और वही उसके हाथ से निकल गया—कल्विणी का हो गया। वह राम के प्रिय घोडे सुपर्ण के गले से लिपट गई, और वह गर्वीला घोडा स्नेह मे भरकर उसे देखता रह गया। लोमा उस पर बैठ गई और उसे पानी पिलाने के बहाने बन मे चली गई।

मंद, शीतल पवन बह रहा था। संध्या मे पक्षी कल्लोल कर रहे थे। वृक्षों मे समीर का संगीत सुनाई पड रहा था। वह सुपर्ण पर से उतर उसके गले से लिपट गई। उसका कोई नही था। भाई वैरी था। माता-पिता मर गए थे। गुरु लोपामुद्रा अदृष्ट हो गई थी। राम भी उसका नही था। वह निराधार थी। वह छाती फाडकर रो उठी। सुपर्ण अकेला मूक स्नेह मे उसके शरीर पर नाक घिसता हुआ उसे आश्वासन देने लगा।

राम उसे अपना अंग मानता था, और वह राम को अपना अंग मानती थी। दोनो के बीच भावो का आदान-प्रदान सम्भव ही नहीं था। मानो वे दोनो एक-दूसरे के अपने ही हैं, इस प्रकार वे पल-पल बरतते थे। किसीको भी एक-दूसरे के जीतने की चिन्ता नहीं थी, क्योंकि दोनों जन्म से ही एक-दूसरे के जीते हुए थे। पर अब राम कल्विणी का हो जायगा। किसी दूसरी स्त्री के साथ भी शायद वह विवाह कर ले। लोमा के लिए जगत् वैरी हो जायगा। उसका जी मर जाने को करने लगा।

वह रोई और खूब रोई। थोडी देर में उसकी दृष्टि में एक बालक की झलक दिखाई पड़ी—प्रबल, स्वरूपवान, अस्पष्ट शब्दो का उच्चारण करता हुआ, सगी माँ को छोड उससे लिपटकर आनन्द मानने वाला उसका राम, देव, जीवन उसे छोड गया ?

अपने अविश्वास पर उसके मन मे तिरस्कार उपजा । क्या राम इतना क्षुद्र, अस्थिर और चंचल हो सकता था ? जो वृद्धो और अनुभवियो को अपनी अडिगता से मात कर देता है, वह उसे छोडकर, कल्विणी को प्यार करेगा ?

आश्वासन जिसे सुलभ नही था, वह राजा दिवोदास की पुत्री लोमहर्षिणी, सुपर्ण पर बैठकर वापस लौट रही थी । उसके एकाकीपन मे, उत्ताप से भरे पवन के झोके उसके हृदय को झुलसा रहे थे ।

जब वह लौटकर आई तो रेवा ने कहा कि कल्विणी अस्वस्थ हो गई है, और उसका संदेशा आया था, इसी से राम उसके आवास पर गया हुआ है । डूबते हुए मनुष्य की भाँति लोमा ने चारो ओर देखा । उसकी आंखे व्याकुल हो उठी । वह कुछ बहाना करके एक ओर चली गई और रो पडी ।

जब कल्विणी के यहाँ से एक स्त्री उसे बुलाने आई, तो राम आश्चर्य मे पड गया । कल्विणी रुग्ण थो । कोई आवश्यक संदेशा कहना था, गुरुदेव पधारें तो बड़ी कृपा हो । किसी भी यादव को जब राम की आवश्यकता होती, तो वह उसे सहायता करने जाया करता । "लोमादेवी को भेज दूं ? ठीक रहेगा ?"

"नहीं, आपको ही विशेष रूप से बुलाया है ।"

"अच्छा, आता हूँ," उसने कहा और वह साथ हो लिया । कल्विणी कुक्षि की स्त्री थी । उसके आश्रम पर वह प्रतिदिन आया करती थी । उसकी सहायता करना उसका धर्म था ।

कुक्षि के दो आश्रम थे । एक गांव के बीच मुखिया के घर के पडोस मे, और दूसरा गांव के बाहर । कुक्षि कहा करता था कि एकान्त मे तप करने के लिए उसने वह दूसरा घर रख छोडा था । वहाँ वह यादवों के जाने बिना ही बहुत-सी वस्तुएँ कर सकता था । वही कल्विणी भी रहा करती थी ।

राम पहुँचा, तब महालय में नितांत एकान्त था ।

"कोई भी नहीं है, सब ऋषिजी के साथ चले गए है, पधारिए," जो बुलाने आई थी उसने कहा और द्वार खोल दिया। राम ने प्रवेश किया और उस स्त्री ने द्वार बन्द कर दिया।

कल्विणी मृग-चर्म के बिछौने पर पडी थी और मृग-चर्म ही उसने ओढ रखा था। उसके बिखरे बालो मे उसका श्वेत, मोहक मुख ऐसा लग रहा था, जैसे काले बादलो से निकलकर चन्द्रमा रुक गया हो। उसकी मदमस्त आंखो से इस क्षण मोहक आकर्षण टपक रहा था।

"गुरुदेव ! आइये, पधारिये, क्षमा करिये, मुझसे तो उठा नही जा-रहा है" उसने कांपते स्वर मे कहा। उसके प्रौढ स्तन प्रमत्त होकर उछल रहे थे।

"यह उपहार स्वीकार करेंगे न ?" कल्विणी जहाँ सोई थी, वही पास ही दूध और फल एक ओर रखे हुए थे और एक मृग-चर्म बिछा दिया गया था।

राम बैठ गया और नाममात्र के लिए उसने एक बेर मुँह मे डाल लिया। उसे उस स्त्री की वह चेष्टा कुछ रुची नहीं। उसमे उसे कुछ धृष्टता और अविनय जान पडा ?"

"कहिए, क्या कहना है ?"

"भार्गव ! पास आओ। तुम्हारा जीवन संकट मे है, भद्रश्रेण्य राजा का भी।"

"मेरा कोई क्या बिगाड सकता है ?" राम ने हँसकर कहा।

"पास आओ, पास आओ !" राम के मुख को निकट पाकर कल्विणी का संयम जाता रहा। राम ने उसके तप्त श्वास को अनुभव किया और अपना मुँह वापस खीच लिया।

"तुम नहीं जानते हो। तुम्हारे सिर पर संकट मँडरा रहा है—बहुत बडा संकट।"

"मुझे डर ही किस बात का है ? चिन्ता न करो।" अपने सदा सहज भाव से राम ने कहा।

"मुझे बहुत चिन्ता हो रही है," गद्‌गद् होकर कल्विणी ने कहा, "मुझे नींद नहीं आती है। भार्गव, भय के मारे मैं तो मरने को पडी हूं। जाने किस क्षण तुम्हारा क्या हो जायगा, इसी विचार से मरी जा रही हूँ। ओ देव! पशुपति! भार्गव, अपना हाथ मुझे दो। मैं उठना चाहती हूँ।" उसने हाथ फैला दिया। राम ने उसे उठाने के लिए अपना हाथ लम्बा कर दिया। उसके स्पर्श से उसकी नस-नस झनझना उठी, और उन्मत्त-सी होकर कल्विणी उठ बैठी। उसके शरीर पर से मृग-चर्म खिसक गया। वह अवस्त्र थी। उसका सुडौल स्तन-मण्डल विलास के सार-सत्व-सा राम की आँखो के आगे झूल उठा—स्पर्श करने वाले की भूख से अधीर।

राम की आंखें स्थिर हो गईं, और चमक उठी। "भार्गव, भार्गव क्या देख रहे हो? हाथ पकडो। उद्धार करो।" उसकी काम-विह्वल आँखों मे एक दुर्निवार निमंत्रण था। किसी सशक्त अश्विनी की छटा से वह खडी हो गई। आंखो से, हाथो से, ओठो से, सारे शरीर मे वह राम की अभेद्य मानवता को निमंत्रण दे रही थी।

राम भी उठ खडा हुआ। उसका गम्भीर मुख भयंकर हो उठा। उसकी आँखें विकराल हो गईं। उसने खूंटी पर एक कोडा टंगा हुआ पाया। स्त्रियो और दासो पर नियंत्रण रखने के लिए कुक्षि ने उसे रख छोडा था। धीरे से विचारपूर्वक राम ने वह कोडा उठा लिया, और घोडे के शिक्षक की अचूक कला से उसने धीरे से एक कोडा कल्विणी की छाती पर और दूसरा उसके नितम्ब पर जमा दिया। अश्विनी जैसे उछलती है ठीक वैसे ही कल्विणी उछल पडी। उसके मुख से क्रोध की वेदनापूर्ण हिनहिनाहट फूट पड़ी। कोड़े को खूंटी पर टाँग कर राम धीर गति से वहाँ से चला गया।

वृद्धों के लिए भी जो दुःसाध्य है, ऐसी तीक्ष्ण और अविकारी दृष्टि से, निष्फलता मे छटपटाते गोत्रों के विग्रह, मनुष्यों के झगड़े और धर्म अधर्म के भेदों को राम देख सकता था; पर आज तक स्त्री-पुरुष के

सम्बन्ध के प्रति वह अन्धा ही था। कल्विणी के दर्शन और उसके घिघियाने से उसकी आँखें खुल गईं। जिन-जिन वस्तुओं और सम्बन्धों को लेकर आज तक कोई विचार मात्र भी उसके मन में नहीं जागा था वे उसे स्पष्ट हो गए। लोमा और कल्विणी, मोहांध रुरु और अत्याचारी यादव रक्तपालो, प्रतीन और विशाखा तथा पिताजी और अम्बा के वर्तन में जो ग्रंथिया और जो रहस्य थे वे एकबारगी ही उसे स्पष्ट हो गए। लिंग-प्रधान अधर्म का मूल, और उसका नियमन तथा पति-पत्नी के सम्बन्ध का धर्म उसे स्पष्ट दिखाई पड़ा।

अंधेरे में वह झपटता हुआ चला जा रहा था। उसकी आँखो के आगे उसे लोमा की छवि दिखाई पड़ी। आज कल्विणी जैसी अवस्त्र थी, वैसी ही लोमा को भी नहाते हुए और मृग-चर्म बदलते हुए उसने कई बार देखा था। आज वे रेखाएं मानो विद्युत की बनी-सी जान पड़ती थीं, और उसकी नसों में अपरिमेय उत्साह व्याप गया था। जब वे दोनों साथ-साथ रहा करते, बाते किया करते, घोड़े दौड़ाते, संकल्प करते और उन्हें परिपूर्ण करते, बिना बोले ही दृष्टि-मात्र से वे वार्तालाप कर लेते, ऐसे समय के छोटे-मोटे अनगिनत प्रसंग नये वेग में मढ़े हुए और नये अर्थ के मोह से भरकर उसे याद हो आए। उसे ऐसा जान पड़ा मानो बिजली की कौंध ने अन्धकार को भेद दिया है और कोई वस्तु एकाएक दिखाई पड़ गई है। वह और लोमहर्षिणी जन्म से ही पति-पत्नी थे—आज तक यह बात उसे क्यों न जान पड़ी, इसी पर उसे अचरज हो रहा था। लोमा को भी यह बात क्यों न सूझी, इस पर भी आश्चर्य था। उसके मस्तिष्क में आनन्द की एक टंकार-सी फूट पड़ी। उसके पैरों में मानो पंख लग गए।

शंका-विहीन, भय-विहीन, इस विशाल-दर्शी युवक की आत्म-श्रद्धा और स्वाभिमान सदा से अचल ही रहता आया है। उसमें स्वयम् में कोई त्रुटि हो सकती है, अथवा उसका दर्शन असत्य भी हो सकता है, यह बात तो उसके विचार में कभी आ ही न सकी थी। वह

स्वयम् भृगु था, देवों द्वारा प्रेरित होकर धर्म का प्रवर्त्तन करने के लिए ही उसका जन्म हुआ था, और जगत् के आधिपत्य और गुरुपद का वह अधिकारी था, इस सम्बन्ध में कभी कोई संशय उसके मन मे नही जागा था। उस निर्मल आकाश मे यह कौन छोटा-सा बादल आ गया है। उसका हृदय शंका से भर उठा—"लोमा ने अब तक दो व्यक्तियो के साथ विवाह करना अस्वीकार कर दिया है। मुझे भी वह स्वीकार न करे तो?" और वह अकेला ही खिलखिलाकर हँस पड़ा। असंभव! वे तो जन्म के ही परिणीत थे।

वह आश्रम में आ पहुंचा। जिस झाड के तले वह स्वयम्, लोमा, रेवा बुढिया और कूर्मा सोया करते थे, वहीं वह चला आया। लोमा वहाँ सोई हुई थी। पास ही अपने परशु को रखकर वह अपने मृग-चर्म पर बैठ गया। उसकी आँखों में नींद नही थी। पास ही सोई लोमा आज उसे नये ही स्वरूप मे दिखाई पड रही थी। लोमा के पहने और ओढ़े हुए मृगचर्म में से उसकी विद्युल्लेखा मे लिपटी-सी शरीर-रेखा उसकी आँखो के आगे तैर आई। उदय होता हुआ चन्द्र, वृक्षो की चोटियों को चाँदी मे नहला रहा था; उसकी ओर उसने दृष्टि डाली। फिर उसने लोमा के मुख की ओर देखा। जिस प्रकार सत्य उसे सदा ही स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता था, वैसा ही उसे इस क्षण भी दीख पड़ा—लोमा को उसके पुत्रों की माता होना है।

वह नीचे झुककर लोमा के सामने देखता रहा। केवल आँखें मींच-कर वह सोई हुई थी, नींद ने आज उसकी पलकों का स्पर्श तक नहीं किया था। राम की आँखों से झरते तेज से दग्ध होकर उसने आँखें खोलीं। राम, उसका अपना राम, मादक एकाग्रता से उसकी ओर देख रहा था। उसकी आँखों में एक अपरिचित पागलपन था—विलास का भूखा, आह्लादक और हृदय-वेधक; उसके शरीर के तार-तार में प्रणय की ऊर्मियां आँधी की भांति बह रही थीं, सृष्टि आनन्द से डोल रही थी,

ऐसा उसे स्पष्ट आभास हुआ। सीमान्त सुख के भार से उसकी आँखें मिच गईं।

राम गहरे श्वास ले रहा था। उसकी आँखें धधक रही थीं। बिना बोले ही उसने लोमा को उठा लिया। अपने स्नायुबद्ध हाथों में उसे उठाकर, छाती से दाबकर वह उसे आश्रम के बाहर ले गया। लोमा आँखें मींचकर उससे लिपट रही, मानो नींद में स्वर्ग का अनुभव कर रही हो। जिस क्षण के लिए वह तरस रही थी, वह क्षण आ पहुँचा था।

नदी के किनारे पहुँचकर राम उसे उठाकर गिरनार के शिखर पर ले गया, और एक पत्थर पर उसे बिठा दिया। आँखें खोले बिना अब उसे छुटकारा नहीं था। चंद्र ऊपर चढ़ आया था और कृष्ण पक्ष की फीकी चंद्रिका नीचे नदी पर और क्षितिज तक फैली सारी सृष्टि पर स्वप्न-सृष्टि का-सा हलका प्रकाश बिखेर रही थी। राम उसके पैरों के पास ही बैठ गया। लोमा ने देखा कि वह राम बाल-मित्र नहीं था, प्रणयी था, स्वामी था।

"लोमा, उस कुलटा कल्विणी ने झूठा बहाना करके मुझे बुलाया था।"

"फिर ?" लोमा का हृदय धड़क उठा।

"मेरे सामने अवस्त्र खड़ी होकर वह मुझे आलिंगन करने को तत्पर हुई।"

"हाय, हाय ! फिर ?"

"मैंने उठाकर एक कोड़ा उसकी छाती पर और दूसरा उसके नितम्ब पर मार दिया। उसका घाव लेकर अब थोड़े दिन वह घूमेगी।"

लोमा राम से लिपट गई—"मेरे राम-राम-राम" उसका हृदय मानो माला ही जपने लगा, "अरे, अरे, यह क्या किया तुमने ?"

"यदि वह कुक्षि की पत्नी न होती तो उसका प्राण ही ले लेता। ऐसी स्त्रियाँ जब तक अपने भार से पृथ्वी को बोझे मार रही हैं, तब तक धर्म का प्रवर्त्तन कैसे हो सकता है ?"

लोमा चुप रही।

"लोमा!"

"क्या बात है राम?"

"आज मुझे एक बात दिखाई पड़ती है—दिये-सी स्पष्ट—आज तक भी जो नहीं दिखाई पड़ी थी।"

"कौनसी?" और लोमा का हृदय फिर से धड़क उठा।

"तू मेरी पत्नी है; वैसे ही जैसे अरुन्धती वशिष्ठ की थी और लोपामुद्रा अगस्त्य की थी।"

"क्या कह रहा है?" हर्ष की मूर्छा में पागल होकर लोमा ने पूछा।

"तूने बृहद्रत्न को मना कर दिया, अर्जुन को मना कर दिया। पर तू मुझे मना मत कर देना।"

लोमा को न सूझ पड़ा कि वह हँसे या रोए। हर्ष के आँसू टपकाती हुई वह राम के गले से लिपट गई—"मेरे राम! मैं हँसू कि रोऊँ? मैंने कब मना किया है? और किसने कहा है कि मैं मना करूँगी?"

राम—विचित्र राम—गंभीर मुखमुद्रा से देखता ही रह गया—"अब समझ पाया हूं कि तू मेरी पत्नी है।" और सिंह के समान अपना बालवाला माथा उसने लोमा की सुकुमार छाती में छिपा दिया।

लोमा चुप बैठी रह गई। राम उसकी छाती पर और उसके शरीर पर, कहीं उसे लग न जाय ऐसे धीरे से और भय से, हाथ फेर रहा था। बनों की निःशब्दता चैतन्य से भर उठी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह जीवनदायी अग्नि-ज्वालाओं की बनी है। राम की आँखें, मानो सहस्र चन्द्रों का तेज बरसाती हुई उसकी आँखों में अमृत की धाराएं बरसाने लगीं। कुछ देर वे खड़े रहे। उनके हृदय साथ-साथ ही धड़क रहे थे, उनकी आँखें एक-दूसरे की आँखों में तैर रही थीं।

"अम्बा या विमद यहाँ होते तो कैसा अच्छा होता!" राम ने कहा।

मानो उसका प्रत्युत्तर ही हो, इस प्रकार क्षितिज पर शंख-नाद सुनाई पड़ा—एक बार, दो बार, तीन बार।

"लोमा, यह तो भृगुओं का शंख-नाद है। विमद आया जान पड़ता है," राम ने सहर्ष कहा, और कमर पर लटकता हुआ शंख फूंक दिया, ठीक वैसे ही जैसे उसके पूर्वज भृगुओं का आवाहन करने के लिए फूंका करते थे। धूल के बगूलों से घिरी अश्वारोहियों की टुकड़ी दृष्टि-पथ पर आई। सामने से फिर वैसा ही शंख-नाद सुनाई पड़ा।

"विमद ही है। चलो, तुम और मैं उसे सामने जाकर लिवा लाएं," लोमा ने कहा। लोमा ने उसके लिए बहुवचन का उपयोग किया है, यह देखकर राम हँस पड़ा। उसने दायें हाथ से उसे छाती से दाब लिया।

आश्रम में पहुँचकर, राम ने फिर शंख फूंककर शिष्यों को बुलाया। तीन सौ अश्वारोही शिष्यों और पशुधन को लेकर राम और लोमा सम्मुख स्वागत के लिए गये। कोई सौ अश्वारोही लेकर आते हुए विमद ने अपने बटुक देव को देखा—देव से भी अधिक देदीप्यमान—हाथ में एक अपरिचित विशाल फलक का भयंकर परशु लिये हुए और स्वयम् निर्मित प्रभाव के सूर्य-सा वह दीख पड़ा। विमद और राम अपने-अपने घोड़ों पर से उछलकर नीचे कूद पड़े। विमद ने भूमि पर पड़कर साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। राम ने उसे उठाकर गले से लगा लिया। लोमा आँखों में हर्ष के आँसू छलकाती हुई खड़ी थी। भद्रश्रेण्य राजा ने विमद और भृगुओं का सत्कार करने के लिए तीन दिन उत्सव मनाया। विमद ने नये-पुराने संवाद सुनाए।

"सहस्रार्जुन तुम्हारा हरण करके गया, उसके कुछ ही समय पश्चात् मैं उसके डेरे पर पहुंचा। यह देखने के लिए कि वह किस रास्ते जा रहा है, मैं दबे पैरों पीछे पीछे चला आया। मेरा बस चलता तो मैं तुम दोनों को उड़ा ले जाता। भद्रश्रेण्य का पहरा बहुत भारी था।

"प्रतिदिन तुम्हारे पीछे चलते-चलते अब मुझे विश्वास हो गया कि

भद्रश्रेण्य और उसके योद्धाओं की भक्ति भार्गव पर जम गई है, और बटुकदेव और लोमा देवी निर्भय हो गए हैं, तो मैंने लौट जाने का विचार किया। सिन्धु के तट तक वापस लौट आया। वहाँ सुना कि रावण··· पर आक्रमण कर रहा है।"

"मैं फिर भृगु-ग्राम गया और भृगुश्रेष्ठ से मिला। अम्बा तो प्रति दिन बटुकदेव के नाम को रट-रटकर रोया करती थीं। वृद्ध भी सहस्रार्जुन पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहे थे। उन सबको मैंने सांत्वना दी, और वहाँ से मैं मुनिवर वशिष्ठ और राजा सुदास के पास गया। तुम दोनों को लौटा लाने के लिए सहस्रार्जुन पर आक्रमण करने का भृगुश्रेष्ठ का जो संदेशा मैं ले गया था, वह मैंने उन्हें कह सुनाया।"

"मेरे भाई ने क्या कहा ?" लोमा ने पूछा।

"तुम्हारे भाई ने ठण्डे कलेजे से उत्तर दिया कि लोमा को तो मैं सहस्रार्जुन के साथ ब्याह चुका हूँ। वर वधू को उसकी इच्छा से ले जाय या बलात्कारपूर्वक ले जाय, उसमें अंतर ही क्या है ?"

लोमा ने जिह्वा निकाल दी। बचपन की वह नटखट चेष्टा सहज ही तो मिटने वाली नहीं थी।

"यह मेरा भाई कहाँ से जन्मा है ?"

"उसके पश्चात् मैं मुनिवर वशिष्ठ के पास गया। वे तो भेद के विरुद्ध आर्यों को उत्तेजित करने में संलग्न थे। उन्हें तुममें कोई रस नहीं था। मैं हताश होकर वापस चला आया। फिर मैंने जाकर भृगुश्रेष्ठ से विनती की कि वे मुझे थोड़े से योद्धा लेकर यहाँ आने दें और मैं कुछ भी युक्ति करके तुम्हें लौटा लाऊँगा। इसीसे दो सौ सावधान भृगु योद्धाओं को लेकर मैं यहाँ चला आया हूँ।"

"शेष सौ योद्धा कहाँ चले गए ?" भद्रश्रेण्य ने पूछा।

"भिन्न-भिन्न स्थानों पर चले गए हैं। वापस लौटने का मार्ग खोज

रहे हैं," विमद ने हँसकर कहा। "और भार्गव, जान पड़ता है तुम तो यहीं गुरुपद जमाकर बैठ गए हो ?"

"मुझे जमाने की आवश्यकता ही क्या है ? मैं तो इनका गुरु हूँ ही," राम ने कहा।

"यह सब देखकर तो मैं सचमुच चकित हो गया हूं। पर राजन्, यह बताइए कि भार्गव और लोमा देवी को आप कब वापस भेज रहे हैं ?" विमद ने पूछा।

भद्रश्रेण्य के मुख पर उदासी छा गई—"आचार्य ! गुरुदेव यदि यहां से चले जायंगे, तो फिर हमारा क्या होगा ?"

"तो आप उन्हें नहीं भेजना चाहते ?" कठोर स्वर में विमद ने पूछा।

"आचार्य ! पशुपति मेरे देव है, और भार्गव मेरे गुरु हैं। बिना कारण इन्हें एक भी दिन मैं नहीं रोकूंगा। यदि ये जाना ही चाहे तो भले ही पधारें। मैं तो इनका दास हूं। इन्हें मना करने वाला मैं कौन हो सकता हूं ?" भद्रश्रेण्य ने दीनतापूर्वक कहा, और राम के मुख की ओर अपने विनती-भरे नयनों को स्थिर कर दिया।

यह सारी बात जब चल रही थी तो राम अपनी सदा की प्रकृति के अनुसार स्नेहयुक्त पर मंद हास्य हँसते हुए चुपचाप उसमें रस ले रहा था। उसने उत्तर दिया—"विमद, मैं स्वयम् ही आने वाला नहीं हूँ।"

"क्यों ?"

"भद्रश्रेण्य ने मुझे अर्जुन के पंजे से बचाया है, मुझे गुरु स्वीकार किया है और यहाँ मुझे अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है। मुझे लौटने से रोक नहीं रहे हैं। यादवों ने मेरा हाथ पकड़ा है, मैं उन्हें कैसे छोड़ दूं ?" राम ने धीरे से कहा—"विमद ! अर्जुन जब युद्ध से लौटेगा तो वह यादवों के प्राण लिये बिना नहीं रहेगा। और यदि राजा मुझे और लोमा को चले जाने देंगे, तो यादव स्त्रियाँ और बालक उन्हें जीता नहीं छोड़ेंगे। मैं भद्रश्रेण्य का बन्दी नहीं हूँ, वह मेरा बन्दी है।"

"ऐसा है, तो फिर किया क्या जाय ?"

"उसकी चिन्ता न कर। इस विपत्ति मे यादवों का उद्धार करना ही मेरा प्रथम धर्म है। मै फिर लौटकर आर्यावर्त आऊँगा।" और राम इस प्रकार देखता रह गया, मानो उस दिन का ही साक्षात् दर्शन कर रहा हो—"पर जब आऊंगा तो यादव योद्धाओ के शीर्ष पर, भद्रश्रेण्य के गुरु रूप में।"

"पर यह कैसे सम्भव होगा ? तुम अभी कह रहे थे कि अर्जुन जब लौटकर आयगा तो वह सभी के प्राण ले लेगा।"

"विमद, भृगु केवल मंत्रद्रष्टा ही नहीं है। वह तो धर्म का दर्शन करता है और उसका प्रतिपालन भी कराता है," राम ने कहा।

"तब फिर लोमा देवी का क्या होगा ?"

"मेरा ? मेरे भाई तो मुझे जहाँ-तहाँ ब्याह ही देना चाहते थे न ? अच्छी बात है तो फिर मेरा विवाह हो जायगा। केवल आचार्य की ही राह देख रहे हैं।"

विमद ने राम और लोमा के मुख पर के प्रणय-भाव को देखा। वह समझा अवश्य, पर बात को सच न मान सका। भद्रश्रेण्य आदि भी विस्मित हो गए, "क्या कहते हो ?"

"मैं लोमा से विवाह करूं तो ठीक होगा न, राजन ?" कुछ लजाकर हँसते हुए राम ने पूछा—"विमद, तू आचार्य बनेगा न ?" विमद ने हर्ष से हाथ जोड लिए—"देव ! तुमसे तो भगवान् ही बचाएं। पर यह क्या करने की सूझी है ?"

"गुरुदेव ! बताओ लग्न-तिथि कब की निश्चित की जाय ?"

लोमा शरमाकर राम के मुख की ओर देख रही थी। "राजन्, वैशाखी पूर्णिमा के उपरान्त, विजयोत्सव के अवसर पर।" राम ने कहा।

"वैशाखी पूर्णिमा को क्या है ?"

"कुछ नहीं," राम ने कहा, "उस दिन गोकर्ण तीर्थ पर सभी भृगु मिलकर अपने आद्य पूर्वज भृगु की जन्म-तिथि मनाते हैं। और उस

दिन—" और राम का स्वर मानो शांत और तटस्थ भाव से भविष्य कथन कर रहा हो इस प्रकार गरज उठा—"यादवों में श्रेष्ठ भद्रश्रेण्य सौराष्ट्र मे एकछत्र राज्य करेंगे।

भयंकर थी यह भविष्यवाणी। सुनकर भद्रश्रेण्य को ऐसा अनुभव हुआ, मानो सपना देख रहा हो। क्या यह सच है? क्या यह झूठ है? इस स्वस्थ, निर्भय, और कभी-कभी भयकर-से लगने वाले युवक की आत्म-श्रद्धा का अनुमान करना चाहा, पर वह निष्फल हुआ। उसे लगा कि उसके हाथ मे वह स्वयम् कच्ची मिट्टी के समान था। वह जैसे भी घड़े, उसके हाथो घड़े जाना मात्र रह गया है।

"तब मैं क्या करूं?" अपार्थिव भय से वातावरण दुःसह हो गया था, उसे विमद ने उक्त प्रश्न पूछकर कुछ सह्य बना दिया।

"विमद्!" राम ने लज्जायुक्त हँसी के साथ कहा, "तू मेरा आचार्य है, मेरी और मेरे शिष्यों की अधूरी विद्या पूर्ण करवा दे।"

"जैसी आज्ञा।"

"और विमद्, कुछ भृगुओं को संदेश देकर सप्तसिंधु लौटा दे। शेष भृगुओं को कुछ यादवों के साथ सौराष्ट्र मे भिजवा दे। प्रत्येक बस्ती मे जो पहले ही से कुछ-कुछ भृगु लोग बस रहे हैं, उन्हे मेरी आज्ञा की घोषणा करने के लिए तत्पर बना दे। वैशाख शुक्ल तेरस को मैं यहाँ से गोकर्ण के लिए प्रस्थान करूंगा। सब लोगो को पूनो के दिन वहाँ पहुँच जाना चाहिए।"

"क्या राजा भद्रश्रेण्य भी जायँगे?" राम उत्तर पचा गए।

"गुरुदेव! क्या सोच रक्खा है, सो तो बताओ? या फिर मुझे ही अँधेरे में रखना है?" भद्रश्रेण्य ने हँसकर कहा।

राम हँस पड़ा—"राजन्! कोई आठ दिन मे कुक्षि, रेवती रानी और मधु जब आयेंगे, तभी कुछ कह सकूंगा।"

"वे क्या करेंगे? आकर उल्टे नई चिन्ता ही खड़ी करेंगे।"

"मै बताऊँ वे क्या करेंगे? वैशाख शुक्ल पूर्णिमा के दिन मधु को

तुम्हारी गद्दी पर बिठाने का संकल्प करके वे सब आयंगे।"

राम को जो दीखना वह होकर ही रहता था, इसीसे सबके हृदय में भय व्याप्त हो गया।

शार्यातराज का यज्ञ पूरा हो गया। रेवती रानी, मधु, विशाखा, कुक्षि, कूर्मा तथा पचास शार्यात योद्धाओं को लेकर यादव गोत्र में आ पहुँचे।

राजा भद्रश्रेण्य के लिए बड़ी रानी ही भोजन बनाया करती थी। दो-चार दिन बीतने पर एक दिन बड़ी रानी को अपने बनाये हुए भोजन पर संदेह हो गया। उसने वह भोजन बिल्ली को डाल दिया, पर उसने उसे सूँघा भी नहीं। वही उसने गाय को डाला, पर गाय ने भी उसे त्याग दिया। उसने इस सम्बन्ध में राजा से बातचीत की, भोजन को स्वयम् चखा और राजा को भी चखाने लगी।

राम ने कूर्मा और विशाखा की सब बातें सुन लीं, और फिर विशाखा को उसके पिता आनर्तराज के यहाँ भेज दिया।

"आनर्तराज के मैं दर्शन किया चाहता हूँ। यदि वे स्वयम् गोकर्ण-तीर्थ पर पधारें तो मैं कृतार्थ हूँगा," राम ने कहा।

विशाखा ने हँसकर प्रतीप से कहा—"देखो मैं तुम्हारे कितने काम आती हूँ। तुम तो यहाँ घोड़े पर बैठकर छैला बने घूमते हो।"

"तू लोमा देवी की भांति शस्त्र चलाकर तो देख, फिर पता लगेगा।"

: १० :

कुक्षि ने सीमान्त राज-कौशल से काम लिया। शार्यातराज को दिये हुए अपने वचन के अनुसार भद्रश्रेण्य को पदच्युत करने का षड्यंत्र रचने लगा। कुछ अग्रगण्य यादवों को अपने हाथ के नीचे ले लिया। कौन किसे मारे इस बात का निश्चय हो गया। पहले गाँव पर अधिकार करके मधु का राज्याभिषेक किस प्रकार किया जाय, यह भी सब सोच

लिया गया। उसने वैशाख शुक्ल तेरस का मुहूर्त निश्चित किया था। पर उसे क्या पता कि वह मुहूर्त तो किसी दूसरे ने ही निश्चित कर लिया था।

आचार्य विमद ने महासिंधु के सारे शस्त्र और अश्व-विद्या के पाठ राम के शिष्यों को सिखा दिए। दिन और रात इस शिक्षण को छोड़कर राम के आश्रम में और कुछ होता ही नहीं था। राम का मुंह बन्द था और उसकी आँखें स्थिर हो गई थीं। अपने पास ही अपनी दृष्टि से विद्युत की कौंध उसे दिखाई पड़ती।

वैशाख शुक्ल तेरसके दिन घोड़े चरने के लिए गये। किसी-किसी दिन लड़के साँझ को बहुत अबेर होने पर भी घोड़ों को वापस लेकर घर लौटा करते थे, इसीसे घोड़ों के आने की चिन्ता किसी को नहीं थी।

शार्यातों के पांच योद्धा घोड़ों को चराने के लिए साथ गये थे। अन्य सब योद्धा या तो निश्चिन्त होकर आनन्द में मग्न थे, या फिर गप्पें मार रहे थे। उनके साथ शतक के चालीस-पचास योद्धा भी थे।

संध्या मे प्रतीप अपने पिता के पास गया—"बापू, आज रात को कुछ अघटित घटने वाला है। दो सौ शार्यात यहाँ आयेंगे—आपको मारकर मधु को राज-गद्दी पर बिठाने के लिए। उनका सामना करने के लिए आवश्यक आदमी तैयार रखना होगा; मुझे आशीर्वाद दो, बापू!"

"बेटा, जो कुछ तू कर रहा है, उसमें तुझे विजय प्राप्त हो। गुरुदेव मुझे सब-कुछ कह गए हैं। प्रतीप! मैं न रहूँ तो यादवों की रक्षा करना, और गुरुदेव की भक्ति से विचलित न होना।"

प्रतीप और राम पगडण्डी पर होकर पहाड़ से उतर गए।

"गुरुदेव, हमारी तैयारी में अब कसर नहीं है।"

"अभी कुछ तैयारी होनी है," राम ने शान्तिपूर्वक कहा।

"क्या होने को रह गया है?"

"आज शाम को हमें गोकर्ण-तीर्थ पर जाना है। हमारे शत्रु तैयार होकर बैठे हैं।"

शतक का एक शिष्य आकर राम के कान में कुछ कह गया।

राम हाथ में परशु लेकर एक पगडण्डी की ओर मुडा—"प्रतीप, हिम्मत है ?"

"हाँ, गुरुदेव !" तीनों व्यक्ति धीर गति से, पर झपटते हुए आगे बढ़े। एक झाडों के झुण्ड के बीच मधु और अन्य तीन युवक बरछियाँ घिस रहे थे। इनका पग-रव सुनकर वे खडे हो गए।

"तू यहीं खडा रह," राम ने स्नेहपूर्वक प्रतीप से कहा, "यह तेरा काम नहीं है।"

राम आगे बढा—"मधु !"

मधु चौंककर खडा हो गया। उसके साथियो ने बरछियों पर हाथ रखा। राम सबसे अधिक लम्बा और सशक्त, गिरि-शिखर की भाँति झूम रहा था।

"अपनी बरछी को न छेडना !" और राम की आँखे सिंह की भाँति चमक उठीं।

"मधु, यह बरछी तेरे अपने बाप और भाई के लिए तैयार की जा रही है, क्यों न ?" उसने शांत स्वर मे पूछा।

मधु निष्प्रभ हो गया। पर वह उत्तर दे सके उसके पहले ही रामका परशु चमक उठा। मधु का सिर धड से अलग होकर भूमि पर गिर पड़ा। दूसरे व्यक्ति भाग गए। प्रतीप मूर्छित होकर धरती पर ढुलक गया। राम ने उसे उठाया।

" प्रतीप, आतताइयों का वध ही किया जा सकता है।"

प्रतीप के कन्धे पर हाथ रखकर, राम उसे खींच ले गया। कुछ समय के पश्चात् उसे चेत आया। सुपर्ण और अन्य दो घोडो को लेकर एक शिष्य अपने घोडे पर तैयार खडा था।

दोनो व्यक्ति घोडों पर बैठ गए। प्रतीप ने भार्गव की ओर देखा। उसके बाप को और यादवों को बचाने के लिए इस विचित्र युवक ने मधु का शिरच्छेद किया—सो भी द्वेष से नहीं, क्रोध से नहीं, पर शांति से, विधि की दूरन्देश निश्चलता से। प्रतीप राम से सात-आठ वर्ष बडा

था। पर उसकी भयंकर वज्राघात सी मचोट विनाशकता के दर्शन से वह थर-थर काँप उठा।

चार घोड़े गाँव के दूसरे छोर पर आ पहुँचे।

"यह चौथा घोड़ा किसके लिए है?" प्रतीप ने पूछा।

"ठहर, इस पर बैठने वाले को अभी लिये आता हूँ।" कहकर राम घोड़े पर से उतरकर गलियाँ पार करता हुआ कुत्सि के आश्रम में जा पहुँचा।

झोपड़ी में सदा के नियम के अनुसार कल्विणी भावपूर्वक परोस रही थी, और कुत्सि बड़े रसपूर्वक भोजन कर रहा था। केसरी जैसे दृढ डग भरकर धीरे से गुर्राता है, वैसे ही राम ने हाथ में परशु लेकर उसे सम्बोधन किया—"कुत्सिवंत!"

"कौन, भार्गव! ओहो तुम—" कुत्सि ने उन ज्वलंत आँखों का विनाशक तेज देखा और उसका वाक्य अधूरा ही रह गया।

"चलो मेरे साथ," राम ने आज्ञा दी।

"यहाँ? इस समय?"

"प्रतीप शार्यातों के विरुद्ध युद्ध में लड़ने जा रहा है। पुरोहित का धर्म है कि युवराज के साथ रण पर चढ़े।"

"शार्यातों के विरुद्ध?" बौखलाकर कुत्सि ने पूछा। उसकी आँखों के काच मानो बाहर निकल आए।

"हाँ।"

"मैं नहीं आना चाहता, और न आने ही वाला हूँ। शार्यातों के विरुद्ध और युद्ध! मेरा क्या काम है वहाँ?"

"कुत्सिवंत, चलो!" राम ने द्वार की ओर हाथ से संकेत किया।

"अरे, मुझे और युद्ध से क्या प्रयोजन? मैं तो महर्षि हूँ।"

"तुम भृगु हो, तुम्हारा कर्तव्य केवल धर्म का दर्शन ही नहीं, संस्थापन भी है।"

"पर मुझे उससे क्या?" थर-थर कांपते हुए कुत्सि ने कहा।

"कुक्षिवंत ! अब ज्यामघ की राह देखनी व्यर्थ है। शार्यात यदि आ भी जायें, तो भी मधु का राज्याभिषेक तुम कर सको यह सम्भव ही नही है। प्रतीप का सैन्य शार्यात गोत्र का संहार करने के लिए आधी दूर पहुँच चुका है। तुम्हारे लाये हुए योद्धाओ के घोडो पर यादव योद्धा बैठ गए है। मधु का मैने अभी शिरच्छेद किया है। यह देखो उसका रक्त। तुम ऋषि हो, और भृगु हो। यहाँ भी मैं तुम्हारा कुल-पति हूँ। मैं तुम्हारा शिरच्छेद कर सकता हूँ।"

कल्विणी चिल्लाने ही जा रही थी कि राम ने उसे भयकर दृष्टि से दबा दिया।

"चलो, तुम प्रतीप के पुरोहित हो, चलकर उसे आशीर्वाद दो।"

बिना एक शब्द बोले ही कुक्षिवन्त राम के साथ बाहर निकल पडा और चौथे घोडे पर बैठकर युद्ध पर जाने के लिए साथ हो लिया। कल्विणी की सिसकिया वहां की शांति को भंग कर रही थीं।

शार्यात गोत्र से दो प्रहर की यात्रा पर कूर्मा और विमद राह देख रहे थे। उनके साथ सप्तसिंधु से आये हुए सवा सौ भार्गव और राम के आश्रम में शिक्षा पाये हुए पाँच शिष्यों के शतक थे। प्रत्येक घोडा दृढ और अधीर था। प्रत्येक सवार सशस्त्र और कृतनिश्चय था। राम के शिष्यों के हाथ मे भयंकर परशु चमक रहे थे।

मध्य रात्रि के उपरान्त राम और प्रतीप कुक्षि को लेकर आ पहुंचे। गुप्तचरो ने सूचित किया कि शार्यात निश्चिन्ततापूर्वक सो रहे हैं, और उनके दो सौ सैनिक, यह मानकर कि मधु गद्दी पर बैठ चुका है, उसकी सहायता करने के लिए गिरनार जाने को प्रस्थान कर चुके हैं।

अंधेरी रात में सभी योद्धाओं ने राम को घेर लिया। अंधकार मे उसकी आँखें सिंह की आँखो के समान चमक रही थी।

"प्रतीप, तुझे और अन्य सब यादवो से मुझे एक बात कहनी है। अब तक वह बात मैंने कही नही है। परम्परा से जो तुम और शार्यात एक-दूसरे की गायो और स्त्रियों का हरण होने पर युद्ध करते रहे हो,

वैसा युद्ध यह नही है। वैसा युद्ध लडने मे मुझे रस भी नही है। धर्म का संस्थापन करने के लिए मैंने यह युद्ध आरम्भ किया है। इसमें पराजित होकर हमें जीना नही है। मान्य है तुम्हे यह बात ?"

"जैसी आज्ञा," सबने एक स्वर मे अनुमोदन किया।

"हम यहाँ शार्यातो को बन्दी बनाकर पकड ले जाने के लिए भी नही आये है। यह हँसी-खेल नहीं है, प्राण-घातक विग्रह है। सशस्त्र शत्रु को जो जीता छोड देगा उसे मैं धर्म-द्रोही समझूंगा। उसे मैं जीता नहीं छोडूंगा। और जहाँ तक सम्भव हो एक भी घोडा मारा नहीं जाना चाहिए।"

प्रतीप और कूर्मा तो राम की इस दृष्टि से परिचित थे ही। अन्य यादव भी इस भयंकर आज्ञा को सुनकर उत्साहित हो उठे। इसका नाम है युद्ध ! विमद आँखें फाडकर देखता ही रह गया। जिसे उसने अपने हाथों पाला-उछाला है, उसकी वाणी में महाअथर्वण और कवि चायमान की अस्पष्ट दृष्टि स्पष्ट सूत्र-रूप में मूर्तिमान होते देखकर वह गर्व से गद्गद् हो उठा। उसे प्रतीत हुआ कि युद्ध-कला में परिवर्तन हो रहा है।

"और एक तीसरी बात," राम कहता ही चला गया, "शार्यातों की सभी गाडियों को हाँककर गिरनार ले जाना होगा—स्त्रियों और बालकों तथा घोडों और गायों सहित।"

"क्या ?" प्रतीप ने भी चौंककर पूछा। गोत्र अन्दर-ही-अन्दर परस्पर सदा से लड़ते रहे हैं, पर ऐसा सर्वग्राही रूप न तो आज तक किसी ने जाना ही था, और न उसकी किसी ने कल्पना ही की थी। लड़ना, हारना, जीतना, राजा को छोड़ देना, समाधान कर लेना, उसकी लड़की को ब्याह लेना और फिर लड़ना, इस सारी प्रणाली को राम आज समूल तोड़े दे रहा था।

"प्रतीप !" राम ने निश्चल स्वर में कहा, "कल दो गोत्र नहीं रहेंगे, एक ही रहेगा।"

सभी लोगों के हृदय कम्पित हो उठे।

"चलो, मैं रास्ता बताता हूँ, मेरे पीछे-पीछे चले आओ।" राम की दृष्टि अंधेरे को भेद रही थी।

शार्यातों में अब यह बात सर्वमान्य रूप से फैली हुई थी कि थोड़े ही समय मे यादवों पर शार्यातो का प्रभुत्व स्थापित हो जायगा, इसीसे वे निश्चिन्ततापूर्वक सो रहे थे। राम और उसके शिष्य पूर्व दिशा में गोकर्ण-तीर्थ को जाने वाले थे, यह भी वे सब जानते थे। गिरनार से किसी सैन्य के प्रयाण करने की सूचना भी उन्हे नही मिली थी।

मध्य रात्रि में सारा शार्यात गोत्र एकाएक जाग उठा। जंगलों के सुनसान मे से घोड़ों की टापों की स्पष्ट और वेगपूर्ण ध्वनियां सुनाई पड़ने लगीं। शार्यात जागकर कुछ समझ पाएं, उसके पहले ही घोड़ों की टापों का नाद पास आती हुई गर्जना-सा सुनाई पडने लगा, और थोड़ी ही देर मे यादवों और भृगुओं की गगन-भेदी जय-घोषणा ने उन्हें स्तब्ध कर दिया।

अंधेरे में जैसे-तैसे शार्यात वीर उठ बैठे। उन्होंने अपने घोड़ों को खोला और शस्त्र लेकर तत्पर हो गए। ज्यो ही ये लोग तैयार होकर बाहर निकले कि सैकड़ों बिजलियो की कौंध की भांति परशुओं की अनत चुंधियाहट समुद्र की तरंगों के वेग से उन पर टूट पड़ती-सी दिखाई पड़ी। अंधेरे में वे जहाँ-तहाँ तीर मारने लगे, पर माथों पर मंडराते लम्बे और प्रचण्ड परशुओ से टकराकर वे तीर लक्ष्य-भ्रष्ट हो भूमि पर गिरने लगे। और परशुओं का बन आगे धँसता ही चला आया। धड़ाधड़ शार्यातों के सिर और धड़ अलग-अलग होकर भूमि पर गिरने लगे।

गोत्र में हाहाकार मच गया। स्त्रियो और बालकों का क्रन्दन गगन-भेदी हो उठा। कुछ लोग गोत्र को छोड़कर जंगलो की ओर भाग निकले। सवेरे का झुटपुटा होने लगा था। कुपित इन्द्र-सा राम अपने परशु से स्थान-स्थान पर रुधिर के पनाले बहते छोड़कर, शार्यातराज

की ध्वजा-पताकाओं से चिह्नित छोटे-से दुर्ग की ओर बढ़ चला। राजा शस्त्र से सज्जित कोई पचास योद्धाओं से संवृत्त होकर आत्म-समर्पण करने के लिए आया।

"भार्गव!" प्रतीप ने पूछा, "क्या यह आत्म-समर्पण करने के लिए आ रहा है?"

राम प्रतीप की ओर घूम गया। उसकी आंखों की एकाग्र उग्रता प्रतीप को दग्ध कर रही थी। शांतिपूर्वक उसने एक बाण हाथ में लिया और पास आते हुए शार्यातराज की छाती में मार दिया। वह घोड़े पर से गिर पड़ा। प्रतीप की आँखों में अँधेरा छा गया।

राम की आज्ञा का पालन हो चुका था। जब सूर्योदय हुआ तो एक भी सशस्त्र शार्यात जीवित नहीं था।

तुरन्त ही शार्यातों की डेढ़ सहस्र गाड़ियों में बैल जोत दिये गए। रोते-बिलखते वृद्धों तथा स्त्री-बालकों को उनमें बिठा दिया गया। और कूर्मा सारे शार्यात गोत्र के मानवी अवशेषों, उनकी गायों, बैलों और घोड़ों को लेकर गिरनार की ओर चल पड़ा।

सौ योद्धा पीछे रह गए। उन्होंने सारे शवों को एकत्रित किया और विधिपूर्वक प्रतीप के हाथों उनका अग्निदाह करवाया। राम पास ही खड़ा था—मूक, स्वस्थ और शांत, यमराज की मूर्ति के समान।

: ११ :

तेरस के सवेरे सम्वाद मिला कि प्रतीप ने शार्यातों पर महान् विजय प्राप्त की है। सांझ को जब शंख फूंका गया तो यादव मात्र गिरनार पर चढ़कर देखने लगे।

प्रत्येक देखने वाले का हृदय स्तम्भित हो गया। क्षितिज पर एक विशाल अजगर की भांति गाड़ियों की हारमाला टेढ़ी-मेढ़ी होती हुई चली आ रही थी। ऐसा जान पड़ा कि एक समूचा बड़ा-सा गोत्र उनकी ओर चला आ रहा है। कभी-कभी घास-पानी की खोज में

भटकते हुए गोत्रों की भेंट हो जाती, तो वे मिलकर उत्सव मनाया करते। पर गाड़ियों का इतना बड़ा समूह भी इस प्रकार आ सकता है, इसकी तो किसीको कल्पना भी नहीं थी।

राजा को विचार आया—"मुखिया, शार्यातराज अपने समूचे गोत्र को लेकर हमारी शरण आ रहे हैं। इन लड़कों ने तो अद्भुत काम कर डाला है। आज तक किसी भी राजा को ऐसा यश नहीं मिला, जैसा मेरे प्रतीप को मिला है।"

"कुछ ऐसा ही जान पड़ता है। पर इन सबको खिलायगा कौन? सारे गोत्र को घेर लाने की क्या आवश्यकता थी?"

बात किसीकी भी समझ में नहीं आई। राजा, लोमा, मुखिया और यादव सभी उत्साह से पागल होकर राम और प्रतीप को सन्मुख भेंटने गये। बन्दियों पर देख-रेख रखने के लिए उज्जयंत पीछे रह गया।

गाड़ियों के विशाल अजगर के आगे-आगे हाथ में परशु उठाये घोड़े पर कूर्मा आ रहा था। उसके अश्वारोही गाड़ियों की हार-माला की रखवाली कर रहे थे। शार्यातराज का कहीं कोई नाम या चिन्ह भी नहीं दिखाई पड़ रहा था। राजा को धक्का-सा लगा—"राम कहाँ है? प्रतीप कहां है? और शार्यातों की गाड़ियों की हार-माला कैसी है?"

पास आकर कूर्मा घोड़े पर से उतर पड़ा और राजा तथा अपने पिता मुखिया और राजा के काका के वह पैरों पड़ा।

"बेटा, यह क्या बात है? प्रतीप कहाँ है? भार्गव कहाँ है? और इन सबको क्यों घसीट लाए हो?"

"राम कहां है?" लोमा ने चितातुर स्वर में पूछा।

कूर्मा को हिचकी आ गई। शार्यात गोत्र अब यादवों के साथ मिल गया था। दोनों का एक ही राजा होगा। दो गोत्र एक कैसे हो सकते हैं, यह बात पहले तो किसीकी समझ में ही न आई। कूर्मा ने राम की आज्ञा कह सुनाई। दो गोत्रों के स्थान पर अब एक ही गोत्र होकर

रहेंगा । सभी शार्यातों को यादव दत्तक लेने जा रहे थे ।

इस अकल्प्य वस्तु को समझने में भद्रश्रेण्य को कुछ समय लगा । रुमा ने बात को सविस्तार कह सुनाया—"बापू ! गुरुदेव ने जो मुझे सिखाया है, उसे मैं समझ रहा हूं । इन साठ वर्षों में आपने शार्यातों के साथ उन्नीस युद्ध लड़े हैं । जीवन-भर शार्यातराज के साथ आपका द्वेष रहा है । हम अब तक सदा भय से काँपते ही रहे हैं । उनकी और हमारी गायों और स्त्रियों का अपहरण होता रहा है । अब यादवों और शार्यातों का एक ही राजा, एक ही पुरोहित और एक ही मुखिया होगा । उनकी एकत्र समृद्धि ऐसी होगी जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता । एक होगा उनका धर्म जो आर्य पूर्वजों ने हमें सिखाया है, और जिसकी शिक्षा गुरुदेव ने हमें दी है ।"

पर राजा का उल्लास अधिक समय तक टिका न रह सका । यादव बच गए थे । पितृ-हत्यारा मधु मारा गया था । धूर्त कुक्षि पकड़ा जाकर निःसहाय हो गया था । शार्यातों का उच्छेद हो चुका था । वह स्वयम् जीवित रह गया था । यादवों ने अकल्प्य वीरता और समृद्धि प्राप्त कर ली थी । यह सब कुछ भार्गव राम ने किया था । महाअथर्वण के पौत्र को वह नहीं लाया था, वह तो देवों का भेजा आया था । और उसके पैर इस भूमि पर पड़े कि आज यह ऋद्धि और सिद्धि चली आ रही है ।

"कहां हैं मेरे देव ? भार्गव कहां हैं ?"

"विधिपूर्वक सबका अग्नि-संस्कार करने के लिए पीछे रह गए हैं ।"

: १२ :

चौदस की रात को गोकर्ण-तीर्थ जाने के लिए जब यादव-गोत्र तैयार हुआ, तो राम ने भृगु के आश्रम के देवों को आहुति दी । चलने से पहले वह स्तम्भित-सा खड़ा रह गया और उसने दूर दृष्टि डाली ।

"राजन्," उसने कहा, "अब मैं लौटकर यहाँ नहीं आऊँगा।"

भद्रश्रेण्य चौंक उठे—"क्या कह रहे हैं गुरुदेव ?"

मानो भविष्य दृष्टि के आगे तैर रहा हो ऐसे राम ने कहा—"और तुम भी लौटकर नहीं आओगे ?"

गोकर्ण-तीर्थ गोकर्णी नदी के तट पर बसा हुआ था। यादव गोत्र और आनर्त गोत्र की वह सीमा थी। चारों ओर से आये हुए भृगु सकुटुम्ब उस नदी के तट पर पडाव डाले हुए थे। प्रत्येक कुटुम्ब ने अग्नि की स्थापना कर रखी थी। चारों ओर से आने वाले यात्री भी सकुटुम्ब आये थे। सवेरे-साँझ वे उस अग्नि की पूजा करने के लिए एकत्रित हुआ करते।

विशाखा अपने पिता को समझाने मे सफल हो गई थी, इसीसे आनर्तराज वृष्णि भी तीन सौ योद्धाओं को लेकर पूर्णिमा के सवेरे आ पहुँचे। वृष्णि ने राम के चमत्कार की बातें पहले भी सुनी थीं, पर भतीजी के मुँह से वही बातें सुनकर वह दिग्मूढ-सा हो रहा। उसके मन में भी महाअथर्वण के शाप से बचने का लोभ था। इसीसे विशाखा की भक्ति की लौ उसे भी तुरन्त ही छू गई।

उत्सव में आई हुई मेदिनी ने जब मधु के षड्यंत्र और शार्यातो की पराजय की बात सुनी तो उन्हें बडा आश्चर्य हुआ और साथ ही उनके मन में उत्साह भी जागा। राम ने सारे शार्यात गोत्र को नष्ट कर दिया है, यह सुनकर पहले तो सभी दिग्मूढ-से हो रहे, फिर कांप उठे, फिर राम की अद्भुत शक्ति की प्रशंसा मे वे गद्गद और प्रभावित हो रहे। वृष्णि यह बात सुनकर कुछ विचार मे पड गया—"यह राम कौन है ? मित्र है या शत्रु ? तब उसका क्या होना चाहिए।"

उसने तुरन्त ही विशाखा को बुलाकर पूछा।

"बापू, आप गुरुदेव को जानते नहीं हैं। उन्होंने स्वयम् ही मुझे आपके पास भेजा था। उन्हें यदि धोखा ही देना होता तो वे मुझे आपके पास न भेजते। और बापू ! वे तो देव हैं। धोखा वे कभी नहीं

देंगे। शार्यातिराज ने गुरुदेव की आज्ञा और धर्म दोनों ही का उल्लंघन किया था।"

"पर बेटा, यादव यदि बलवान् हो जायँगे, तो कल हमारे आनर्तों का न जाने क्या हो?"

"श्वसुर जी आपके साथ किसी दिन लडे हैं?"

"नृगश्रेष्ठ तो कभी नहीं लडा। पर तेरा कोई जेठ गद्दी पर बैठे और वह शत्रुत्व करे तो?"

"गुरुदेव ने यदि शार्यातों को पराजित न किया होता और श्वसुर जी को मारकर मधु गद्दी पर बैठ गया होता तो?" चतुर विशाखा ने कहा।

"यह तो सच है। पर वह भय तो अब रहा ही नहीं है, किन्तु प्रतीप के बडे भाइयों को मैं भली भांति जानता हूँ।"

"पर आर्यपुत्र हैं न?"

"प्रतीप छोटा भाई है। उसकी क्या चलेगी?"

"बापू, आप उनसे मिलेंगे तो पता लगेगा। गुरुदेव के स्पर्श से वे तो और के-और हो गए हैं। वे चाहे छोटे हों या बडे हों—पर अहाहा, क्या हो गए हैं वे?"

"लड़की, तू तो सदा से अपने पति के पीछे पागल ही रही है।"

"पर बापू, देखना तो सही, कैसे पति हैं वे और बापू, एक बात कहूं? किसीसे कहना मत।"

"क्या बात है?"

"गुरुदेव की कृपा यदि रही तो किसी दिन आपके जामाता चक्रवर्ती होंगे।"

"तू तो पगली है।"

"अच्छी बात है, तो फिर देख ही लेना।"

दोपहर को दूर के शंख-नाद सुनाई पड़े और राम का आगमन हुआ। उत्सव से पागल मेदिनी उन्हें लिवा लाने को सन्मुख गई।

आनर्तराज, उनकी स्त्री और विशाखा, आनर्त-योद्धाओं को लेकर उनका स्वागत करने के लिए गये।

सबसे आगे आ रहे अपने घोड़ों के समूह के शीर्ष पर, अपने सुपर्ण पर, ऊँचा, विशाल-वक्ष, दुर्धर्ष राम, मर्मर पाषाण में खोदी हुई सुन्दर मूर्ति की भांति शोभित हो रहा था। उसके हाथ का परशु बिजली के समान चमक रहा था।

एक ओर भद्रश्रेण्य और मुखिया थे, तथा दूसरी ओर लोमा और प्रतीप थे। पांच सौ-छः सौ अश्वारोही परशुओं के बन लिये पीछे-पीछे चले आ रहे थे। उनके भी पीछे सारा यादव-गोत्र नये शार्यातों को साथ लेकर चला आ रहा था। साथ ही थानों से निकलकर यादव और शार्यात भी चले आ रहे थे। कुछ लोग पैदल चल रहे थे, कुछ घोड़ों पर थे और कुछ गाड़ियों में थे। स्त्रियाँ गीत गा रही थीं, और पुरुष हाँकारे कर रहे थे।

कुछ ही दूर रहने पर राम घोड़े पर से उतरकर पैरों चलने लगा। अन्य सब यादव भी पैदल चलकर ही उसके साथ आने लगे। जय-नादों में गगन गूंज उठा और वृष्णि राम के तेज से मुग्ध होकर प्रणिपात करने लगा। राम ने आशीर्वाद देकर राजा को उठा लिया और छाती से लगा लिया। इसके पश्चात् दोनों राजा परस्पर मिले। दंडवत् प्रणाम करती मेदिनी को 'शतंजीवी' का आशीर्वाद देकर गुरु भार्गव आनर्तराज और भद्रश्रेण्य के साथ अपने डेरे पर गये।

आचार्य विमद ने यज्ञ का समारम्भ कर दिया। वह कुक्षि को राज-पुरोहित के रूप में सदा आगे-आगे रखता, इसलिए कि उस पर दृष्टि बनी रहे। ये आयोजन जब चल रहे थे तभी राम और लोमा, भद्रश्रेण्य, बड़ी रानी, प्रतीप और विशाखा, आनर्तराज और उनकी पत्नी तथा दोनों गोत्रों के मुखिया एकत्रित होकर परस्पर मिले और नई पुरानी बातें होती रहीं। भद्रश्रेण्य और वृष्णि ने फिर परस्पर एक-

दूसरे को मैत्री का वचन दिया। पर आनर्तराज को शार्यात गोत्र का विनाश अच्छा नहीं लगा।

"आनर्तराज," राम ने हँसकर कहा, "राजा लोग यदि परस्पर मिलकर धर्म का आचरण न करेंगे तो इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है?"

"हम धर्म का लोप क्योंकर होने देंगे," आनर्तराज ने कहा।

"इसलिए कि स्वार्थ जो अन्धा कर देता है। अधर्मियों को दण्ड देने का साहस तुममें होगा, तभी तो धर्म का प्रवर्त्तन हो सकेगा। राजा लोग यदि मिलकर यह सामर्थ्य नहीं उत्पन्न कर पाते हैं तो फिर उनके विनाश में ही धर्म की जय है।"

ये अपरिचित सूत्र सुनकर आनर्तराज विस्मय में पड गए।

"शार्यातराज नष्ट हो गया है अवश्य, पर यादवों और शार्यातों के बीच में एक नया ही गोत्र प्रकट हुआ है—अधिक सबल, अधिक संस्कारवान और अधिक धर्म-रत।"

"पर यह तो यादव ही रहा न—शार्यात गोत्र तो समाप्त हो गया।"

"यह भ्रम है। जहाँ धर्म का प्रवर्त्तन होता है वहाँ एक ही गोत्र होता है," राम ने शांतिपूर्वक कहा।

"राजन्, यहाँ और सप्तसिंधु में राजा लोग परस्पर लडते रहते हैं, केवल इसलिए कि प्रत्येक पक्ष मानता है कि जो वह कहता है, वही धर्म है। इसीसे अपहरण, विघ्न और दुःखों की सृष्टि हो रही है। धर्म तो मानव मात्र का एक ही है।"

"लेकिन न तो राजा ही ऐसा मानते हैं और न ऋषि ही ऐसा मानते हैं," आनर्तराज ने कहा।

"यह इसलिए कि ऋषिगण राजाओं को अपना आधार बनाये हुए हैं। ऋषियों का गोत्र तो विशाल दृष्टि का गोत्र है। जिसकी दृष्टि राजा और राजनीति की मर्यादा से परे न हो, वह ऋषि हो ही नहीं सकता।

और राजा भी वही हो सकता है जो अपनी सामर्थ्य को धर्म के प्रवर्त्तन में लगा दे।"

"और वह न लगाए तो ?"

"तो यह उसके गुरु का ही दोष है।"

"पर राजाओं के गुरु यदि भिन्न-भिन्न हो तो ?"

"धर्म यदि एक है, तो गुरुजन भिन्न-भिन्न धर्म की शिक्षा कैसे दे सकते हैं ?"

"और यदि वैसी शिक्षा दें तो ?"

"गुरुजन एक ही धर्म की शिक्षा देंगे, और राजा लोग एक ही धर्म का रक्षण करें, यह देखने का भार तो अब मुझ पर ही आ पड़ा है न ?" राम ने धीरे से कहा।

"सहस्रार्जुन जब लौटकर आयगा, तो आपका यह सब किया-कराया मिट्टी में मिल जायगा।"

"मैं तो उसके आने की प्रतीक्षा में ही बैठा हूँ।"

"आप क्या करेंगे ?"

"मैं तो कुछ नहीं करूँगा। जो करना है देव आप ही करेंगे," राम ने धीरे से शांत स्वर में कहा। "उसके पास और मृगारानी के पास एक ही उपाय है, और वह है विनाश। वे भद्रश्रेण्य को मार डालने की चेष्टा करेंगे और यादवों का नाम-चिह्न तक मिटा देना चाहेंगे।"

"मुझे भी यही भय है। आप दोनों को वह यहां अकारण ही नहीं लाया है।"

"पर मुझे वह मार सके, यह संभव नहीं है। और न यही सम्भव है कि वह लोमा से ब्याह कर ले, मुझे भृगुश्रेष्ठ की शपथ है। और आज यदि मैं लोमा से विवाह कर लूं, तो मैं स्वयं ही जो शपथ बनकर बैठा हूं। तब लोमा भी उसकी गुरुपत्नी हो जायगी।"

"तब फिर यादवों का क्या होगा ? हमारा क्या होगा ? आपके

साथ यदि हम खडे रहेंगे तो वह हमारे प्राण ले लेगा। वह तो रक्त का प्यासा है।"

"उसे प्यासा रखने का काम तुम्हारा है।"

"यह भला मैं कैसे कर सकता हूं? तब उसका रोष मुझ पर और मेरे गोत्र पर उतरेगा।"

"आततायियों का रोष जब बढ़ता है, तभी उनका नाश होता है। आपको जो यहां आने में कष्ट मैंने दिया है, उसका कारण भी यही है। सुनिए, इस क्षण शार्यातों का विनाश मैंने अकारण ही नहीं किया है। सहस्रार्जुन के आने से पहले, अभी ही भृकुण्ड और मृगारानी मुझे बुलाए बिना नहीं रहेंगे। उनके पास इतना सैन्य नहीं है कि आपकी सहायता के बिना वे यादवों पर आक्रमण कर सकें।"

"लेकिन तब यादवों का क्या होगा?"

"आनर्तराज स्वयम् अपने आप ही समस्त यादव और शार्यात गोत्र पर अधिकार कर लेंगे, तब कुछ भी करने को शेष नहीं रह जायगा। यादवगण उत्तर के जंगलों में चले जायंगे।"

"राजा भद्रश्रेण्य क्या करेंगे?" चकित होकर वृष्णि ने पूछा।

"वे और मैं न जाने कहाँ होंगे। क्या आप यह सोचते हैं कि वे भद्रश्रेण्य को मार डालेंगे? जिस दिन भद्रश्रेण्य ने सहस्रार्जुन को लोमा पर अत्याचार करने से और मुझे मारने से रोका था, उसी दिन भद्रश्रेण्य के भाग्य का निर्णय हो चुका था—उनके अकेले का ही नहीं, उनके जो दो पुत्र युद्ध पर गये हैं, उनके भाग्य का भी। घबराते क्यों हैं आप? मैं जो बैठा हूँ यहाँ उनकी रक्षा करने के लिए?"

"और यदि रक्षा न हुई तो।"

"मैंने राजा भद्रश्रेण्य से वचन ले लिया है। यादवों की रक्षा यदि हो सके, तो वह सहस्रार्जुन के हाथों मरने को तैयार हैं।"

"पर मैं यदि उनकी सहायता करूंगा, तो हमें भी मर जाना पड़ेगा।"

"आपके बेटी-जँवाई और उनके गोत्र को बचाने का उपाय मैं आपको बता रहा हूं। आपको कुछ नहीं होने वाला है।"

"यह आपने कैसे जाना?"

"जिस दिन हमें माहिष्मती बुलाया जायगा, ठीक उसी दिन यादव गोत्र के योद्धा प्रतीप के नेतृत्व मे, घास-चारे की खोज मे उत्तर के जंगलों में चले जायंगे। और तब यादव और शार्यात गोत्र के बालक, वृद्ध और स्त्रियो पर आप अपना अधिकार जमाकर बैठ जायं। आप, क्योंकि सहस्रार्जुन का काम करेंगे, इसलिए आपको यश प्राप्त होगा। आप आनर्त सौराष्ट्र के स्वामी हो जायंगे। मै तो घर बैठे ही आपके राज्य को दुगना करने आया हूँ। और यो यादव दोनो ही प्रकार से निर्भय हो जायंगे। प्रतीप और उसके योद्धाओं को आनर्त मे होकर, अपने जंगलो मे से निकलने देकर, आप उन्हें उत्तर की ओर जाने देगे। केवल इतना ही काम आपको करना होगा।"

"वे सब भागकर कहां जायंगे? जंगलो मे मर मिटेंगे तो?"

"ऐसा ही होता तो मैं जाने ही क्यो देता? वृद्ध चायमान कहा करते थे कि उनके पिता एक बार जंगलों और पर्वतों को पार कर, स्थल-मार्ग मे सप्त-सिंधु जा पहुँचे थे। कवि ने जो किया था, वही प्रतीप फिर से करेगा।"

"सप्तसिन्धु? बाप रे!"

"हाँ, सहस्रार्जुन के कोप मे यादवों को बचाने का और कोई रास्ता नहीं है। वहाँ इनका संहार करने वाला सहस्रार्जुन नहीं है। वहाँ से तो वे स्वयम् अर्जुन का संहार करने आयंगे।"

"सहस्रार्जुन यदि प्रतीप को मार डाले तो?"

राम ने आनर्तराज की ओर देखा और उसका मुख गंभीर हो गया—"मैं तो देख रहा हूं कि सहस्रार्जुन के मरण की घडी आ पहुँची है। जहाँ अधर्म है, वहाँ नाश के अतिरिक्त और क्या हो सकेगा?"

भार्गव की उस भयानक मुख-मुद्रा को वृष्णि इस प्रकार देखता रह गया, जैसे सपना देख रहा हो।

· १३ ·

यज्ञ का समारोह आरम्भ हो गया। विमद और कुत्सि आचार्य के स्थान पर थे। चारों ओर लोगों की भीड जमी हुई थी। यज्ञ के समाप्त होते ही, पहले राम और लोमा का परिणय संपन्न हुआ। तदुपरान्त यादवों और शार्यात स्त्रियों के लग्न हुए। उनमें से कुछ वधुएँ सिसक रही थीं, कुछ आँसू पोंछ रही थीं, और कुछ हँस रही थीं। रणसिंघे बज रहे थे, गीत गाए जा रहे थे, चारों ओर चूल्हों पर चढे हुए हण्डों में से प्रोत्साहक सुगंधि आ रही थी और यादव तथा शार्यात लडके अपने बाप-दादों के वैर बिसराकर, एक साथ बैठकर खेल रहे थे।

भोजन से पहले ज्यामघ और उन शार्यात बंदियों को बुलाया गया, जिन्होंने नये गोत्र को स्वीकार नहीं किया था। उन्हें देखकर शार्यात स्त्री-पुरुषों की आँखों में आँसू भर आए।

"ज्यामघ!" राम ने कहा, "तू वीर है। तेरे दुःख को मैं समझ रहा हूँ। तेरे मरे हुए स्वजनों की स्मृति तुझे दग्ध कर रही है। पर मैंने तुझसे नहीं कहा था कि हमें एक गोत्र बना देना है? वह बनाये बिना छुटकारा नहीं था। तुमने यादवों में मिलना अस्वीकार किया है। तुम्हारी वीरता मेरे हृदय में बसी हुई है। लेकिन अब वह सब भूल जाओ। यदि तुम्हें यादव गोत्र प्रिय न हो तो आओ, वीर शिरोमणि कवि चायमान के पुत्र आचार्य विमद, जो भृगुओं की परम विद्या के स्वामी हैं, तुम सबको दत्तक ले लेंगे।"

क्रोध से छटपटाता हुआ ज्यामघ आगे बढ़ आया। उसकी आँखों में ज्वाला थी।

"राम! जमदग्नि-पुत्र! हमारे स्वजनों को तूने मारा, हमारे गोत्र को प्रपीड़ित किया, और अब तू मुझे अपने आचार्य से दत्तक लिवाना

चाहता है ? तू ऋषि-पुत्र नहीं है, तू यमराज है। तू देव नहीं, राक्षस है। तू धर्म नहीं सिखाता, तू तो घोर अधर्म का प्रवर्त्तन कर रहा है। मेरे पिता मारे गए, स्वजन मारे गए, मेरी मां-बहनें पराए घर बैठ गईं। मेरे गोत्र का नाम-चिह्न तक तूने मिटा दिया। तू हमारा काल है। मुझे भी मार डाल। तुझमें मारने की अद्भुत शक्ति है। पर शार्यात ज्यामघ शार्यात ही रहेगा। और इस भव मे और भव-भव मे तेरा रक्त पीकर ही वह तृप्त रह सकेगा।"

इस भयंकर अपमान से कुछ लोग क्रुद्ध हो गए। राम ने हाथ ऊँचा करके सबको चुप रहने के लिए कहा।

"तू स्वतंत्र रहना चाहता है, तो जा, तुझे जाने की छुट्टी है। तू क्या चाहता है ?"

"मैं क्या चाहता हूँ ? क्या चाहता हूँ ? ले—" पास खडे एक यादव के हाथ से खड्ग छीनकर, कोई समझ पाए इसके पहले ही, उसने बड़ी शीघ्रता से प्रहार किया। लोमा चिल्ला उठी, और वह बीच में आ पड़ी। खड्ग जाकर लोमा के शरीर पर लगा। एक भयानक चीख उसके मुंह से निकली। राम ने उसे गिरने से पहले ही थाम लिया।

चारों ओर कोलाहल, कोहराम मच गया। इसी बीच ज्यामघ अदृश्य हो गया।

दूसरा भाग

एक

रेवा के तट पर

: १ :

रेवा अपनी प्राग-ऐतिहासिक निःसीमता मे बही जा रही थी। उसकी तरंगे उछलती, फैलती, प्रभंजन से आक्रान्त सागर का स्मरण दिलाती-सी आगे बढती जा रही थी।

उसके उत्तर तट पर माहिष्मती नगरी बसी हुई थी। उसके बंदर मे पाताल, सुमेर और मिश्र के पोतो ने लंगर डाले थे। उसके घाटो पर चक्रवर्ती अर्जुन कार्तवीर्य का नौका सैन्य पडा था। उसके पण्यो मे भांति-भांति के लोग, आर्य, द्रविड, नाग, कोल्ल, पातालवासी तथा शोणित नगरवासी अपनी भिन्न-भिन्न बोलियो मे कोलाहल मचाया करते। आर्यावर्त की वन्य-संस्कृति मे पले हुए व्यक्ति को वह शंभु-मेला अमानुषी लगे बिना नही रह सकता था।

नर्मदा के तट पर पशुपति महादेव का पथ्थरिया स्थानक बना हुआ था। उसके पास ही राजगुरु भृकुण्ड का आश्रम था। पूर्वकाल मे वही भृगुश्रेष्ठ ऋचीक महाअथर्वण का आश्रम था। उसके पास ही एक छोटे-से टीले पर चक्रवर्ती सहस्राजुन का पत्थर का गढ़ बना हुआ था। इस गढ की विशाल पत्थर की दीवालों के बीच छोटे-छोटे लकडी के महालय थे।

इनमें से एक महालय की छत पर, एक पटिये पर सिंह और हरिण के चमडे की शय्या बिछी हुई थी। उस पर कोई तीस वर्ष की एक श्यामवर्णी स्त्री बैठी थी। उसका तेज और उसकी आकृति किसी तेज-वन्त घोड़ी की सुश्लिष्ट मोहकता की याद दिला रही थी। उसकी नाक झुकी हुई थी। उसके चमक-भरे नयनों में दर्प था। उसके भरे हुए

विलास-पिपासु अंग देखने वाले को सहज ही मुग्ध कर लेने की शक्ति रखते थे।

मृगारानी के नाम से हैहय और तालजंघ जातियाँ कांपा करती थीं। सहस्त्रार्जुन के बहुत-सी रानियाँ थीं, पर मृगारानी की गणना उनमें नहीं होती थी। वह उसकी परिणीता नहीं थी। वह किस जाति की थी और उसके मां-बाप कौन थे, यह कोई नहीं जानता था। पर उसका प्रभाव अद्भुत था। उसकी मुरली के बिना सहस्त्रार्जुन नाचता नहीं था। जिस दिन से राजसत्ता सहस्त्रार्जुन के हाथ आई थी, उसकी सच्ची व्यवस्था तो मृगारानी ही करती थी। युद्ध की तैयारी, लोगों का दमन, पर-राजाओं के साथ व्यवहार-परामर्श तथा राजसत्ता की खटपट आदि सबका तंत्र उसीके हाथ में था। सहस्त्रार्जुन सदा उसके सामने झुक जाया करता। मृगा भी उसकी सत्ता और प्रतिष्ठा की रक्षा को ही अपना सबसे बड़ा धर्म मानती थी। वह सहस्त्रार्जुन की राजलक्ष्मी थी। राजा, रानी और महारथी सब उसके हाथ के खिलौने थे।

उसके पास ही एक पाटे पर गुरु भृकुंड बैठे हुए थे। वे वृद्ध और धूर्त थे। उनकी विनोदी आंखों की गहराई अपरिमेय थी।

सहस्त्रार्जुन के दादा महिष्मत को शाप देकर महाअथर्वण जब चलने लगे, तो भृगुकुल की ही किसी संतान को पुरोहित पद पर स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। गुरु उसी कुल का व्यक्ति हो सकता था, और गुरु के बिना निस्तार नहीं था। महिष्मत एक युवा भृगु को पहचानते थे, वह मिश्र तक जाने वाले पोतों में छोटा-मोटा व्यवसाय किया करता था। चातुर्य में वह अचूक माना जाता था। रातों-रात उस व्यापारी को गुरु बना दिया गया और पैसों का लेन-देन करने के बदले स्वर्ग और संतान देने का व्यापार अब भृकुण्ड करने लगा।

भृकुण्ड को यह परिवर्तन रंचमात्र भी नहीं रुचा, पर राजा की तलवार की धार के भय से उसने गुरुपद स्वीकार कर लिया। उसने ऋषि का स्वांग धारण किया और आशीर्वाद देने, यज्ञ करवाने तथा कौशल

पूर्वक लोगों को वश में रखने का काम आरम्भ कर दिया। महिष्मत की रानो और तेजस्वी सेनापति भद्रश्रेण्य उसके परम मित्र हो गए। महिष्मत के अनन्तर नवयुवा कृतवीर्य जब गद्दी पर आया तो उसके साले भद्रश्रेण्य ने और उसने मिलकर राज्य-व्यवस्था को सम्हाल लिया। उस की प्रतिष्ठा और भी बढ गई। कृतवीर्य जब अकाल मरण को प्राप्त हुआ तो भद्रश्रेण्य को सहयोग देकर बालक सहस्रार्जुन की राज्यसत्ता की उसने रक्षा की। राजा जब वयस्क हो गया और राजतन्त्र मृगा के हाथ में आया, तब भी वे तीनों मिलकर सत्ता को सबल बनाये रहे।

इस समय वृद्ध भृकुंड ऋषि मृगा की ओर देखकर सखेद माथा हिला रहे थे। "इस लडके के पराक्रम का तो पार ही नहीं है," उन्होंने कहा।

"आज सांझ जब मैं आप से मिलने आऊँ, उसके पहले मैं सब जान लेना चाहती हूँ," मृगा ने कहा।

भृकुण्ड ने धीरे से अपनी हलकी दाढी पर हाथ फेरा—"तू सब जानती है।"

"देदीप्यमान सूर्य के समान वह घोडे पर बैठा था," मृगा ने दृष्टि को सूक्ष्म करके कहा।

"मृगा!" गुरु ने कहा, "अपने हृदय को वश में रखना। तेरी वय अभी बीत नहीं गई है। ऐसा न हो कि इस उलझन में तू एक और नई उलझन खडी कर दे।"

"मैं उसका स्वरूप देखती हूं और पागल हो जाती हूँ। वह देव के समान है।"

"फिर तू फिसलने लगी न?" कहकर गुरु खिलखिलाकर हँस पडे। "सहस्रार्जुन उससे डरता है, और मेरा शिष्य कुक्षि तो उसका नाम सुनकर ही थर-थर काँपने लगता है।"

"तुम्हारे इस शिष्य का तो मुझे मुंह देखना भी नही सुहाता।"

"वह बहुत उपयोगी है। यदि कुक्षि न होता तो हमे पता ही न

लगता कि भार्गव ने सौराष्ट्र में क्या-क्या किया है। अब इसका क्या किया जाय ?"

"अच्छा ही हुआ कि हमने उन्हें बुला लिया है। और भी जल्दी बुलाया होता तो ठीक होता," मृगा ने कहा।

"उसे यहाँ लाकर चक्रवर्ती ने भूल की है और यदि ले ही आये थे तो सीधा उसे गुरुपद पर स्थापित कर देना था। भार्गव को वश करने के सब प्रयत्न व्यर्थ हैं। अब यादवों और शार्यातों पर अत्याचार करना होगा। भृगु अब मेरे कहने में नहीं रहेंगे। जैसे-तैसे करके अब तक मैं उन्हें मनवाता आया हूं। अब इस ढोंग को छोड़ देना पड़ेगा," भृकुंड ने स्पष्ट रूप से अपनी बात कही।

"तब ?"

"भार्गव तो महारुद्र के गले में विष की भांति अटक गए हैं, जो न तो गले से नीचे ही उतारा जा सकता है और न निकाला ही जा सकता है।"

"आपका कौशल क्या हुआ ?" मृगा ने चिन्तातुर वदन से पूछा।

"मेरा कौशल समाप्त हो गया। जब तक हीरा सामने नहीं आ जाता, तभी तक तो मुझ जैसे स्फटिक का मूल्य होता है।" और चमकती हुई आँखों से वृद्ध हँस पड़े, "मैं व्यापारी तो केवल इस उत्तराधिकारी का गुरु हूं। पर भार्गव के सम्मुख मैं निकम्मा हूँ।"

"यह क्या कह रहे हो ? इतने वर्षों से जो तुम गुरुपद भोगते आ रहे हो।"

"मृगा ! अपने गुण और दोष दोनों ही मैं जानता हूँ। मैं नहीं जानता था कि यह लड़का ऐसा निकलेगा ; नहीं तो उसे यहां बुलाता ही नहीं। वह जहाँ भी जायगा, उपद्रव मचा देगा और मनचाहा करेगा।"

"तब तो दो ही रास्ते हो सकते हैं—या तो उसे समाप्त कर दिया जाय, या फिर आर्यावर्त भगा दिया जाय।"

भृकुंड ने सिर हिलाया—"मृगा, वह मेरा कुलपति है। मैं उसका

बाल भी बांका नहीं होने दूंगा। और उसको मारना और भगाना दोनो ही तुम्हारे वश का नहीं है। वह तो इस भूमि पर चिपककर बैठ ही जायगा।"

मृगा खिलखिलाकर हँस पडी—"गुरुदेव! आज तुम्हें बुढापा आ गया है। एक बार मुझे इससे मिल लेने दो, फिर युक्ति सोच ली जायगी। मैं हारने वाली नहीं हूं। उनकी स्त्री भला कैसी है?"

"स्त्री?" भृकुण्ड ने सिर पर हाथ दे लिये—"तेरी समझ मे न आ सके, ऐसी। आचार और विचार मे एक, बिना बोले ही वे एक-दूसरे को समझ सकते है, सदा एक-दूसरे मे समाए-से वे विचरण करते हैं—ऐसे हैं वे दोनों। मृगा! तेरी दाल वहाँ गलने वाली नहीं है।"

मृगा तिरस्कारपूर्वक हँस पडी—"गुरु जी! जान पडता है आज तो आप कविता ही करने लगे हैं।"

भृकुण्ड ने निःश्वास छोडा, "चाहे जैसा भी हूं मै, पर मैं कभी ठगा नहीं जा सकता। उसे बुलाकर मैंने बहुत बडी भूल कर डाली है। अच्छी बात है भद्रश्रेण्य को बुलाता हूं। पर सावधान रहना, वह हमारा शत्रु है।"

मृगारानी ने अपने स्तनांशुक को ठीक किया और कमर की मेखला को सम्हाला।

: २ :

तीन राजनीतिज्ञो की एक त्रिपुटी थी। आज उसमे से भद्रश्रेण्य हट गया था। यादवराज आये, तभी तीनो को इस बात का भान हुआ।

राजा भद्रश्रेण्य जब आये तो मृगारानी ने खडे होकर नमस्कार किया और स्वागत किया। गुरु ने उन्हें आशीर्वाद दिये।

"मामा जी!" मृगा ने हँसकर पूछा, "आप यह क्या करने जा रहे हैं, कुछ समझाइए तो! आप सहस्रार्जुन के मामा, आचार्य, और दाहिने हाथ हैं और यह क्या हो रहा है?"

भद्रश्रेण्य साहसपूर्वक देखता रहा।

"मृगा, मुझसे यह सब वृथा बात क्यों कर रही हैं ? इस समूची राज्य-लक्ष्मी का शिल्पी होकर मैं ही तुम्हारा हित-शत्रु बनूंगा ?" राजा के स्वर में खेद और घायल स्नेह का भाव था।

"तो फिर चक्रवर्ती को क्यों सताया ? शार्याती को निर्मूल क्यों किया ? और यह भार्गव की पूजा किसलिए चल रही है ?" मृकुण्ड ने राजा को उत्तर दिया।

"गुरुवर्य ! मुझे दोष ही देना चाहें तो बात दूसरी है। आज बीस वर्ष से अर्जुन अपने ही स्वार्थ का ग्रास बन रहा है। इस स्थिति में उस का उद्धार करने के लिए हमने क्या-क्या नहीं किया ? पर उसे उबारने में मैं निष्फल हुआ हूं। आप भी निष्फल हुए हैं, और होंगे।"

"तो अब आप चक्रवर्ती का विरोध करने को उठ खड़े हुए हैं ?" मृगा ने किंचित मान-भरे स्वर में पूछा।

भद्रश्रेण्य हँस पड़े—"उसके लक्षण प्रियतमा उतने नहीं जानती, जितने मैं जानता हूं। सुदास की बहन का हरण करके आर्यावर्त के चक्रवर्ती होने की हमारी योजना को उसने निष्फल कर दिया है। संस्कृति के उस तीर्थ में उसने सुदास को छेड़ा, मुनिवर वशिष्ठ और महर्षि जमदग्नि की उसने अवगणना की, जगदम्बा-सी पूज्य रेणुका को उसने बन्दी बनाया। समस्त आर्यावर्त जिस राजकन्या को उसे ब्याहने को तैयार था, उस पर अत्याचार करके उसने महर्षि जमदग्नि की आन को चुनौती दी। इतना दोष मेरा अवश्य है कि मैंने अर्जुन को लोमादेवी पर अत्याचार न करने दिया, और गुरुदेव भार्गव को गला घोंटकर मार डालने न दिया। इस दोष का भागी तो मैं अवश्य ही हूँ। और इसी दोष से मैंने सबको उबार लिया है।"

"और अब चक्रवर्ती के विरुद्ध प्रपंच कर रहे हो ?"

"मैंने प्रपंच किया है ? मृगा, अर्जुन मुझे और मेरे यादवों को मारने के लिए अधीर हो उठा है। मुझे सेनापति के पद से च्युत कर

दिया, मुझे यादव गोत्र मे बंदी बना दिया और कुत्ति को बना दिया मेरा प्रहरी। मै आरोप नहीं लगा रहा हूँ, क्योंकि आरोप सुन सकने की स्थिति तुम्हारी नही है। तुम लोग तो स्वेच्छाचारी के खिलौने हो।" भद्रश्रेण्य फिर हँस पड़ा, "और इसी बात का क्या विश्वास है कि आज तुम मुझे और यादवो को मार डालने का संकल्प न कर बैठे हो?"

राजा ने अचूक बाण मारा। मृगा फीकी पड गई। भृकुण्ड ने उसका बचाव किया—"राजन्! तुम कल्पना मे विहार कर रहे हो। तुम्हारा परिचय क्या मुझे देना होगा?"

राजा ने खिन्नतापूर्वक कहा—"मेरी बात को जितना नही मानोगे, उतने ही अधिक पछताओगे।"

"और शार्यातो को किसलिए निर्मूल कर दिया? सारा हैहय संघ विरोध से उबल रहा है।"

"वह तो गुरुदेव की आज्ञा थी। छोटे गोत्र एक-दूसरे के साथ नित्य लडते रहें, इससे क्या यही अच्छा नहीं है कि एक बड़े गोत्र मे सब एकत्रित होकर मैत्री भाव से रहे।"

"लेकिन यह तुमने क्यों करने दिया?" मृगा ने पूछा।

"मुझे उन पर श्रद्धा है। मुझे चाहे न भी समझ मे आवे, पर उनकी दृष्टि तो सच्ची ही होगी।"

"कहीं गोत्रो का भी ऐसे एकत्रीकरण होता है?" भृकुण्ड ने कहा, "हम तो अनुभव से जानते हैं न।"

भद्रश्रेण्य ने धीरे से कहा—"गुरुवर्य! भार्गव तो सिंधु से सिंहल तक एक ही गोत्र कर देना चाहते है।"

"सपने मे, राजन्!" भृकुण्ड ने कहा।

"क्या हमने अर्जुन को सिंधु से सिंहल तक का चक्रवर्ती बनाने का सपना नहीं देखा है?" भद्रश्रेण्य ने पूछा।

"राज्य-चक्र का विस्तार तो ऐसे ही हो सकता है," मृगा ने कहा।

"पर वह बालक यह सब क्या समझ सकता है?"

भद्रश्रेण्य खिलखिलाकर हँस पड़ा—"वह न समझेगा? हमारे सपनो और धर्म-बल को वह संजीवित कर रहा है। आँखो आडे कान करके हम अपनी निर्बलता को नही देख सके, और उसी कायरता को हम अपनी राजनीति-दक्षता मान बैठे हैं। धर्म-बल के बिना लोग कभी एक चक्र को स्वीकार नहीं कर सकते, और न वह कभी टिक ही सकता है। मेरी यह बात भूल मत जाना। बालक भार्गव समूचे जीवन को भली भाँति जानता है, प्रेम से उसकी कामना करता है, और अडिगता से उसका उद्धार करता है।"

"जो हम अपनी शक्ति से न कर सके, यह छोकरा करेगा?" मृगा ने तिरस्कारपूर्वक कहा।

"यदि सहस्रार्जुन उसकी बात मानें तो।"

"समझ गया! समझ गया! चक्रवर्ती और भार्गव दोनो मिलकर यह चमत्कार कर सकते हैं। यही न? हा! हा! हा!" मृकुण्ड हँस पड़े।

भद्रश्रेण्य चले गए। रानी और मृकुण्ड एक-दूसरे की ओर देख रहे थे।

"भद्रश्रेण्य तो अभी भी जैसे-के-तैसे हैं, वही नई-नई योजनाएं गढ़ने में लगे हैं।"

"नहीं, उससे भी भयंकर," मृकुण्ड ने कहा, "वे भार्गव द्वारा चक्रवर्ती को वश किया चाहते हैं।"

बड़ी देर तक दोनों गुम-सुम बैठे रहे। दोनों के मन में एक ही विचार चल रहा था।

"गुरु! इस पगले का प्राण ही लेना होगा," मृगा ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"यह काम ज्यामघ करेगा।"

"कौन? शार्यातराज का पुत्र?"

"हाँ! भगवती लोमा को घायल करके वह अघोरियों के साथ

यहां भाग आया है। पर उसके साथ कठिनाई यह है कि वह तो भार्गव के प्राण लिया चाहता है।"

मृगा चुप हो रही—"मुझे तो किसी भी पाप की बाधा नहीं है। ज्यामघ को मेरे पास भेज देना। पधारिए, मैं सांझ को भार्गव के दर्शन करने आऊंगी।"

भृकुण्ड ने सिर हिलाया, "भार्गव को मारना सहज नही है। एक बार मिलो तो, फिर देखा जायगा।"

भृकुण्ड के जाते ही मृगा विचार मे पड गई। सहस्रार्जुन की वह दासी थी। उसका प्रचण्ड बाहुबल, उसका क्रोधी स्वभाव, उसकी रक्त-पिपासा उसे सदा ही मोहित कर देते। उसकी महत्वाकांक्षा अर्जुन की महत्वाकांक्षा का पोषण करने मे थी। इस भार्गव की बात सुनकर उसके मन में भय व्याप गया। क्या उसकी महत्वाकांक्षा की राह मे आयगा वह ?

भद्रश्रेण्य की बातचीत से मृगा को एक नया ही विचार सूझ पडा। "यादवराज को जो प्रतापी बना सकता है, वह सहस्रार्जुन को क्या नहीं बना सकता ? भार्गव और चक्रवर्ती के बीच यदि संधि हो जाय, हैहय भृगुओं के बीच यदि सहचार साधा जा सके, तो सिंधु से सिंहल तक का साम्राज्य क्यों न मूर्तिमान हो सकेगा ? सहस्रार्जुन की राज्य-लक्ष्मी को वृद्धिगत करने का भार भार्गव के सिर क्यो न डाला जाय ? और फिर क्या कारण है कि वह स्वयम् सत्ता को न भोग सके ?"

'सिंधु से सिंहल' उसने गुनगुनाया—फिर-फिर गुनगुनाया। जीवन मे उसने मित्र बनाये थे और अमित्रो से वैर भी किया था। इस लड़के को वह यदि मित्र बना सके तो ? सवेरे गढ पर से देखा हुआ मुख याद हो आया। कैसा मुख ? आज उसने वस्त्राभूषण त्याग दिये थे। वह जानती थी कि उसके बिना वह अधिक मोहक लग रही थी। दासियो के हाथों मे पूजा की सामग्री लिवाकर, सहस्रार्जुन की अन्य रानियों को साथ लेकर वह चली।

एक विचित्र आकर्षण उसे उस लड़के की ओर खींचता-सा लगा। उसने महाअथर्वण, जमदग्नि, रेणुका और कवि चायमान के विषय में जो अनेक दंत-कथाएं सुन रखी थी, वे सब उसे इस क्षण याद हो आई। भृकुण्ड आश्रम में जब वह पहुंची, तो वह क्षोभ का अनुभव कर रही थी।

रेवा एक ओर गर्जना कर रही थी। आश्रम में दर्शन-विह्वल लोगों की मेदिनी उभर रही थी। पीपल के झाड तले व्याघ्राम्बरधारी भार्गव को मृगा ने देखा। उसकी जटा बाँधने की रीति भा गई। छोटी-छोटी काली दाढी के भीतर से झमकता, मंद और लज्जालु हँसी हँसता वह मुख उसने देखा। मानो स्फटिक में से काटकर गढ़े गए हों, ऐसे अपूर्व स्नायुओं का प्रभाव उसने पहचाना। पास ही बैठी थीं भगवती लोम-हर्षिणी—छोटी-सी, कोमल और फीकी। मृगचर्म के तकिए से सटकर वह बैठी थी। वसंत के प्रादुर्भाव सी हँसी हँसती हुई, पति पर भक्ति-भीनी आँखें डाले वह देख रही थी। भृकुण्ड थे, भद्रश्रेण्य थे, तथा और भी तीस-चालीस अन्य शिष्य वहाँ बैठे थे। लोग आते, प्रणिपात करते और चले जाते।

मृगा का हृदय धड़क उठा। उसका गर्व गलित हो गया। जो-जो विचार मन में चल रहे थे वे सब भूलकर, अपनी अल्पता को अनुभव करते हुए भार्गव के आगे माथा नवाकर वह उनके पैरों पड़ी, और वहाँ से उठकर भगवती के पैरों पड़कर वह उनके पास ही बैठ गई। भार्गव ने आशीर्वाद दिये। मृगा ने उनकी ओर देखा तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो बिना कहे ही वे सब-कुछ समझ गए हों। भृकुण्ड मन-ही-मन हँसे। असली गुरु आ गए हैं, सो अपने आप ही सारा शील-शिष्टाचार सीख गई—मन-ही-मन बोले।

"शत शरद् जियो, मृगारानी," भार्गव का स्नेह स्वर सुनाई पड़ा, "और तुम्हारा सौभाग्य अखण्ड रहे। युवराज जयध्वज कहाँ है?"

"आखेट पर गया है। कल दर्शन करने आयगा," मृगा ने कहा।

चक्रवर्ती के पुत्र जयध्वज को मृगा ने अपने ही पुत्र की भांति पाला-पोसा था।

"मृगा रानी!" भार्गव का कोमल स्वर उसके कान पर पड़ा, "मैंने तुम्हारी बहुत प्रशंसा सुनी है। राजा भद्रश्रेण्य तुम्हारे बहुत गुण गाते हैं।"

मृगा का हृदय हर्षित हो उठा। उसे गर्व भी अनुभव हुआ। "यह तो उनका बड़प्पन है," उसने हँसकर कहा।

"मैंने सुना है कि चक्रवर्ती विजय प्राप्त करके कुछ ही दिनों मे लौट आयंगे।"

"हाँ, कल ही उनका संदेशा आया है। भगवती! आप कुशल हैं?"

"हाँ," लोमा ने कहा, "मैं मरते-मरते बच गई," फिर वह मृगारानी की ओर देख हँस पड़ी—"मैंने तुम्हे ऐसी नही समझा था।"

"फिर कैसी समझा था?" मृगा ने पूछा।

"प्रचण्ड और डरपोक।"

सब लोग हँस पड़े।

"आपको कुछ चाहिए, तो आज्ञा दें?" मृगा ने पूछा।

"मुझे क्या चाहिए।" भार्गव ने हँसकर कहा। "गुरु भृकुण्ड के दर्शन हो गए, महाअथर्वण जिस आश्रम मे रहे थे, उसी आश्रम मे आ रहा। जिन पशुपति की वे पूजा करते थे, उन्हींकी पूजा मैंने भी कर ली। अनेक बार जिस रेवा का स्तवन किया है, उसके पुण्य-दर्शन पा गया। तुम-सी महा-राजनीति-दक्षा से मिल लिया। और मुझे क्या चाहिए?" भार्गव ने शरमाते हुए कहा।

"हमारे धन्यभाग्य हैं कि आपने पधारकर महाअथर्वण का शाप उतार दिया।" कहने को तो कह गई, पर मृगा मति-मूढ-सी हो गई। इच्छा न होते हुए भी पूज्य-भाव उसे जकड़े दे रहा था।

"अपने पितामह के शिष्यों का परिचय पाकर मै भी अपने को भाग्य-शाली पाता हूँ।"

"अब आप यहीं रहे।"

भार्गव की आंखों का तेज प्रखर हो चला। उसने मृगा के शिष्टाचार को भेद दिया—'तुम धर्म का अनुसरण करो तो मैं तुम्हारा ही हूँ।"

मृगा निष्प्रभ हो गई—"क्या हम धर्म का अनुसरण नहीं कर रहे ?"

"तुम भले ही उसे धर्म कहो, मैं नहीं कह सकता। विद्या की सेवा नहीं है, तप का सम्मान नहीं है; सत्य का शासन नहीं है। जहाँ यह सब नहीं है, वहाँ क्या धर्म हो सकता है ?"

"तो आप सिखाएं।"

भार्गव गुरु के वात्सल्य से देखते रह गए—"सिखाऊँ, यदि सिखाने दो तो। रेवा तो माता सरस्वती की सहजा है; इसके दोनों तट ऋषियों के आश्रमों के लिए ही सृजे गए हैं। जिस दिन इन आश्रमों में से मंत्रोच्चार सुनाई पड़े, उसी दिन समझ लेना कि धर्म की स्थापना हो गई है।"

"मैंने आर्यावर्त नहीं देखा है। माता सरस्वती के दर्शन मैंने नहीं किये।"

"आर्यावर्त तो यहाँ भी है। तुम नहीं जानती हो, इसी बात का मुझे दुख है। जहाँ भी आर्यत्व हो, वही आर्यावर्त !"

"यहां तो शौर्य है—पुष्कल," मृगा ने कहा।

मानो क्षमा कर रहे हों, ऐसे औदार्य से भार्गव देखते रह गए—"मृगारानी, यहाँ जो देख रही हो वह शौर्य नहीं, शब्दाडम्बर है, मिथ्याचार है। उसे शौर्य का नाम देने से ही उसकी असली कायरता चली नहीं जाती। शौर्य और आर्यत्व एक ही बात है—विद्या, तप और धर्म का मूल।"

गर्वित होकर मृगा देखती रह गई।

"गुरुदेव ! कल रात मेरे महालय में भोजन के लिए पधारेंगे ? साथ ही लोमादेवी भी पधारेंगी न ?"

भद्रश्रेण्य विनती-भरे नयनों से और भृकुण्ड आश्चर्य से भार्गव को चेतावनी दे रहे थे। मृगा के भोजन से कितने ही वैरियों के लिए

यम-द्वार खुल गए थे। मृगा यह क्या करने जा रही है !

भार्गव निश्छल भाव से हँस पडे—"मै अवश्य आऊँगा। भगवती नहीं आ सकेगी। वह स्वस्थ नही है।"

'भगवती' शब्द कहकर भार्गव ने उसके गुरु-पत्नी पद को विशेषत्व दिया।

: ३ :

माहिष्मती का रंग बदल गया था। गुरु के दर्शन करने के लिए लोग आने-जाने लगे थे। दास-दासियां भेंट लेकर आते और पूजा करके चले जाते। चारों ओर ऐसा उत्साह व्याप गया, मानो मोक्ष के द्वार ही खुल गए हों।

इससे भी अधिक उत्साह मृगा के हृदय मे था। वह भार्गव की बाट जोह रही थी। कोई भी उसे समझ नहीं सका था। पर अकेले भार्गव ही उसे समझ गए थे। वे अकेले ही उसके सपनों को सिद्ध कर सकते थे। पर भृकुण्ड आये तो मृगा ने कहा—"उस श्यामव से कह देना कि जब तक मैं न कहूँ, वह कुछ न करे।"

"भद्रश्रेण्य का भी नहीं ?"

"नहीं"

"सच बात है देवी, इस वय मे भी जब मेरा हृदय बावला हो गया है, तो फिर तेरी तो बात ही क्या है ! एक ही दिन मे जब यह स्थिति हो गई है, तो इसे गुरु-पद पर यदि स्थापित कर दिया जाय, तो जाने क्या होगा ?"

"आप क्या सोचते है, गुरुवर्य," मृगा ने पूछा, "शक्ति बढेगी या घटेगी ?"

"मृगा ! इसके बल से शक्ति बढेगी और राज्य भी बढेगा। पर वह तेरा या चक्रवर्ती का होकर नही रह सकेगा। जो वह कहेगा, वही होगा।"

"उसे ही अपना लिया जाय तो ?" मृगा ने पूछा।

"हम ही यदि उसके हृदय में बस जायं, तो हम जो चाहे कर सकते हैं। पर सहस्त्रार्जुन उसे पल-भर भी सहन नहीं कर सकेगा; वह बहुत स्वार्थी और अभिमानी है।"

"देखें आज रात को क्या होता है ?" मृगा ने कहा।

"मृगा, तू मेरी पुत्री के समान है, इसीसे चेतावनी दे रहा हूँ। अपनी विलासाकांक्षा को वश में रखना, नहीं तो वह तुझे जलाकर भस्म ही कर देगा।"

मृगा खिलखिलाकर हँस पड़ी—"इतना ही विश्वास है आपको मुझ पर ? और मेरे भीतर आग को भी बुझा देने वाली शीतलता है सो ?"

मृगा के महालय में भोजन के आयोजन चल रहे थे। चन्दन और भोज्य-पदार्थों की सुगन्धि महक रही थी। आभूषणों में सजी हुई दासियां छुम-छुम करती-सी इधर-उधर डोलने लगी।

जब संध्या हो आई, तो रानी कोट के कंगूरे पर चढ़कर उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगी। चाँदनी में देखा, आश्रम के भीतर से एक छाया बाहर निकली और टीले पर चढ़ने लगी। उसके हाथ में परशु था। मृगा का हृदय धडक उठा। भार्गव सहस्त्रार्जुन का राज्य-स्तम्भ बन जाय, और वह स्वयम् सिंधु से सिंहल तक के राज्य-चक्र की अधिष्ठात्री बन सके तो! भावी के गर्भ में पड़ी सिद्धियों का देने वाला चला आ रहा था। कौन जाने वह क्या-क्या दिलवायगा ?

मृगा साम्राज्ञी की सत्ता भोगती थी, पर सामान्य स्त्री का स्वातंत्र्य भी वह जब चाहती, ले लेती। वह नीचे जाकर महालय के द्वार पर खड़ी हो गई। भार्गव आ गए। उनके मुख पर रंच-मात्र भी अविश्वास नहीं था। "गुरुदेव, पधारिए, पधारिए, मेरा महालय पावन करिए !"

भार्गव ने परशु को द्वार के बाहर ही रख दिया, "यहीं धर दूं ?" उस स्वर में एक विचित्र ही ध्वनि थी। "तुझ जैसी स्त्री के हाथों सगा भाई भी अपने प्राण न सौंपेगा। पर मुझे विश्वास है, मैं सौंपे दे रहा

हूं।" कल इसी व्यक्ति को निर्मूल करने की तत्परता उसने दिखाई थी, यह याद आते ही मृगा बहुत लज्जित हुई। इस जन्म में उसने अब तक ऐसा स्नेह और ऐसा विश्वास नहीं देखा था।

"भीतर ले आइए," उसने कहा।

"परशु का तो यहीं रहना भला है," कहकर भार्गव ने भीतर प्रवेश किया।

मृगा ने भार्गव के पैर धोये, उनकी पूजा की और फिर उन्हें भोजन कराया। उसके तैयार कराये हुए सारे भोजन की भभक व्यर्थ हो गई। स्वस्थ और शांत देव की भांति भार्गव प्रसाद ग्रहण कर रहे थे।

भोजन के उपरान्त मृगा भार्गव को छत पर ले गई। क्षण-भर के लिए विचार आया कि उन्हें पाटे पर बिठाकर उनके सामने ही वह स्वयम् भी पाटे पर बैठ जाय या नहीं। अनजाने ही उसके अन्तर में से दीनता प्रकट हो पड़ी, और वह सामने के पाटे पर बैठ गई।

"गुरुदेव, आज तीन बरस से मैं आपसे मिलने के लिए तरस रही थी।"

"तुम तो हैहय की राज्य-लक्ष्मी हो। मुझे स्मरण किया होता तो उसी क्षण आकर मैं उपस्थित हो जाता। व्यर्थ ही उस कुक्षि को तुमने बीच में रखा।"

मृगा ने हँसकर अपनी भूल को स्वीकार किया—"आपको कुक्षि नहीं रुचता?"

"वह अशिक्षित, नीच, खटपटी और लोभी है। उसे गुरुपद पर स्थापित करके तुमने गुरुपद को भ्रष्ट किया है," भार्गव ने कहा।

"गुरुदेव, एक बात पूछूं?" मृगा ने हँसकर कहा, "क्या यह सच है कि कल्विणी को आपने कोड़े मारे?"

भार्गव हँस पड़े—"तुम तक बात पहुँच ही गई? यही क्या कम है कि मैंने उसका वध नहीं किया।"

"तो फिर मुझ जैसी का क्या होगा?" मृगा के मुंह से निकल

गया। क्या उत्तर मिलेगा, इसी विचार से वह घबरा उठी।

भार्गव गंभीर हो गए—"पत्नी संस्कृति और संतति दोनों ही का उद्गम है। वह जब तक विशुद्ध रह सके, तभी तक रक्षा करने योग्य है।"

"तो फिर मुझ जैसी स्त्री का तो आप वध ही करेंगे।"

भार्गव की आंखों में तथा उनके मुख और स्वर में एक गहरी समझ की हँसी झलक आई।

"सहस्रार्जुन के प्रति जो तुम्हारी भक्ति है, वह कौन मुझसे छिपी है ? पर आज जो तुम पत्नी के अधिकार के बिना कर रही हो, वही यदि पत्नी के अधिकार से करो, तो मुझे अच्छा लगेगा।"

"कल्विणा में और मुझमें क्या अन्तर है ?"

"कल्विणी परिणीता होकर भी पति को धोखा दे रही है। तुम परिणीता न होकर भी पतिव्रता हो," भार्गव ने कहा। "तुम ऐसी न होती तो मैं तुम्हारे यहां न आता।"

मृगा के हृदय में उन्नत भाव का संचार हुआ। तो वह तिरस्करणीय नहीं थी!

"अपनी शक्ति-भर मैं कर रही हूँ और आपकी सहायता चाहती हूँ।"

"तुम्हारे लेने-भर की देर है।"

"तो सहस्रार्जुन के साम्राज्य को सूर्य के समान तेजोमय कर दीजिये।"

"सो कौन बडी बात है। धर्म का संरक्षण और प्रवर्त्तन करो। तुम्हारा राज्य अपने आप ही दीप्त हो उठेगा।"

"किस प्रकार ?"

"आर्यावर्त में ऋषियों को आमंत्रित करो, विद्या और तप का विकीरण करो।" मृगा चुप रही। "युवक हैहय को मेरे हाथ सौंप दो, मैं उन्हें आर्यत्व को प्रसारित करने की शिक्षा दूंगा, जंगलों का भेदन कर आश्रम स्थापित करना सिखाऊंगा, कायरता को मिटाकर वीरत्व सिखाऊंगा।"

"यह सब हमारे लोगों की समझ में नहीं आयगा," मृगा ने सिर हिलाते हुए कहा, "उन्हें तो बस मारना ही आता है।"

"जो मरना नहीं जानता, उसे विजय नहीं मिल सकती मृगा रानी!" भार्गव ने कहा। "विजय प्राप्त करने के लिए भी तप की आवश्यकता होती है।"

"आप सहस्रार्जुन को समझाइए।"

"भला वह समझेगा? वह तो पशुबल से निर्बल को पराजित करना जानता है। स्वेच्छाचारिता को ही वह शासन मानता है, द्वेष को ही वह महत्वाकांक्षा मानता है। वह तो मारना-भर जानता है, मरने के लिए वह तैयार नहीं है। उसका उद्धार संभव ही नहीं है, नहीं तो तुमने कभी से कर डाला होता।"

"यह आप क्या कह रहे हैं? कुछ तो राह सुझाइए। उन्हें और मुझे उबार लीजिए," विनती करती हुई मृगा बोली। अपने ही नम्र वचनों को सुनकर वह आप ही विस्मित हो रहती, पर हृदय से भीगे हुए शब्द चले ही आ रहे थे। "आप गुरु हैं।"

"गुरु हूँ, इसीसे तो कह रहा हूं। मेरे कहे को यदि कसौटी पर ही परख लेना चाहती हो, तो उससे कह देखो कि जिस पद का तुम आज भोग कर रही हो, वह अग्नि की साक्षी से सहस्रार्जुन तुम्हें प्रदान करे।"

मृगा के हृदय पर आघात पहुँचा। वह सहस्रार्जुन की राज्य-लक्ष्मी नहीं थी, बल्कि उसकी रखैल थी, इस बात का भान उसे बहुत ही तीव्रता से हो आया।

"मैं राजकुल की नहीं हूँ," उसने नीचे देखते हुए कहा।

"पर राजकुल को शोभित कर सके, ऐसी शक्ति और भक्ति दोनों ही तुममें हैं। पत्नी के रूप में जब तुम्हारा उपयोग हो रहा है, तो विधि-पूर्वक तुम्हारे स्वीकार किये जाने में कौनसी बाधा है?"

मृगा की महत्ता की सृष्टि में दरार पड गई। वह चुप हो रही।

' मृगारानी, क्या यादवों पर तुम्हारा वैर बहुत प्रबल हो उठा है ?'' भार्गव ने बात की दिशा बदली।

''हाँ ! उन्होंने व्यर्थ ही शार्यातो को प्रपीडित किया है ।''

"भद्रश्रेण्य ने नहीं, मैंने किया है वह—यदि प्रपीडन मानती हो तो।"

"क्या आपको उसमे धर्म जान पडा ?" मृगा राज्य-सत्ताधिकारिणी हो उठी।

भार्गव ने उसके स्वर को पहचान लिया।

''तुम राजाओं को एक धुरी के अन्तर्गत लाना चाहती हो। मैं गोत्रो का एकीकरण किया चाहता हू ।''

"अर्थात्, हैहय, यादव, तालजंघ सभी एक हो जायं ?"

"हाँ ! युद्ध राजाओं के पारस्परिक शत्रुत्व के कारण होते हैं। गोत्रो का एकीकरण हो जायगा, तो यह शत्रुत्व आप ही टल जायगा ।

''यह बात मेरे गले नहीं उतर रही।''

''सिधु मे सिहल तक आर्यावर्त को प्रसारित करना, इतना सरल नहीं है।''

मृगा ने उत्तर नहीं दिया।

"मै एक ही बात का आश्वासन तुमसे चाहता हूँ।"

''क्या ?''

"भद्रश्रेण्य को दण्डित न करना, नही तो मुझे तुम्हारा वैरी हो जाना पडेगा ।''

मृगा लज्जित हो गई। भार्गव ने उसके हृदय को पहचान लिया। वह काँप उठी।"नहीं, नहीं। दण्ड किस बात का ?" उसने ससंभ्रम कहा।

"तो मैं भद्रश्रेण्य और यादवों को तुम्हारे हाथ सौंपे जाता हूँ।"

क्षण-भर मृगा सकुचाई-सी खड़ी रह गई। भार्गव के मुख पर मंद हास्य था।

"जैसी आज्ञा," उसने कहा।

भार्गव जब महालय छोड़कर चले गए, तो मृगा उनके चरणों की रज हो रही।

: ४ :

भार्गव और भद्रश्रेण्य रेवा के तट पर अकेले घूम रहे थे।

"भद्रश्रेण्य, तुम्हें यहां से चले जाना है। तुम यहां रहोगे तो मेरी कठिनाई बढ़ेगी।"

"गुरुदेव, आप मुझ पर अन्याय कर रहे हैं। न तो आप मुझे लड़ने ही देते हैं, और न अपने साथ खड़ा रहकर सहन करने देते हैं।"

"राजन्, तुम्हारे मरने का समय अभी नहीं आया है। यादवों का उद्धार करना अभी शेष है।"

"पर आपको छोड़कर मैं कैसे जा सकूंगा ?"

"तुम्हारे प्राण संकट में हैं, तुम पर मृगारानी दांत गड़ाये है।"

वृद्ध राजा की आंखों में पानी भर आया—"गुरुदेव, मेरे दुःख का तो पार ही नहीं है। कौनसे पाप किये हैं मैंने जो देव मुझे कसौटी पर चढ़ा रहे हैं ? आज मेरा गोत्र मारा-मारा फिर रहा है। मेरे स्त्री-बच्चे इधर-उधर भटक रहे हैं। और अब मेरे लिए चोर की भांति भाग जाना ही शेष रह गया है।"

भार्गव ने राजा को छाती से लगा लिया—"राजन, यह तो तुम्हारी अग्नि-परीक्षा है।"

"मैं तो थक गया हूँ।"

"यों थक जाने से काम कैसे चलेगा ? दुःख में ही वह महत्ता प्राप्त होती है, जो मृत्यु से भी अभेद्य होती है।"

"मुझे वह महत्ता नहीं चाहिए।"

"राजन्, जो जीवन के ताप से त्रस्त हो उठता है, वह तो पराजित

हो चुका," भार्गव ने कहा, "उसके भीतर से जो कांचन होकर निकल सकेगा, विजय उसकी है।"

"जैसी आज्ञा," खिन्न हृदय से भद्रश्रेण्य ने कहा और भार्गव के पैरों पड़ गए।

"राजन्, खाइयों को पार करने का श्रम हम उठायंगे, तभी तो गिरि-शृंग की शीतलता प्राप्त हो सकेगी।"

"गिरिशृंग! पशुपति ही जानते हैं कि कब वह पा सकूंगा। पर गिरिशृंग से अद्भुत जो आप मेरे पास हैं," भद्रश्रेण्य ने गद्‌गद् हो कर कहा—"आपके चारों ओर झंझाएं घिरती हैं और शांत हो जाती हैं, मेघमालाएं आप पर छाती हैं, और छोड़ जाती हैं। पर आपके चारों ओर तो प्राणदायी समीर बहता ही रहता है। यहां हृदय के घाव भर रहे हैं, चिन्ता का स्पर्श तक भी तो नहीं होता। पर मैं अकेला कैसे जाऊंगा?"

"मृकुण्ड को भिजवा दो। वह विश्वस्त आदमी दे सकेगा। एक-आध महीना तुम तीर पर रहना, और आवश्यकता पड़ने पर यहां आकर हमें ले जाने का प्रबंध करना।"

राजा भद्रश्रेण्य गये और उन्होंने मृकुण्ड को भिजवा दिया। वृद्ध गुरु कमर पर हाथ देकर झपटते हुए आये। भार्गव मृगा से मिलकर क्या बात कर आये, यह जानने को वह बहुत उत्सुक थे।

"गुरुवर्य!" भार्गव ने कहा, "चलो, हम लोग घूमने निकल चलें, और बात भी करते जायंगे।"

मृकुण्ड ने भार्गव के स्वर का गांभीर्य पहचाना और उन्हें धक्का-सा लगा—"चलिए।"

"मृकुण्ड! तुम्हारे चातुर्य के सम्बन्ध में मैंने बहुत-कुछ सुन रखा था। अब मैं तुमसे सीधी बात किया चाहता हूँ।"

"जैसी आज्ञा।"

"भद्रश्रेण्य का, यादवों का, और मेरा तुम क्या किया चाहते हो?"

भृकुण्ड चौंककर चुप रहे।

"कहना नहीं चाहते ?"

"मै क्या जानूं ?"

"तुम बडे चतुर व्यक्ति हो," भार्गव ने कहा, "तुम न कहना चाहते हो तो फिर मै कहूं। मुझे और भगवती को बन्दी करने के लिए भद्रश्रेण्य को तुमने गिरनार पर रख छोडा था। हमें यहाँ क्यो बुलवाया है ? तुम न कहना चाहो तो फिर मैं ही कहूं ? हमे अपनी आंखो आगे रखने के लिए।"

भृकुण्ड ने बोलने का प्रयत्न किया।

"दो दिन मे ही तुमने जान लिया होगा कि जैसी तुम्हारी धारणा थी वैसा निरा उद्धत लडका मैं नही हूँ। मुझे तुम मार सको, यह संभव नहीं है। आनर्तराज की सहायता के बिना तुम यादवो का संहार कर सको, यह भी संभव नहीं है। भद्रश्रेण्य को अकेले तुम मार सकते थे। वह तुम्हारा विश्वसनीय था, पर अब नहीं रहा।"

"गुरुदेव ! ऐसा तो कोई विचार नहीं है। और मेरी सुनता भी कौन है ?"

"भृगुवर !" भार्गव ने भृकुण्ड को कुल का स्मरण दिलाया, "यह बात सच नहीं है। तुम और मृगारानी यही सोच रहे हो कि सहस्त्रार्जुन और तुम्हारी सत्ता को बढ़ाने का साधन मैं कैसे बन सकता हूँ। मैं तो तुम्हारे हाथ मे खेलने के लिए बैठा हूं—भद्रश्रेण्य और यादव यदि निर्भय हो सकें तो।"

"भद्रश्रेण्य ने शार्यातो को मारकर बहुत बडा शत्रुत्व उत्पन्न कर लिया है।"

"इसका रास्ता निकालना अब तुम्हारे ही हाथ है। भद्रश्रेण्य का यदि बाल भी बांका हुआ तो मैं तुम्हारा वैरी हो जाऊँगा। तुम मुझे मार सको, यह तो सम्भव नही है, पर मुझे झेल सकना तुम्हारे लिए बहुत भारी पड जायगा।"

"आपका कोई क्या बिगाड़ सकता है?"

'पर भद्रश्रेण्य के साथ मरने से तुम मुझे रोक भी नहीं सकते हो।"

"नहीं, नहीं! गुरुदेव!" भृकुण्ड की उलझन का पार नहीं था।

"भृकुण्ड! तुम भृगु हो। मैं भृगुश्रेष्ठ का पुत्र तुम्हारा कुलपति हूं। मैं तुमसे कहता हूं कि भद्रश्रेण्य के मारने का संकल्प किया भी हो तो उसे छोड़ दो। मृगा ने भी यदि किया हो तो उससे भी छुड़वा दो," भार्गव ने आज्ञा दी।

"पर ऐसा करना ही कौन चाहता है। यह तो केवल सन्देह है।"

"सच कह रहे हो तो तुम्हारे और मेरे पुण्यनामी पूर्वज—भृगु, शुक्र और च्यवन की शपथ लेकर मुझे वचन दो कि भद्रश्रेण्य को तुम उबार लोगे।"

"............पर"

"उबार लोगे या नहीं, शपथ लेकर कहो।"

भृकुण्ड कांपने लगा—'मैं ऐसी व्यर्थ की शपथ नहीं लूंगा। उसे कोई मारने वाला नहीं है।"

"तो मैं तुम्हें शपथ दिलाता हूँ," भार्गव ने शान्तिपूर्वक कहा—"तुम्हारे कुलपति के अधिकार से।"

भृकुण्ड ने देखा कि भार्गव भयंकर रुद्रावतार होते जा रहे हैं। उसने दो धधकती आँखों का भयानक तेज देखा और उसके छक्के छूट गए।

"भृकुण्ड, महाअथर्वण का गुरुपद स्वीकार करते तुम्हें लज्जा नहीं आई? आज तुम मुझे ही चपेट रहे हो?" उन्होंने भृकुण्ड के कन्धे पर हाथ रखा। कांपते हुए भृकुण्ड की आँखों आगे जैसे भार्गव प्रचंड से प्रचंडतर होते जा रहे हैं, ऐसा उसे प्रतीत हुआ। "तुमने जीवन-भर चालें चली हैं। आज मैं तुम्हें अपने पितरों की शपथ दिलाता हूँ। भद्रश्रेण्य का उद्धार करना तुम्हारा धर्म है।"

भृकुण्ड का बिना दाँत का खोखला मुंह खुल पड़ा। उसका निचला जबड़ा काँप उठा। उसकी झीनी, गहन आँखों में भय तैर आया, उसे जीवन बहुत प्यारा था।

"मधु कैसे मारा गया, सो जानते हो? शार्यातराज क्यों मारे गए, सो पता है?" राम की विकराल आँखें भय का संचार कर रही थीं, "असत्य शपथ यदि लोगे तो उस क्षण तुम पितरों का द्रोह करोगे। तुम्हारा माथा धड़ से अलग जा गिरेगा।"

"भार्गव! भार्गव! क्षमा करो," उठे हुए परशु पर दृष्टि पड़ते ही भृकुण्ड गिड़गिड़ाने लगा।

"भद्रश्रेण्य को अभयदान देने की शपथ लेते हो?"

"पर मेरा अभयवचन किस काम का? मृगारानी जो चाहती है वही करती है।"

"अपने जीते-जी भृगु को वचन-भंग नहीं करने दूंगा। शपथ लेते हो या नहीं?" भृकुण्ड ने चारों ओर देखा।

"इस क्षण कोई तुम्हारी रक्षा कर सके, यह संभव नहीं है। अपने कुल की प्रतिष्ठा का रक्षण करने से मुझे कोई रोक नहीं सकता।" भार्गव के स्वर में दृढ़ संकल्प था। उन्होंने धीरे से फिर कहा—"तुम सयाने समझे जाते हो। सयानापन नहीं छोड़ोगे? सहस्रार्जुन को मैं वहाँ मरते हुए देख रहा हूँ।"

बौखलाया-सा भृकुण्ड फटी आँखों से नदी की ओर देखता रह गया; भार्गव ने जिस ओर हाथ फैलाया था, वहाँ नर्मदा के पानी पर चमकती हुई चन्द्रकिरणों में उसने भार्गव को खड़े देखा—विकराल और विजयी। उनके पैरों के पास सहस्रार्जुन का धड़ और सिर अलग होकर पड़े थे। भृकुण्ड के घुटने टूट गए। भूमि पर गिरकर उसने हाथ जोड़ लिए।

"गुरुदेव! गुरुदेव! क्षमा करिए। आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य होगी।"

"अपने दोनों बड़े पुत्रों को विश्वस्त व्यक्तियों के साथ भेजो। वे भद्रश्रेण्य को माहिष्मती के बाहर ले जाकर छोड़ आएं। लौटते हुए उनके साथ आचार्य विमद और चार भृगु आयेंगे।"

"जैसी आज्ञा।"

"और परसों विमद और अन्य भृगु तुम्हारे पुत्रों के साथ सुरक्षित न लौटे तो—"

भृकुण्ड ने फिर निःसहाय भाव से हाथ जोड़ दिये।

"तो मैं तुम्हारा वध करूंगा।"

भृकुण्ड हाथ जोड़कर थर-थर कांपते-से खड़े रह गए—"कल मैं मृगारानी को क्या उत्तर दूंगा?"

"जाकर सत्य वृत्तान्त बता देना कि अपने कुलपति के वचन को तुम न लोप सके।"

"नहीं, नहीं, भला ऐसा कैसे कह सकता हूं?"

"तो जीवन-भर जब इतना झूठ बोले हो तो थोड़ा और भी बोल लेने में कुछ विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ेगा। चलो अब समय नहीं है।"

: ४ :

लोमा जब भगवती लोमहर्षिणी बन गई, तब भी भार्गव के और उसके सखा स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आया। एक साथ सोना, उठना, घूमना, साथ ही शस्त्र फिराना और यज्ञ करना, यही दोनों की नित्य दिनचर्या बनी हुई थी। पर अग्नि की साक्षी से भार्गव की अर्धांगिनी हो जाने के उपरान्त लोमहर्षिणी में एक महत्वपूर्ण अन्तर आ गया था। वह अब साथीमात्र नहीं थी, भगवती थी। वह अब भृगुओं की माता बन गई थी। महागुरुओं की कुलतारिणी की शक्ति उसमें अवतरित होती-सी जान पड़ी। भृगुओं, उनकी स्त्रियों और संतानों में वह एक विचित्र प्रकार का रस अनुभव करने लगी। वह आशीर्वाद देने

लगी और वे फलने भी लगे। भार्गव की शक्ति और कृपा का पान करानेवाली पतितपावनी रेवा ही जैसे वह आप है, ऐसी श्रद्धा उसमे जाग उठी। पहले भी बहुतो को उसीके द्वारा भार्गव की इच्छा, आज्ञा या कृपा का पता लगा करता था; अब तो वह दुर्निरीक्ष्य गुरुदेव की उग्र शक्ति का सौम्य और जीवित स्वरूप बन गई थी। गाँव-गाँव से दर्शन करने को आने वाले भक्तजन दूर से ही भार्गव के दर्शन करते। उनके चमत्कारी प्रभाव की दंतकथाएं सुनकर उनके हृदयो मे धाक बैठ जाती। बडे-बडे लोग अपनी अल्पता का अनुभव करते। पर भगवती के दर्शन से सभी के हृदय मे उत्साह जाग उठता। उनके कौमुदी-से मोहक हास्य से प्रत्येक हृदय आनन्द से दीप्त हो उठता, उनके पैरो की धूल माथे पर चढने से रोगी स्वस्थ हो जाते, दुखी अपना दुख भूल जाते, और सुखी जनों के सुख मे वृद्धि होती। भगवती हँसती-बोलती, स्त्रियो को टोकती-बनराती, बालको को खिलाती, तब ऐसा लगता, मानो भार्गव का सौम्य और सुखकर स्वरूप ही वह हो।

भार्गव के स्वरूप और शब्दो के भीतर से श्रद्धा और भक्ति की मार्मिक सरिताएं चारो ओर बहा करती, और सभी को आप्लावित कर देती; और इन जलप्रवाहो का पूर्ण उपयोग, भगवती विमद की सहायता से किया करतीं। कोई भी निमंत्रण देता तो उसके यहाँ भगवती ही जातीं। भृगुओ के नयनो की वे ज्योति थीं—नन्ही, सलोनी और सुन्दर सी नारी। घोडे पर यो घूमा करती, जैसे घोडे पर बैठकर ही जन्मी हो। कोई शस्त्र ऐसा नही था, जिसे अद्भुत कला से वह न चला सके। और तिस पर वे भगवती थीं—अपने कुलपति की पत्नी, माता, इष्टदेवी।

धीरे-धीरे भार्गव भी सारा व्यवहार भगवती के द्वारा ही करने लगे। भगवती यादवो और भृगुओ की व्यूह-रचना मे तत्पर रहा करतीं। जिन यादवो और भृगुओ को लेकर भार्गव गोकर्ण-तीर्थ से चले थे, उनकी छोटी-बडी कई टुकडियो को थोडे-थोडे अन्तर से वे रास्ते में छोड़ आये थे। जिन ग्रामो मे भृगु लोग बसते वहीं ये टुक-

डियां अपना एक छोटा-सा थाना बना लेती। इन थानो की व्यवस्था उज्जयंत किया करता था और जब-तब भगवती को सूचना दिया करता था। जो यादव और भृगु माहिष्मती में थे उन सबकी व्यवस्था भगवती और विमद के हाथ मे थी।

भार्गव तो एक ही स्थल पर, पशुपति के अवतार-से बैठे रहा करते। भगवती उनकी शक्ति के आविर्भाव-सी चारो ओर उनके तेज को प्रसारित करती।

जब भार्गव भृकुण्ड को विदा करके आश्रम पर आये तो उन्हे पता लगा कि भगवती और विमद भृगुओं के अखाडे पर गये हुए है। भार्गव धीरे-धीरे चलकर उस ओर गये।

कुछ ही दूर नदी की रेती पर एक बडी-सी भीड गोलाकार घिर कर खडी थी। उसमे भृगु, यादव और बाहर से दर्शनार्थ आने वाले हैहय लोग जमा थे। भीड के बीच चार बडी-बडी होलियां सुलगाई गई थी, जिनके प्रकाश मे मल्ल-युद्ध और शस्त्र-प्रयोगो की प्रतियोगिता चल रही थी। भार्गव किनारे की एक शिला पर एक झाड के पास खड़े रहकर, वहाँ चल रहे प्रयोगो को देखने लगे। सबके बीच खडी हो भगवती चक्र फेंकने की कला का प्रदर्शन कर रही थीं। भार्गव की आँखें स्नेह से आर्द्र हो आईं। वहाँ खडे हुए सभी व्यक्तियों की भक्ति को लोमा पर एकाग्र होते हुए वे देख सके। वे आगे न बढ़े। इस भक्ति की तन्मयता को वे भंग नहीं करना चाहते थे। भोर होने तक प्रयोग चलते रहे। और फिर लौटकर वह आश्रम मे चले आये।

भगवती आई तो भार्गव ने उनको गर्व-भरे नयनो से आलिंगन कर लिया। "लोमा," उन्होंने धीरे से कहा, "तू अद्भुत है।"

"हाँ, हूँ तो, न होती तो अद्भुत भार्गव को पाती कैसे ?"

दोनों एक दूसरे का हाथ पकडकर प्रातःकाल का अर्घ्य चढाने नदी पर गये।

भार्गव ने इक्कीस दिन का यज्ञ प्रारम्भ किया। भृकुण्ड ऋषि के

समय में ऐसा यज्ञ किसी ने देखा-जाना ही नहीं था। पशुपति के विशाल स्थानक में अग्निकुण्ड के सामने भार्गव बैठते—मूक, स्वस्थ और श्रद्धा का संचार करते-से। उनके बाईं ओर भगवती बैठतीं, दाईं ओर भृकुण्ड ऋषि बैठते। उन्होंने जीवन में पहली ही बार गुरुपद की सच्ची महत्ता का लाभ अनुभव किया था। मृगारानी भी प्रायः वहां आकर बैठा करती। उससे सभी कोई डरते थे। स्वेच्छापूर्वक कभी किसी ने उसका सम्मान नहीं किया था। इस समय भार्गव की छाया में उसे भी लोक-समूह का सम्मान मिलने लगा था। भद्रश्रेण्य न जाने कहां खो गया था, अतएव उसका डर अब था ही नहीं। भार्गव के प्रति उसकी भक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी; और पटरानी का-सा सम्मान प्राप्त होने के कारण उसके आनन्द का पार नहीं था।

यज्ञ की बात चारों ओर फैल गई थी, सो योजनों की दूरी से खिच कर लोग चले आ रहे थे और भक्ति-विह्वल होकर समारम्भ में भाग ले रहे थे। दिन और रात कीर्तन चला करते।

भार्गव ने इस मेदिनो का हृदय पहचान लिया था। गुरुपूजा में वास करने वाली अपार्थिव शक्ति से जन-समाज का हृदय श्रद्धा, भक्ति और उत्साह का अनुभव कर रहा था। मनुष्य पल-भर को भय की शृंखला से मुक्त होकर उल्लास का अनुभव कर रहे थे। भार्गव को प्रतीति हुई कि वे सहस्रार्जुन द्वारा स्थापित भय के साम्राज्य को चुनौती देकर स्वयम् विद्या, तप और धर्म का साम्राज्य स्थापित कर रहे थे। वे आप जगत के उद्धारक और गुरु हैं—इस सम्बन्ध में कभी कोई अविश्वास उनके हृदय में नहीं रहा, पर इस क्षण तो जैसे अपने जीवन-मंत्र का ही उन्हें साक्षात्कार हो गया। जगत उनसे विद्या, तप और शक्ति की याचना कर रहा था। उनके हृदय में पशुबल से त्रस्त मानव-जन्तुओं को निर्भय कर, विद्या और तप के मार्ग पर उन्हें उन्नत बनाने की आकांक्षा सहस्रों सूर्यों के तेज से चमक उठी।

ज्यों-ज्यों समारम्भ के दिन बीतने लगे, त्यों-त्यों मानवों की आशा

उनमें अधिकाधिक केन्द्रित होती गई। उनके हृदय में सम्पूर्ण आत्म-श्रद्धा जाग उठी। उन्हें लगा कि जगत का समस्त प्रभाव जैसे उनमें आकर समा गया है।

यज्ञ के बारहवें दिन ढलती अंधेरी रात में भार्गव यज्ञ-कुण्ड के पास आंखें मींचकर बैठे थे। पास ही भगवती और विमद भी निश्चिन्तता-पूर्वक सो रहे थे। उनके कान में कुछ ऐसी सरसराहट सुनाई पड़ी, जैसे कोई बड़ा-सा सांप आ रहा हो। उन्होंने आंखें खोलीं।

अघोरी के वेष में श्यामघ, हाथ में छुरी लेकर धीरे-धीरे पेट के बल सरकता हुआ आ रहा था। कोई पांच हाथ दूर वह था। यज्ञ-कुण्ड के पीछे उसका कट्टर वैरी बैठे-बैठे ही नींद लेता-सा जान पड़ा।

एकाएक दो भयानक नेत्र खुल पड़े, और उनमें तेज की धारा-सी बह उठी। अन्धकार में चमकते हुए उन तेज-बिन्दुओं को देखकर श्यामघ जहां था वहां से हिल न सका।

"कौन श्यामघ !" धीरे से मार्दव-भरा स्वर सुनाई पड़ा।

श्यामघ जैसे ठण्डा पड़ गया।

"श्यामघ ! अपने पिता और गोत्र का प्रतिशोध लिया चाहता है ? ले मार, मैं रोकूंगा नहीं।"

श्यामघ कांप उठा। "मुझे मारकर क्या हाथ लगेगा ? इससे तो यही अच्छा है कि तू मेरे साथ चला आ। हम इन सबको अन्धकार में से प्रकाश की ओर ले चलेंगे,......मैंने तेरे पिता को अपने स्वार्थ के लिए नहीं मारा है, किसी विद्वेष के वशीभूत हो मैंने तेरे गोत्र का संहार नहीं किया है। मुझ पर यदि विश्वास न हो तो आ मुझे मार, जल्दी कर।"

"श्यामघ, सिंधु से सिंहल तक मुझे आर्यत्व को अभय कर देना है। आर्य जातियों को मैं विद्या और तप की साधना में लगा देना चाहता हूँ। आ-आ मेरे साथ। और यदि मुझ पर श्रद्धा न हो तो मुझे मार, यह रही मेरी छाती।"

श्यामघ के हाथ से छुरी गिर पड़ी। भयंकर आँखें आकर्षक हो उठीं। वह स्वर माता के मृदु स्पर्श-सा उसे सहलाने लगा। उसका गला आंसुओं में रुंध गया। जैसे-तैसे वह खड़ा हो गया और प्राण लेकर भाग निकला।

बड़े ठाठ-बाट से यज्ञ समारम्भ पूरा हुआ। माहिष्मती आनन्द में निमग्न हो गई। तब सम्वाद आया कि सहस्रार्जुन विजय प्राप्त करके लौट रहे हैं।

: ६ :

कृतवीर्य का प्रतापी पुत्र सहस्रार्जुन जब माहिष्मती के गढ़ में आ पहुँचा, तो उसके रोष का पार न रहा।

रावण के सैन्य को उसने हरा दिया था। चारों ओर उसका डंका बज रहा था, विजयी योद्धाओं को लेकर वह अपनी राजधानी को आ रहा था। पर उसका विजयोल्लास जाने कब से खट्टा हो चुका था।

मृगारानी और भृकुण्ड ऋषि के भेजे हुए संदेश उसे मिल जाया करते थे। भद्रश्रेण्य का दिन-प्रतिदिन बढ़ता हुआ प्रताप, शार्यातों का संहार, गोकर्ण-तीर्थ का उत्सव, राम और लोमा का विवाह आदि सारी घटनाओं का पता उसे लग गया था। जब उसने यह सुना कि मृगा ने भार्गव और भद्रश्रेण्य को माहिष्मती बुलवा लिया है, तो उसे रानी के इस बुद्धि-चातुर्य को स्वीकार कर लेने को बाध्य होना पड़ा। उसकी अनुपस्थिति में अनुप्रदेश में आंतर-विग्रह का होना बड़ी जोखिम-भरी बात थी।

पर भार्गव के प्रति उसका विद्वेष बढ़ता ही गया। इसके बाद कुछ अच्छा संवाद भी मिला। भद्रश्रेण्य एक भेद-भरी हत्या का ग्रास हुआ है और भार्गव भृकुण्ड तथा मृगारानी के अनुकूल होकर चल रहा है। पर ज्यों-ज्यों वह माहिष्मती के निकट आता जा रहा था, त्यों-त्यों गुरुदेव भार्गव की ख्याति और यज्ञ से लौटते हुए लोगों की भक्ति-भरी बातें

उसे सुनाई पडने लगी। उसने देखा कि भार्गव की मोहिनी की तरंगें चारों ओर फैल रही हैं। जहां-तहां उसकी बातें चल रही थीं। जिस गांव में भी वह छावनी डालता, वहीं भार्गव के चमत्कारों की चर्चा जन-जन में सुनाई पडती। लोग उसके नाम की बलायें लेने लगे थे।

इस गुरु भक्ति के प्रवाह ने उसके सैन्य को भी स्पर्श किया। महा-अथर्वण ऋचीक का शाप उतरा मानकर वे सब निश्चिन्त हो चले। जहां उसकी ललकार से लोगों के छक्के छूट जाते थे, वहां उनके हृदय में अब भार्गव के प्रति आशा और श्रद्धा ने अपना स्थान बना लिया था। सहस्त्रार्जुन को अपने स्वप्रताप का बडा ही तीव्र भान था। पर उसे दिखाई पडा कि लोक-हृदय से अब वह पद-भ्रष्ट हो गया है।

माहिष्मती पहुँचकर भार्गव को तुरन्त समाप्त कर देने के लिए उसका हृदय छटपटाने लगा।

जब वह माहिष्मती आ पहुँचा तो उसके स्वागत में उत्सव मनाया गया। उसमें भी जैसी चाहिए वैसी धाक, वैसा सम्मान और उत्साह का भाव उसे दिखाई न पडा। प्रत्येक जन के मुख पर एक अपरिचित आनन्द और आत्म-विश्वास का भाव था। जो स्त्री-पुरुष उसे लेने आये, वे पहले से भिन्न जान पडे। मृगा भी एक अनवृक्त-सा गौरव लेकर आई। भृकुण्ड ऋषि के हास्य में अब दैन्य नहीं था। राज-पुरुषों के मस्तक पर घमण्ड-सा झलक पडा। उसकी रानियों में भी एक तनाव-सा था। इस परिवर्तन से उसका कलेजा जल उठा।

"वह राम कहाँ है?" उसने पूछा।

सुनने वाले चकित हो गए। उसके इस ओछेपन से उनके हृदय को आघात पहुँचा, यह वह स्पष्ट देख सका।

"गुरुदेव पशुपति के स्थानक में हैं। आप अभी दर्शन करने आयंगे तो आपसे मिलेंगे ही सही," मृगा के स्वर में जो भक्ति का भाव था, वह उसने पहचान लिया। आर्यावर्त में जिस प्रकार गुरुओं के लिए सम्मान का भाव था, वही यहाँ भी व्याप्त हुआ-सा उसे दीख पडा।

"अभी दिखाए देता हूं," वह मन-ही-मन बुदबुदाया।

परम्परा में चली आई प्रणाली के अनुसार गढ़ में जाने से पहले विजयी राजा को पशुपति के स्थानक पर जाना ही पड़ता था। अतएव सहस्रार्जुन भी वहाँ गया। सारा गांव वहां एकत्रित था। बहुत से विदेशी भी वहा आये हुए थे। वहां इधर-उधर घुसकर बैठे भृगुओं की उपस्थिति को भी उसने ध्यानपूर्वक देखा।

पशुपति के लिंग के पास ही यज्ञ-कुण्ड के निकट भार्गव और भगवती लोमा बैठे आवाहन कर रहे थे। सहस्रार्जुन क्षण-भर चकित होकर देखता रहा, फिर धूर्ततापूर्वक उसने अपने मन के भावों को दबा लिया। सभी की आंखों में पूज्य भाव था। उसके साथ लौटे हुए महारथी भी इस वातावरण में प्रभावित हो उसी भाव का अनुभव कर रहे थे। उसने देखा कि नया सेनापति तालबाहु भी उसे सम्मान-भरी दृष्टि से देख रहा है। भार्गव को देख पल-भर के लिए सहस्रार्जुन के हृदय में दर्प का संचार हुआ।

सहस्रार्जुन को देखकर भार्गव और भगवती खड़े हो गए और भार्गव ने आगे आकर हाथ के संकेत से पशुपति को प्रणाम करने के लिए राजा को इंगित किया। सहस्रार्जुन ने अपने उबलते क्रोध को दबाया, पशुपति को दण्डवत् प्रणाम किया और सभी लोगों को जब उसने भार्गव को प्रणिपात करते देखा तो उसे भी नीचे झुककर नमस्कार करना पड़ा। भार्गव ने हाथ फैलाकर आशीर्वचन कहा—"राजा कार्तवीर्य, विद्या, तप और वीर्य में तेरे राज्य का उद्योत हो!"

सहस्रार्जुन ने जैसे-तैसे अपने क्रूर अट्टहास को थाम लिया। लोमा को देखकर जो उसकी आंखों में विद्वेष का ज्वार-सा उभर आया था, उसे उसने सम्हाल लिया।

फिर भी उसे इस बात का पूरा भान नहीं हो सकता था कि वह लड़का माहिष्मती, मृगा, भृकुण्ड और हैहयों पर कितनी बड़ी सत्ता स्थापित कर चुका है। जैसा क्रोधी और क्रूर वह था, वैसा ही चालाक

भी था। उसने अपनी उग्रता पर मिठास का आवरण डाल दिया, और वहां से हँसती हुई मुख-मुद्रा लिये विदा हो गया। भार्गव उसे स्थानक के द्वार तक जाकर पहुंचा आए। दोनों में से किसी ने एक शब्द का भी उच्चारण नहीं किया।

सहस्रार्जुन ने अपना सारा स्वरूप बदल डाला। गढ में जाकर वह मृगा के आवास में गया और हर्षपूर्वक अपनी विजय-वार्ता कह सुनाई। दोनों ने आनन्दपूर्वक भोजन किया। हर्ष और उत्साह के आवेश में मृगा ने सविस्तार सारी बातें सुनाईं। व्यापार और धन में वृद्धि हुई थी। लोगों में असंतोष नहीं था। अधीन राजागण यथेष्ट नियंत्रण में थे, आदि।

"भद्रश्रेण्य को छोडकर," सहस्रार्जुन ने हँसकर कहा।

"हाँ, पर आनर्तराज को सौराष्ट्र की चौकी सौंप दी गई है। भद्रश्रेण्य की बाधा दूर हो गई है। उसके दो लडके जो युद्ध पर गये थे वे मारे गए हैं। मधु मर गया है। अकेला प्रतीप ही कुछ यादवों को लेकर जंगलों में भटक रहा है।"

"—और वह छोकरा, मंदिर में बैठकर माहिष्मती का लाड़ला हो गया है!" सहस्रार्जुन ने जाल फैलाया। मृगा उसमें फँस गई।

"हां! गुरुदेव को मैंने अपना लिया है। उन्हें भृगुकुल का गुरुपद नहीं चाहिए। उनके कारण लोगों में भी परिवर्तन आ गया है। जो नित्य उपद्रव किया करते थे, वे अब गरीब गाय-जैसे हो गए हैं।"

"ऐसा?"

"हां! मैंने भी उनके साथ बहुत बातचीत कर देखी है। उन्होंने हमें सहायता देने का वचन दिया है। हमारे युवकों को वे शिक्षण देंगे। सरस्वती से रेवा तक हमारा राज्य कैसे सबल हो सकता है, यही विचार वे कर रहे हैं।"

"अच्छा, फिर?" ओठों को दबाकर सहस्रार्जुन ने पूछा।

"बस, तुम्हारे आने-भर की देर थी। तुम केवल हैहय संघ के ही

नहीं, प्रत्युत समस्त आर्यावर्त के चक्रवर्ती हो जाओ, इसी की प्रतीक्षा है।"

"और इस सब कृपा के बदले वे क्या चाहते हैं?"

"कुछ नहीं।"

"ऐसा? और तू क्या चाहती है?" सहस्रार्जुन ने ताने-भरे स्वर में पूछा।

"मुझे भला क्या चाहिए? तुमने मुझे क्या कम दिया है?"

धूर्त सहस्रार्जुन स्नेह की डली-सा हो गया—"ऐसे अवसर पर तुझे कुछ तो मांगना ही चाहिए न। मेरे लिए तू कितना श्रम उठाती है? धन्य भाग्य हैं मेरे कि तुझ-सी स्त्री मुझे मिली है। माँग, माँग, मांग मृगा, माँग," स्नेह से विह्वल होकर सहस्रार्जुन ने मृगा के बाल सहलाए।

चतुर मृगा भी उत्साह के आवेश मे भान भूल गई—"तुम ही मेरे सर्वस्व हो। तुम्हारा राज्य शाश्वत रहे—इसके अतिरिक्त मुझे और क्या चाहिए? और—"

"और क्या? संकोच मत कर···। मांग, जो भी मागेगी उसके लिए मना नहीं करूँगा।"

"तो—"

"तो—?"

"तो अग्नि की साक्षी मे मेरा पाणिग्रहण करो—"

सहस्रार्जुन का संयम जाता रहा। क्रोध और विद्वेष से उसका मुख विकृत और भयंकर हो उठा, और उसमे से हिंसक घुर्राहट-सी सुनाई पड़ी।

"दुष्टा!" क्रोध से उबलकर सहस्रार्जुन गरज उठा। मृगा घबड़ाहट मे अवाक् हो रही। "नीच! कुलटा! भिखारिणी! राह-राह भटक रही थी सो उठा लाकर यह सब-कुछ दिया है, वह भी कम पड़ गया? यह किसने सिखाया है तुझे? मेरे उस वैरी ने? और इसीसे अब तू उसकी होकर बैठी है?" उसने मृगा को एक थप्पड मारकर, चौकी पर से नीचे फेंक दिया, "तुम दोनों सामंतो पर नियंत्रण करोगे, जंगलो का

भेदन करोगे, नया आर्यावर्त बनाओगे—और तुम्हारे हाथ की कठपुतली बनकर मैं चक्रवर्ती-पद भोगूंगा, यही न ? अब समझ में आया है मुझे कि भार्गव की भक्ति तुझमें क्योंकर जागी है। मेरे साथ विवाह किया चाहती है तू? राह-राह भटकने वाली—"और सहस्रार्जुन ने सूजा हुआ मुख लिये, भूमि पर पड़ी रोती हुई मृगा को फिर एक तानकर लात मारी—"मेरे राज्य में—मेरे जीते-जी—तू राज्य करेगी ? ठहर अभी बताता हूं—"

सहस्रार्जुन के क्रोध का मृगा को यह पहला ही अनुभव नहीं था। क्रोध के आवेश में उसे बोलने का भान न रहता। पर वह राह-राह भटकने वाली है और उसकी रखेल है, इस बात का स्मरण उसने उसे कभी नहीं कराया था। आज ये शब्द सुनकर मृगा को चोट पहुँची और वह क्रन्दन करने लगी।

"चुप कुलटा," उसने फिर लात मारी, "अभी मैं तुझे ठीक किये देता हूं।" एक ताली बजाकर उसने अनुचर को बुलाया।

"सेनापति तालबाहु को बुलाओ।"

तालबाहु आया और हाथ जोड़कर खड़ा रह गया।

"तालबाहु!" सहस्रार्जुन ने उत्तेजित स्वर में कहा—"सब नायकों को गढ़ में एकत्रित करो। सैनिकों की टुकड़ियां नगर में चारों ओर भिजवा दो। मेरी आज्ञा के बिना यदि कोई भी नगर के बाहर जाय तो उसका वध कर डालो।"

चक्रवर्ती की आंखों को रक्ताक्त देखकर तालबाहु विस्मित हो गया।

"जैसी आज्ञा," वह गुनगुनाया।

"और पशुपति के स्थानक पर जाकर उस भार्गव को बुलाकर ले आ। कहना कि सहस्रार्जुन ने आपको आमंत्रित किया है," उसने तिरस्कारपूर्वक कहा—"और जब वह यहां आवे तो उसे पकड़कर मेरे पास ले आना। और उसकी स्त्री पर पहरा रखने के लिए किसी को नियुक्त कर देना।"

शकित हृदय से तालबाहु ने कहा—"जैसी आज्ञा !"

"और तू दुष्टा !" चक्रवर्ती ने मृगा से कहा—"तू यहां से हटेगी तो तेरे प्राण ले लूंगा।" फिर एक लात मारकर वह वहां से चला गया।

: ७ :

सहस्त्रार्जुन के स्थानक छोडते ही भार्गव ने भगवती को अपने पास बुलाया—"सहस्त्रार्जुन हमसे निस्तार पाने का उपाय सोच रहा है। उसके हृदय में भारी विद्वेष है।"

"क्या करेगा वह हमारा ?"

"हमें जो करना होगा, वह मुझे स्पष्ट सूझ रहा है। तू और विमद अखाड़े में जाकर घोडो को तैयार करो। वह कुछ भी करने का निर्णय करे, उससे पहले ही तुम्हे यहां से निकल भागना है।"

"और तुम ? तुम्हे छोडकर मै कैसे जा सकूंगी ?"

"तुम न होगी, तो मै अधिक निरापद हो सकूंगा।"

"यहां रहकर क्या लाभ है ?" विमद ने सम्मानपूर्वक पूछा।

"विमद, मेरा स्थान तो यहीं है। मैं अभी नही हटूंगा। मेरी चिंता मत करना। तुम रहोगे तो मुझे तुमसे रक्षित होकर रहना पडेगा। और तुम नहीं रहोगे तो मेरा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकेगा।"

"भार्गव ! तुम्हे छोड़कर मैं कैसे जा सकती हूँ ?" भगवती ने दीन स्वर में पूछा।

"भगवती ! तुम्हे आवश्यकता पडने पर भार्गवो और यादवो को सुरक्षित रूप से आर्यावर्त ले जाना होगा। मही के तट पर भद्रश्रेण्य ठहरा हुआ है। उसे साथ लेकर प्रतीप से जा मिलने मे देरी नहीं लगेगी। आवश्यकता पडने पर मै भी आ मिलूंगा।"

दोनो ने चुप रहकर भार्गव का निर्णय स्वीकार कर लिया, और उसे सक्रिय रूप देने का विचार करने लगे। तदुपरान्त विमद भृगुओं के अखाड़े पर चला गया।

कुछ ही देर में गुरु भृकुण्ड आये। उनका मुख पीला पड गया था, और ओठ काप रहे थे। भार्गव समझ गए और उठकर उनके पास आये।

"क्यो, क्या बात है?"

"मर गए!" भृकुण्ड ने कहा।

"क्या महस्त्रार्जुन क्रुद्ध हो गए है?" भार्गव ने पूछा।

"हां! अभी-अभी मृगारानी का संदेशा मिला है। सेनापति तालबाहु हम दोनो को बुलाने आ रहे हैं। चक्रवर्ती के क्रोध का पार नही है। आप दोनो सकट में है। माहिष्मती से भाग निकलो—"

"इस संदेश की तो मुझे प्रतीक्षा ही थी," भार्गव ने कहा।

"गुरुदेव!" भृकुण्ड ने हाथ जोडकर कहा—"तो आप जाते क्यों नही? इस वय मे क्या कुलपति की हत्या मुझे अपनी आंखो देखनी होगी?" वृद्ध की आंखो मे टप-टप आंसू टपकने लगे।

"मेरी हत्या करनेवाला कोई जन्मा ही नही है, लोमा!" भार्गव ने कहा—"अब विलम्ब न कर।"

"भार्गव!" गद्‌गद् कण्ठ से भगवती बोलीं।

"भगवती, बात करने का समय नहीं है। जाओ!" भार्गव ने उस के कंधे पर हाथ रखा। क्षणमात्र में ही भगवती उठकर वहां से भागीं, पास ही बँधे घोडे पर वे चढ़ बैठीं और साश्रुनयनो से विदा मांगती हुई अदृश्य हो गईं। भार्गव ने हाथ ऊंचा कर आशीष दिया।

"गुरुदेव! मेरा क्या होगा?" भृकुण्ड ने कहा।

"कुछ भी होने को नही है। अधर्म का नाश होगा, और क्या?" भार्गव हँस पडे।

"भृकुण्ड बैठ गए, गुरुदेव मुझे बीच में न लाना।"

भार्गव खिलखिलाकर हँस पड़े—"इस वय मे भी प्राण प्यारे हैं?"

एक शिष्य दौडा हुआ आया, "गुरुदेव, सेनापति तालबाहु आपके दर्शनो के लिए आये है।"

"अवश्य बुला उन्हें। मैं मिलने को उत्सुक हूँ।"

"आये होंगे। मैं जाता हूं," सिर डुलाते हुए भृकुण्ड अपने आश्रम में चले गए।

ऊंचे कद का, विशाल वक्ष, भयजनक तालबाहु खिन्न नयनों से स्थानक में आया और भार्गव के पैरों पड़ा।

"शत शरद् जियो सेनापति!" भार्गव ने आशीर्वाद दिया और सेनापति को उठा लिया।

"गुरुदेव, चक्रवर्ती ने आपको आमंत्रित किया है। कृपा करके गढ में पधारिए।"

"मैं निमंत्रण की ही प्रतीक्षा में था। पर यह काम तुम-जैसे व्यक्ति से करायंगे, यह मैंने नहीं सोचा था," कहकर भार्गव परशु हाथ में लेकर चल पड़े।

तालबाहु गुरुदेव को देखता रह गया। उसके ठप्पे में ढले हुए हृदय में भी पूज्य भाव से भरे स्नेह का संचार हो गया। इन गुरु ने माहिष्मती पर नया ही रंग चढ़ा दिया था। किसलिए सहस्रार्जुन इतना रक्त-पिपासु हो उठा है! और कैसा वीर है यह! पलमात्र भी झिझके बिना यह सिंह के मुँह में घुँसने को तैयार हो गया है। क्या वह उसे बचा नहीं सकता है? सेनापति का जी चाहा कि वह उसे चेतावनी दे। पर उसने संसार देखा था। भद्रश्रेण्य के पतन के कारण ही वह चक्रवर्ती का कृपा-पात्र हो सका था। अपने भविष्य को वह जोखिम में डालने को तैयार न था। चुपचाप वह भार्गव के पीछे-पीछे स्थानक से बाहर आया।

"सेनापति!" भार्गव ने कहा, "तुम्हारे पराक्रमों की बात कई बार भद्रश्रेण्य के मुंह से सुनी है।"

तालबाहु की स्वार्थ-वृत्ति तिरोहित होने लगी।

"यादवराज के तो मुझ पर चारों हाथ थे।" प्रौढ़ योद्धा के गले में

आँसुओं की कातरता ध्वनित हुई। वह खड़ा रह गया—"गुरुदेव, एक याचना करूं?"

"क्या?"

"आश्रम के पिछले द्वार से भृगुओं के अग्वाड़े पर जाया जा सकता है, और वहाँ से अंधेरा होने के पहले माहिष्मती से बाहर भी निकला जा सकता है। आपके घोड़े को वहाँ अधीर खड़ा देख रहा हूँ। स्थानक के बाहर मेरे आदमी हैं। फिर कुछ होने को नहीं है। अभी तो मेरी आँखें बन्द ही समझिए।"

भार्गव ने हँसकर स्नेह से तालबाहु के कन्धे पर हाथ रखा—"वीर-श्रेष्ठ! तुम्हारी आँखें मैं बन्द नहीं रखना चाहता, खोलना चाहता हूं। तुम-जैसे मेरे सभी शिष्य यदि मुझे मारने को तैयार होंगे तो फिर मुझे जाना ही किसलिए है?"

"पर क्रोध में आकर चक्रवर्ती जाने क्या कर डालें, सो क्या कहा जा सकता है?"

"उनके क्रोध को तो मुझे जीतना ही है न!"

तालबाहु चुप रहा। उसने मन-ही-मन मनौती मानी—गुरुदेव बच जायंगे, तो पशुपति को सौ गायें अर्पण करूंगा।

सहस्रार्जुन प्रचण्ड गदा लेकर, इधर-से-उधर छलांगें भर रहा था। उन्माद से उसकी आँखें चकरा रही थीं। उसके हाथ की शिराएं काँप उठी थीं।

उसके सामने दैवी अधिकार से भरे भार्गव अभेद्य खड़े थे। उनके हाथ पीछे से बंधे हुए थे। पैरों में भी रस्सियां बंधी थीं। हाथ में खड्ग लेकर आठ व्यक्ति उनके आस-पास खड़े थे। पास ही तालबाहु खड़ा था।

"लड़के! अब तेरी घड़ी आ पहुंची है," सहस्रार्जुन ने कहा, "एक बार, दो बार, तीन बार मैंने तुझे छोड़ दिया। पर मौत जब आ जाती है, तो सिंहनी स्वयम् बाड़ पर जाती है। अब नहीं छोड़ूंगा।" उसकी

विकराल आँखों में रक्त तैर आया था।

भार्गव का एक भी रोंआ न फड़का। केवल उसकी आँखों से तेज की सरिता बह रही थी।

"कृतवीर्य के पुत्र!" उन्होंने धीमी स्पष्टता से कहा—"बाँधने और छोड़ने वाला तू कौन है? तू पागल हो गया है। गुरु को बाँधने वाले! बंधन स्वयम् नाग बनकर अपने विष से तुझे डसेंगे।"

"तू मेरा विनाश करेगा?"

"तू अपने ही हाथों अपना विनाश कर रहा है।"

"चुप रह।" सहस्रार्जुन दहाड़ उठा—"तू मेरे और लोमा के बीच में आया। तूने भद्रश्रेण्य को मेरा द्रोही बनाया। तूने मेरे शार्यातों को मारा। मृगा को मेरी वैरन बनाया। तू—तू विषैले नाग के समान है।"

"अर्जुन! मैं तो तेरा और तेरे कुल का गुरु हूं। मैं तुझे तारना चाहता हूँ। पर तेरी आँखें ही अंधी हो रही हैं, उसका मैं क्या करूं?"

"तू मुझे तारने आया है?"

"तेरा उद्धार करना ही मेरा परम धर्म है।"

"मुझे तेरा उद्धार नहीं चाहिए।"

"अर्जुन! समझ और संयम से काम ले। मैं तुझे उद्धार का पथ दिखाने आया हूँ। तू त्रास के बल पर प्रजा को अपने नियंत्रण में रखता है, मैं उसे प्रेम से पागल बना सकता हूं। तू कलह कर सकता है; मैं तुझे शांति की शक्ति दे सकता हूं। तू अंधकार में डूबा हुआ है, मैं तुझे विद्या सिखा सकता हूं। इस जंगली राजचक्र को छोड़ दे। मेरा कहा मान। मैं तुझे धर्म द्वारा सुरक्षित राज्य दिलवाऊंगा, चल मेरे साथ।"

सहस्रार्जुन कठोरतापूर्वक हँस पड़ा—"तू मुझे क्या दिलवायगा? मैं तुझे कौवे-कुत्ते की मौत मारूँगा।"

"तू एक तिल भी इधर-से-उधर नहीं सरक सकता," भार्गव ने कठोरतापूर्वक कहा। "तू जब मरने पर ही उतारू हो गया है, तो

तुझे कौन रोक सकता है ? तेरे दादा ने महाअथर्वण का शाप न्योता था। आज तू मेरा शाप न्योत रहा है। तू अपने पाशविक मद में उन्मत्त है; अपनी ही स्वेच्छा को तू धर्म मान बैठा है। कार्तवीर्य, मैं तुझे शाप देता हूं— "

हैहयगण कांप उठे। गदा उठाकर सहस्रार्जुन आगे बढ़ा, "तू मुझे शाप देगा

भार्गव एक पग आगे बढ़ आये। उनकी आँखों से बरसती-हुई अग्नि की ज्वालाएं सहस्रार्जुन को दग्ध करने लगी। एकाएक वह पीछे की ओर खिसका, और उसकी आंखो मे भय व्याप्त हो गया।

"तू मरेगा कुत्ते की मौत, तेरे हैहय मरेंगे जंगल-जंगल भटक कर। कालान्त तक तेरा नाम मनुष्यों के बीच पिशाच के रूप मे स्मरण किया जायगा।" उग्रता से कम्पायमान भार्गव का स्वर सबके हृदयों में एक भयंकर प्रतिध्वनि कर उठा।

अर्जुन के मुँह से झाग निकल आई। उसने एक विनाशक उन्माद मे चारो ओर देखा—हैहयो के मुख पर भय छा गया था। एक सैनिक के हाथ मे खड्ग गिरता दिखाई पडा। तालबाहु बीच मे पडने को तत्पर खडा था। उसे स्मरण हो आया कि ऐसे ही समय भद्रश्रेण्य भी उसे मारने आया था।

"जा, जा!" भार्गव गरज उठे, "मैं तेरा उद्धार करने आया था, पर तूने मेरा हाथ नहीं पकड़ा। जा, जा उस अधोगति मे जहां चाण्डाल भी न जा सके।"

सहस्रार्जुन की आंखो में अँधेरा छा गया। भार्गव की आँखें उसे भेद रही थीं। उसके हृदय मे निराशा व्याप्त हो गई। जब वह भार्गव को मारने जा रहा था, तब उसके साथ कोई नहीं था। जिस हाथ से उसने गदा को पकड रक्खा था, वह हाथ शिथिल हो गया।

"तालबाहु, इसे ले जा। इसे इसी क्षण तलघर मे बन्द कर दे।

देखना, भाग न निकले !" और हाँपता हुआ सहस्त्रार्जुन वहाँ से चला गया।

तालबाहु भार्गव को तलघर में ले गया।

"गुरुदेव !" उसने सम्मानपूर्वक कहा, "बन्धन ढीले कर दूं ?"

"जैसी तेरी इच्छा।"

"आवश्यकता जान पड़े तो मैं बाहर ही खड़ा हूँ।"

भार्गव के मुख पर मंद हास्य छा गया।

कुछ ही देर बाद मृगारानी और तालबाहु तलघर में आये। रानी का मुख सूजा हुआ था।

"गुरुदेव ! गुरुदेव !" मृगा कातर हो उठी, "क्या सहस्त्रार्जुन को शाप दिया है ? जब भी वे ऐसे आवेश में आ जाते हैं तो पागल ही हो जाते हैं। पर आपने यह क्या कर डाला ? क्षमा करिए ! क्षमा करिए !"

"मृगारानी, जो काल के मुंह में जाना ही चाहता है उसे तुम कैसे बचा सकती हो ?"

"गुरुदेव ! उनका आवेश शांत होने पर मैं उन्हें समझा दूंगी, उन के पैरों पड़ूंगी। तालबाहु उनके पैरों पड़ेंगे।"

"रानी !" भार्गव ने कहा, "वह तो मूर्तिमान अधर्म है। उसका तो विनाश होकर ही रहेगा।"

मृगा रो पड़ी—"तो एक काम करिये। आप यहाँ से चले जाइए। वे क्रोध में पागल हो गए हैं। न जाने कब वे क्या कर बैठें, सो कौन कह सकता है ? गुरुहत्या से तो उन्हें उबार लीजिए। मेरे लिए ही सही। वे मेरे स्वामि और प्राण हैं। उन्हें उबार लीजिए। गुरुदेव, आप चले जाइए। मैं रास्ता बनाती हूं। मैं आपके पैरों पड़ती हूं।" कहकर मृगा भार्गव के पैरों पर गिर पड़ी।

"मैं तो तुम्हारा गुरु हूँ। तुम मुझे छोड़कर जा सकते हो, पर मैं तुम्हें छोड़कर कैसे जा सकता हूँ ? मुझे यदि वह मारेगा भी तो मेरे रक्त की बूंद-बूंद में से हैहयों का उद्धारक जन्मेगा।"

"भगवती तो चली ही गई है। आप भी कुछ दिनों के लिए चले जाइए।"

"मुझसे और कहना निरर्थक है। सहस्राजु न पृथ्वी का भार बन गया है। उसका उद्धार संभव नहीं; संहार के अतिरिक्त और कोई मार्ग उसके लिए नहीं है।"

"लेकिन वह आपको न जाने क्या कर बैठे ?"

"—तो हैहयमात्र उसका प्राण ले लेंगे।"

"इसी बात का मुझे डर है।" मृगा ने भार्गव के पैर पकड लिए। "कुछ दिन के लिए आप चले जाइए। उनका क्रोध शांत हो जायगा तभी मैं उन्हें मना लूंगी। गुरुदेव! इस पापिनी के लिए—"

"मैं चोर की भांति नही जाऊंगा।"

"अभी कुछ देर मे अंधेरा हो जायगा। मैं नाव तैयार रखवाती हूँ, उसी मे बैठकर आप चन्द्रतीर्थ चले जायं। मै प्रयत्न करूंगी कि थोडे ही दिनों में वे स्वयम् आपको फिर बुला लें। मुझ पर विश्वास रखिए। ये हैहय योद्धा भी यही विनती कर रहे है। तालबाहु से पूछ लीजिए। आपको यदि कुछ हुआ तो हैहय कुछ-का-कुछ कर बैठेंगे।"

"गुरुदेव!" तालबाहु ने हाथ जोडकर कहा, "हमने निश्चय कर लिया है कि आपका बाल भी बांका नहीं होने देंगे। पर इस आवेश मे चक्रवर्ती न जाने क्या कर बैठें। वैसा होने पर किसीका भी हाथ में रहना कठिन है।"

"यदि तुम्हारी भी यही इच्छा है तो मैं कुछ दिनो के लिए चन्द्र-तीर्थ चला जाऊंगा।"

: ८ :

सहस्राजु न ने अपने नायकों को गढ़ के प्रांगण मे एकत्रित किया। तुंडीकेरा जाति का राजपुत्र—रुरु—राक्षस के समान भयानक रूप लिये अपने तुंडीकेरा नायकों को साथ लेकर एक ओर खड़ा था। सहस्राजु न

ने हैहय नायकों का मन पहचान लिया था और इसीलिए रुरु को अपना दाहिना हाथ बना लिया था। सेनापति तालबाहु और हैहय सेनानायक भी चक्रवर्ती के अविश्वास-भाजन हो चुके थे, और रुरु की ओर विद्वेष-भरी दृष्टि से देख रहे थे।

सहस्रार्जुन उग्र और विकराल लग रहा था। उसने नायकों से कहा—"ये भृगु लोग मेरा राज्य छीनने के लिए यहां एकत्रित हुए हैं। और यह छोकरा गुरु नहीं है, प्रत्युत हमारा वैरी है।" तालबाहु और सेनानायकों ने एक-दूसरे की ओर देखा। "मैं उसका अन्त करूंगा। तालबाहु! उसे ठीक से बन्द कर दिया है न?"

"हां अन्नदाता!"

"अंधेरा होने पर अपनी टुकडियां लेकर एक बार फिर जाना। जो भी भृगु मिले उसका शिरच्छेद कर देना। एक भी पुरुष, स्त्री या बालक बचकर निकल न जाय। भार्गव ने शार्यातों को निर्वंश किया है। मैं अब भृगुओं को निर्मूल करूंगा।"

कोई कुछ बोला नहीं।

"गुरु भृकुण्ड कहां है?"

"अभी आते हैं," तालबाहु ने कहा।

"उसे और उसके शिष्यों को छोड़ मत देना। वह तो मैं जो कहूंगा वही करेगा।" चक्रवर्ती विनाशोत्साह में हाथ मलने लगा, "कल सवेरे पता लगेगा कि सहस्रार्जुन कौन है!"

इतने में दो नायक भृकुण्ड को बुलाकर ले आये।

"आइए गुरुजी!" सहस्रार्जुन ने तिरस्कारपूर्वक उनका स्वागत किया, "आपको इस गढ़ से बाहर नहीं जाना है। और वह लोमा कहां है?"

नायक ने हाथ जोड़कर कहा—"सेनापति जब भार्गव को बुलाने गये तब वे वहां नहीं थीं। अब तक उनकी राह देखी, पर वे तो अभी तक आईं ही नहीं।"

सहस्रार्जुन ने अपने खड्ग की मूठ उस नायक के मुंह पर दे मारी—"तो कौनसा मुंह लेकर मेरे पास आया है। यदि वह मेरे हाथ से निकल गई, तो तेरे प्राण ले लूंगा।"

"रुरु, चारों ओर घूम जा। लोमा को इस बार अपने हाथ से जाने नहीं दूंगा।"

हैहय नायक चुपचाप खड़े थे—असन्तुष्ट और क्षुब्ध। सहस्रार्जुन अनुक्रम से उनको घूर रहा था।

अस्तंगत लाल सूर्य की किरणें सामने के कंगूरे पर पड़ रही थीं। "देखना! ध्यान रहे इस राम भार्गव का कोई नाम-चिह्न भी रहने न पाए" और सहस्रार्जुन मानो पागल की भांति उस कंगूरे की ओर आंखें फाड़कर देखता रह गया। सबकी आंखें उसी ओर जा लगीं।

कोट के कंगूरे पर अस्तंगत सूर्य की किरणों ने एक तेज-पुंज रच दिया था। उसमें एक परशु दिखाई पड़ा। सूर्य की किरणें उसमें से तेज प्रस्फुरित कर रही थीं। उसके उपरान्त जटा दिखाई पड़ी—और उसके पश्चात् वह ऊंचा शरीर। सबकी आंखें अपलक ठहरी थीं।

भार्गव कंगूरे पर खड़े थे। उनका मुख सहस्रों सूर्यों के समान दीप्त था। उनके परशु में से किरणें फूट रही थीं। उनका प्रलम्ब शरीर अस्तंगत सूर्य के प्रकाश में गगन का स्पर्श करता-सा दीख पड़ा।

सभी देखनेवालों के हृदय स्तंभित हो गए। सहस्रार्जुन के हाथ में से खड्ग गिर पड़ा।

धीर गति से और भभकती आंखों से भार्गव कंगूरे से नीचे उतरे, और मूक नायकों के समूह के बीच होकर गढ़ से बाहर निकल गए।

उनके जाते ही सबकी आंखें खुलीं। भयंकर चमत्कार की धाक उनके हृदय में बैठ गई थी।

पहले सहस्रार्जुन भान में आया। वह चिल्ला उठा—"क्या देख रहे हो? पकड़ो! पकड़ो!" कोई भी हिला नहीं।

"तालबाहु देख तो वह तलघर में है या वहां से भाग गया?"

तालबाहु वहां से खिसक गया। धाक से व्याप्त मौन एकाएक भंग हुआ। सभी दौड़ने-चिल्लाने लगे। सहस्त्रार्जुन दौड़ता हुआ कंगूरे पर चढ़ गया। अँधेरा होने आया था। पशुपति के स्थानक के झाड़ों की छाया में एक परछाईं धीरे धीरे विराट होती जा रही थी।

सहस्त्रार्जुन देखता ही रह गया, मानो भूमि के साथ जड़ित हो गया हो।

दो

गुरु उड्डनाथ अघोरी

: १ :

सहस्रार्जुन के हृदय में व्याप्त हुआ आतंक थोडी ही देर में जाता रहा। वह किसी की धाक मान गया था, उसी के प्रत्याघात स्वरूप एक प्रचंड कोप उसे सिर से पैर तक दग्ध कर रहा था। निर्बल पति जिस प्रकार अपना शूरत्व अपनी पत्नी पर दिखाता है, ठीक वैसे ही उसे अपनी सारी उलझन और अपमान का मूल मृगा में दिखाई पडा।

मृगा ने भद्रश्रेण्य और भार्गव दोनों ही को पटा लिया है। उसीने उन्हें यहाँ सम्मानपूर्वक बुलवाया था। भद्रश्रेण्य मर गया कि जीवित है, सो भी निश्चय नहीं था; मृगा ने ही उसे छिपा रखा हो, क्या आश्चर्य है। उसने ही भार्गव की पूजा को भी प्रचलित किया है। उसने ही भार्गव को गुरु बनाकर उसकी पटरानी बनने का दुष्ट संकल्प किया था। उसीकी सहायता से भार्गव इस क्षण भाग गया है। सहस्रार्जुन को स्पष्ट समझ में आया कि यह कुलटा भार्गव के मोहपाश में पड गई है।

मृगा का सारा जीवन उसकी आंखों के आगे तैर आया। वह जब सोलह वर्ष का था, तो अपने मित्रों के साथ भोग-विलास की खोज में स्वच्छन्द भटका करता और अपनी विषय-तृप्ति के लिए अधम-से-अधम साधन निकालता। प्रचंड विषय-वासना से प्रेरित राजकुमार के सेवक-गण पापाचार की अकल्प्य बाराखडी सिखाया करते।

उस समय मिली उसे मृगा—बारह वर्ष का, रूपसी, मदमाती, और उस वय में ही विलास की उत्कट कला में निष्णात। अर्जुन उस लडकी

के मोह मे पड गया। उस बालिका के स्वभाव मे उसकी प्रत्येक वासना के प्रतिबिम्ब झलकाने का वैविध्य था। वह चतुर थी, पक्की थी, और अर्जुन की धूर्तता और विद्वेष को आवश्यकता पडने पर पुष्ट कर सकती थी। उसकी विलास की भूख सहज ही शमित होने वाली नही थी। सोलह वर्ष की वय मे ही सहस्त्रार्जुन अतुल शक्ति और प्रमत्तता का स्वामी था, फिर भी उस छोकरी की कामाग्नि के सामने वह मोम की भाँति पिघल गया।

भद्रश्रेण्य को छोडकर उसकी युवावस्था मे स्वच्छन्दता पर रोक लगाना किसी के बस का नहीं था। पर मृगा के विषय मे तो उसका भी कुछ बस चल नही सका था। उद्धत लडकों की संगति मे, इस लडकी की प्रेरणा से सहस्त्रार्जुन अकल्पनीय उपद्रव किया करता और आनन्द मनाया करता। क्षण-भर के मनोरंजन के लिए वह लोगो के घर तोड देता, स्त्रियों को उडा ले जाता, निर्दोषो के प्राण ले लिया करता। दिन-रात वह और मृगा जो चाहते करते, और अकल्प्य क्रीडाओ से रेवा को अपवित्र किया करते। सहस्त्रार्जुन ने अनेक स्त्रियो को भ्रष्ट किया था, पर वह मृगा को छोड न सका। मृगा के प्रकाश मे विहरने के बाद अन्य स्त्रियो की संगति उसे जुगनू के उजाले-सी चंचल और क्षुद्र लगी।

मृगा की मोहिनी से बचाने के लिए एक बार भद्रश्रेण्य उसे सौराष्ट्र ले गया, और उसके अभिमान और वासना को संतुष्ट करने के लिए सारे साधन जुटा दिए। तिस पर भी ग्यारहवें दिन सबको छोडकर, अकेला माहिष्मती आकर नगर के छोर पर रहती हुई मृगा के गले से जब वह लिपट गया, तभी उसके प्राण-मे-प्राण आए।

सहस्त्रार्जुन यदि मृगा को न मिल पाता तो वह शिथिल, हतवीर्य और निरुत्साह हो जाता। मृगा अर्जुन को सहस्त्रार्जुन होने की श्रद्धा का दान किया करती। उसकी उन्मत्त आँखें, उसका मोहक हास्य, और उसके शरीर से निदरती हुई मोहिनी, उसे देव-सा बना देती। कई बार वह मृगा को मारता, उसके साथ झगडता, खटपट और षड्यंत्र के दाव

रचना, और किसीने भी न भोगे होगे, ऐसे विलास खोजता और किया करता। पर उन्माद का नशा जब उतर जाता तो वह थककर ढेर हो जाता। पर थका-हारा वह जब अर्धनिद्रित होता और पास ही पड़ी हुई मृगा की चोटी को हाथ मे लेकर उसमे अपनी उँगलियाँ उलझाता तो उसे प्रतीति होती कि जगत का स्वामित्व उसका अपना है।

सहस्त्रार्जुन जानता था कि मृगा के भीतर अतृप्त कामवासना है। वह जब भी माहिष्मती से बाहर जाता तो वह किसके साथ विलास करती होगी, यह विचार उसे विह्वल कर दिया करता। मृगा के विलास की कोई बात जब उसके कानो पर आती, तो कई बार वह खड्ग लेकर उसका और उसके प्रणयी का शिरच्छेद करने जा पहुँचता। पर प्रत्येक बार उसे देखते ही, उसके शरीर की परिचित सुवास को सूँघकर, उसके नेत्र-तेज में वह उलझ जाता और उसके हाथ से खड्ग छूट पड़ता। क्रोध मे आकर वह उसे मारता और मारी हुई मार की वेदना को वह चुम्बनो द्वारा मिटाया करता।

मृगा सहस्त्रार्जुन की रखेल नहीं थी, वह तो उसकी गुरु थी। जब राज्य का कार्य-भार उसने उठा लिया, तो मृगा उसकी राजगुत्थियों को भी सुलझाने लगी। अभिमानी और उच्छृङ्खल भानजे की राजनीति-दक्षता के मूल मे कौन था, यह खोज निकालने में भद्रश्रेण्य को देर नही लगी। मृगा के भीतर सहस्त्रार्जुन के विष का उतार उसने पहचाना, तो उसे उसने सुरक्षित स्थान दिलवा दिया और उसके साथ परिचय बढाने लगा। एक वर्ष के अन्दर ही उस राजनीति-विशारद ने मृगा को सहस्त्रार्जुन की अपरिणीता पटरानी, मित्र और महामन्त्री के रूप मे स्वीकार कर लिया, और मृगा की एकनिष्ठ बुद्धि और महत्वाकांक्षा को भानजे की उन्नति साधने के उपयोग मे लेने लगा।

यह सब सहस्त्रार्जुन जानता था। उसे मृगा में सम्पूर्ण विश्वास था। वह यह भी जानता था कि उसीके कारण उसका राज्यतन्त्र व्यवस्थित रूप से चल रहा था और आज तक भी मृगा की एकनिष्ठता में

उसे रंच-मात्र भी दोष नहीं दीखा था। पर आज उसका समूचा विश्वास विचलित हो गया। इस भार्गव के प्यार में वशीभूत होकर उस स्त्री ने इतने वर्षों के उपरान्त उसे धोखा दे दिया।

उसकी कल्पना में राम और मृगा के विलास के चित्र खड़े हो गए। मृगा को देहान्त-दण्ड देने का दृढ़ संकल्प करके, हाथ में दृढ़तापूर्वक खड्ग पकड़कर वह मृगा के आवास में गया।

मृगा अपने आवास में अपना सूजा हुआ मुंह सहलाती हुई बैठी थी। युवावस्था में मृगा के स्वभाव में प्रचंड विलास की भूख थी। तृष्णा से वह छटपटाया करती। उसके अधरों में अटूट चुम्बनों की मोहिनी थी। उसकी निडर आंखों में धृष्ट व्यवहार की आकांक्षा थी। ज्ञानियों के द्वारा सदा से निंदित स्त्रीत्व का वह सत्य रूप थी। विषयी, भयंकर, सर्वभक्षी, प्रत्यक्ष राक्षसी की भांति वह चित्त का हरण करती, वीर्य का हरण करती और सर्वस्व हर लेती। पर कुछ वर्षों से वे शक्तियां पराधीन हो चली थीं। सहस्रार्जुन की वह दासी थी। जंगली प्राणी जिस प्रकार किसी स्वामी के वश होकर उसकी सेवा करता है, ठीक वैसे ही वह सहस्रार्जुन की सेवा और सम्हाल किया करती। इसमें अपने आत्म-गौरव की मर्यादा उसने नहीं रखी थी। जब भी आवश्यकता पड़ती, उसके पास आकर्षक युवतियों को भेजने में भी उसे झिझक न होती। उसे राज्य, धन या प्रतिष्ठा की चिन्ता नहीं थी। जितने अंशों में सहस्रार्जुन का प्रभाव बढ़ सकता था, उतने ही अंशों में वह सबको चाहती। कभी-कभी किसीकी चंचल मोहिनी में वह भी विलास कर लिया करती। पर उसका नस-नस की तृप्ति तो हैहयराज के अतुल प्राबल्य के बिना न हो पाती।

भार्गव को देख पहले तो उसकी विलासाकांक्षा धधक उठी। ऐसा मोहक युवक उसने कभी नहीं देखा था। पर पल-भर मोह के वश हो कर भी उसे भार्गव का व्यक्तित्व कुछ निराला, अस्पृश्य और अप्राप्य ही जान पड़ा। उसके शब्द सुनकर ही वह आजन्म शूद्रता से ऊपर उठकर

किसी अपरिचित और उन्नत प्रदेश में विहरने लग जाती। वह मुख, वह गौरव, वह निर्भयता, वह तेजस्वी शरीर उसकी आंखों-आगे तैरा करते। पर इस प्यास में अविनय या वासना नहीं थी। कहीं भार्गव की मोहिनी वासना से भ्रष्ट न हो जाय, ऐसा अपरिचित भय भी उसे लगा करता।

कभी-कभी उसे ऐसे विचार भी आया करते कि वह भार्गव और सहस्रार्जुन का सहचार साधकर, स्वयम् एक की गुरुभक्ति और दूसरे के प्रेम से अप्रत्याशित आकांक्षाएं क्यों न सिद्ध करे। पर पहले ही प्रयत्न में वह धारणा मृग-जल सिद्ध हुई। वह तो एक रखैल स्त्री थी, उसे भला विवाह करने की साध क्यों होनी चाहिए? उसे निश्चय हो गया कि मन में यह साध संजोकर उसने मूर्खता ही हुई है। पर पल-भर की इस चाह ने उसे आत्म-निरीक्षण का पाठ पढाया, वह क्या पटरानियों से कम पवित्र थी? उसने कौन कम सेवा की थी, कौन कम तादात्म्य साधा था?

सहस्रार्जुन के प्रति उसके मन में विरक्ति नहीं जागी थी। उसके क्रोध से स्वयम् बचना तथा औरों को बचाना, यह तो उसकी प्रतिदिन की जीवनचर्या थी। उसे इस बात का भी निश्चय था कि अपना क्रोध उतरने पर वह निश्चय ही उसके पास आयगा।

सहस्रार्जुन को विद्वेष-भरा मुख लेकर द्रुतपग आते हुए देख मृगा उसे वश करने को तत्पर हो रही।

"कुलटा! वेश्या! राम के विचार में मग्न है? उसके साथ किये हुए रंग-रागों को याद कर रही है?"

"नहीं, मैं तो तुम्हारा विचार कर रही हूँ।" वह चौकी पर से उठ खडी हुई।

"झूठी! लंपट! मेरे शत्रु के अधीन होकर मेरा ही सर्वनाश करने को उद्यत हुई थी? और अब तूने भगा भी दिया?" सहस्रार्जुन ने उसकी चोटी पकडकर उसे भूमि पर डाल दिया।

मृगा अब स्वस्थ हो गई थी। भूमि पर बैठे-बैठे ही वह बोली—"तुम्हारा सर्वनाश ही मुझे करना होता तो अब तक चुप बैठी रहती?"

"तू राम की हो बैठी है! मैं तेरे प्राण ले लूंगा।"

"राजन!" बैठे-बैठे ही मृगा ने कहा, "प्राण ले लेना आपके लिए कौन कठिन बात है? आपके लिए मैंने कितनों के प्राण नहीं लिये! हमारे लिए यह कौन बडी बात है?"

महस्रार्जुन ईर्ष्या के उन्माद में मृगा को विष के घूंट पिलाकर आनन्द लेना चाहता था—"बोल, बोल, कितने दिन तूने उस भार्गव के साथ रंग-राग किये हैं? या और कहीं गई थी उसके साथ? झूठ बोलेगी, तो जिह्वा खींच लूंगा।"

"तो तुम अंधे ही रहे।"

"बोल," महस्रार्जुन ने चिढ़कर उसे एक थप्पड मारा। मृगा खडी हो गई। उसने अनुभव किया कि धीरे-धीरे उसकी सत्ता फिर से स्थापित हो रही है, "तुम्हारी आंखें कहां गई हैं? यह भी नहीं देख सकते कि वह भार्गव मनुष्य नहीं है, वह तो अचल मर्मर-पाषाण की मूर्ति है। मेरी नसों की समूची आग भी उसमें चैतन्य नहीं जगा सकती।"

मृगा के कहे हुए सत्य की सहस्रार्जुन को प्रतीति-सी हुई। निष्फल मृगा पर उसे बडी हँसी आई। उसने कहा—"तूने बहुत हाथ-पैर मारे, पर तेरी चल न सकी।"

"जहां सफल न हो सकूं वहां हाथ-पैर मारने वाली मैं नहीं हूँ। इतने वर्षों साथ रहकर भी यह तुम्हारी समझ में न आया?"

हार मानी हुई मृगा को देखकर, उसके आवेश में परिवर्तन होने लगा।

"उसने तुझे अच्छी ठोकर मारी," उसने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा।

सहस्त्रार्जुन की दृष्टि मृगा की दुर्निवार्य मोहिनी पर टिकने से स्वस्थ हो गई, और उसका क्रोध तिरोहित हो गया।

"तुम्हे छोडकर मैंने किसी की ठोकर भी खाई है ?" मृगा हँस पडी।

"रेवा माता की सौगन्ध लेकर कहती है ?"

उत्तर में मृगा हँस पडी। उस हास्य से वह परिचित था। वह उसमें आत्मविश्वास और उत्साह जगाया करता था।

"चक्रवर्ती ! तुम कब बडे होओगे ? तुम्हे कब समझ आयगी ? रेवा माता की क्या कहते हो—तुम्हारी सौगन्ध है मुझे। मेरा किया-कराया तुम भले ही बिसार दो, पर इतना तो याद रहेगा ही न ? भार्गव और भगवती का ऐक्य तो तुमने अपने प्राणों को जोखिम में डालकर परखा है। और भार्गव मुझ-सी कुलटा के साथ अन्यथा व्यवहार रखेंगे ? किसीसे कहोगे, तो अपनी हँसी कराओगे।"

"सचमुच, मेरी सौगन्ध ?"

"तुम्हारी सौगन्ध। मेरा वश चले तो मै उसे अपने मोह में डाल लूं। पर वह पडे तब न ! तुम्हारी इस बुढिया हो रही खेल के मोह में भला वह क्यों पडने लगा ?" मृगा खिलखिलाकर हँस पडी।

सहस्त्रार्जुन लज्जित हो गया—"तो अब वह कहां चला गया है ?"

"मैं क्या जानूं ? तुमने मुझे तो सौंपा नहीं था।" सहस्त्रार्जुन की आँखें निर्मल हो गईं।

अगले दिन सवेरे मृगा की शैया पर पडे-पडे, सहस्त्रार्जुन ने अर्ध-निद्रित अवस्था में अपना बायां हाथ फैला दिया। परिचित स्थल पर मृगा के केशों को उसने उंगलियों में लेकर सहलाया। उसमें यह आत्म-विश्वास जाग उठा कि वह दुर्जेय सहस्त्रार्जुन था।

मृगा को सपना आया। क्रोध मे भरकर सहस्त्रार्जुन कह रहा था कि वह कुलटा है। सामने खडे उग्र भार्गव कह रहे थे कि वह चक्रवर्ती की पटरानी है। दोनों व्यक्ति शस्त्र उठा रहे थे। दोनो के बीच घुटनों के बल बैठ वह दोनों से शान्त होने की प्रार्थना कर रही थी। दोनो के

शस्त्र टकराए। सहस्त्रार्जुन ने चोटी पकडकर उसे खींचा। उसकी आँख खुल गई। पास ही उसने सहस्त्रार्जुन को खुर्राटे भरते देखा···अनजाने ही उसका हृदय चन्द्रतीर्थ गया—भार्गव की खोज में।

: २ :

दूसरे ही दिन सहस्त्रार्जुन ने अत्याचार करना आरम्भ कर दिया। वह और उसके चुने हुए योद्धा लूट-मार करते, अत्याचार ढाते हुए चारों ओर घूम गए। जहाँ-जहाँ भी भृगुओं की बस्ती थी, उसे जला कर भस्म कर दिया। जहां-जहां यादव बसते थे, वहां भद्रश्रेण्य के आद-मियों की खोज की जाती, और यों गांव-के-गांव उजाड दिये गए।

सहस्त्रार्जुन मृगा, तालबाहु और भृकुण्ड पर दृष्टि रखा करता। बाहर से वह कुछ भी पता न लगने देता, पर उन तीनों पर उसे गहरा अविश्वास हो गया था। वे तीनों भी बडी ही सावधानी से इस अत्या-चार की विनाशकता को कम करने के प्रयत्न किया करते।

बीस दिन के उपरान्त मृगा को संवाद मिला कि जिस नाव में भार्गव उस रात यहाँ से चले थे, वह नाव चन्द्रतीर्थ से कुछ आगे जाकर डूब गई थी। और भार्गव तथा एक मल्लाह तैर कर चन्द्रतीर्थ की ओर आने के बदले सामने के तीर की ओर जा रहे थे।

मृगा यह सुनकर अचेत हो गई। कोई भी मानव उस तीर पर जीवित नहीं पहुँच पाया था। वहां भयंकर मगरों का वास था। उनसे बचकर कोई जीते-जी उस किनारे पर जा उतरे, यह सम्भव ही नहीं था। उस किनारे से ही अघोरी-बन आरम्भ होता था, और जो कोई भी मानव वहां पैर रखता, उसे अघोरी कच्चा-का-कच्चा ही खा जाया करते थे।

और यह भी सौभाग्य ही था कि सहस्त्रार्जुन तब माहिष्मती में नहीं था, अतएव मृगा किस कारण अचेत हुई, इस सम्बन्ध में किसी को कोई सन्देह नहीं हुआ। भृकुण्ड और तालबाहु विश्वास छोडकर

बैठ रहे। तीनों में से किसी को भी यह प्रतीत न हुआ कि गुरुदेव के मरण से कोई कल्याण हो सकेगा।

छः महीने बीत गए, मृगा अपने हृदय की व्यथा को जैसे-तैसे दबा कर बैठी रही। सहस्त्रार्जुन का उन्माद भी कम हो चला था। चक्रवर्ती ने तालबाहु को भार्गव का पता लगाने की आज्ञा दी। तालबाहु जो कुछ जानता था उसे छिपाकर भार्गव को खोजने के दिखावटी प्रयत्न करने लगा, और अन्त में चक्रवर्ती को जता भी दिया कि भार्गव को खोजने के सारे प्रयत्न विफल हुए हैं। सहस्त्रार्जुन ने अन्य व्यक्तियों को भी भार्गव का पता लगाने भेजा, पर वे भी सफल नहीं हो सके।

प्रतीप यादवों और उनके कुटुम्बों को लेकर उत्तर के जंगलों में डटा हुआ था। आनर्त-नगर में विशाखा बैठी हुई थी। मही नदी के तट पर भद्रश्रेण्य, लोमा, विमद और निर्वासित भृगु छिपकर बैठे थे। और भृगुजन भी अनेक वेशों में राम का पता लगाने के लिए भटका करते थे।

सहस्त्रार्जुन का विनाशक उन्माद ज्यों-ज्यों कम होने लगा, त्यों-त्यों मृगा की ओर भी वह कम अविश्वास जताने लगा। पर मृगा जो थी, वह नहीं हो सकी। सहस्त्रार्जुन के अविश्वास से उसका मन छोटा हो गया। कहीं राजा को सन्देह न हो जाय, इस विचार से भृकुण्ड भी उसके साथ मन खोलकर बात नही करता था। पहले वह जो सत्ता भोगा करती थी, वह अब नाम मात्र को रह गई थी, क्योंकि अब बहुत कुछ काम राजा स्वयम् ही कर लिया करते थे। वह जानती थी कि उसके निकट उसके दो ही उपयोग थे, भार्गव के अतिरिक्त अन्य विषयों में सहस्त्रार्जुन को उसके निस्पृह परामर्श की आवश्यकता रहा करती थी; और उसकी प्रेरणा के बिना उसमें आत्म-श्रद्धा नहीं जाग पाती थी।

मृगा का हृदय भीतर-ही-भीतर रोया करता। भार्गव अघोरी बन में जाकर मर गए होंगे, यह बात वह किसी भी प्रकार भूल नहीं पाती थी। इस सम्बन्ध में भृकुण्ड तो एक शब्द भी नहीं कहते। तालबाहु और हैहयों के बीच तो यह मान्यता प्रचलित थी कि गुरुदेव अभी जीवित

हैं। पर वह मान्यता उसके गले नहीं उतर पाती थी। सोते-जागते उसे एक ही विचार आया करता था—उसे उबारने के लिए गुरुदेव आये थे, पर उसीने उन्हें मर जाने दिया। बहुत बार आधी रात तक वह जागती पड़ी रह जाती और आंसू चौंसठ धारा बहते रहते।

वह जानती थी कि सहस्त्रार्जुन अब बहुत-सी बातें उससे छिपा जाया करता है। वह एक नया ही सैन्य तैयार कर रहा था। उसका सेनापति तुंडिकेरा जाति का राजकुमार रुरु था। उस सैन्य के नायक सहस्त्रार्जुन के अंग-रक्षक बनकर रहा करते थे। इस व्यवस्था के दो उद्देश्य थे—एक तो तालबाहु और हैहयों पर नियंत्रण रखने का, और दूसरा प्रतीप के यादवों के विरुद्ध आक्रमण करने का—यही मृगा की मान्यता थी। तालबाहु लोकप्रिय और प्रतिष्ठित व्यक्ति था। उसके काका और भाई हैहय महारथियों में अग्रगण्य थे। सहस्त्रार्जुन के इस नये व्यवहार में वे सब बहुत असंतुष्ट हो गए थे।

तालबाहु बड़ी गहरी समझ का आदमी था। हैहय साम्राज्य को बनाये रखने में ही उसकी तथा उसके कुल और जाति की विजय थी। सहस्त्रार्जुन चाहे जैसा भी था, पर वह एक साम्राज्य का स्वामी और हैहय-संघ का शिरोमणि था, यह बात वह भूल नहीं पाता था। वह उसे और उसके कुल को छोड़ नहीं सकता है, यह बात भी वह अच्छी तरह जानता था। तालबाहु को गुरुदेव का जाना नहीं रुचा। इस बात में उसका विश्वास नहीं था कि वे मर गए हैं। सहस्त्रार्जुन ने जो रुरु को सेनापति बना दिया था, यह भी उसे नहीं रुचा, पर चुपचाप वह हैहय जाति संघ का भार अपने ऊपर उठाये रहा। मृगा यह समझती थी, पर इस विषय में वह और सहस्त्रार्जुन खुले मन से बात नहीं कर पाते थे।

एक दिन सहस्त्रार्जुन बाहर गया हुआ था और वह अपने नित्य के नियम के अनुसार पशुपति के स्थानक पर दर्शन करने गई। वह जब लौट रही थी तो मृकुण्ड के दूसरे पुत्र दधीचि ने उसे आश्रम में आने

के लिए आमंत्रित किया। छः महीने हो गए, वह भृकुण्ड से अकेले में नहीं मिली थी, इसीसे इस निमन्त्रण को पाकर वह आश्चर्य में पड़ गई।

दधीचि मार्कण्डेय गम्भीर और स्वाभिमानी पुरुष था। उसके और उसके पिता के बीच कुछ अनबन-सी चला करती थी, सो सभी लोग जानते थे। उसे अपने बाप का रीति-व्यवहार रुचिकर नहीं था, यह भी सारा जगत् जानता था। भार्गव के आने पर विमद से उसने बहुत कुछ सीखा था, और वह भार्गव का परम भक्त बन गया था। भृकुण्ड ने दधीचि को ही रानी को बुला लाने भेजा था, इससे मृगा का अचरज और भी बढ गया।

गुरु भृकुण्ड मृग-चर्म के बिछौने पर थर-थर कांपते-से पडे थे। उन्हें ज्वर आ गया था।

"मैं मर रहा हूं," भृकुण्ड ने मृगा से कहा—"मारो—मार डालो—जिसका जी चाहे वही गुरु भृकुण्ड को मार डालो!" वे बुदबुदाए।

"क्या बात है, गुरुजी?"

दधीचि द्वार के पास जाकर खडा हो गया।

"मेरे पास सरक आ!" भृकुण्ड ने कहा, और मृगा एकदम पास आ गई।

"ऐसी क्या बात है?"

भृकुण्ड ऐसे काँप उठा जैसे ठण्ड चढ़ आई हो और चारों ओर भय-पूर्वक देखकर धीमे स्वर में कहा—"भगवती और आचार्य विमद यहाँ आये हैं, मारो—मार डालो इस गुरु को—"

"कहते क्या हो? वे कहां हैं?"

"सवेरे तड़के ही दधीचि उन्हें लिवा लाया है। वह भी मेरा वैरी हो बैठा है। कहता है कि मृगारानी को बुलवा दो, नहीं तो मार डालूंगा। सब मुझे ही मारने को तैयार होते हैं।"

वृद्ध के इस मरने के डर पर मृगा को किंचित् हँसी आ गई।

"घबराते क्यों हो, तुम्हें कोई नहीं मारेगा।"

"यह मेरा लडका भी उनका दास बन बैठा है," गुरु ने कहा। "पशुपति ! देव !" फिर गुरु ने स्वर को एकदम धीमा कर दिया, "उन्हें कल तुम्हारे पास भिजवा दूं ?"

"आधी रात गये मैं स्वयम् ही यहां आऊंगी।"

"बाप रे बाप !" बूढे ने कहा।

"तुम यहीं सोये रहना, मैं बाहर की अमराइयों में मिलूंगी। दधीचि होगा तो चलेगा।"

"ओ पशुपति !" गुरु ने निःश्वास छोडा और वे रोने-रोने को हो आए, "गुरुदेव जब से आये हैं तब से तो आपदा-पर-आपदा आये ही जाती हैं।"

: २ :

गढ़ में मृगा के अपने आदमी थे। वहाँ से बाहर जाने के जितने मार्ग वह जानती थी, उतने दूसरा कोई नहीं जानता था। और गुप्त रूप से गढ़ के बाहर जाने का उसे सदा से अभ्यास रहा है। इसीसे रात को अमराई में वह ठीक समय पर आ पहुँची।

दो व्यक्ति झाड़ की ओट से सामने आये। पुरुष वेश में भी उसने भगवती के उस सुडौल स्वरूप को पहचान लिया।

"भगवती !" वह बोली और उसे गुरुदेव का स्मरण हो आया। इतने दिनों से जो चिन्ता मन में सतत जागृत थी, वह उग्र हो उठी और वह रो पड़ी।

भगवती और विमद कुछ देर चुप खड़े रहे। मृगा जब स्वस्थ हो गई तब उसने कहा—"भगवती ! आप यहाँ कैसे चली आईं। यहाँ तो परिस्थिति बड़ी भयंकर हो गई है।"

"चाहे जो हो, मुझे उसकी क्या चिन्ता है ?" सुदृढ़ स्वर में भगवती

ने कहा, "पर गुरुदेव का क्या हुआ है ? या तो उन्हें खोज निकालूं, या फिर जहाँ वे गये हैं वहीं मैं भी चली जाऊँ।"

मृगा को इस स्त्री की निश्चल भक्ति पर ईर्ष्या हो आई। किसी के भी प्रति ऐसी भक्ति करने का लाभ पशुपति ने उसे दिया ही नहीं था।

"पर तुम यहाँ पकड़ी जाओगी तो तुम्हारा न जाने क्या हो ?"

"गुरुदेव न मिलें तो मेरा मरना जीना समान ही है। अर्जुन मेरा क्या कर लेगा ? मैं उसे मारकर ही मरूंगी।"

"उसे मारोगी ?"

"हां, उसने मेरे जीवन को जलाकर भस्म कर दिया है। वह मेरा हरण कर मुझे आर्यावर्त से ले आया। यहाँ आकर गुरुदेव के पीछे पड़ा। वह मुझे अपनी लालसा का ग्रास बनाया चाहता है। मैंने भी अपना अन्तिम निर्णय कर लिया है।"

"तो तुम क्या चाहती हो ?"

"आज एक वर्ष हो आया, गुरुदेव की खोज करवा रही हूं, पर सफल नहीं हो सकी हूँ। थककर अन्त मे मै ही उनकी खोज मे निकल पड़ी हूँ। उन्हें खोज निकालने का काम तुम्हारा भी है; तुम उनकी शिष्या हो।"

भार्गव पत्नी भगवती उसे शिष्या कहकर धर्म का सम्बन्ध बाँध रही है, यह देखकर एक अपरिचित हर्ष से मृगा का हृदय भर आया। वह कुलटा नहीं थी, भार्गव की शिष्या थी।

"पर मुझसे क्या होना है ? मैं तो बन्दिनी के समान हूं। सहस्रार्जुन का मुझ पर विश्वास नहीं रहा।"

"तुम सहायता नहीं करोगी तो मुझे सहस्रार्जुन के पास ही जाना पड़ेगा।"

"पर वह तो तुम्हें खा जायगा।"

"नहीं, वह स्वयम् ही ग्रास हो जायगा। मेरी लालसा उससे नहीं

छूट सकती है। उस लालसा की तृप्ति करने को जब वह उद्यत होगा तो जलकर भस्म हो जायगा," भगवती लोमहर्षिणी ने एक निश्चय के साथ कहा।

"भगवती! भगवती! मेरा रहा-सहा सुख भी ले लिया चाहती हो?"

"मेरा सुख तो उसने छीन ही लिया है। गुरुदेव की पत्नी होने के नाते अब मेरे लिए मर जाना ही शेष रहा है।"

मृगा अब स्वस्थ हो गई। उसने हाथ जोड़े—"भगवती! भगवती! जाने दो यह बात, मैं आपकी सम्पूर्ण सहायता करूँगी।"

"पशुपति की शपथ है तुम्हें—"

"पशुपति की शपथ है—गुरुदेव की शपथ है मुझे! मैं उनमें और पशुपति में अन्तर नहीं देखती।" कहकर मृगा ने हाथ जोड़ लिए।

"तो बताओ गुरुदेव कहाँ हैं?"

"सच बता दूं, भगवती?" और मृगा का स्वर टूटने-सा लगा, "गुरुदेव की आशा त्यागे बिना निस्तार नहीं है। तुम्हारे जाने के उपरांत मैंने उन्हें तलघर से मुक्त करवाया और सबके सामने वे पशुपति के स्थानक पर चले गए। मैंने जो व्यवस्था कर रखी थी, उसके अनुसार एक नाव में बैठकर वे चन्द्रतीर्थ जाने को निकल पड़े।"

"गुरुदेव भाग गए?"

"नहीं, चक्रवर्ती का रोष उतरने तक मैंने उनसे चंद्रतीर्थ जाकर रहने की विनती की थी।"

"तो फिर वे कहाँ हैं?" अधीरतापूर्वक भगवती ने पूछा।

"वे वहाँ नहीं पहुँचे। मैंने बहुत खोज करवा ली है," गद्गद् कंठ से मृगा ने कहा।

"वहां तो मैंने भी उनकी खोज करवाई थी। तब फिर वे कहाँ गये?"

मृगा रो पड़ी। भार्गव की मृत्यु की बात उसकी जिह्वा पर न आ

सकी। भगवती ने आँख में झलक आया अश्रु-बिन्दु पोंछ लिया—'जो हो वह स्पष्ट कह डालो, मैं वज्र का कलेजा किये बैठी हूं।"

"वे नहीं रहे," मृगा ने सिसकते हुए कहा। "बचे हुए मल्लाहों से मुझे सारी बात का पता लगा है।"

"वे कहाँ हैं ?"

"मैंने उन्हें मरवा दिया। मैं सारी बात जानती हूं।"

"क्या है ? कह दो।"

"मल्लाहों ने बताया था कि चन्द्रतीर्थ पहुँचने से पहले ही एक मल्लाह ने नाव में छेद करके नाव को डुबा दिया। गुरुदेव का पता नहीं था कि वह अघोरी-वन का किनारा कैसा है। अन्य मल्लाह तो तैर कर चन्द्रतीर्थ की ओर के किनारे पर निकल आए। गुरुदेव सामने के किनारे की ओर गये।" और मृगारानी का स्वर रुंध गया।

"....फिर क्या हुआ ?" ओठ-पर-ओठ दबाकर स्वस्थ स्वर में भगवती ने पूछा।

"वे मल्लाह जब इस किनारे पर आये, तो सामने अघोरी-वन के तट पर अघोरियों की भयंकर किलकारियां सुनाई पड़ीं। उन्हें लगा कि गुरुदेव अघोरियों के हाथ पड़ गए।"

"फिर !" भगवती का हृदय स्थिर हो गया।

"फिर—फिर तो डड्डुनाथ अघोरी ही जानता है।"

सब कांप उठे। उस भयंकर पिशाच का नाम सुनकर ही अच्छे-अच्छे आततायियों के छक्के छूट जाते थे। तीनों के हृदय में ऐसा आतंक व्याप गया, मानो आंखों आगे की धरती फट गई हो।

"जो पिशाच मनुष्य के रक्त पर जीता है वही ?"

"हां, जो पवन-पावड़ी पर उड़ता है, श्मशान-श्मशान भटकता फिरता है, मनुष्य के रक्त में ही जो बिलसता है—"

वीर विमद सिसकने लगा। दोनों स्त्रियों के श्वास रुंध रहे थे; वे चुपचाप आंसू टपका रही थीं।

भगवती लोमहर्षिणी का जो हृदय बुझता जा रहा था, वह प्रदीप्त हो उठा। भार्गव मर सकते हैं उसे छोड़कर? नहीं—नहीं—। उस के अन्तर मे जैसे प्रतिध्वनि हुई। अंधकार प्रकाशमय हो उठा। उसकी आंसू-भरी आँखों के सामने भार्गव खड़े थे—हाथ मे परशु लेकर, उसके विजयी हास्य का आलिंगन करते से। उसके आँसू सूख गए।

"नहीं—नहीं—नहीं," उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा—"नहीं—नहीं—नहीं, भार्गव को कोई मार नहीं सकता!" भगवती ने धरती पर पैर ठोककर श्रद्धापूर्वक कहा।

मृगा के आंसू भी सूख गए। भार्गव की भक्ति ने इन दोनों स्त्रियों के बीच एक आश्चर्यजनक सम्बन्ध स्थापित कर दिया था, अतएव भगवती की श्रद्धा की लौ ने मृगारानी को भी छू दिया। उसे अपनी कल्पना मे गुरुदेव का वह प्रचण्ड और सुरेख शरीर, उनके वे भभकते नयन, उनका वह स्वस्थ और तेजोराशि-सा मुख दिखाई पड़ा। मानो वसन्त की वायु बह चली हो, ऐसे उसके हृदय मे आशा नवपल्लवित हो उठी।

"कैसे जाना?" उसने पूछा।

"मैं जानती हूँ। वे कहा करते थे। बालपन से ही उन्हे न तो अग्नि ही जला सकी थी और न पानी ही डुबा सका था। शस्त्रों से वे कभी घायल नहीं हो सके थे। वे तो मनुष्यों के द्वेष को पचाये बैठे हैं!" मानो स्वप्न मे बोल रही हो, ऐसे भगवती बोली। वे आंखें फाड़कर अंधकार मे कुछ देख रही थीं।

"मेरा हृदय मानता ही नहीं है," कहकर मृगा फिर से रो पड़ी।

एक व्याकुल निःशब्दता चारों ओर व्याप गई। मृगा का रुदन भी थम गया। रात्रि के सन्नाटे में झाड़ों की घटा में होती हुई सरसराहट मे उन्हे किसी के पैरों की आहट सुनाई पड़ी। अंधकार मे ओडा, गहरा, हरा प्रकाश व्याप गया।

उस गहरे हरे वर्तुल मे चलत् गिरिराज के समान गौरव-भरे भार्गव परशु लिये आये—खड़े रहे—अदृष्ट हो गए। उनकी आँखें एकाग्र थीं

और भभक से भरी थीं—ऐसी स्मित-भरी और उद्दीपक जैसी किसी की नहीं थी। उन आँखों ने उन तीनों के हृदय को पागल बना दिया।

त्रिमद ने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। मृगा मूर्छित हो गई। भगवती के हृदय में एक ज्वार-सा उठ आया, और उनके कण्ठ से एक आकुल शब्द फूटा—"राम !"

कुछ ही दूर छिपकर खडे गुरु मृकुण्ड भूमि में सिर डालकर मंत्र-पाठ कर रहे थे, सिर उठाकर देखने का उनमें साहस नही था।

फिर अंधकार व्याप गया—"भार्गव जीवित हैं, मैंने कहा नही था ?" हर्षपूर्वक भगवती बोल उठीं।

"हां," मृगा ने कहा। उसका हृदय भी उल्लास के गीत गा रहा था।

"अब हमें क्या करना होगा ?" त्रिमद ने पहली बार मुंह खोला।

"भार्गव कहाँ होंगे ?"

"सो तो डड्डुनाथ अघोरी ही जाने," मृगारानी ने कहा।

"वे कहां मिल सकते हैं ?"

"किसी ने भी कभी उसे देखा नहीं है। कहते हैं कि स्थानक के पास ही माहिष्मती के श्मशान में प्रत्येक अमावस्या को शव पर बैठकर वह आता है।"

"कैसे जाना ?"

"फूटी हुई खोपडी और रक्त-चूसा हुआ शव दूसरे दिन वहां पडा मिलता है, यही उसकी पहचान है।"

"पर वह रहता कहां है ?"

"सो तो पशुपति ही जाने। श्मशानों में, झाडों पर, खण्डहरों में, जहां भी भयंकर अट्टहास सुनाई पडे, वहीं—उसके सम्बन्ध में यही लोकोक्ति प्रचलित है। पर उसका निवास अघोरी-बन में है।"

"वहां कोई मुझे नहीं ले जा सकता है ?" भगवती ने पूछा।

"वहां जानेवाला आज तक न तो कोई देखा ही गया है और न सुना गया है। पर गुरु मृकुण्ड विशेष रूप से जानते होंगे।"

कुछ ही दूर झाड के पत्तों पर कॉपते बैठे गुरु को विमद जैसे-तैसे लिवा लाया। बहुत अनुनय-विनय करने पर कांपते ओठों से उन्होंने उत्तर दिया—

"गुरुदेव अघोर-वन में अभी भी जीवित होंगे, यह बात तो मेरा मन नहीं मानता।"

"पर मेरा मन कहता है," भगवती ने कहा—"मुझे अघोर-वन का रास्ता बताइए। कहां से जाना होगा?"

"वह तो सभी जानते हैं। सवेरे नर्मदा के किनारे आप खडी होंगी तो सामने ही पर्वत दिखाई पडेगा। उसीकी तलहटी में अघोर-वन है। नदी की राह वहां जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि एक सहस्र मगर उसकी रक्षा करते हैं। स्थल-मार्ग आज तक किसी को नहीं मिला; एक लाख पिशाच उसकी रक्षा करते हैं।" और गुरु फिर से मंत्रों का पाठ करने लगे। अघोरी डड्डुनाथ का नाम सुनकर ही वे भागते थे। एक बार कृष्णपक्ष की एकम को उन्होंने रक्त चूसा हुआ शव देख लिया था, तो डड्डुनाथ के पराक्रम उनकी आंखों-आगे प्रत्यक्ष हो उठे थे, और उस समय उन्हें इक्कीस दिन का ज्वर आया था। उस दिन से डड्डुनाथ का नाम सुनकर ही वे अपने कान बन्द कर लिया करते।

"वहां होगा मेरा राम?" लोमा ने घबडाकर पूछा।

"होंगे तो फिर वहीं होंगे," मृगा ने कहा।

"वहां नहीं हो सकते; होते तो कुछ तो संदेशा भेजते ही," भृकुण्ड ने कहा।

"होने ही चाहिएं। जंगल की राह जाने का क्या कोई रास्ता नहीं है? डड्डुनाथ कैसे आते हैं?"

"नदी के पानी पर चलकर। कुछ मछुए कहा करते हैं कि उन्होंने डड्डुनाथ को आते देखा है।"

"तो मुझे डड्डुनाथ अघोरी को खोज निकालना होगा।"

"भगवती," भृकुण्ड ने हाथ जोडकर कहा, "यह पागलपन छोड

दो। किसी ने आज तक उसे देखा नही है, और किसी ने देखा भी हो तो वह जीवित लौटकर नही आया।"

"मुझे ही कौन लौटकर आना है? जो मेरा राम जीवित होगा तो मिल ही जायगा। और यदि उसका रुधिर डड्डुनाथ की नसो मे जा पहुँचा होगा, तो मेरा रुधिर भी उसी मे जाकर मिल जाय, बस इतना ही मैं चाहती हूँ।"

: ४ :

डड्डुनाथ अघोरी की खोज मे जाने का भगवती का संकल्प अचल था। शस्त्र-विद्या का सागर आचार्य विमद तो हिम्मत हार गया था। पर मृगा ने आवश्यक सहायता करना आरम्भ कर दिया। उसने अपना विश्वस्त आदमी चन्द्रतीर्थ भिजवाया, पर कोई विशेष जानकारी न मिल सकी। एक ही वृद्ध मल्लाह ने एक बार अपनी नाव पर से अघोर-वन के किनारे दो श्वेत अघोरियों को देखा था, ऐसी एक कपोल-कथा सुनने मे आई। पर इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता था।

भगवती और विमद भिखारी के स्वांग मे दो-एक दिन भृकुण्ड के आश्रम मे रहे। पर इससे गुरु को बडी घबडाहट हुई। तब मृगा ने गांव के छोर पर, किसी एक छोटे-से घर में उनके रहने की व्यवस्था करवा दी।

गुरु भृकुण्ड की एक बात तो अवश्य ही कुछ तथ्यपूर्ण थी। प्रत्येक कृष्ण एकम को सवेरे पशुपति के स्थानक के सामने के श्मशान में, एक चबूतरे पर एक नई खोपड़ी का उपहार मिला करता, पर पास ही किसी मनुष्य का बिना सिर का धड़ भी पड़ा हुआ मिलता। यही एक मात्र चिह्न थे जिनसे जाना जाता था कि डड्डुनाथ अघोरी अमावस्या की रात को पशुपति के सम्मुख खोपडी की बलि चढ़ा गए हैं।

दृढ़तापूर्वक भगवती अपने संकल्प को पूरा करने का प्रयत्न करने लगीं। दधीचि के द्वारा मृगारानी ने तांत्रिक विद्या के निष्णातों से उसका परि-

चय करा दिया, और भगवती ने भूतनाथ की आराधना करने के प्रयोग सीखना आरम्भ कर दिया। सोलह बरस के स्त्रैण लगने वाले इस शिष्य की हिम्मत देखकर तांत्रिक लोग चकित हो गए। उन्हें किंचित् संशय भी हुआ कि कदाचित वह स्त्री हो। उनके जी में यह भी आया कि यह चंडिका के सम्मुख बलि देने योग्य है। पर यह शिष्य सशस्त्र घूमा करता था और गुरु भृकुण्ड तथा मृगारानी का वह रक्षित व्यक्ति था, इसलिए अन्य विचार छोड़कर तांत्रिकगण भगवती को तंत्र विद्या सिखाने लगे; और सीखने के लिए उत्सुक और उतावला ऐसा शिष्य उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था।

सुकुमारदेही भगवती मध्यरात्रि में, काँपती काया और किटकिटाते दाँतों से पुरुष वेष में श्मशान को जातीं वहां जलते शवों की खोपड़ी की पूजा, चिता की राख का अर्चन आदि अघोर तंत्र की प्रारम्भिक शिक्षा वे लेने लगी।

आचार्य विमद की हिम्मत तो जैसी थी वैसी ही बनी रही। डड्डुनाथ अघोरी को कैसे रिझाया जा सकता है, और भार्गव को कैसे जीवित लौटाकर लाया जा सकता था, इस सम्बन्ध में वह बहुत ही संदिग्ध था। उसकी मान्यता थी कि ये अधम प्रयोग अपवित्र हैं, और अथर्वण आचार्य के लिए अशोभन हैं, तथा आर्यत्व को भ्रष्ट करने वाले हैं। और न उसका मन यह मान लेने को तैयार था कि भार्गव अभी जीवित हैं। इसीसे यह सब प्रक्रिया छोड़ देने के लिए उसने भगवती से बहुत-कुछ अनुनय-विनय किया, पर भगवती टस-से-मस न हुईं। प्रतिदिन रात को जब भगवती श्मशान में जातीं, तो कुछ दूर तक वह उनके साथ जाता और फिर वहीं बैठकर उनके लौटने की प्रतीक्षा करता। भार्गव की पत्नी को वह अकेली छोड़ रहा है, यह विचार तक उसके मन में नहीं आया, क्योंकि मध्यरात्रि में श्मशान में जाना उसने तो स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया था।

भगवती तो पागल हो गई थीं। वे तो सवेरे जब से उठतीं, तबसे

एकाग्र दृष्टि किये 'राम' 'राम' ही की रट लगाये रहतीं। मानो खुली आँखों के सामने भार्गव उन्हें दिखाई पड़ते हैं, ऐसा उन्हें चाला-सा हो गया था। कभी-कभी तो विमद को लगता कि भगवती को चित्त-भ्रम सा होता जा रहा है। भगवती सदा भार्गव के सान्निध्य में ही रहा करतीं। प्रत्येक श्वास में उनका मन भार्गव का नाम रटा करता। उनकी आँखों-आगे भार्गव उन्हें दीखा करते। जब वे रात को श्मशान में जातीं, तो भार्गव का तेजस्वी दर्शन उन्हें आगे-आगे लिये जाता। जब वे कोई भयानक क्रिया करती हुई घबड़ा उठतीं, तो भार्गव पास खड़े रहकर उन्हें शक्तिदान करते। इस प्रकार धीरे-धीरे भार्गव का साक्षात्कार होता चला गया, और भयानक क्रियाओं का भय जाता रहा।

विमद इस परिवर्तन को देखकर घबड़ा गया। रात होते ही भगवती बेभान सी हो जातीं। कमर पर चक्र बाँधकर, एक ओर खड्ग लटकाकर हाथ में छोटी-सी फरसी लिये, मानो वे भार्गव के साथ ही जा रही हों, ऐसा विमद को भी आभास-सा होने लगा। उन्हें रोकने की शक्ति किसी में भी नहीं थी।

अमावस्या आने पर भगवती ने डड्डुनाथ अघोरी के दर्शन करने जाने का अपना मन्तव्य प्रकट किया। गुरु भृकुण्ड ने उन्हें बहुत कुछ समझाया, पर उनका निश्चय टल न सका। विमद ने साथ जाना अस्वीकार कर दिया।

रात होने पर, पशुपति के स्थानक से थोड़ी दूर पर जो श्मशान था, उसके चबूतरे के पास के एक झाड़ पर चढ़कर भगवती बैठ गईं। धीरे-धीरे बहती रेवा की श्यामल तरंगों में तारों के प्रतिबिम्ब जुगनुओं से चमककर रात के अंधकार को कुछ हलका कर रहे थे। सहस्रार्जुन का गढ़ ऊँचे अधर में काले बादल-सा झूम रहा था। दूर पर स्थानक के खम्भे अन्धकार में गम्भीर रूप धारण कर रहे थे। रेवा के जल का स्वर भी भयोत्पादक प्रतीत हो रहा था। भगवती की घबड़ाहट का पार नहीं था। वे झाड़ पर से गिर न पड़ें, इसलिए, झाड़ की डाल के साथ

उन्होंने अपनी कमर को बाँध लिया। झाड के पत्ते किंचित् हिलते कि वे कांप उठतीं।

थोडी ही देर मे रेवा के जल की सतह पर से लप-लप की ध्वनि सुनाई पडी। तारों के हलके प्रकाश मे कोई तैरकर आता हुआ दिखाई पड़ा। तैरने वाला किनारे पर आया और एक चौमुँहा जानवर पानी मे से निकलकर स्थानक की ओर दौड गया। भगवती का गात्र शीतल हो गया।

वह जानवर स्थानक के सामने घूमकर फिर लौट आया और चबूतरे पर चढकर खडा हो गया। भगवती का श्वास नितात रुद्ध हो गया।

वह जानवर नहीं था, पर एक विशाल छाती वाला, छोटे कद का मनुष्य था। लम्बे बालो और दाढी मे उसका मुँह सम्पूर्ण रूप से ढक गया था। उसके हाथ मे जो खोपडी थी उसे चबूतरे पर रखकर, तीन बार भूमि पर लेटकर उसने नमस्कार किया।

एकाएक वह व्यक्ति चारो ओर देखने और सूंघने लगा। उसे कुछ सन्देह-सा हुआ। भगवती जहाँ झाड मे घुसी बैठी थीं, उसी ओर उसने दृष्टि डाली। उसने भयानक अट्टहास किया—"हा-हा-हा-हा।" वह फिर चौपदा हो गया, और चपलतापूर्वक चबूतरे पर से कूदकर वह जानवर की भांति झपटकर किनारा लाँघ गया और पानी में कूद पड़ा। झपटते हुए वह तैरकर उस पार जा रहा था। अट्टहास की ध्वनि भगवती के कानों मे अभी भी सुनाई पड रही थी। जैसे-तैसे अपनी चीखने-चिल्लाने की वृत्ति पर नियंत्रण कर वे सारी रात झाड पर बैठी रहीं। सवेरा होने पर जब लोग नदी पर नहाने को आने लगे तो वे झाड पर से उतरकर स्थानक पर चली गईं। वहां श्वेत रुई की पोनी-सा विमद खम्बा पकडे बैठा था। थोडी ही दूर पर एक बिना सिर का धड़ पड़ा हुआ था।

"भगवती, तुम अभी जीवित हो?"

"क्या बात है ?"

"मुझे तो अग्निदेव ने बचा लिया। मैं खम्बे के पास तुम्हारी राह देखते हुए बैठा था कि एक विशाल सियार आया। उसके सिर और मुंह पर लम्बे-लम्बे बाल थे। वह उस व्यक्ति के गले मे नख मार कर उसका रक्त पी गया। अनन्तर उसने नख से उसका सिर अलग कर दिया, और खोपडी पर की चमडी हटाकर वह खोपडी लिये चला गया। वह पडा है धड !" विमद का अंग-प्रत्यंग कांप रहा था। लोमा भी घबडाई-सी उस धड की ओर देख रही थी।

"विमद !" उसने भर्राए हुए स्वर मे कहा—"वह जानवर नहीं था, डड्डुनाथ अघोरी थे। उन्होंने वह खोपडी वहां लाकर पशुपति को अर्पित की थी।

भगवती की आंखों मे अंधेरा छा गया। विमद का हाथ पकडकर उन्होंने अपने को गिरने से बचाया।

: ५ :

डड्डुनाथ अघोरी को प्रसन्न करने का भगवती का संकल्प अडिग था। अगली अमावस्या की रात को नर्मदा के उस तीर पर स्थानक के ठीक सामने के झाड़ पर भगवती, विमद और तीन भृगु जाकर घुस बैठे। भगवती के हठ को मानकर ये चारों व्यक्ति उनके साथ आये थे। पर उनमें से एक का भी चित्त ठिकाने नहीं था, किन्तु वे स्वयम् स्वस्थ थीं। गुरु डड्डुनाथ से मिलने, उन्हें प्रसन्न करने और भार्गव का पता लगाने के लिए वे एकाग्रचित्त हो गई थीं।

झाड पर चढ़ने से पहले उन्होंने अपनी सीखी हुई विद्या का उपयोग किया था। किनारे की रेती पर उन्होंने सिंदूर का अघोर चक्र बनाया, बीच में लाल फूलों का ढेर कर दिया और उस पर एक खोपड़ी रख दी। चारों ओर के झाड़ पवन से डोल रहे थे। दूर पर किसी हिंसक प्राणी की चीख सुनाई पड़ जाती, या फिर रेवा का रव

अकुलाता-सा लगता। पर पति को प्राप्त करने के लिए राजा दिवोदास की पुत्री पिशाचों के नाथ की आराधना करती ही गई। यह देखकर आचार्य विमद झाड पर बैठे थर-थर कांपने लगे।

मध्यरात्रि होने मे अभी चार घडी की देर थी, तभी एक छोटे कद का चौडी छाती वाला मनुष्य नदी के प्रवाहित वेग पर बैठा-बैठा आता जान पडा। कुछ दूर पानी मे आकर फिर वह तैरने लगा और उस पार चला गया।

एक प्रहर के उपरान्त डड्डनाथ अघोरी खोपडी को भेंट चढ़ाकर वापस लौटे। किनारे की ओर आते हुए उन्होंने एक झाड पर दृष्टि डालकर सूंघना आरम्भ किया। फिर उन्होंने एक झाड पर दृष्टि ठहरा दी, जहाँ एक भृगु बैठा हुआ था। अंधेरी रात में उसकी आँखें भार्गव की आँखों सी चमकती जान पडीं। इसके अनन्तर उसकी दृष्टि अघोर-चक्र पर पडी और उसका भयानक अट्टहास 'हा-हा-हा-हा' गूंज उठा।

झाड पर बैठा हुआ भृगु अनायास चिल्ला उठा। उसके हाथ निश्चेतन हो गए और वह बेभान होकर भूमि पर गिर पडा। तुरन्त ही डड्डनाथ चारो पैरों से दौडते आये और उसे सूंघने लगे। उसे अचेत पाकर डड्डनाथ खड़े हो गए, और अपनी आजानु बाहुओं में उसे उठा-कर अघोरचक्र के पास ले जाकर लिटा दिया।

तभी भृगु को चेत आया। भयानक किलकारियाँ करता हुआ वह दौड़ने लगा। डड्डनाथ का अट्टहास फिर से गूंज उठा, और उसने दो ही छलांग में भृगु को पकड लिया। भृगु भूमि पर गिर पडा। लम्बे नख उसके गले में धंस गए। उसकी अन्तिम किलकारी अधूरी ही रह गई और पलक मारते मे उसका सिर धड से अलग होकर दूर जा गिरा।

डड्डनाथ खडे हो गए और पानी के पास पहुँचकर विचित्र प्रकार से डकारने लगे। बीच-बीच मे वे सियार के रोने की-सी ध्वनि कर रहे

थे और फिर डकार रहे थे। पानी में से एकाएक एक बड़ा-सा मगर बाहर आया।

"डच, डच, डच," डडुनाथ ने डकारें ली और भृगु के धड़ को पैरों से मगर की ओर ठेला। कुत्ता जैसे रोटी खींच ले जाता है, वैसे ही मगर उस धड़ को पकड़कर पानी में सरक गया।

भय के मारे अन्य भृगु भी किलकारियाँ कर उठे और झाड़ पर से कूदकर भागने लगे। डडुनाथ की चमकती हुई आँखें उनकी ओर उठीं और वह अट्टहास करके फिर उलटे पैरों नदी की ओर जाने। लगे मुंह से वे डकारते जा रहे थे।

विमद अचेत हो गया और झाड़ से नीचे आ गिरा। डडुनाथ दो-एक डग पानी में गये और उलटे पैरों प्रवाह पर खड़े हो सनसनाते हुए अदृश्य हो गए।

सवेरे भगवती, विमद और दो भृगु नाव में बैठकर माहिष्मती लौट आये। भृगुओं में से एक पागल हो गया। विमद को तीव्र ज्वर चढ़ आया और वह सन्निपात में बर्राने लगा। भगवती की बावली आँखों के आगे भार्गव दिखाई पड़ते और वे उनसे मनचाही बातें किया करतीं।

दधीचि मार्कंडेय उन सबको जैसे-तैसे अपने घर ले गया। गुरु भृकुण्ड और मृगारानी की घबड़ाहट का पार नहीं था। सहस्रार्जुन माहिष्मती में था और किसी भी क्षण उसे भगवती की उपस्थिति का पता लग सकता था। भृगुओं को तो उन्होंने गाँव से बाहर भिजवा दिया और दधीचि तथा मृगारानी के विश्वस्त नौकर भगवती और विमद की परिचर्या करने लगे।

भगवती जब अच्छी हो गईं तो वे विमद की परिचर्या में जुट गईं। दो बार जाकर वे मृगारानी से मिल आईं, पर दोनों में से किसी को भी कोई रास्ता नहीं सूझा। भगवती ने कूर्मा को संदेशा भेजकर बुलवा लिया और माहिष्मती से कुछ ही दूर पर जहाँ वह कुछ विश्वस्त यादवों

और भृगुओं को लेकर छिपा हुआ था, वहाँ विमद को भिजवा दिया।

कूर्मा ने आकर सारी जानकारी प्राप्त करनी आरम्भ की। कभी भिखारी, कभी मछुआ तो कभी हैहय योद्धा बनकर वह चारों ओर घूम गया। गांव के छोर पर स्थित श्मशान मे जो अघोरी रहते थे उन्हें अपनी प्रसादी भी दे आया।

तीसरी अमावस्या आ पहुंची। उसके आने के दो-तीन रात पहले ही एक रात को, भगवती थर-थर कांपती हुई उठकर बिछौने में बैठ गई। एक क्रूर अट्टहास रात्रि की शान्ति को भेद रहा था—'हा-हा-हा-हा।'

"कूर्मा!" उन्होंने शांतिपूर्वक कहा—"कुछ सुना?"

"कोई भयंकर हँसी हँस पड़ा है," बिछौने मे जागता हुआ कूर्मा बोला।

"यही है गुरु डड्डुनाथ अघोरी।"

सवेरे कूर्मा चारों ओर खोज कर आया। कुछ दिन पहले आमा नाम के हैहय नायक ने एक अघोरी को बहुत पीटा और वह मर गया। पिछली रात को वह अपने घर मे सोया हुआ था। सवेरा होने पर उसका सिर और धड़ कटकर अलग-अलग पड़े थे और किसी ने उसका रक्त चूस लिया था।

"गुरु डड्डुनाथ! मैंने कहा नहीं था?" भगवती ने कहा।

कूर्मा को एक योजना सूझ पड़ी। "भगवती! यों दिन बिताने में तो कुछ सार नही है। पास के श्मशान में जहां आप अघोर क्रिया सीखने जाया करती थी, वही डड्डुनाथ रहता होगा। आप उसके लिए उसका खाद्य धरवा आइए। मैं सहस्त्रार्जुन के पास जाता हूं। इन दोनों के सींग भिड़वाए बिना काम न चल सकेगा। इस पार या फिर उस पार—कुछ होकर रहेगा।"

भगवती, दधीचि, भृकुण्ड और मृगारानी से तथा गाँव के लोगों से कूर्मा ने आवश्यक जानकारी प्राप्त कर ली थी। मछुवे के वेष मे वह

गढ़ के द्वार पर जा पहुंचा और राजकुमार रुरु मे मिलने की इच्छा प्रकट की। उसने सैनिकों को समझाया, डराया और फुसलाया। निदान उसे रुरु के पास पहुंचा दिया गया।

"कौन है तू?"

"मैं चन्द्रतीर्थ का मछुवा हूं।"

"क्यों, क्या बात है?"

"मैं चक्रवर्ती से मिलना चाहता हूं।"

"पागल हुआ है? ऐसे क्या चक्रवर्ती से मिला जाता है? क्या बात है सो मुझसे कह दे।"

"चक्रवर्ती को छोड़कर और किसीसे कहने की नहीं है। उनके प्राण संकट में हैं।"

रुरु खिलखिलाकर हँस पड़ा—"तो क्या हम सबको तू पागल समझता है?"

"तो अन्नदाता, मैं यह चला। मैं तो चक्रवर्ती का एक गरीब प्रजा-जन हूँ। इसीसे उन्हें चिताने—"

"समझा, समझा, चल निकल यहां से।"

"तो अन्नदाता, लो यह चला। पर चक्रवर्ती से इतना ही कह देना कि अघोरी बन में नया गुरु आया है। वह गोरा और ऊँचे कद का है और हाथ में फरसी लेकर घूमता है। आगे की बात मैं चक्रवर्ती को छोड़ और किसी से नहीं कहूँगा। मैं जाता हूं। परसों फिर आऊँगा, यदि मेरी आवश्यकता जान पड़े तो।"

कूर्मा चला आया, पर वह अपना काम सिद्ध कर आया था। मछुवे की बात रुरु ने सहस्रार्जुन को कह सुनाई; सुनकर वह निस्तेज हो गया। मछुवे को भगा देने के लिए रुरु की भर्त्सना की। क्षमा मांगकर, तीसरे दिन मछुवे को उपस्थित करने का वचन देकर, घबड़ाया-सा रुरु अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप करने लगा।

तीसरे दिन रुरु ने कूर्मा का स्वागत कर उसे चक्रवर्ती के सम्मुख उप-

स्थित किया। सहस्त्रार्जुन ने रुरु को चले जाने की आज्ञा दी।

"कौन है तू ?" उसने कूर्मा से पूछा।

"चन्द्रतीर्थ का मछुवा हूँ, अन्नदाता !"

"क्या कहना चाहता है ?"

"आजकल सामने वाले तीर के अघोर-बन मे एक नया गुरु आया हुआ है। वह युवा है, ऊँचे कद का है और गौर वर्ण है। पूनों की रात मे मैंने उसे घूमते देखा है।"

सहस्त्रार्जुन ने आँखें फाडकर पूछा—"हाथ मे उसके क्या होता है ?"

"अन्नदाता, फरसी जैसा ही कुछ होता है।"

"उसकी आँखें अँधेरे मे चमकती हैं ?"

"अन्नदाता, बस सिंह की ही आँखें समझिए।"

सहस्त्रार्जुन के कलेजे मे एक धक्का-सा लगा; उसका वैरी अभी तक जी रहा जान पड़ता है।

"तूने कैसे जाना ?"

"अन्नदाता ! वह गुरु डड्डनाथ अघोरी के साथ चलकर तीर पर आता है।"

सहस्त्रार्जुन फीका पड़ गया। तभी कूर्मा ने वाग्बाण मारा—"ऐसा सुनने में आता है कि डड्डनाथ ने उसे अपना गुरु स्वीकार कर लिया है, और उन दोनों ने आपके प्राण लेने का निश्चय किया है।

एकाएक चक्रवर्ती की आँखों में अँधेरा छा गया। उसने आँखों पर हाथ दे लिये।

"अन्नदाता, आमा नायक यही बात आपसे कहने को आया चाहते थे, इसीसे अघोरियों ने उनके प्राण ले लिए। मैंने यह सोचा, अन्नदाता, कि जो होना होगा हो रहेगा, पर मैंने आपका नमक खाया है तो मुझे आप को जताना तो चाहिए ही," हाथ जोडकर सिर नीचा किये कूर्मा बोला।

सहस्त्रार्जुन ने अपने हाथ का कड़ा निकालकर उस मछुवे की ओर फेंका।

"ले यह उपहार। अघोरी कहाँ रहता है, सो तुझे पता है?"

"अमावस्या की मध्यरात्रि में वह पशुपति को खोपड़ी चढ़ाने आता है।"

"यह तो सारा नगर जानता है।"

"उसी समय वह आप पर कुछ करेगा।"

सहस्रार्जुन चुप हो गया। कुछ देर रहकर उसने पूछा—"तू डड्डु-नाथ को पहचानता है?"

"अन्नदाता मैंने बहुत बार गुरु को देखा है।"

"तो अमावस्या को आना और मेरे आदमियों को ले जाकर उसे दिखाना।"

: ६ :

भगवती प्रतिदिन श्मशान में जाकर अघोर-चक्र बनाकर प्रसाद चढ़ा आतीं, और चिताओं के आस-पास फेरी लगाते कुत्तों और सियारों के बीच बैठे हुए अघोरियों की स्तुति किया करतीं।

अमावस्या आ गई। रात को भगवती चबूतरे पर अघोर-चक्र बना कर लाल फूलों का ढेर करके उस पर खोपड़ी धर आईं। पास ही खाने का प्रसाद भी धर दिया, और फिर झाड़ पर चढ़ बैठीं।

कूर्मा सहस्रार्जुन से मिल चुका था, और उसने तालबाहु के उद्धत बेटे तालध्वज को डड्डुनाथ के मारने का काम सौंप दिया था। इसीसे मध्यरात्रि होने पर तालध्वज और रुरु का एक विश्वस्त नायक आकर थोड़ी दूर पर ही एक झाड़ की ओट में घुस बैठे। कूर्मा उनसे कुछ दूर स्थानक के एक खम्बे के पीछे खड़ा रह गया।

भगवती के मन में रंच मात्र भी घबड़ाहट नहीं थी; आज डड्डु-नाथ को अपना प्राण अर्पण करके, इस पीड़ा से मुक्ति पाने का उन्होंने संकल्प कर लिया था। मध्यरात्रि हो आई। गुरु डड्डुनाथ नदी के उस पार से न आकर, नदी के किनारे-किनारे ही अपने चार पैरों से आये,

चबूतरे पर चढ़े और उन्होंने चारों ओर सूंघा। वे अपने दो पैरों पर हो गए। जिस झाड़ पर भगवती बैठी थीं, उस ओर दृष्टि डालकर बड़े आनन्द में डकार लेने लगे।

ज्यों ही वे नीचे झुककर प्रसाद खाने को हुए कि तालध्वज और उसके साथी खड्ग लेकर उनकी ओर दौड़ आए। डड्डुनाथ सियार की भांति किलकारी मारकर हवा में उछल पड़े। भगवती झाड़ पर से कूद पड़ीं और दौड़कर उन्होंने फरसी से एक नायक का सिर काट डाला। तालध्वज मुट्ठी बाँधकर भाग गया।

भगवती ने चबूतरे की ओर दण्डवत प्रणाम किये, और भूमि में सिर डालकर प्रतीक्षा करने लगीं कि कब डड्डुनाथ के नख उनके गले में भिद जायं।

डड्डुनाथ ने पहले तो चारों ओर सूंघा, फिर वह आनन्द में डकारने लगा। सदा की भांति उसने पशुपति को खोपड़ी चढ़ा दी और फिर जिस रास्ते तालध्वज गया था, उसी रास्ते, भूमि सूंघते-सूंघते चारों पैरों से दौड़ता चला गया।

सवेरे सहस्रार्जुन घबड़ाया-सा मृगारानी के आवास पर पहुँचा। मृत्यु का भय उसके मुख पर छाया हुआ था।

"मृगा! देखो अपने गुरु की करतूतें।"

"कौनसे गुरु? और कौनसी करतूतें?"

"वह भार्गव अब डड्डुनाथ अघोरी का गुरु हो गया है।"

"अरे वाह, ऐसा भी कहीं हो सकता है?" मृगा ने कहा। पर गुरुदेव जीवित हैं, यह सुनकर उसके स्वर में उत्साह उभर आया।

"अभी परसों डड्डुनाथ अघोरी ने आसा नायक को मार डाला।"

"हां, वह तो मैंने सुना है।"

"कल मेरी बारी थी।"

"रहने भी दो!"

सहस्रार्जुन को कँपनी आ गई—"सच कह रहा हूँ, इसीसे मैंने कल

तालध्वज और मरीचि नायक को उसे मारने के लिए भेजा था।"

"अररर ! उसे भी कहीं मारा जा सकता है ? वह तो अमर है !" मृगा के स्वर में भी भय व्याप गया।

"मरीचि को तेरे भार्गव ने मार डाला। तालध्वज को अघोरी ने मार डाला," कहते-कहते सहस्रार्जुन का स्वर भी भय से काँप रहा था।

"कैसे जाना कि अघोरी ने ही मारा है ?"

"कल रात को वह स्थानक के श्मशान के पास खोपड़ी चढ़ाने आया था।"

"पर तालध्वज—"

"अभी-अभी तालबाहु बताकर गया है। मध्यरात्रि के पश्चात् तालध्वज घबड़ाया-सा लौटा और सो गया। सवेरे डड्डुनाथ ने उसका भोग ले लिया, उसका सिर नखों द्वारा धड़ से अलग कर दिया गया था।"

दोनों काँप उठे।

"पर यह कैसे जाना कि भार्गव ने मरीचि को मार डाला ?"

"उसकी गर्दन फरसी से काटी गई है।"

"ओह—!" मृगा का मुख खुला ही रह गया।

सहस्रार्जुन ने अपना सिर दोनों हाथों से पकड़ लिया।

"गुरुदेव को अभी भी मना लो। मान जायंगे।"

"मनाऊं ? नहीं, कभी नहीं।"

"तो फिर क्या होगा ?"

सहस्रार्जुन ने अपने बाल नोच लिये।

अब तक डड्डुनाथ अघोरी खोपड़ी की बलि देने के लिए किसी रोगी मनुष्य को महीने में एक बार मारा करते थे, पर पिछले कुछ दिनों में आमा, मरीचि और तालध्वज-जैसे तीन योद्धाओं के प्राण ले लिये थे, इस संवाद से माहिष्मती में घबड़ाहट व्याप गई। इस बात की चर्चा भी होने लगी कि अघोरी ने भार्गव को गुरु के रूप में स्वीकार कर लिया है। पशुपति के स्थानक पर गुरु डड्डुनाथ और गुरु भार्गव की आराधना

आरम्भ हो गई। लोग उनकी मनौतियाँ मानने लगे।

महस्रार्जुन को एक रात सपने में डड्डुनाथ और गुरु भार्गव अपना गला दबाते दिखाई पड़े। सवेरे वह चौंककर चारों ओर देखने लगा। सवेरे में ही उसे सन्ध्या होने का भय लगने लगा।

"वह मछुवा कहाँ चला गया ?" उसने रुरु को आज्ञा दी—"जहाँ भी हो उसे खोज निकालो।"

कूर्मा तो बस ऐसे ही किसी निमंत्रण की प्रतीक्षा लगाये बैठा था। वह तुरन्त आ उपस्थित हुआ। चक्रवर्ती ने आतुरतापूर्वक उसका स्वागत किया और पिछली रात की दुर्घटना के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ की।

"डड्डुनाथ गुरु जो न करें थोड़ा है, अन्नदाता, जो अन्तरिक्ष मे उड़ता है, उसे कौन रोक सकता है ?"

"अघोरी जब आता है तो वह कहां होता है, सो भी कुछ पता है ?"

"जहां श्मशान होता है, वहीं अघोरी आते हैं, अन्नदाता !"

महस्राजुर्न ने सेनापति तालबाहु को बुलवा भेजा और मछुवे से ठहरने को कहा।

"तालबाहु, ये अघोरी चारों ओर ऊधम मचा रहे हैं। इन्हें तो निर्मूल ही करना होगा।"

तालबाहु पुत्र के मरण से क्षुब्ध था, वह उग्र हो उठा।

"चक्रवर्ती ! कोई भी योद्धा अघोरियों को मारने के लिए जाने को तैयार नहीं होगा।"

"क्या सभी इतने कायर हो गए हैं ?"

"नहीं, सबकी मति गुम नहीं हो गई है। और मुझे आपका यह सेनापतिपद नहीं चाहिए। परसों ही आपके पैरो पड़कर मैंने आपसे कहा था कि डड्डुनाथ अघोरी को न छेड़िए, उसे कोई मार सके, यह सम्भव नहीं है। पर आपने नहीं माना और मेरा हीरे-सा बेटा बिना मौत मारा गया।" तालबाहु ने आंसू पोंछ लिए।

"क्या कोई भी उसे मारने के लिए नहीं जायगा ?"

"नहीं, कोई नहीं जायगा। मनुष्य हो तो उसे मारा भी जा सकता है, पर जो अमर है उसे भला कौन छेड़ेगा ?"

"पर मुझे ही वह मार डालेगा तो ?"

"अब तक तो उसने कुछ किया नहीं है। रामा ने भी यदि अघोरी को न मारा होता तो डड्डुनाथ उसे न छेड़ता। किसी को व्यर्थ ही उसने मारा हो, ऐसा तो कभी सुना ही नहीं।"

"पर वह भार्गव उसे प्रेरित कर रहा है।"

"चक्रवर्ती ! यह बात गढ़ी है। आज डेढ़ वर्ष से भार्गव ने क्यों कुछ नहीं किया ? और भार्गव आपको मारने के लिए डड्डुनाथ को प्रेरित करे, यह मैं नहीं मान सकता।"

"तू समझता नहीं है।"

"आप ही भला सोचिए, क्या गुरु डड्डुनाथ अघोरी किसी को अपना गुरु बना सकते हैं ?"

इतने ही में गुरु भृकुण्ड और मृगारानी आ पहुँचे, और बड़ी देर तक वे चारों परामर्श करते रहे। निदान कूर्मा को फिर बुलाया गया।

"मछुवे !" गुरु भृकुण्ड ने फिर कहा—"तू डड्डुनाथ से कभी मिला है ?"

"देखे हैं, मिला तो नहीं हूँ।" कूर्मा ने कहा।

"डड्डुनाथ को जाकर संदेशा सुना आये, ऐसे किसी व्यक्ति को जानता है ?"

"मेरे गाँव के एक लड़के ने डड्डुनाथ अघोरी को साध रखा है, कदाचित् वह जाकर कह आये।"

"उसे बुलाकर ले आ," गुरु भृकुण्ड ने कहा।

"तो मैं अपने गाँव जाकर उसे लिवा लाता हूँ।"

"क्या उसने सचमुच डड्डुनाथ को साध लिया है ?" सहस्रार्जुन ने पूछा।

"सो तो कैसे कहा जा सकता है ? और वह बडा ही हठी लडका है । कदाचित न भी आये ।"

"जा, कुछ करके उसे ला," गुरु भृकुण्ड ने कहा—"जल्दी ही उसे ले आना, अगली अमावस्या से पहले ।"

"अगली अमावस्या को मै शायद ही जीता बचूं," सहस्त्रार्जुन बुदबुदाया ।

: ७ :

भगवती को अब भय नहीं रह गया था । प्रतिदिन रात को वे श्मशान मे जाती और अघोर-चक्र बनाकर प्रसाद धर आती ।

सहस्त्रार्जुन के साथ हुई बातचीत कूर्मा ने जब उन्हें कह सुनाई तो उसी रात को वे श्मशान में गईं और मंत्र पढकर अंधेरे मे सोये पड़े अघोरियो को सुनाई पड सके, ऐसे स्वर मे गुनगुनाई—"डड्डनाथ गुरु, अघोरियो के प्रभु, तुम्हारे माथे पर भय है। मुझसे आकर मिलो ।"

दूसरे दिन भी जाकर ऐसे ही गुनगुना आईं ।

उसी दिन रात को मध्यरात्रि बीत जाने पर भगवती को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई जानवर उनके द्वार पर पेट के बल घिसटता चला आ रहा है । उन्होंने उठकर द्वार खोला तो एक बडा सा सियार भागता दिखाई पडा ।

तीसरे दिन रात को वे फिर श्मशान मे जाकर प्रार्थना कर आईं, और रात ढलने पर फिर वही सियार द्वार पर पेट के बल घिसटता दिखाई पडा । भगवती ने उठकर द्वार खोला । पीछे की कोठरी में सोया हुआ कूर्मा, माथे तक ओढ़ना खींचकर, घुटने से पेट दबाये, कांपता हुआ पडा रहा ।

तुरन्त ही डड्डनाथ सियार की भांति अन्दर चले आये । भगवती ने दण्डवत् प्रणाम किया और अघोरी ने एक आधी खोपड़ी को बीच में

धर दिया। उसमें से कुछ फीका-सा प्रकाश झांक रहा था। डड्डुनाथ कद के ठिगने थे, पर उनकी छाती बहुत चौड़ी थी। उनके हाथ भी बहुत लम्बे थे। दो दांत उनके मुंह के बाहर निकले आ रहे थे। वे कोई पचास-एक वर्ष के जान पड़ते थे। कुछ ध्वनि-सी करते हुए वे चारों ओर सूंघने लगे।

"तीन महीने पहले तू चबूतरे के पास के झाड़ पर थी ?" उसने भारी स्वर में पूछा।

"हाँ, था।" भगवती ने हाथ जोड़कर संशोधन किया।

डड्डुनाथ ने फिर सूंघकर कहा—"झूठ बात है, तू स्त्री है।"

"गुरु, सच बात है। मैं स्त्री हूं।"

"उसके अगली अमावस्या को उस पार आई थी ?"

"हां।"

"गई अमावस्या को उस आदमी को तूने मारा था ?"

"हां।"

"तू ही प्रतिदिन अघोरी-चक्र बनाती है ?"

"हां।"

"मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। मांग, मांग, क्या चाहती है ?" डड्डुनाथ तिरस्कारपूर्वक हँस पड़ा—"स्वार्थ के बिना तुम मनुष्य सबा कुछ करते हो—अरे हां, बहुत-कुछ करते हो—एक दूसरे-को मारते हो, भूखों मारते हो, सताते हो।" और धीरे से मुंह मटकाकर अघोरी हँस पड़े।

"महाराज, मेरा तो कोई स्वार्थ नहीं है। आज आपको चेतावनी देने के लिए बुलाया था। अगली अमावस्या को चबूतरे पर न जाइए। सहस्त्रार्जुन आपको मार डालना चाहता है।"

"मैं अवश्य जाऊंगा। मैं कोई भी अमावस्या चूका नहीं हूँ।"

"पर वह आपको अवश्य ही मार डालेगा।"

"तुम्हारी यह मानव जाति ही नीच है । मैंने उसका क्या बिगाड़ा है ?"

"उसका यह मानना है कि आप उसे मारने को उद्यत हैं ?"

"मैं उसे क्यों मारने लगा ? हां, महीने में एक मनुष्य तो अवश्य मारता हूँ—भोग चढ़ाने के लिए। और कोई मेरे अघोरी को मार डालता है तो उसका बदला भी अवश्य लेता हूँ। बिना कारण के तो तुम्हारी मनुष्य जाति ही मारती है।" डड्डुनाथ ने तिरस्कारपूर्वक खीसें निपोर दीं।

"आप मानव नहीं हैं ?"

"मैं मानव ! हा-हा-हा-हा ! मैं अघोरी हूं। तुम्हारी पापी मानव जाति को तो मैं छूता भी नहीं हूं।"

"कोई भी अच्छा मानव अभी तक आपको नहीं मिला ?" भगवती के स्वर में आतुरता थी।

डड्डुनाथ हंस पड़े— "है, एक है अवश्य।"

"कौन है ऐसा, भला ?"

आशा और निराशा के बीच भगवती का हृदय अधर में झूल रहा था। बाहर किसी का पगरव और चिल्लाहट सुनाई पड़ी। पलक मारते में डड्डुनाथ उछल छत पर जा चिपके और छप्पर की कड़ियां निकाल दीं।

"मैं आगामी अमावस्या को मिलूंगी," भगवती ने कहा।

छप्पर के बड़े-से भक्काले में होकर डड्डुनाथ अदृश्य हो गए।

रात को सहस्रार्जुन की आँख नहीं लग रही थी। कहीं किंचित् मात्र भी शब्द होता, कवेलु खड़कता या कुत्ता भौंकता सुनाई पड़ जाता, तो वह उठ बैठता, सोये हुए अंग-रक्षकों को जगा देता, चारों ओर खोज करवाता। आँखें मिंचते ही उसे भयानक सपने आते। पहले कभी न की थीं, ऐसी मनौतियां वह मानने लगा।

एक सवेरे बिछौने से उठकर ज्योंही उसने धरती पर दृष्टि डाली तो

वह बड़े ही त्रासक स्वर में चीख उठा। उसकी शैया के पायताने किसी ने एक छोटा-सा सिंदूर का अघोर-चक्र बना दिया था।

उसकी किलकारी सुनकर मृगारानी आ पहुँची। वह रानी से चिपट पड़ा।

"मृगा! मेरी घड़ी आ पहुंची है।"

उसने अंग-रक्षकों को धमकाया, कुछ नये नायकों को पहरे पर नियुक्त किया, तालबाहु को चारों ओर सैनिक भेजने की आज्ञा दी, और मानो सचमुच मर रहा हो ऐसे वह कातर होकर मृगा से चिपटे रहने लगा।

सारी माहिष्मती में बात फैल गई कि सहस्रार्जुन की अन्तिम घड़ी आ पहुंची है।

सहस्रार्जुन ने सारे सैनिकों के मुख पर अपनी मृत्यु की छाप देखी। मृगा के आश्वासनों से वह क्रुद्ध हो गया। गुरु भृकुण्ड को बुलवाकर पशुपति की आराधना प्रारम्भ करवा दी। उसने स्वयम् भी स्थानक में जाकर अपने हाथों से आरती उतारी और भृकुण्ड द्वारा अभिमंत्रित पशुपति का यंत्र गले में बांध लिया। दोपहर के पश्चात् वह गढ के कंगूरों पर इधर-से-उधर छलाँगें मारता रहा।

संध्या होने पर वह मृगा के आवास में गया। स्वयम् चारों ओर घूमकर योद्धाओं को नियुक्त कर आया। अपने सोने के तल्प के आस-पास उसने अपने सारे शस्त्र टांग दिये। द्वार के पास मृगा को सुलाकर वह आप सोने के लिए गया। बड़ी देर तक वह मृगा के साथ उच्च स्वर में बातचीत करता रहा। फिर अभिमंत्रित पशुपति का यंत्र उसने अपने गले से निकाला और अपने तकिये के पास रख दिया, उसकी पूजा कर उस पर फूल चढ़ाये। मध्य रात्रि होने पर दोनों की आंख लग गई, और......

वह कंगूरों पर घूम रहा था। बादल घिर रहे थे......

वातावरण स्तब्ध था। एक मात्र बिल्ली कूदती हुई चली आ रही

थी। वह बिल्ली उसके ऊपर होकर निकल गई। वह उसके पीछे दौड़ा, और वह बिल्ली उसके गले पर झपटी। चिल्लाकर थर-थर कांपता हुआ वह उठ बैठा। जैसे-तैसे उसके गले मे से एक रुंधती-सी चीख फूट पड़ी। घबडाई-सी मृगा उठकर आई। चारो ओर से रक्षकगण मशालें लेकर दौड़ते हुए आ पहुँचे। उसके अंग-प्रत्यंग से पसीना झर रहा था।

मशालें लेकर सैनिक उसके तल्प के आस-पास खडे थे। उसकी आंखें फटी-सी रह गईं।

"देखो, देखो, देखो ?" सहस्त्रार्जुन ने भूमि की ओर संकेत किया। वहाँ एक छोटा-सा सिंदूर का चक्र रचा हुआ दीख पड़ा।

मृगा चीखकर बेभान हो गई। घबडाहट मे सहस्त्रार्जुन तकिये के पास रखा हुआ अपना यंत्र लेने पहुँचा और इस प्रकार चिल्ला-उठा मानो साँप ने काट खाया हो। तकिये के पास वहाँ यंत्र था ही नहीं।

'मृत्यु की घडी''''''श्वास मानो रुंध रहा हो, ऐसे उसने अपने गले पर हाथ दे लिया।

: ८ :

कूर्मा और भगवती जब मछुवों के वेष मे गढ मे पहुँचे, उस समय चक्रवर्ती यहाँ-वहाँ ताक रहे थे। मृगा उनके पास बैठी चिन्तातुर दृष्टि से उनके मुंह की ओर देख रही थी। तालबाहु निस्तेज-सा बैठा था। गुरु भृकुंड बिना उच्चारण किये ही मंत्र पाठ कर रहे थे।

राजा दिवोदास की पुत्री और गुरुदेव भार्गव की पत्नी गन्दे भैंस के चमड़े का वेष धारण किये, उलझे बालों की लटें और श्मशान की राख लपेटे खडी थीं। उनके हाथ में त्रिशूल और गले में हड्डियो की माला थी।

गुरु भृकुंड और मृगारानी ने उन्हे पहचान लिया। तीन महीनों मे भगवती से मिलने का प्रयत्न उन्होने नहीं किया था, अतएव वे लज्जित हो गए।

"लड़के," गुरु भृकुण्ड ने कहना आरम्भ किया, "तूने डड्डुनाथ अघोरी को देखा है ?"

"मैंने उनका आराधन किया है," भगवती ने कहा।

"वह कैसा है ?'

"जैसा किसी ने अब तक देखा न होगा।"

"तू उनसे मिल सकता है ?"

"यदि वे मुझ पर बहुत प्रसन्न हो जायँ तो।"

"चक्रवर्ती का संदेशा उनके पास पहुँचा देगा ?" भृकुंड ने पूछा।

"यदि गुरु डड्डुनाथ को सुनाने योग्य होगा, तो ले जाऊंगा।"

"उससे जाकर कहना कि चक्रवर्ती तुझ पर प्रसन्न है।"

"वे तो मानवों को धिक्कारते हैं। उनकी प्रसन्नता की चिन्ता उन्हें नहीं है।"

"उन्हें जो चाहिए वह, स्वर्ण चाहिए तो वह भी, मैं उन्हें देने को तैयार हूं," सहस्रार्जुन ने कहा।

"आपके स्वर्ण से श्मशान की राख उन्हें अधिक प्रिय है," भगवती ने उत्तर दिया।

"तब फिर वे मुझे क्यों सताते हैं ?" सहस्रार्जुन ने दीन भाव से पूछा।

"जो निर्दोष का दमन करता है और गुरु का द्रोह करता है, ऐसे अधर्मियों को ही वे सताते हैं," भगवती ने कहा।

"मैंने उनका क्या बिगाड़ा है ?"

"अन्नदाता, आप क्षमा करें तो कहूँ," भगवती ने अपने सिंदूर से रंगे हुए हाथ जोड़ लिए।

"बोल-बोल, जो जी चाहे बोल !" गुरु भृकुंड ने आश्वासन दिया। सहस्रार्जुन गर्वित होकर गुरु की ओर देखते रह गए।

"मैंने स्वयम् गुरु डड्डुनाथ से तो सुना नहीं है, पर ऐसा कहा जाता है कि वे आप पर बहुत कुपित हो गए हैं।"

"किस कारण ?"

"कृपानाथ, गुरु डड्डनाथ मानते हैं कि आप निर्दोषों को मारते हैं, गुरुओं का संहार करते हैं और स्त्री-बालकों पर अत्याचार करते हैं।"

सहस्त्रार्जुन का मुख गहरा लाल हो गया, पर तुरन्त ही वह फीका पड गया, और उसने माथे पर हाथ दे लिया।

"लड़के," गुरु भृकुण्ड ने बात को आगे बढाया, "तू गुरु डड्डनाथ अघोरी से कहना कि अब बहुत हुआ। वे अब कृपा करें; चक्रवर्ती अब ऐसी कोई बात नहीं करेंगे। मैं वचन देता हूं। चक्रवर्ती! आप स्वस्थ नहीं हैं, लेट जाइए। हम इस लड़के को समझा रहे हैं।"

सहस्त्रार्जुन धीरे से उठा, और चुपचाप वहाँ से चला गया। उसके साथ तालबाहु भी गया।

गुरु भृकुण्ड और मृगा उठकर भगवती के पैरों पडे।

"भगवती!" मृगारानी ने चारों ओर सावधानी से देखते हुए धीमे स्वर में कहा, "यह क्या कर रही हैं आप ?"

"जब सहस्त्रार्जुन मनचाहा करते थे, तब तुममें से किसी ने उनसे यह नहीं पूछा कि तुम क्या कर रहे हो ?"

"हम कर ही क्या सकते हैं ? गुरुदेव मुझे सौभाग्य का आशीर्वाद दे गए हैं, और आप वही हर लेने को उद्यत हो बैठी हैं। दिन और रात इन्हें कल नहीं है। इन आठ दिनों मे तो ये पागल ही हो गए हैं।"

"पर इन्होंने कितनों को पागल नहीं बनाया ? मुझे भी तो पागल बना छोडा है।"

"मैंने गुरुदेव को यहाँ के संकट से बचाया—"

"मैं तुम्हारे सुख का अपहरण किया नहीं चाहती। तुम आनन्द से रहो। उसका मारनहार जब आयगा, तो वह आप ही उससे उत्तर मांगेगा।"

"क्या गुरुदेव मिले ? क्या वे जीवित हैं ?"

"उनको मारने वाला न तो जन्मा ही है, और न अब जन्मेगा।"

"वे कहाँ हैं ?"

"तुम जानकर क्या करोगी ? तुमसे कुछ होता तो है नहीं। पर सहस्राजु न को यदि बचना है तो उसे एक वचन तो देना ही पडेगा—यही कि अघोरियों और भृगु को वह कभी न सतायेगा।"

"तब तो डड्डुनाथ चक्रवर्ती को सुखपूर्वक रहने देंगे न ?"

"देखूँ, पहले गुरु डड्डुनाथ को मना देखूं। पर यह वचन मिलने से पहले तो मैं कुछ करने की नहीं हूँ। जाओ, जाकर उससे वचन ले आओ, यद्यपि उसके वचन पर मुझे श्रद्धा नहीं है।"

थोडी देर में गुरु भृकुण्ड चक्रवर्ती का वचन लेकर लौट आए।

"भगवती !" मृगा ने पैरों पडकर भगवती के चरणों की रज माथे पर चढ़ा ली, "मेरे अर्जुन का कुछ न बिगडने पावे, मैं आपके पैरों पडती हूँ।"

"यदि वह वचन का पालन करेगा तो।"

: ६ :

दूसरे ही दिन सहस्राजु न ने डोंडी पिटवा दी कि अघोरियों और भृगुओं को कोई न सताए। लोगों के जी ठिकाने आए। गुरु भृकुण्ड ने एक नया यंत्र अभिमंत्रित करके चक्रवर्ती को दिया। सहस्राजु न ने उसे गले में बाँध लिया, और उसका मन शान्त होने लगा। दो-चार दिन तक जब डड्डुनाथ का कोई चिह्न नहीं दिखाई पडा तो उसे फिर कुछ हिम्मत-सी आ गई।

जब हिम्मत आ गई तो चक्रवर्ती का हृदय पुकार उठा—वह तीन भुवन का स्वामी, वह लंकाधीश को जीतने वाला सहस्राजु न, एक छोटी बच्ची के समान थर-थर कांप उठा था ! मृगा-जैसी स्त्री का आंचल पकड कर वह बैठा रहा ! और एक दुष्ट पिशाच से घबडाकर उसने वचन दे दिए। एक मछुवे के छोकरे के सामने प्रणिपात करना भर उसके लिए शेष रह गया था। भृकुण्ड और मृगा, जिनका कि वह तिरस्कार किया

करता था, उन्हीं के पैरों पडकर उसने जीवनदान मांगा ! उसका सारा अभिमान चूर-चूर हो गया। और ज्यों-ज्यों वह उस चूरे को एकत्रित करने लगा त्यों-त्यों उसका क्रोध बढने लगा।

मृत्यु का भय अदृश्य हो गया। डड्डुनाथ ने उसे डराया था। उससे बदला लेने की इच्छा उसमें बलवती हो चली। चौदस की रात को वह इच्छा प्रमत्त हो उठी। कल रात अघोरी अकेला आयगा। वह लड़का उसके साथ बात करने जायगा। अघोरी ने पहले ही वचन का पालन करना आरम्भ कर दिया था, अतएव वह निर्भय था। और जिस समय वह लडका जाकर उससे मिले, ठीक उसी समय यदि वह डड्डुनाथ को मार डाले तो सारा भय दूर हो जायगा। प्रतिशोध भी हो जायगा, और पिशाचनाथ को मारने की अमर कीर्ति भी प्राप्त हो जायगी।

दूसरे दिन सवेरे उसका निश्चय दृढ हो गया। किसीसे कहने की बात वह नही थी। तालबाहु और मृगा इस कौशल को नहीं समझ सकते थे। वह सोच रहा था कि उसकी चतुराई इस समय सोलहों कलाओं से दीप्त हो उठी थी।

रात होने पर एक विश्वस्त नायक को उसने साथ लिया। डड्डुनाथ के साथ उसकी मैत्री हो गई है, वह उससे प्रसन्न है और संकेत के अनुसार ही वह उससे मिलने जा रहा है, आदि बहुत-सी बातें उसने नायक को समझाईं, तब कहीं बड़ी कठिनाई से वह साथ जाने को तैयार हुआ।

उसे किनारे पर खड़ा रखकर सहस्त्रार्जुन स्वयम् स्थानक के पास आकर खडा रहा। डड्डुनाथ किस ओर से आता है, यह देखने के लिए उसने चारों ओर दृष्टि डाली।

डड्डुनाथ नदी के रास्ते ही आये, और उन्हें मनुष्य की गन्ध आई। पत्थर के पीछे छिपा हुआ सैनिक डड्डुनाथ के आने की सूचना देने के लिए बाहर निकला। डड्डुनाथ चारों पैरों से उसके पीछे दौडा, और उसके गले पर झपटकर उससे चिपट गया। तुरन्त ही उसने उसे भूमि

पर डाल दिया, उसका माथा धड से अलग कर दिया, उसका रक्त पी लिया, और उसकी खोपडी लेकर, भोग चढाने के लिए श्मशान के चबूतरे की ओर बढा।

कूर्मा को दूर खडा रखकर भगवती ने चबूतरे के पास अघोर चक्र रचा, फूल और खोपडी चढा दी, और चबूतरे के सामने हाथ जोडकर खडी रह गईं। उन्हें देखकर डड्डुनाथ ने आनन्द की डकारें लीं। फिर उन्होंने प्रसाद ग्रहणकर पशुपति के सम्मुख नायक की खोपडी की बलि चढाई।

"बेटा! क्या बात है?"

"गुरु डड्डुनाथ! भैरवनाथ! सहस्रार्जुन ने कहलाया है कि कृपा करिए, अब वह मित्र होकर रहेगा।"

"मनुष्य भी कभी किसी का मित्र हुआ है?"

"जो आप चाहें वही—स्वर्ण भी—वह देने को तैयार हो गया है।"

"मैं तो मनुष्य नहीं हूं जो स्वर्ण के पीछे मर मिटूं!"

"उसने वचन दिया है कि अघोरियों को अब नहीं सताऊंगा।"

"उसने जो डोंडी पिटवाई है, वह मैंने सुनी है। अब उसके साथ भला मेरा क्या झगडा है?"

"वह कहता है कि धर्म और गुरुओं की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूंगा।"

"झूठा!" डड्डुनाथ हँस पडे।

"उनकी मृगारानी बुद्धिमती है। उसने भी वचन दिया है।"

"मुझे और मेरे अघोरियों को वह सुख-चैन से रहने दे, और मुझे क्या चाहिए? मुझे कौन उसके अधम लोक मे आना है?"

"और भैरवनाथ! आपने उस दिन मुझसे पूछा था कि मुझे क्या चाहिए?"

"स्वार्थी मानव!" डड्डुनाथ हँस पडे, 'बोल क्या चाहिए तुझे?"

"एक बात पूछूं?"

"पूछ ! तू मानवी स्त्री नहीं जान पडती, अघोरी स्त्री-सी जान पड़ती है ।"

"अघोर-वन मे क्या कोई मानव इस डेढ वर्ष के बीच आया है ?" भगवती का स्वर कांप रहा था ।

"बहुत-से आते हैं, पर बीच ही मे या तो मगर खा जाते हैं, या फिर बिना मौत मारे जाते है ।"

"नहीं-नहीं, बहुत-से नहीं ।" और भगवती की आँखो से टप-टप आंसू टपकने लगे, "एक स्वरूपवान, तेजस्वी मानव—भय ने जिसका स्पर्श तक नहीं किया है ऐसा; युवा पशुपति के समान, आपके समान ही अंधेरे मे भी देख सकने वाली आँखो वाला—" कहते-कहते भगवती रो पड़ीं ।

"हा-हा-हा-हा," प्रसन्न होकर डड्डनाथ ने कहा, "वह मानव नहीं है—मानव नहीं है वह ।"

भगवती ने आँखों पर हाथ दे लिए ।

"वह तो गज की गति मे चलता है, सिह की दृष्टि से आतंक प्रसारित करता है । भार्गवनाथ मानव नहीं है, अघोरी है, वह मेरा पुत्र है ।"

"आपका पुत्र ?"

"डड्डनाथ के एक पुत्र को रेवा माता ले गई—यह दूसरा पुत्र भी रेवा माता ने ही उसे दिया है, वह भार्गवनाथ ।"

"वह-वही—राम भार्गव ।"

"तूने कैसे जाना ?"

लोमा सिसकती हुई डड्डनाथ के पैरों पड गई ।

"भैरवनाथ ! मुझे उनके पास ले चलिए । मैं आपके पैरो पडती हूँ ।"

डड्डनाथ किंचित् झिझका—"किसलिए ? भार्गवनाथ मेरा बेटा है ।"

"तो मै आपके बेटे की बहू हूँ......" और भगवती उच्च स्वर से रोने लगीं ।

"हा-हा-हा !" डड्डुनाथ आनंद की किलकारी करके हवा मे कूदे, और फिर भूमि पर आ गिरे। उन्होंने कहा—"मैं दस दिन के पश्चात् उसे लाकर तुझे सौंप दूंगा। तेरे घर पर ही उसे लिवा लाऊँगा।" और वे बड़ी देर तक हँसते रहे—"बेटा और बेटे की बहू दोनो ही मिल गए।"

वे लौटने को घूम गए—"मैं आपको पानी तक छोड़ आऊँ," कहकर भगवती उनके साथ ही हो ली।

चबूतरे से उतरकर किनारे की ओर आते हुए डड्डुनाथ सूंघने लगे—"इस कगार के पीछे कोई मनुष्य घुसकर बैठा है।"

लोमा ने पीछे घूमकर कमर पर बँधा हुआ चक्र हाथ मे लिया। सहस्राजु'न गदा उठाकर ललकारता हुआ एकाएक डड्डुनाथ पर टूट पड़ा। भगवती ने पीछे हटकर चक्र फेंका, वह जाकर सहस्राजु'न के हाथ पर लगा, और उसके हाथ से गदा गिर पड़ी। वह क्रोध से गुर्राया और बाएँ हाथ में खड्ग लिये वह दोनो की ओर बढ़ आया।

भगवती ने खड्ग निकालकर सामना किया। सहस्राजु'न किंचित् झिझका। डड्डुनाथ ने सियार के समान भयानक शब्द किया, और डकारते हुए वह अपने चारो पैरो पर खड़े हो गए।

सहस्राजु'न और भगवती के खड्ग टकरा गए। उनमे चिनगारियाँ निकलने लगीं और भगवती का खड्ग दूर जा गिरा।

डड्डुनाथ झपटकर सहस्राजु'न की गर्दन पर चढ बैठे और उनके लम्बे-लम्बे नख उसका गला टटोलने लगे। सहस्राजु'न के प्रचण्ड शरीर का प्रत्येक स्नायु डड्डुनाथ को पटक मारने को छटपटा रहा था। अघोरी की भयंकर किलकारी राजा के कानों को फाड़े दे रही थी।

सहस्राजु'न भूमि पर गिर गया। डड्डुनाथ के नख उसके गले में भिदने ही को थे कि भगवती दौड़ती हुई आ पहुँची—"डड्डुनाथ गुरु! इसकी रानी को मैंने वचन दिया है, इसे न मारिए।"

डड्डुनाथ ने शिथिल हाथो से सहस्राजु'न के मुख पर चांटे मार उसे बेजान कर दिया। फिर वे उठकर पानी के निकट आये। भगवती

को तलवार का आघात लगा था, सो उन्हें चक्कर आ गया।

डड्डुनाथ ने उन्हें गिरते हुए देखा तो वह तुरन्त दौड आया उन्हें उठा पानी के छींटें दे सचेत करने लगा।

सहस्त्रार्जुन की मूर्छा दूर हो गई। वह उठा और हाथ में खड्ग ले पानी में भगवती को उठाये खडे डड्डुनाथ की ओर बढा चला आया।

वह पानी के पास आ पहुँचा। डड्डुनाथ को उसने उछलते हुए देखा, और उसके हाथ से खड्ग गिर पडा।

नर्मदा के जल पर खडे-खडे डड्डुनाथ अघोरी सन्नाते हुए उलटे पैरो चले जा रहे थे। उनके हाथो मे लोमा का देह था।

बेजान होकर सहस्त्रार्जुन धरती पर ढुलक गया।

तीन

मृगारानी का उद्धार

: १ :

मध्यरात्रि बीत चली थी। दो ऊंची कगारों के बीच के जल पर एक नाव बही जा रही थी। कृष्णपक्ष के चन्द्र का क्षीण प्रकाश चारों ओर फैला था। कुछ मल्लाह सो रहे थे और कुछ ऊंघ रहे थे। ज्वार के कारण नाव अपने आप ही आगे बढ़ी जा रही थी। इस ओर सोये हुए भार्गव की आंख एकाएक खुल गई। नाव के उस सिरे पर कोई धीरे-धीरे कुछ खोद रहा हो, ऐसी स्पष्ट ध्वनि उन्हें सुनाई पड़ी। एक मल्लाह सिर नीचा किये छेद कर रहा था।

वे उठ बैठे। खोदने का शब्द बन्द हो गया, और छेद में से पानी आता सुनाई पड़ा। उन्होंने जाकर मल्लाह की गर्दन पकड़ी और बोले, "क्यों रे, नाव डुबा रहा है।"

सब जाग उठे। नाव के तले में एक बड़ा-सा छेद हो गया था, उसमें से बड़े वेग से पानी अन्दर घुसा आ रहा था।

भार्गव ने उस छेद करने वाले को उठाकर नदी में फेंक दिया। नाव डांवाडोल होने लगी। नाव वाले चीखने-चिल्लाते उठ बैठे, और सब लोग पानी में कूद पड़े। एक दूसरे मल्लाह ने भार्गव के सिर पर आघात किया। उन्होंने फरसी तानी। नाव उलट गई, और भार्गव तथा वह मल्लाह, पानी में एक-दूसरे के ऊपर हो गए।

अन्य सब मल्लाह चन्द्रतीर्थ की ओर किनारे पर आये। दक्षिण की ओर का किनारा कुछ निकट था, सो भार्गव उस ओर बढ़ चले। उस मल्लाह ने डुबकी मारी और पीछे से आकर पैर पकड़ लिया। उन्होंने बलपूर्वक लात मारकर पैर छुड़ा लिया, और झपटते हुए किनारे की

और तैरने लगे। अपने परशु को साथ रखने के लिए भी वे प्रयत्नशील थे, इसीसे तैरना उनके लिए कठिन हो रहा था।

भोर होने आया था; भार्गव ने देखा कि किनारे पर पांच-सात बड़े-बड़े मगर पड़े हुए हैं। उनका शब्द सुनकर वे सचेत हो गए और फिर पानी में लौटकर डुबकी मार गए।

कुछ दूर आकर भार्गव खड़े हो गए और उन्होंने हाथ में अपना परशु उठाया। उनका पीछा करने वाला मल्लाह हाँपते-हाँपते तैरता आ रहा था। वह कटि-पर्यंत जल में खड़ा हो गया, और उसने एक भयानक किलकारी की।

एक मगर मुंह फाड़कर उस मल्लाह को पकड़ लेता, कि उससे पहले ही भार्गव ने छलांग मारकर मगर के फटे हुए मुंह में बड़े वेग से एक आड़ा परशु मार दिया। मगर पीछे हट गया और परशु मुंह में लेकर पानी में डुबकी लगा गया। कुछ ही देर में रक्त की धारा ऊपर आती दिखाई पड़ी।

वह मल्लाह फटी आंखों से मगर को अदृश्य होते देखता रह गया। भार्गव उसे हाथ से खींचकर पानी के बाहर ले आये।

"ज्यामघ!" उन्होंने स्नेहपूर्वक कहा, "अबके तीसरी बार तू मुझे मारने में विफल हुआ है। क्या अब भी शत्रुत्व को भूल नहीं पाता है?"

ज्यामघ ने भार्गव की ओर इस प्रकार देखा जैसे सपने से जागा हो, और तुरन्त ही भूमि पर पड़कर उसने उनके पैर पकड़ लिए, और सिसकने लगा।

"तू इस नाव में कैसे आ गया?"

"गुरुदेव, क्षमा करिए। मृगारानी के निजी व्यक्ति मेरे सम्बन्धी होते हैं। आप इस नाव में आने वाले थे, इसीसे आपको मारने के लिए मैं इसमें चढ़ बैठा। और आपने मुझे बचा लिया—कितनी बार?"

"अच्छा ही हुआ, तेरे लिए इस पश्चात्ताप की आवश्यकता थी।"

सैकड़ों सियारों की किलकारियां किनारे पर के जंगलों में सुनाई पड़ीं।

"यह क्या है ?" भार्गव ने पूछा।

"गुरुदेव ! क्षमा करिए। यह अघोरियों का बन है। यहां से बचकर आप निकल नहीं सकते हैं, इसीसे तो नाव को मैंने इस स्थल पर डुबाया था।"

"अघोरियों का बन ?"

"हां, डडुनाथ पिशाच यहीं रहता है। उसके हाथ से बचकर कोई जा नहीं सकता है। चलिए यहाँ से भाग निकलें।"

"देखें तो क्या होता है," भार्गव ने कहा।

: २ :

ज्योंही भार्गव और श्यामघ ने अघोरी बन में पैर रखा कि हाथों में भैंसों और गायों की अंतड़ियों के शस्त्र लेकर अघोरी उनके आस-पास घिर आए। श्यामघ घबड़ाकर भागने जा रहा था कि भार्गव ने उसे रोका, और आप हँसता हुआ मुख लिये खड़े रह गए।

भार्गव को निर्भय और हँसते हुए देखकर पहले तो अघोरी कुछ झिझके, और फिर उन्होंने उन दोनों को बांधने के लिए रस्से निकाले। भार्गव ने स्वयम् ही उनसे मांगकर एक रस्सा ले लिया, और अपने हाथ पैरों में उसे बांधकर, उस रस्से का एक छोर उन्होंने अघोरियों के अग्रणी के हाथ में थमा दिया।

"चलो, कहां ले चलना चाहते हो ?" उन्होंने हँसकर कहा, "मैं भागने वाला नहीं हूं।"

उन्हें हँसते देखकर दूसरे दो-चार अघोरी भी हँसने लगे।

अघोरी उन्हें बांधकर वैधार्य पर्वत की तलहटी की ओर ले गए। घने जंगलों से घिरे हुए कगारों के बीच एक मैदान था। उसके आस-पास के कगारों में गुफाएं थीं। उन्हें देखकर वहां से कुछ स्त्रियाँ और बालक बाहर निकल आए।

चारों ओर खाये हुए पशुओं और पक्षियों की हड्डियां और पंख फैले हुए थे। सड़े हुए मांस की दुर्गन्ध भी आ रही थी। स्त्रियों और पुरुषों ने हड्डी, पत्थर तथा पंखों के नाममात्र वसन पहन रखे थे। प्रत्येक व्यक्ति की कमर पर एक-एक खोपड़ी बंधी हुई थी, जो पानी पीने के काम भी आती थी।

मैदान के बीच में लाकर भार्गव और ज्यामघ को बांध दिया गया। दिन-रात उन्हें खड़े रहना पड़ता था। जो कुछ उन्हें खाने को दिया जाता था, उसे सूंघना भी असह्य था। ज्यामघ सारे दिन भय से या आत्म-तिरस्कार से क्रन्दन किया करता। पर भार्गव को इन गन्दे, दुर्गंध-भरे, पर आनन्दी और विद्वेष-मुक्त लोगों पर ममता हो आई।

पर मानवों के प्रति इन लोगों के मन में जो तिरस्कार का भाव था, उसे जीतना सहज नहीं था। सांझ को खा-पीकर निवृत्त होने पर लकड़ियां अथवा आग में तपी हुई हड्डियां लेकर उन दोनों को जला-जलाकर संतप्त किया जाता। ज्यामघ चिल्लाता, गालियां देता, और प्रायः वेदना से बेजान हो जाया करता।

भार्गव चुप रहकर उस दाह को सहन करने लगे, यह बात अघोरियों की समझ में न आ सकी। धीरे-धीरे वे अघोरियों के साथ कुछ बातें भी करने लगे। अघोरी लोग मानव को हिंसक मानकर उससे डरा करते थे, पर ऐसे ममता-भरे मानव को देखकर वे अचरज में पड़ गए; फिर तो वे उन्हें एक बड़ा-सा खिलौना समझकर उनके साथ विनोद-क्रीड़ा करने लगे और उन्हें जलाना-सताना उन्होंने छोड़ दिया।

आठ दिन पश्चात् गुरु डडुनाथ आये। भार्गव और ज्यामघ को देखकर उन्होंने ओंठ पीसे।

"घातक, दुष्ट मानव!" वह बुदबुदाया।

भार्गव ने हँसकर कहा—"बहुत लोग ऐसे होते हैं, पर सभी नहीं।"

"तू यहाँ कैसे चला आया?"

"इस ज्यामघ से पूछिए।"

ज्यामघ ने सारी बात कह सुनाई। डड्डनाथ ने उस पर थूक दिया—"झूठे, द्वेषी, हत्यारे, कृतघ्न मानव !"

"आप भूल रहे हैं। आप भी तो मानव ही हैं न ?"

"नहीं, मैं मनुष्य नहीं हूँ। मैं तो अघोरी हूँ।"

"क्या अघोरियों में द्वेषी, झूठे और हत्यारे लोग नहीं होते ?"

"नहीं, हम लोग तो सीधे और सरल हैं।"

"बहुत से मनुष्य भी ऐसे होते हैं।"

"हाँ—" तिरस्कारपूर्वक डड्डनाथ ने कहा।

"पर गुरु, हमें मुक्त तो कर दीजिए। हमारे शरीर पर घाव पड गए हैं, और सिर में जूएं पड गई हैं। हमें नहा तो लेने दीजिए," भार्गव ने कहा।

"शायद भाग जाना चाहते हो ?"

"मैं क्यों भागने लगा ?"

"मैं किसी का भी रक्त पी सकता हूं," कहकर डड्डनाथ हँस पडे।

"रक्त किसलिए पीते हैं आप ? और भी तो खाने की बहुत-सी वस्तुएं हैं। और आप यदि गुरु हैं तो मेरे बाप-दादे भी गुरुवंश के ही हैं।"

"तू भी गुरु है ?"

"हाँ"

"तू हवा में उड़ सकता है ?"

"नहीं"

"पानी पर चल सकता है ?"

"नहीं"

"अंधेरी रात में देख सकता है ?"

"हाँ"

"झूठ बोलता है !"

"रात होने पर परीक्षा कर देखिए।"

"हाँ, हाँ बापू, आपके और मेरे समान ही यह भी रात को देख सकता है," डड्डनाथ के पुत्र भड्डनाथ ने कहा।

डड्डनाथ कुछ उलझन में पड़ गया—"पर तू न तो हवा मे ही उड़ सकता है, न पानी पर ही चल सकता है, और न खून ही पीता है। फिर तू भला कैसा गुरु ?"

"आप जो नहीं कर सकते, वह मैं कर सकता हूँ।"

"क्या कर सकता है ?" तिरस्कारपूर्वक हँसकर डड्डनाथ ने पूछा।

"आप जो कुछ खाते हैं, उससे अच्छा खाना आपको दिलवा सकता हूँ। ये आपके घाव और खुजली मिटा सकता हूँ। मैं आपको विद्या सिखा सकता हूँ।"

"विद्या ? यह विद्या क्या होती है ?"

"आपके पास जो शस्त्र हैं उनसे अच्छे शस्त्र मैं बना सकता हूँ। तुमसे कहीं अधिक सरलता से मैं वनचरो को मार सकता हूँ। एक तो यही विद्या है। दूसरी विद्या है जिससे मै तुम्हे तेजस्वी और विशुद्ध बना सकता हूँ, तुम्हे आर्यत्व सिखा सकता हूँ।"

डड्डनाथ खिलखिलाकर हँस पड़ा, और उसे हँसते हुए देखकर अन्य अघोरी भी हँसकर आस-पास नाचने लगे।

"इस लड़के को अच्छा कर सकता है ?"

"यदि मुझ पर तुम्हें विश्वास हो तो।"

"मानव में और विश्वास ?"

"करके तो देखिए।"

"पर कैसे कर सकता हूँ ? मुझे तो तुम लोगों का बहुत अनुभव है।"

"तुम्हें महाअथर्वण ऋचीक के पौत्र का अनुभव नहीं है। मुझे छोड़ दो।"

"तू भाग जाना चाहता है ?"

"गुरु डड्डनाथ ! क्या मैं मूर्ख हूँ जो भाग जाऊँगा ? नदी की राह में मगर मुँह फाड़कर बैठे हैं। बन के मार्ग में सिंह और वराह भूखे

बैठे हैं। मेरे भागने का एक ही मार्ग है। तुम्हारे हृदय का द्वार खोल कर उसीमें से भागूंगा।"

"तू मेरी आज्ञा के बिना नहीं भागेगा ?"

"मुझे अपनी शपथ है, अपने बाप-दादों की शपथ है,' भार्गव ने कहा।

"डड्डनाथ अघोरी का वचन भंग करके कोई जीता जा सका है ?"

"पर भार्गव का दिया वचन देवों के लिए भी तोडना सम्भव नहीं है।"

डड्डनाथ ने प्रसन्न होकर भार्गव को छोड दिया और उनके बहुत विनती करने पर ज्यामघ को भी छोड दिया। डड्डनाथ ने तो ज्यामघ को मार ही डालने का संकल्प किया था, पर भार्गव ने उसे छुडवा लिया।

ऐसी सुन्दर नर्मदा पास ही में थी, तब भी उसमें स्नान करना सम्भव नही था। वहाँ मगर बहुत अधिक थे।

दूसरे दिन सवेरे भार्गव नदी के तट पर खड़े थे, डड्डनाथ और भड़नाथ वहाँ आये। डड्डनाथ के हकारने पर छः मगर खिलवाड़ करते हुए, दुम हिलाते-से उनके पास आये। डड्डनाथ ने उन्हें सहलाया। भड़नाथ ने हाथो मे मांस के टुकड़े लेकर उन्हे खिलाये। फिर डड्डनाथ ने आज्ञा दी—"बैठ जाओ, अब कल।" आज्ञाकारी कुत्तों की भांति मगर फिर पानी मे चले गए।

डड्डनाथ ने भार्गव से कहा—"देखा, तेरे मानवों से तो मेरे ये मगर ही भले। जो खिलाता है, उसे तो कभी नहीं काटते।"

"सच बात है," भार्गव ने स्वीकार किया।

"मानव के समान कृतघ्न जंतु मैंने दूसरा नहीं देखा। अघोरी कभी अपनी की हुई सेवा को भूलता नहीं है। तू मगरों को खिलायगा ?"

"आजीवन यदि मुझे यहीं रहना पडा तो खिलाऊँगा।"

"सो बिना गुरु के कैसे सम्भव है ?"

"तुम मगर को वश मे करते हो, मैं उनसे भी दुष्टतर मानवो को वश मे करने का प्रयत्न करता हूँ," भार्गव हँस पडे।

कुछ ही दूर पर एक प्रवाह था, वही भार्गव संध्या स्नान किया करते।

श्यामघ की अकुलाहट का पार नहीं था। तीसरे दिन वह अत्यन्त रुग्ण हो गया तो दिन-रात उसकी सेवा करने का काम भार्गव ने अपने सिर उठा लिया। रात को श्यामघ पागल-सा हो जाता। वह अपने मरे हुए मां-बाप को याद किया करता, और भार्गव से क्षमा मांगा करता। बहुत बार वह भागने का या फिर आत्मघात कर लेने का विचार किया करता, और सदा रोता-कलपता रहता। भार्गव उसके जीवन मे रस लेने लगे। जब श्यामघ निराश होकर रोया करता तो उसे छाती से दाबकर वे माता की भाँति आश्वासन दिया करते। कई दिनो तक उनके लिए सबसे बड़ा काम यही हो गया था कि आधी-आधी रात तक जागकर वे पगले-से हो रहे श्यामघ को अपना दुःख बिसराने के प्रयत्न मे योग दिया करते।

भड़नाथ और भार्गव सवेरे जंगल में आखेट को जाया करते। अघोरियों का आखेट-पद्धति आदिम ढंग की थी। एक लकड़ी के सिरे पर पत्थर का फलक खोंसकर, वे भाले के रूप मे उसका प्रयोग किया करते। किसी बड़े झाड़ की गठीली शाखाओं मे से वे अपनी गदाएं बना लिया करते। पत्थर, पत्थर की हथौड़ी और हड्डियो की फरसी, यही उनके विशिष्ट हथियार थे।

दूसरे ही दिन जंगल मे जाकर भार्गव ने हरे बांस और भैंसो की अंतड़ियाँ एकत्रित कीं और उन्हे घिस-घिसकर कुछ तीखे तीर बना लिये। भार्गव को ऐसी विचित्र क्रियाएं करते हुए देखकर भड़नाथ और उसके कुछ मित्रों को बड़ी हँसी आई। जब भड़नाथ और कुछ अघोरी सवेरे आखेट पर गये तो वे भी उनके साथ गये। जंगल में जाकर झाड़ों के पीछे छिपकर अघोरी पक्षियों का-सा शब्द करते हुए, पक्षियों

को ललचाने लगे। जो पक्षी ललचाकर पास आ जाते, उन्हें वे बड़ी चपलतापूर्वक अपने हाथों में पकड़ लेते।

भार्गव ने उनसे चुप रहने के लिए कहा और दूर पर दो बड़े-बड़े सारस घूम रहे थे, उन्हें एक ही बाण से बींध दिया, और फिर कुछ उड़ते हुए बड़े-बड़े पक्षियों को तड़ातड़ मार गिराया। आखेट की यह पद्धति अघोरियों को बहुत पसंद आई। अघोरी वृद्धों और डड्‌डनाथ ने उसका निषेध किया।

"यह तो छलना है। हाथों-हाथ जानवरों को पकड़ लाना ही न्याय कहा जा सकता है। या तो वे ही हमें खायें, या फिर हमीं उन्हें खा जायें। ऐसी युक्तियाँ रचकर यदि हम उन्हें मारेंगे, तो किसी एक दिन हमारे परस्पर के व्यवहार में भी हम एक दूसरे पर उसका उपयोग करने लगेंगे। परिणाम यह होगा कि शत्रुत्व बढ़ेगा और हम भी मानवों की भाँति हिंसक हो जायंगे।"

भार्गव ने दूसरे ही दिन तीर-कमान जला दिए। शस्त्रों का एक नया ही रहस्य उनकी समझ में आया।

गन्दगी के कारण अघोरी अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित रहा करते थे। भार्गव ने अश्विनों की आयुर्विद्या के प्रयोग करने की इच्छा प्रकट की, पर वह अघोरियों को रुचिकर न जान पड़ी। रहन-सहन, वेषा-भूषा तथा शरीर की स्वच्छता आदि से उन्हें बड़ी विरक्ति थी। लोगों की मान्यता थी कि इसीसे अघोरियों की शक्ति बहुत क्षीण हो जाती है। नहाना उनके यहाँ पाप माना जाता था। प्रतिदिन शरीर पर राख मलना एक सुघड़ता का लक्षण माना जाता था। भार्गव दिन में दो बार प्रवाह में नहाया करते थे, पर अघोरियों की दृष्टि में वह बड़ी अधम बात थी। कोई अघोरी जब बहुत रुग्ण हो जाया करता तो वे उसे मर जाने देते, और उसे जलाकर, उसकी खोपड़ी, उसकी हड्डियां तथा उसके मेद के भिन्न-भिन्न उपयोग वे किया करते। अघोरियों को हड्डियां बहुत प्रिय थीं।

मनुष्य की ऐसी अवगणना भार्गव के मन में बहुत खलने लगी। पर इस सम्बन्ध में अघोरियों को समझाना व्यर्थ था। उन्होंने मरण-शय्या पर पड़े एक व्यक्ति की परिचर्या का भार अपने ऊपर ले लिया तो डड्डनाथ ने उन्हें वैसा करने का निषेध किया—"जब अघोरी के मरने की घड़ी आती है, तो उसकी हड्डियों और खोपड़ी से ही अन्य अघोरियों को बल मिलता है," उसने कहा। "उसे फिर जिलाने का प्रयत्न करने से भैरवनाथ कुपित हो जाते हैं।" यदि कोई अघोरी कहीं घायल होकर बेजान हो जाता तो उसका रक्त चूस लेना ही उनके यहाँ पुण्य माना जाता था।

चार महीनों के पश्चात् भार्गव को एक सुयोग मिला। एक दिन भडनाथ और उसके कुछ युवा अघोरी उसके साथ जंगल में शिकार पर गये थे। भयंकर किलकारियाँ करके वे डुगडुगी बजाते हुए, बड़े-बड़े दांतों वाले सूअरों और सिंहों को खिजाते और फिर पत्थर की हथौड़ियों, लाठियों, पत्थरों तथा लकड़ी की गदाओं से वे उनका सामना करते। और उसमें भी यदि कोई बिना शस्त्र के ही जानवर से स्वयम् भिड़कर उसे मार देता, वही शूरवीर समझा जाता। इस प्रकार आखेट अघोरियों और पशुओं के बीच युद्ध का रूप ले लिया करता था। या तो वे ही हमें खा जायं, या फिर हमीं उन्हें खा जायं, यही आखेट का न्याय माना जाता था।

एक दिन ऐसे ही एक आखेट में डड्डनाथ के भाई का एक बीस वर्ष का लड़का घायल होकर अचेत हो गया। आखेट सम्पन्न हो जाने पर, अघोरी आखेटक घायल व्यक्ति का रक्त पीने को प्रस्तुत हुए। भार्गव को वह लड़का बहुत प्रिय था, अतएव उसे कंधे पर उठाकर जंगल में भाग निकले। बड़ी दूर तक सबने मिलकर उनका पीछा किया, पर वे हाथ न आए।

अघोरी क्रुद्ध होकर अपने गाँव को लौट गए; उनकी बात सुनकर सारा गाँव उत्तेजित हो उठा। पर भडनाथ ने सबको समझा-बुझा

कर शांत किया। भार्गव भाग कर नहीं जायंगे। तीसरे दिन जब गुरु-डड्डनाथ आये तो उन्होंने भार्गव की खोज में कुछ आदमियों को भेजने का प्रबन्ध किया। सवेरे ही डुगडुगियाँ बजाई गईं। खोज में जानेवाले लोग तैयार होकर आ पहुँचे, अन्य लोग उन्हें देखने को एकत्रित हो गए, और डड्डनाथ खिलखिलाकर हँस पड़े।

"कहाँ जा रहे हो, मूर्खो?"

भार्गव अपनी गुफा के बाहर ही खड़े थे। उनके साथ वह युवक बिना राख का स्वच्छ शरीर लिये खड़ा था। डड्डनाथ और उस युवक का बाप दौड़ते आ पहुँचे, और ध्यानपूर्वक उस लड़के को देखने लगे। दो-एक स्थल पर भार्गव ने उसके शरीर पर पट्टियाँ बाँध रखी थीं, अन्यथा वह लड़का अति शुद्ध रूप में सामने खड़ा था।

"यह क्या बात है?" हँसकर डड्डनाथ ने कहा।

"मरे हुए अघोरी से तो जीता ही भला है न?" भार्गव ने पूछा।

अघोरियों पर इस चमत्कार का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। और धीरे-धीरे कोई-कोई अपने रोग का उपचार कराने के लिए उनके पास आने लगे।

: ३ :

ज्यामघ अच्छा तो हो गया, पर उसके भीतर आत्म-तिरस्कार का भाव बहुत बढ़ गया था। साथ ही अघोरियों के प्रति भी उसके मन की घृणा बहुत प्रबल हो उठी थी। वह स्वयम् पितृहीन और कुलहीन था। जिसे वह मारने आया था, उसने अपने उपकारों से उसे ढांक दिया था। जो व्यक्ति उसका कट्टर शत्रु था, उसके प्रति उसका पूज्यभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। और वह शार्यात-कुल-शिरोमणि आज इन वीभत्स और गंदे अघोरियों के बीच आ बसा था। किसी रूठे हुए बालक की भाँति अपने क्रोध का अधिक-से-अधिक प्रदर्शन करने में उसे आनन्द आता था।

भार्गव का अघोरियों के साथ मिलना-जुलना तथा हँसना-बोलना उसे रंचमात्र भी अच्छा नहीं लगता था। गुरुदेव-जैसे व्यक्ति को यों सरलता का व्यवहार करते देखकर उसके गर्व को आघात पहुँचता था, और कई बार वह उन्हें ताने भी मारा करता था।

नितान्त बाध्य होने पर ही वह अघोरियों से बातचीत करता। राख मले हुए, हड्डियों से सजे, गन्दे शरीर वाले उन स्त्री-पुरुषों को प्रतिदिन देखकर उसकी घृणा और अकुलाहट बढ़ती ही जाती थी। प्रायः डड्डनाथ या भड्डनाथ को मारकर, अथवा स्वयम् को मगरों का ग्रास बनाकर अपने जीवन का अन्त कर डालने को उसका जी चाहता। पर भार्गव की भक्ति से उसका हृदय ओत-प्रोत हो गया था। उनके प्रोत्साहक शब्दों से उसे शक्ति मिला करती थी। इसीसे उनका द्रोह न करके उनकी सेवा करने का संकल्प मन-ही-मन करते हुए वह अपने दिन बिताया करता।

अघोरी स्त्रियों को देखकर श्यामघ को बड़ा क्रोध आता। उन लोगों में विवाह की प्रथा नहीं थी। जिस पुरुष को जो स्त्री अनुकूल पड़ जाती, उसी के साथ वह अपनी गृहस्थी बसा लेता, केवल डड्डनाथ को इस बात की सूचना दे देनी पड़ती थी। एक-दूसरे की प्रीति कोई तोड़ देता, तो उन्हें दुख नहीं होता था। उन लोगों में परस्पर यदि कोई झगड़ा हो जाता तो डड्डनाथ या भड्डनाथ उस पर अपना निर्णय देते, तब सभी लोग हँस पड़ते, और जहाँ से चूके थे वहीं से फिर गिनना आरम्भ कर देते। दाम्पत्य-भाव उन लोगों में इतना कम था कि स्त्रियों को लेकर उनके बीच कभी कोई ईर्ष्या या द्वेष नहीं जागता था कि जिसके परिणामस्वरूप उनमें परस्पर संघर्ष हो। उनकी प्रीति करने की रीति को देखकर श्यामघ का सिर घूम जाता था। स्त्रियों में कोई लज्जा का भाव नहीं था। पुरुष खुल्लमखुल्ला स्त्रियों को रिझाने की चेष्टाएँ किया करते। दिन हो या रात हो जहाँ भी विलास का रंग जम जाता, वहीं रति-शय्या हो जाती थी। श्यामघ उन्हें कुत्तों से भी हीनतर मानता

था। इन लोगों के आनन्दी और सरल स्वभाव को देखकर उसके मन की ग्लानि का भाव विद्वेष से ओत-प्रोत हो उठता। कोई स्त्री ज्यामघ की ओर आँख उठाकर देखती भी नहीं। वे माना करती थीं कि ज्यामघ एक नीच और अधम मानव है। पर भार्गव के पीछे कई स्त्रियां चक्कर काटा करती थीं। ज्यामघ आत्म-तिरस्कारपूर्वक इस बात की प्रतीक्षा में था कि किस क्षण गुरुदेव का पतन हो और कब वे किसी अघोरी स्त्री के साथ गृह-संसार बसाकर बैठ जायं। एक-दो महीने तक स्त्रियों को भार्गव के आस-पास डोरे डालते देखकर ज्यामघ क्रोध से भर उठा।

एक दिन उसने भार्गव से पूछा—"गुरुदेव! क्या भगवती को आप भूल गए हैं?"

"मुझे उसका स्मरण करने की आवश्यकता नहीं है।"

"इतने दिनों के उपरान्त भी?"

"मुझे लोमा का स्मरण करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। मैं जहाँ भी हूँ, उसका अंश हूँ। और वह जहाँ भी है, मेरा अंश है। हम एक हैं, दो नहीं।"

ज्यामघ मन-ही-मन हँसा—और यों किसी दिन गुरुदेव किसी अघोरी स्त्री के जाल में फंस गए तो!

यह तो सभी प्रत्यक्ष देख रहे थे कि अनेक स्त्रियां भार्गव की ओर आकर्षित हो रही हैं। वे जहां भी जाते, स्त्रियां अपने काम छोड़कर उनके सामने जा खड़ी होतीं। जब भार्गव नहाने जाते तो बहुत-सी स्त्रियों का जी करता था कि वे पानी भरने जायं। कभी-कभी भार्गव भी मंद-मंद मुस्कराते हुए बातचीत किया करते।

एक बार ज्यामघ भार्गव के साथ नहाने गया, तभी तीन अघोरी युवतियां वहाँ पानी भरने को आईं। उनमें से दो युवतियां पानी भरना छोड़कर भार्गव के सामने आ खड़ी हुईं। उनमें से एक डड्डनाथ की छोटी बहन थी। ज्यामघ ने छिपे-छिपे पत्तों की सिंगार-सज्जा में से तैर आ रही उसकी शरीर-रेखाएं देखीं और दूसरी अघोरी स्त्रियों की शरीर-

रेखाओं के साथ उनकी तुलना की। अघोरी स्त्री अपने हास्य और नखरों से भार्गव को रिझाने का बराबर प्रयत्न कर रही थी। बडे ही मीठे हास्य मे उस स्त्री ने उनसे बातचीत की, पर उनकी हिमगिरि के समान शीतल आकर्षणता क्षण-भर को भी न पिघली। उस स्त्री ने भी अनेक प्रकार के धृष्ट प्रदर्शन किये, पर भार्गव उसको ऐसे लाड से बहलाते रहे, मानो कोई प्रपितामह ही हों।

"तेरा पति कहाँ है ?"

"आखेट पर गया है। मैं आज ही सांझ को उसे छोड़ दूंगी।"

"किसलिए ?"

"मैं तेरे साथ ब्याह करना चाहती हूं।"

"पर मैं तेरे साथ ब्याह करना नहीं चाहता," हँसकर भार्गव ने कहा।

"क्यों ?"

"मेरे तो स्त्री है।"

"कौन ?" किंचित क्रोध में आकर डड्डनाथ की बहन ने कहा।

"यहां तो कोई स्त्री मेरी नहीं है, वह तो मानवों के यहाँ है," भार्गव ने आश्वासन दिया।

"कोई नीच मानवी होगी वह ?"

"नहीं, वह भी अघोरियों-सी ही सरल है, और मानवों के बीच भी वह अपूर्व है।"

"पर न तो वही यहाँ आ सकेगी, और न तू ही यहाँ से जा सकेगा।"

"जो भी हो, पर मैं उसकी प्रतीक्षा करूँगा।"

"कब तक ?"

"जब तक हम मिल नहीं जाते।"

"ऐसा भी भला कहीं हो सकता है ? तू तो मेरा पति बन जा।"

"कैसे हो सकता हूँ ? मैं तो दूसरी का पति हूँ न !"

"गुरु से कहकर उससे अपना विवाह-विच्छेद कर ले।"

"मानवों का गुरु तो मैं ही हूँ। हमारा विवाह टूट नहीं सकता है।"

"तो तू मुझे नहीं ब्याहेगा?" उस स्त्री ने रो दिया।

"तेरा पति ही क्या बुरा है? मैं आज सांझ को तुम दोनों से मिलूंगा और तुम्हारे साथ ही भोजन भी करूँगा।"

सांझ को उस स्त्री ने डड्डनाथ के सम्मुख जाकर भार्गव के विरुद्ध गुहार की।

"भार्गवनाथ! क्या तू विवाहित है?" उन्होंने भार्गव को बुलाकर पूछा।

"हाँ"

"तू यहीं किसीसे विवाह क्यों नहीं कर लेता?"

"मेरे तो पहले ही से एक पत्नी है। मैं विवाह कैसे कर सकता हूँ?"

"तो क्या आजीवन स्त्री के बिना ही चला ले जायगा?"

"किसी दिन तो मुझे छोड़ोगे ही न?"

"और जो नहीं छोड़ूं तो?" डड्डनाथ ने पूछा।

"तब भी मैं और मेरी पत्नी तो एक ही रहेंगे। वह तो मेरे रक्त-मांस में भिदी हुई है।"

"क्या वह भी किसी दूसरे के साथ विवाह नहीं करेगी?"

"इस बात की तो वह कल्पना भी नहीं कर सकती है।"

डड्डनाथ फिर हँस पड़ा—मानवों को समझाना बहुत ही कठिन काम था।

"क्या अघोरी तुझे अच्छे नहीं लगते?"

"अघोरी मुझे बहुत प्रिय हैं। राग-द्वेष की मात्रा उनमें इतनी कम है कि मानवों की अपेक्षा उनमें देवत्व का अंश अधिक है।"

उसी सांझ को भार्गव डड्डनाथ की बहन और उसके पति के साथ भोजन करने के लिए गये और उन दोनों के बीच ऐसा मेल करवा दिया कि उस स्त्री ने अपने पति को त्यागने का विचार ही तज दिया।

भार्गव विवाहित हैं, वे दूसरा विवाह नहीं कर सकते है, और डड्ड-नाथ की बहन के साथ विवाह करना उन्होंने अस्वीकार कर दिया है, आदि बातें जब अघोरियों के बीच फैल गई तो उन लोगों को बड़ी हँसी आई। बहुत लोगों के मन मे उनके लिए पूज्यभाव जागृत हो उठा, और कुछ लोग तो यह भी मानने लग गए कि इस विषय मे मानव अघोरियों मे अच्छे हैं।

पर इस घटना का श्यामघ के मन पर बड़ा ही विचित्र प्रभाव पड़ा। अब वह अघोरी स्त्रियों को एक दूसरी ही दृष्टि से देखने लग गया। पत्थरों और हड्डियों के आभूषणों मे ढकी स्त्रियों के शरीर की प्रत्येक रेखा को निरखने का एक मोह-सा उसके मन में जाग उठा। पर साथ ही उसे बड़ी तीव्रता से इस बात का भी भान होता गया कि वह स्वयम् आर्य है, शार्यात है और ये गन्दी, संस्कारहीन, खोपड़ी का मेदा रखने-वाली अघोरी स्त्रियां हैं। पर दूसरी ओर उन स्त्रियों को लेकर उसके मन में बड़ी ही उन्मत्त लालसा जाग उठी थी। किन्तु उसके दुर्भाग्य से अघोरी लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखते थे और वे उसे मनुष्य तक मानने को तैयार नहीं थे।

सारे गाँव की नग्न स्त्रियां उसके सामने से आया-जाया करती थीं, उनकी लज्जित चेष्टाएं और व्यवहार भी वह नित्य अपनी आँखों आगे देखा करता था, फिर भी वह स्वयम् उनसे दूर था, अस्पृश्य था—यह वेदना उसके लिए बड़ी दुःसह पड़ी थी। दिन और रात उसे ऐसे ही सपने आया करते मानो काल्पनिक अघोरी स्त्रियाँ उसके हाथ से रह-रह कर निकल जाती हैं। और इन सपनों मे जो व्यथा उसे होती थी, उस पर नियंत्रण करने के लिए वह अकेला जंगलों मे भटका करता।

ज्यों-ज्यों उसकी यह व्यथा बढ़ने लगी त्यों-त्यों उसका आत्म-तिरस्कार का भाव भी बढने लगा। इस लालसा के कारण वह पतित और अधम हो पड़ा है, इस बात की कल्पना भी उसके हृदय को बेधने लगी।

एक दिन तड़के ही उठकर वह बहुत दूर जंगल में निकल गया और गिरिश्रृंग पर जा चढ़ा। इस अधमता से बचने के लिए उस ने आत्म-हत्या करने का निश्चय कर लिया था। ज्यों-ज्यों वह गिरिश्रृंग पर चढ़ता गया, त्यों-त्यों अघोरी स्त्रियां उसे अधिकाधिक दीखती गईं। अपनी कल्पना से उस दर्शन को दूर करने के लिए उसने अपने गालों पर कई तमाचे मारे।

वह शार्यात है और भार्गव का शिष्य है; उसके लिए एक ही रास्ता है—और वह है मृत्यु। शिखर के एक किनारे पर झाड़ के तले वह आत्मघात करने के लिए तैयार होकर खड़ा हो गया।

उसके पास ही किसी ने खाँस दिया। वहाँ निकट ही अघोरियों का एक गांव था; वहीं की कोई स्त्री लकड़ियां बीन रही थी। ज्यामघ ने ज्यों ही उसको देखा कि वह हँस पड़ी और वहीं ठिठक गई; फिर वह ज्यामघ की ओर बढ़ आई। वह एक अधेड़ वय की, कुरूप और गंदी स्त्री थी। उसे ऐसे जान पड़ा मानो कोई दूसरा ही ज्यामघ यह देख रहा है। और यह ज्यामघ उस दूसरे ज्यामघ की ओर देखकर हँस पड़ा।

सारी सृष्टि मानो नृत्य करती-सी जान पड़ी।

कुछ ही देर में आत्म-घात का संकल्प भूलकर मंद-मंद हँसता हुआ ज्यामघ पर्वत से नीचे उतर आया। उसके अंतर में दूर पर खड़ा कोई ज्यामघ आत्म-तिरस्कार के भाव का अनुभव कर रहा था, पर उसकी उसे चिन्ता नहीं थी।

ज्यों ही वह भार्गव से मिला तो उन्होंने तुरन्त उसके भीतर के परिवर्तन को ताड़ लिया।

"ज्यामघ ! कोई पत्नी मिल गई है क्या ?"

ज्यामघ संकोच में पड़ गया। उसे पता ही नहीं था कि गुरुदेव बड़े ध्यान से उसका निरीक्षण किया करते थे।

"गुरुदेव ! क्षमा करिए, अब मुझसे अकेले नहीं रहा जाता है।"

"इसमें क्षमा करने की क्या बात है? स्त्री का संग तो मनुष्य का परम धर्म है। मैं आज ही गुरु डड्डनाथ से आज्ञा ले आऊंगा।"

कुछ महीनों में भार्गव ने अघोरियों पर बड़ा गहरा प्रभाव जमा लिया। अघोरियों की भोजन-पद्धति अब व्यवस्थित हो चली थी, उनके रहन-सहन में एक सुघडता आ गई थी और उनके रोग अब मिटने लगे थे। उनकी रीतियाँ भी अब बदल चली थीं। डड्डनाथ कहने लगे थे—"डड्डनाथ के दो पुत्र हैं—भडनाथ और भार्गवनाथ।"

भार्गव ने अघोरियों के साथ सम्पूर्ण तादात्म्य साध लिया और अब वे उनमें शक्ति का संचार करने लगे। डड्डनाथ ने भी निःसंकोच उन्हें अघोरियों की सिद्धियाँ सिखा दी थी।

एक ही वर्ष में भार्गव अघोरियों के भी गुरु हो गए। प्रत्येक पूर्णिमा को अघोरियों के झुंड अमर कंटक में होकर डड्डनाथ के दर्शन करने आया करते थे। उन पर भी भार्गव का प्रभाव पडने लगा था, और जहाँ भी अघोरी लोग बसते थे वहीं गुरु भार्गवनाथ का नाम स्मरण होने लगा था।

एक दिन गुरु का सत्कार-समारम्भ करने के लिए अघोरीगण नदी के तट पर एकत्रित हुए थे। गुरु डड्डनाथ पानी पर ऐसे सनसनाते हुए चले आ रहे थे मानो नदी पर बैठे-बैठे आ रहे हों। उनके हाथ पर एक मनुष्य था, देखकर सभी चकित हो गए। डड्डनाथ गुरु और जीता मनुष्य साथ ले आएं!

घुटनों तक के पानी में आकर डड्डनाथ खडे रह गए और अपने हाथ के मनुष्य को उठाकर हर्ष की किलकारी मारते हुए किनारे पर आ पहुँचे—"बहू लाया हूँ, बहू लाया हूँ।"

"किसके लिए?" अघोरियों ने चिल्लाकर पूछा।

"भार्गवनाथ के लिए।"

डड्डनाथ कगार की ओर गया। भार्गव की दृष्टि ज्यों ही वहाँ पड़ी तो वे झपटकर वहाँ जा पहुँचे।

"लोमा ! लोमा !" कहकर उन्होंने भगवती को अपने हाथों में ले लिया।

"मैं भार्गवनाथ की बहू को लिवा लाया हूँ—बहू को," कहकर डड्डनाथ हर्ष से उछल पड़े। भगवती ने आँखें खोलकर भार्गव को देखा, और उनके गले से लिपट गईं। एकाग्रता का वह बल बिखर गया। वे हर्ष के आवेग में बड़े भारी उच्च स्वर में सिसकने लगीं।

डड्डनाथ मन-ही-मन मुस्करा रहे थे, और अपने प्रिय और हितैषी मगरों को उनका खाद्य खिला रहे थे।

: ४ :

माहिष्मती नगरी के कुछ दूर एक ऊजड़ गाँव में एक छोटा-सा घर था। उसमें एक नन्हा-सा दीया जल रहा था। उसके बाहर दो व्यक्ति दीवार की ओट नंगी तलवार लेकर छिपे हुए थे।

बाहर को पटसाल में एक वृद्ध पुरुष अंधेरे में बैठा था। भीतर के कक्ष में एक सुन्दर मृगचर्म पर मृगारानी बैठी थीं—आभूषणविहीन, और अत्यन्त मलिन जर्जर वेश में। उसका मुख चिन्तातुर था। कान लगाकर वे किसी की बात सुन रही थीं। उनका धैर्य अब जाता रहा था।

आभूषण और सुन्दर वस्त्रों में वह सदा ही आकर्षक दिखाई पड़ती थी। पर इस समय उन सबकी सहायता के बिना उसके ओठों का मद, उसकी गरदन की बंकिमा का गर्व, उसके खवों और स्तनों की प्रौढ़ मोहिनी का रहस्य मानो स्पष्ट प्रकट हो रहा था।

सहस्रार्जुन के राज्य की अधिष्ठात्री थी, फिर भी यह छोटा-सा घर और अपने तीन विश्वस्त आदमी उसने अलग ही रख छोड़े थे। गुरु भृकुण्ड और पाँच-सात अन्य विश्वस्त व्यक्तियों को छोड़कर कोई इस सम्बन्ध में कुछ जानता ही नहीं था। प्रतापी मृगारानी को जब भी कोई अत्यन्त गुप्त मंत्रणा करनी होती थी या राज्य-व्यवस्था का भार हलका करने को जब भी उनका जी चाहता, वे कभी-कभी यहाँ आ जाया करती

थीं। जगत की दृष्टि में वह उस बाहर बैठे हुए वृद्ध का घर था, पर वास्तव में वह सहस्त्रार्जुन की जानकारी से परे मृगारानी का एक विश्राम-स्थल था।

मानो उस घर के परिचित कोने-कोने में वह अन्तिम विदा मांग रही हो, ऐसे खिन्न और स्नेहपूर्ण नयनों से वह चारों ओर देख रही थी।

"आयंगे या नहीं आयंगे? नहीं आये तो?" उसके चिन्तातुर मस्तिष्क में ऐसे ही प्रश्न बार-बार उठ रहे थे। रह-रहकर द्वार में जा खड़े होने को उसका जी चाहता, पर वह मन मारकर जहाँ-की-तहाँ बैठी ही रही।

उसने निश्चय कर लिया था। यदि वे न आये, तो वही उनके पास जायगी—एक बार, एक क्षण के लिए, अन्तिम क्षण के लिए।

उसके हृदय में एक ज्वार-सा आया, बाहर कोई आया जान पड़ा। उसका जी न माना। वह खड़ी हो गई और उसका अंग-प्रत्यंग कांपने लगा।

गुरु भृकुण्ड आये। उनके पीछे ही परशु दिखाई पड़ा। भार्गव आ रहे थे, पहले से अब कुछ काले पड़ गए हैं, और कुछ क्षीण भी हो गए हैं।

मृगा ने सिसकते हुए प्रणिपात किया और भार्गव के चरणों की रज लेकर माथे पर चढ़ा ली।

"गुरुदेव! पावन करिए," वह अस्पष्ट भाव से बोली—"विराजिए।"

"मृगारानी, शत शरद् जियो, पर तुम यहाँ कैसे?"

"यह मेरा घर है, यहां सहस्त्रार्जुन को स्थान नहीं है। यहाँ मैं अकेली, पशुपति ने जैसी मुझे बनाया है वैसी ही, रह सकती हूँ।"

"मृगारानी, तुम बहुत ही अस्वस्थ जान पड़ती हो।"

"हां, क्षमा करिए, डड्डनाथ के हाथों संदेशा भेजकर बड़ी उतावली में मुझे बुलाना पड़ा है। पर इस समय एक महाभयानक विपत्ति सिर पर मंडरा रही है।"

"क्या बात है ?" भार्गव मंद-से मुस्कराये।

"सहस्त्रार्जुन पागल हो गए हैं।"

"सो तो मैं जानता ही था।"

"जैसे आप सोचते हैं वैसे नहीं। एक रात वे घायल होकर लौटे, तभी से चारों ओर विनाश प्रसारित करने में जुट पड़े हैं; इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ सूझता ही नहीं है। गुरु भृकुण्ड की और मेरी सलाह अब वे नहीं लेते हैं। वे तो सारी सृष्टि में आग लगा देने के आयोजन में लगे हैं।"

"यों मनुष्य की अपनी मान्यता से सृष्टि में आग नहीं लग जाया करती है।"

"पर बड़े गहरे बादल मंडरा रहे हैं।"

"क्या ? किस पर ?"

"सहस्त्रार्जुन ने यादव और भृगुमात्र के संहार का संकल्प किया है," मृगा ने धीरे से कहा।

भार्गव की आँखें भयंकर हो चलीं।

"उन्होंने तालजंघ, शार्यात और तुण्डिकेराओं का एक सैन्य एकत्रित किया है। और तुंडिकेराओं के दुष्ट राजा रुरु को—जो कुंवर था उसे—आज पाँच दिन हुए उन्होंने यहाँ बुलवा लिया है।"

"क्यों ?"

"वह सैन्य प्रतीप का पीछा करने वाला है। उन्होंने आज्ञा दी है कि प्रतीप के यादवों में से एक भी जीवित नहीं रहना चाहिए।"

भार्गव की आँखें विकराल हो गईं।

"आप इसी क्षण यहाँ से चले जाइए। घोड़े प्रस्तुत हैं। आप जाकर तुरन्त प्रतीप को आर्यावर्त लिवा ले जाइए।"

"प्रतीप को कदाचित् कोई सूचना ही न मिली हो।"

"पाँच दिन हुए मैंने संदेशे भिजवाए हैं। पहुँच जायँ तब की बात है। पर आपके गये बिना यादव हतवीर्य होकर कट मरेंगे।"

"मैं सहस्रार्जुन को मार सकता हूँ।"

मृगा ने सिर हिलाया—"तीन सौ विश्वस्त योद्धा उनकी रक्षा में नियुक्त हैं। तालबाहु को सौराष्ट्र भेजकर उन्होंने रुरु को अपना सेनापति नियुक्त किया है। यदि वे मारे गए तो फिर रुरु किसी को छोड़ने वाला नहीं है। तब तो फिर वही सहस्रार्जुन की गद्दी पर अपना अधिकार जमायगा।"

"प्रतीप को तो कुछ करके बचाना ही होगा।"

"और गुरुदेव, आपका यहां रहना भी कोई बुद्धिमानी की बात नहीं होगी," गुरु भृकुण्ड ने कहा। "इतने वर्षों मे कभी भी मैंने उसका ऐसा भयंकर रूप नहीं देखा है। डड्डनाथ ने उनके प्राण ही ले लिये होते तो भला होता।"

"भगवती ने ही डड्डनाथ को ऐसा करने से रोका था," भार्गव ने कहा, "नहीं तो उसका अन्त तो आ ही गया था।"

"कभी वे थर-थर काँपने लगते हैं, तो कभी खड्ग लेकर निर्दोष लोगों को मार डालते हैं। और निरन्तर बस एकमात्र यादवों के ही विनाश के विचार में वे तल्लीन रहते हैं।"

"तुम ठीक ही कह रही हो। एक बार जाकर मुझे प्रतीप से मिलना चाहिए," भार्गव ने कहा। "कभी लौटकर आया, तो फिर तुमसे मिलूंगा। मृगारानी! तुमने तो मुझे कच्चे सूत के धागे से ही बाँध लिया है।"

मृगा की आँखों मे आँसू छलछला आए। उसने हाथ जोड़कर कहा—"गुरुदेव! भगवन्! आज दर्शन देकर आपने मुझे कृतार्थ कर दिया है। आपसे फिर मिलना अब नहीं होगा। कल का सूर्य मैं नहीं देखूंगी।"

"कारण?" भार्गव ने चकित हो दृष्टि उठाकर देखा।

"सहस्रार्जुन को मुझ पर रंचमात्र भी विश्वास नहीं रहा है।"

"सो क्यों?"

"उन्हें यह निश्चित विश्वास हो गया है कि मैंने ही भद्रश्रेण्य और आपको भगा दिया था।"

"अँह "

"प्रतीप के पास संवाद पहुँचाने के लिए मैंने अपने पांच आदमियों को भिन्न-भिन्न मार्गों से भेजा था। उनमें से कल एक पकड़ा गया। जान पड़ता है उसने सारी बात कह दी है।"

"अच्छा ?"

"कल रात चक्रवर्ती ने मुझसे जो बातचीत की उसमें यह स्पष्ट झलक रहा था." गुरु भृकुंड ने कहा।

"मेरी घड़ी अब आ पहुँची है। सहस्रार्जुन जब स्वच्छन्द हो उठता है तब तो वह फिर भी मान जाता है। पर जब वह धूर्त होकर हँसने लगता है तब तो वह सचमुच बड़ा ही विषाक्त हो उठता है। आज सवेरे उसके मिठास की सीमा नहीं थी," मृगारानी ने कहा।

"तुम्हें वह मार डालेगा ?"

"मुझे तो इसमें किंचित् मात्र भी सन्देह नहीं है। क्यों गुरु ?" मृगा ने भृकुण्ड से पूछा।

"मैं भी निश्चित यही मानता हूँ।"

"तो मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें निरापद कर दूंगा।"

"गुरुदेव ! यह विचार तो कई बार मेरे मन में आया है। आपके भक्त-वत्सल हृदय में मेरे लिए जो स्थान है, सो तो मैं भली भांति जानती हूँ।"

"तो फिर चलो मेरे साथ," भार्गव ने कहा।

मृगा ने खेदपूर्वक सिर हिलाया।

"गुरुदेव ! मैं उसे छोड़कर जा नहीं सकती हूँ। वह दुष्ट, कृतघ्न, क्रूर मेरे जीवन के साथ बुन गया है। भार्गव ! मैंने माता-पिता नहीं जाने। बालकपन में जब से स्मृति जागी, मैं पुरुषों की वासना के कीचड़ में नाचती-कूदती चली आ रही हूँ। वृद्ध, अधेड़, युवा, बालक सभी पतंगों

की भांति मुझ पर टूटे हैं। पर मैं वेश्या नहीं हूँ। जहाँ देती हूँ, वहाँ फिर सर्वस्व देती हूँ। मैं व्याकुल होती हूँ, पर बेल की भांति लिपटकर ही। मुझे छूटना अच्छा नहीं लगता।"

ममता-भरी आँखों से भार्गव देख रहे थे। "सहस्रार्जुन जब पंद्रह वर्ष का था, तभी से मैंने अपना सर्वस्व सौंप दिया है। उसे मैंने अपना यौवन दिया, उत्साह और शक्ति दी; उसके लिए मैंने राज्य-व्यवस्था की, लोगों को मारा और मरवाया। उसने मुझे मारा है—अनेकों बार। उसने मुझे दो बार विष देने का प्रयत्न भी किया। उसका प्राण ले लेना मेरे लिए खिलवाड-मात्र था। आज भी वैसा ही है। पर उसका स्वच्छन्द स्वभाव, उसकी ओछी और क्रूर दृष्टि तथा उसके शरीर का एक-एक स्नायु मेरे साथ जैसे एकाकार हो गए हैं। उसके बिना जीती रहकर भी मैं मरी के समान हूँ। मैंने अनेकों की चादर अपनाई है—पलभर के चञ्चल सुख के लिए। पर उसकी चादर मेरा सर्वस्व है, मैं उसे क्योंकर छोड़ सकती हूं?"

"मृगारानी! भले ही तुम कीचड में से उगी हो। पर आओ, आज तुम संस्कारी हो। उसे छोडकर मेरे साथ चलो—महर्षि जमदग्नि के आश्रम में तुम कंचन के समान विशुद्ध हो जाओगी।"

"नहीं, गुरुदेव! मैं आपकी ममता को जानती हूँ। पहले ही दिन आपके दर्शन पाकर मेरे हृदय में उच्चाशयों का उदय हुआ था। अकल्पित आदर्शमयता मेरे भीतर जाग उठी थी। मैं वेश्या हूँ इसीसे मुँह खोलकर कह सकती हूँ," खिन्नतापूर्वक मृगा ने कहा। "आपकी मोहिनी ने मुझे पागल बना दिया है। आपका नाम-स्मरण-मात्र मुझे इस क्षुद्र जीवन से ऊपर उठा देता है। दिन और रात आपके दर्शन होते रहते हैं। और उस क्षण मैं एक नया ही निर्दोष—अवतार जैसे पा जाती हूँ।"

"मैंने भी मृगा से बहुत कह देखा है कि वह आपके साथ यहां से चली जाय," गुरु मृकुण्ड ने कहा।

"नहीं—नहीं—नहीं—मैं नहीं जा सकूंगी। वह शक्ति मुझमें नहीं

है। आपके साथ जाने के लिए यौवन चाहिए, आदर्श चाहिए। भगवान्, क्षमा करिए। मैं जब आपके द्वारा प्रेरित कल्पना के जीवन में विहरती हूं तो आपको प्रणयी के रूप में पाने लगती हूं। पर देव! मुझमें वह साहस नहीं है।" वह दीन मुख से भार्गव की ओर देख रही थी।

भार्गव हँस पड़े—मंद और लजाये-से। उनकी आँखों में छाया हुआ स्नेह मृगा की उस गहरी प्यास को छिपाये ले रहा था।

"मैंने सहस्रार्जुन को सर्वस्व सौंप दिया है। किसी के लिए मैंने जो नहीं सहा, वह उसके लिए सहा है। पर यह समर्पण करके, अब मैं थक गई हूँ। मेरी शक्ति अब चुक गई है। उसे सर्वस्व देकर मैंने अपना सर्वस्व खो दिया है।"

"मृगा, तेरी व्यथा को मैं भली-भांति समझ रहा हूँ। पर अर्जुन तेरे प्राण लेकर ही मानेगा। मैं तुझे अपनी बड़ी बहन मानकर अपने साथ रखूंगा; तेरे पापाचारों के सारे संस्कार साँप की काँचली की भांति उतर जायंगे।"

"नहीं, मेरे देव, नहीं। मुझे न लुभाओ। मैं मूर्ख नहीं हूं। मैं मोह में भूली हूँ अवश्य, पर मोहांध नहीं हूँ। एक बार ऐसा भी विचार मेरे मन में आया था कि आपके संग रहकर नया जीवन देखूं, और आप को भी दिखाऊं। चाहा कि अपनी नसों की ज्वालाओं से आपकी यह पत्थर की-सी तटस्थता पिघला दूं। पर आप तो उदय होते हुए सूर्य के समान पवित्र हैं। और मैं तो दुर्गन्ध से भरा नरक हूँ।"

भार्गव हँस पड़े।

"गुरुदेव! मैं अभी-अभी स्वरूपवती हूं। मेरे हाथ, मेरा गला, मेरे शरीर के अवयव अब भी सुडौल हैं। उनकी मोहिनी अभी कुम्हलाई नहीं है, पर किसीको आकर्षित करने की मेरी शक्ति जाती रही है। विलास की उच्छृङ्खलताओं से मैं जड़ हो गई हूँ—ठीक वैसे ही जैसे धोबी-घाट कपड़ों की पछाड़ से हो जाता है। आपने मुझे अपनी बड़ी बहन के रूप में स्वीकार किया, सो तो आपकी कृपा है।"

"मृगा ! मैं झूठ नहीं कह रहा हूँ।"

"मैं जानती हूँ। पर मैं बड़ी बहन नहीं बन सकती। तब तो मैं वृद्ध हो जाऊँगी। आपके आश्रम की व्यवस्थापिका होकर मुझे रहना पड़ेगा, आपके बालकों का पालन-पोषण करना होगा, और भृगुओं की सेवा में जीवन बिताना पड़ेगा। पर मेरे भगवान् !" क्रन्दन करती-सी मृगा अश्रु-विगलित कण्ठ से कहने लगी, "मैं ऐसे शीतल शांत गौरव के लिए नहीं बनी हूँ। आप-से देवांशी की सम्राज्ञी तो मैं होने से रही; आपके संसार मे तो मेरा स्थान ही नहीं है। और दूसरे मन-बहलावों का मेरे निकट कोई महत्व नहीं है। मैं तो यहीं उगी हूँ और यहीं मुझे कुम्हला जाना है।"

आँखों पर हाथ देकर मृगा रो पड़ी।

"बहन," भार्गव ने कहा, "विधाता ने चाहे जो अनुभव तुझे दिये हों, पर तेरी आँखों मे सत्य बस रहा है।"

मृगा ने दृष्टि उठाकर देखा, और उसका मुख प्रफुल्लित हो उठा।

"गुरुदेव ! आज की रात सहस्रार्जुन मुझे जीती नहीं छोड़ेगा। यदि रहने दिया, तो फिर मिलेंगे। पर वह दिन आने वाला नहीं है। भार्गव ! रुक्मिणी के समान ही शोभित होने को जी चाहता था। पर उस विचार से आपकी पवित्र मूर्ति को कलंकित करना नहीं चाहती। पर उसे आपने अपने ही हाथों से कोड़े मारकर पावन किया था। मैं तो पतिता हूँ। मैं तो पितृलोक की अधिकारिणी भी नहीं हूँ। पर तुमने मुझे बहन कहा है। बहन की बात रख लोगे ?"

"क्या ?"

"मुझे पावन करो। पितृविहीन हूँ मैं—मुझे अपने पितृलोक में ले चलो," मृगा ने अपना सिर भार्गव के पैरों पर रख दिया। भार्गव ने अत्यन्त स्नेह से उसके माथे पर हाथ फेरा।

भक्ति के आवेश में मृगा बैठ गई, और दोनों हाथों से भार्गव के हाथ पकड़कर अपनी आँखों से लगा लिये। अत्यन्त मार्दवपूर्वक भार्गव

ने मृगा के मस्तक पर से धीरे-धीरे केश हटाकर ऊँचे कर दिए। अधमुंदी-सी नशीली आँखों से मृगा उस स्पर्श-सुख का आनन्द ले रही थी।

"बहन," धीरे-धीरे भार्गव कहने लगे, "भृगुओं के पितृलोक में जाने के लिए बहुत तपस्या करनी होगी। करेगी ?"

"हाँ"

"सहस्रार्जुन जब तक तेरा पाणिग्रहण न कर ले तब तक उसे अपना स्पर्श नहीं करने देगी ?"

"नहीं करने दूँगी," मृगा ने भक्ति के आवेग में कहा।

"भृगुओं के पितरों से द्रोह नहीं करना होगा।"

"भगवान्, कभी नहीं करूंगी।"

"गुरु भृकुण्ड ! ईंधन है ? अग्नि स्थापित करनी होगी," भार्गव ने कहा।

गुरु भृकुण्ड उलझन में पड़ गए, पर चुपचाप दौड़ते हुए जाकर ईंधन ले आए।

भार्गव ने अग्नि स्थापित की, मंत्रोच्चार किया, आहुति दी और पितृ-यज्ञ का आरम्भ कर दिया। मृगा को अपने पास बिठा लिया। उन्होंने उसकी शुद्धि की। गर्भाधान संस्कार के द्वारा उसे भृगु बना दिया।

"भृगुओ ! अंगिरसो !" भार्गव ने आवाहन किया, "पितरो ! कविश्रेष्ठ उशनस ! महाअथर्वण ऋचीक ! महर्षि जमदग्नि का पुत्र, कवि चायमान का शिष्य, मैं राम जामदग्नेय तुम्हारा आवाहन करता हूँ। आओ ! अपने कुल में इस मृगा को स्वीकार करो। मैं, तुम्हारा पुत्र, विनती कर रहा हूँ।"

उन्होंने मृगा का बायां हाथ अपने हाथ में लेकर आहुति दी। अग्नि की ज्वाला बढ़कर बहुत प्रबल हो उठी। भृकुण्ड और मृगा स्तब्ध

होकर देखते रह गए। अग्नि की ज्वालाओं में उन्होंने मृगा को पितरों की गोद में बैठे देखा।

आहुति पूरी हो गई। भार्गव चुपचाप अग्नि की ओर देख रहे थे।

"बहन ! भार्गवी ! मेरे पितरों ने तुझे स्वीकार कर लिया है।"

हँसते हुए, मूर्छा का अनुभव करती-सी मृगा उनके पैरों पड़ी।

"गुरु भृकुण्ड !" भार्गव ने कहा, "तुम्हारे पास जो एक छोटी-सी कटार थी वह मृगा को दे दो। मृगा, इसे अपनी चोटी में रखना। यह तेरी रक्षा करेगी। बहन ! सहस्रार्जुन यदि तुझे छेड़ेगा, तो मैं उसे देख लूंगा। क्या साथ चलूं ?"

"नहीं, विश्वास रखिए। अपने कुल की लाज नहीं जाने दूँगी। भगवान्, सिधारो। किसी दिन मुझे याद करना।"

"बहन !" भार्गव ने फिर मृगा के सिर पर हाथ रखा, "जो पाणि-ग्रहण के बिना तू अविशुद्ध देह त्यागेगी, तो हमारे पितर हमें एक ही साथ रखेंगे।"

मृगा का सारा स्वरूप ही मानो बदल गया। उसके मुख पर एक नई ही मोहकता प्रकट हो आई। भृगुकुल के पितरों ने उसे स्वीकार कर लिया था, प्रतापी राम जामदग्न्येय की वह बहन थी—यही ध्वनि रह-रहकर उसके कानों में गूंज रही थी।

वह अपने आवास पर गई। वहाँ उसे सहस्रार्जुन का संदेशा मिला कि वह आ रहा है। उत्तर में उसने कहलवाया कि वह पशुपति के दर्शन करके अभी लौटेगी, फिर भले ही चक्रवर्ती पधारें। वह सखियों को साथ लेकर अपने स्थानक पर गई।

मृगा का जगत् अब मानो दूसरा ही हो गया था। पशुपति के स्थानक में अब वह पराई नहीं थी, और वह उसके कुलपति का आश्रम था। यहीं से कुलपति ऋचीक ने, माहिष्मत को शाप देकर, आर्यावर्त्त के लिए प्रयाण किया था, और उसके वीर, अप्रतिरथ वीर्य के स्वामी राम जामदग्न्येय ने यहाँ यज्ञ किया था।

अब तक तो वह भी औरों के समान ही उसे भार्गव कहा करती थी, पर अब उसका सच्चा नाम उसे याद हो आया, जामदग्नेय। भृगु-कुल के बीच वह भार्गव नहीं था, राम जामदग्नेय था। वह स्वयम् भी जामदग्नेयी थी।

वह अपने आवास को लौट आई। आकर अपनी चोटी को ठीक किया, कटार को उसमें सँभालकर रख लिया और वस्त्राभूषणों से अपने आपको सुसज्जित कर लिया। आज वह रूप-गर्विता भी हो गई।

उसकी आँखों की अंधता आज दूर हो गई थी। सहस्रार्जुन लंपट, क्रूर तथा नीच था। पर उसने तो नया ही अवतार पा लिया था। उसने जामदग्नेय के पैर छुए थे, उसके हाथों को अपनी आँखों से लगाया था। उसके हाथ का स्पर्श उसे अभी भी उल्लसित कर रहा था।

सहस्रार्जुन उसके पास आया—सुरा के मद में चूर, हँसता हुआ और धूर्ततापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ। मृगा को देख वह किंचित् विचार में पड़ गया; इतने वर्षों में ऐसी मोहकता तो उसने मृगा में कभी नहीं देखी थी। आज उसमें नया क्या था? वस्त्र, आभूषण, कुंकुम की आकृति, काजल की कांति? आज टीमटाम का कोई चिह्न उसमें नहीं था, न कोई हाव-भाव का दिखावा और ढोंग था। मृगारानी आज उसे ठीक एक रानी-सी लगी।

"पधारिए!" मृगा ने कहा और सहस्रार्जुन चौकी पर बैठ गए। सदा की भांति वह स्वयम् आज चौकी पर नहीं बैठी। पहले उन्हें रिझाने के लिए जैसे पैरों में बैठ जाया करती थी, वैसे भी आज वह नहीं बैठी। कुछ दूर एक दूसरी चौकी पर वह बैठ गई।

"कहिए, क्या आज्ञा है?"

सहस्रार्जुन बड़ी देर तक देखता ही रहा। मृगा के तेज को देखकर, जो बात वह कहने आया था, वह उसे भूल गई। उसकी आँखों में वासना भभक उठी।

"मृगा—" उसके स्वर में अस्थिरता थी।

"बोलो।"

"यहाँ आकर बैठ," उसने अपने पास की जगह दिखाते हुए कहा। मृगा उत्तर पचा गई।

"आप इस समय मुझसे क्या चाहते हैं?"

"इधर आओ—"

"नहीं—"

"नहीं! क्यों नहीं?"

"आपने मेरा पाणिग्रहण नहीं किया है," मृगा ने कहा। उसकी आँखों में चमक थी। उसके मुख पर तेज था।

"पाणिग्रहण? रहने भी दे, बावली हुई है? तेरा भी कहीं पाणिग्रहण होता है? यहाँ आ—यहाँ आकर बैठ।"

"मैंने कहा न, मैं नहीं आऊँगी।"

"क्यों?"

"मैं पर-पुरुष का स्पर्श नहीं करूँगी।"

सहस्रार्जुन खिलखिलाकर हँस पड़ा।

"ओहो! तेरा अपना पुरुष था ही कब जो आज तुझे पर-पुरुष की ग्लानि हो रही है? आओ!" कहकर वह उठा।

मृगा उठकर पीछे हटी।

"सावधान! मुझे हाथ लगाया तो!"

सहस्रार्जुन ये अपरिचित शब्द सुनकर ठिठक गया—"क्यों, क्या बात है आज?" और दाँतों के बीच ओंठ दाबकर वह मदमस्त होकर देखता रह गया। उसका काम उद्दीप्त हो उठा था।

"मृगा! यह क्या खेल मचा रखा है तुमने?"

"खेल नहीं, यह यथार्थता है।"

"तू मुझे हाथ नहीं लगाने देगी? अच्छा देखूं—" कहकर वह आगे बढ़ आया।

"पहले पाणिग्रहण करो—फिर दूसरी बात।"

"तू बावली हुई है," सहस्त्रार्जुन आगे बढ़ता ही आया।

"नहीं, आज मैं सयानी हो गई हूँ।"

"मूर्खता न कर, तेरा पाणिग्रहण से क्या लेना-देना?"

"दूर खड़े रहो," मृगा ने रोषपूर्वक कहा, "पाणिग्रहण किये बिना मेरे पास नहीं आ सकते। मैं वेश्या नहीं हूँ।"

"तब?" उग्र होकर सहास्त्रार्जुन ने कहा, "तब तू कौन है?"

"मैं भार्गवी हूँ।"

"क्या कहा?" मानो ठीक से समझ में न आया हो, ऐसे सहस्त्रार्जुन ने कहा।

"मैं भृगुकुल की हूँ। जामदग्नेयी हूँ!" सम्राज्ञी के गर्व से मृगा ने कहा।

सहस्त्रार्जुन पीछे हट गया। मृगा शायद पागल हो गई थी। वह शांत हो गया।

"मृगा, मृगा! आज तुझे क्या हो गया है? जान पड़ता है तेरा सिर घूम गया है। तेरा और भृगुकुल से सम्बन्ध?"

"तुम यह मानते हो कि मैं पागल हूँ। तुम भ्रम में हो। आज भृगुओं के पितरों ने मुझे अपने कुल में स्वीकार कर लिया है।"

"तुझे? भला सो कैसे?" सहस्त्रार्जुन उसे पागल ही मान रहा था।

"अग्नि की साक्षी से, भगवान् जामदग्नेय की कृपा से।"

"जामदग्नेय! कौन राम?"

"हाँ"

"कहाँ है वह? किस जगह है वह?"

"वे तो जोत की भाँति जागते बैठे हैं।"

"कहाँ?"

"आपको नहीं दीख सकते हैं वे," गर्वपूर्वक मृगा ने कहा। उसका रूप देदीप्यमान हो उठा। उसकी क्रोध-भरी आँखों की मोहकता ने

सहस्रार्जुन को पागल बना दिया। वह मृगा को पकडने के लिए आगे बढ आया। मृगा दो पग पीछे हटकर दीवार से सटकर खडी हो गई।

"अर्जुन," मृगा ने सत्तापूर्वक कहा, "जहाँ हो वहीं खडे रहो। मारने ही आये हो तो मार डालो।"

सहस्रार्जुन धूर्ततापूर्वक हँस पडा—"मैं और तुझे मारूंगा? तेरे बिना तो मैं रह नही सकता। यह पागलपन छोडो—"

"तुम अपनी पशुवृत्ति छोडोगे तभी।"

अदम्य वासना के आवेग से सहस्रार्जुन गुर्राता रहा, और वह मृगा को पकड़ने के लिए झपटा।

"भगवान् जामदग्नेय !" मृगा चिल्ला उठी। सहस्रार्जुन पीछे हट गया। कहीं राम वहां से न आ टपके, इस डर से उसने चौकी के निकट झपटकर अपना खड्ग उठा लिया।

उसने अपने सामने की उस मृगा को देखा—मोहक, तेजस्वी, अमुद्रित ओठों, उछलती छाती और फटी आँखों से वह एक ओर देख रही थी। सहस्रार्जुन ने उस ओर देखा। अंधेरे कोने मे एक तेज वर्तुल में भार्गव जामदग्नेय खडे थे। एक कन्धे पर वे परशु धारण किये थे और दूसरे कन्धे पर धनुष। और उनकी आँखें सहस्रार्जुन को भेद रही थीं।

"जामदग्नेय !" मृगा की पुकार गूंज उठी। मृगा उसी ओर दौड़ी और—इससे पहले कि सहस्रार्जुन उसे पकड पाए, अपनी छाती में से कटार निकालकर उसने उसे अपनी छाती में भोंक लिया।

सहस्रार्जुन सिर से पैर तक काँपता हुआ, जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह गया।

मरती हुई मृगा भगवान् जामदग्नेय के नाम की रट लगा रही थी।

तीसरा भाग

एक

महाभिनिस्मरण

: १ :

आठ व्यक्ति उडते हुए घोड़ों पर मही नदी के किनारे जा रहे थे। उन आठ आदमियों के बीच चालीस पानीदार घोडे थे। एक पहर बीतने के उपरान्त प्रत्येक अश्वारोही अपना घोडा बदलता था, इससे घोडों को थकान कम होती थी और उनकी गति का वेग बढ़ जाता था।

अश्वारोही न तो थक रहे थे और न उन्हें भूख ही लग रही थी। उनकी एकाग्र दृष्टि क्षितिज पर टकटकी लगाए थी।

वे एक टीले पर चढ़ गए। उनके अग्रणी ने चारों ओर तीक्ष्ण दृष्टि डाली। कहीं एक ओर उसे जगरा जलता दिखाई पडा। कमर पर लटकते शंख को हाथ में लेकर उसने फूंक दिया।

संध्या को शांति में तुरन्त ही उसका प्रतिशब्द सुनाई पड़ा। अग्रणी घोड़े पर से उतर पडा। उसके पास का अश्वारोही भी उतर पडा। अग्रणी अपनी आँखों की अग्नि से क्षितिज को प्रज्वलित करता-सा खड़ा था। घोड़े खड़े-खड़े घास चरने लगे।

चारों ओर से बीस-पच्चीस अश्वारोही आ पहुँचे, और झपटते हुए टीले पर चढ़ गए। उनमे सबसे पहले एक वृद्ध सामने आया, उछल कर घोड़े से नीचे उतरा और अग्रणी के पैरों पड गया।

"गुरुदेव!"

"भद्रश्रेण्य!"

दोनों ने एक-दूसरे को भेंट लिया। भद्रश्रेण्य ने भार्गव और भगवती को प्रणाम किया।

"भद्रश्रेण्य !" भार्गव ने कहा—"एक क्षण का भी विलम्ब उचित नहीं है। यहाँ कितने आदमी हैं ?"

"कोई दो सौ होंगे।"

"विमद ?"

"वह आनर्त में विशाखा के पास है।"

"सब मिलकर इन जंगलों में भृगु और यादव कितने होंगे ?"

"चार सौ।"

"स्त्रियों और बालकों सहित ?"

"एक सहस्र।"

"और आनर्त में ?"

"बहुत अधिक हैं।"

"प्रतीप कहाँ है ?"

"यहाँ से अवन्ति जाते हुए मही के तट पर ही उसने एक बड़ा-सा गोत्र बसा लिया है।"

"भद्रश्रेण्य ! सहस्रार्जुन यादवों और भृगुओं का संहार करने के लिए एक विशाल सैन्य भेज रहा है। मैंने चारों ओर अपने आदमी भेज दिये हैं। विमद और विशाखा के साथ भी जो लोग हों उन्हें बुला लो। एक-एक स्त्री और बालक तक को वह छोड़ने वाला नहीं है।"

"क्या कहते हैं आप ?"

"मृगा ने अपने ही हाथों अपने को मार लिया है। तालबाहु को पद-भ्रष्ट करके अर्जुन ने रुरु को सेनापति पद पर नियुक्त किया है। पांच सहस्र तुंडिकेरा, तीन सहस्र हैहय और तीन सहस्र शार्यातों को उसने एकत्रित किया है। उसने आनर्तराज को दो सहस्र मनुष्य लेकर उपस्थित होने की आज्ञा दी है। उसके यहां आ पहुँचने के पहले ही हमें यहाँ से यादवों और भृगुओं को लेकर निकल जाना होगा।"

"कहाँ जाने के लिए ?"

"आर्यावर्त"

"पर हम लोग तो सहस्रों की संख्या में हैं—स्त्रियां, बालक, वृद्ध।"

"हाँ सबको चल पड़ना होगा," निश्चलतापूर्वक भार्गव ने कहा, "मैंने सभी को इस रास्ते होकर यादव-गोत्र पहुँचने के लिए कहलवा दिया है। पर उससे पहले मुझे अवन्तिराज के यहाँ पहुँचना ही चाहिए।"

"सहस्रार्जुन ने अवंतिराज को भी प्रतीप पर आक्रमण करने की आज्ञा दी है।"

"अरे रे !"

"पर हम पांचों तो पांच घोड़ों पर चढ़कर चले आए हैं। उन आज्ञावाहकों को तो अभी पांच दिन की देर लगेगी। उससे पहले तो हम अवंतिराज को सम्हाल लेंगे। तुम्हारी मौसी का पुत्र है न वह ? लोमा ! कूर्मा ! यह सब तुम सम्हाल लो। हम दोनों जा रहे हैं।"

: २ :

अवंतिगोत्र का राजा वितिहोत्र भद्रश्रेण्य का मौसेरा भाई और बालसखा था। भद्रश्रेण्य ने—जब वह राज्य का अधिष्ठाता था तब—उसे बहुत अधिक अधिकार और सम्मान दिया था। जब उसने सुना था कि भद्रश्रेण्य मारे गए हैं तो उसकी आँखों में आँसू भर आए थे। पास के जंगल में आकर जब प्रतीप बस गया तो उसके मन को बड़ा सुख हुआ। पर कहीं सहस्रार्जुन कुपित न हो जायं, इसी डर से प्रतीप वहाँ बस रहा है या नहीं, उस ओर से उसने आंखों आड़े कान कर लिये।

महाअथर्वण ऋचीक का शाप उसके मन में चुभा करता था। उसके कोई पुत्र नहीं था और जब भद्रश्रेण्य भार्गव को ले आए तो किसी दिन गुरुदेव की पूजा कर उनसे कृपा-याचना करने की इच्छा भी उसके मन में उठी थी। पर माहिष्मती से जब वे भी अदृश्य हो गए, तो उसने कपाल पीटकर चक्रवर्ती को गालियाँ दी थीं।

उसके छः स्त्रियां थीं। अपनी स्त्रियों सहित वह दिन में दो बार पशुपति महाकाल की पूजा किया करता था। पर उसके कोई पुत्र नहीं था।

जंगल में सिद्धेश्वरी की टेकरी पर कापालिक लोग रहा करते थे। उन्हें भी प्रसन्न रखने का वह प्रयत्न करता।

इन कापालिकों की गुरु थी एक स्त्री—महादेवी। सहस्त्रों वर्षों से राख खाकर वह जी रही थी; वह सतत समाधि में मग्न रहा करती थी, और त्रिकाल दर्शन की अधिकारिणी थी। वितिहोत्र के मन में उसके आशीर्वाद प्राप्त करने की तीव्र उत्कण्ठा थी। पर उसे समाधि में से जगा लेना बहुत टेढ़ी खीर थी। ऐसा कहा जाता था कि यदि उसे कोई उसकी समाधि में से जगा लेता था, तो उसे वह शाप द्वारा जलाकर भस्म कर देती थी, और यदि वह किसी को आशीर्वाद दिया चाहती तो स्वयम् ही अपनी समाधि से जागकर उसे बुला लिया करती थी। ऐसे ही किसी निमंत्रण की प्रतीक्षा करते-करते वितिहोत्र अब थक चला था।

मध्यरात्रि में वितिहोत्र गहरी नींद में सोया था कि एकाएक मानो किसी ने उसे पुकारा—"वितिहोत्र!"

वह चौंककर जाग उठा। आज से सोलह वर्ष पहले उसकी माँ मर गई थी। उसके पश्चात् कभी किसी ने उसे 'वितिहोत्र' कहकर नहीं पुकारा था। उसने आँखें मलीं। पुकार स्पष्ट सुनाई पड़ रही थी—"वितिहोत्र!"

बौखलाया सा वह चारों ओर देखने लगा। 'वितिहोत्र' पुकार कापालिकों की टेकरी पर से आ रही थी। उसे कोई आज्ञा दे रहा था। उसने हाथ में खड्ग ले लिया और एक आदमी को लेकर वह दौड़ गया।

वह पुकार उसे खींच रही थी। वितिहोत्र 'आया', यों बुदबुदाता हुआ दौड़ते हुए टेकरी पर चढ़ गया। कोई सामान्य मनुष्य उस टेकरी पर चढ़ने का साहस कभी नहीं करता था। वहाँ चारों ओर अस्थिपिंजर, राख, खोपड़ियां इत्यादि कापालिकों की प्रिय वस्तुएं पड़ी रहा करती थीं। एक ओर उसने कापालिकों को देखा और वह काँप उठा। वहीं से वह पुकार बुला रही थी।

पूर्णिमा की रात्रि थी। चारों ओर कापालिक पूज्यभाव से भूमि पर सिर डालकर प्रार्थना कर रहे थे। बीच के एक चबूतरे पर एक झाड खडा था। उसके तले, राख के एक ढेर मे एक हड्डियों के थैले-सी वृद्ध जर्जरित स्त्री बैठी थी। केवल उसकी अंगारों-सी दोनों आँखें खुली थीं, और उसके मुख से धीमा-सा स्वर निकल रहा था—"वितिहोत्र !"

कापालिकों और अघोरियों की महादेवी के समान यह महादेवी सिद्धेश्वरी थी। ऐसा माना जाता था कि वह सहस्रों वर्षों से तपस्या कर रही है, और अमर है। उसके मन्त्रों मे अनेक प्रकार की सिद्धियां मिल सकती थीं। वह निरन्तर समाधि मे बैठी रहा करती, और तीन वर्ष मे जब वह एक बार जागती तो अघोरियों का बडा भारी उत्सव होता।

वितिहोत्र के कान मे हर्ष की एक टंकार-सी हुई। दौडते हुए जाकर नमस्कार किया। महादेवी ने आज उसी के लिए समाधि त्यागी थी। महादेवी गुनगुना रही थी—"वितिहोत्र !"

भूमि पर सिर टेककर वितिहोत्र ने प्रणिपात किया। जब महादेवी समाधि मे से जागती, तब उसकी ओर देखने वाला एक वर्ष के अन्दर मर जाया करता था।

कापालिक भय से कॉप रहे थे। राजा वितिहोत्र हर्ष से काँप रहा था।

"वितिहोत्र ! आ रहा है—आ रहा है।"

"माताजी ! कौन आ रहा है ?"

"आ रहा है, जिसकी मैं राह देख रही हूँ, वही आ रहा है। गोत्र से आधे योजन की दूरी पर वह आ पहुँचा है, उसे जाकर ले आ।"

"पर कौन ?"

"यह मत पूछ। पूछने वाला भ्रम मे पड जायगा। जो वह है, वह है। जा—"

"पर उसे पहचानूंगा कैसे ?" उलझन में पडकर वितिहोत्र ने पूछा।

"मैं देख रही हूँ उसे—जिसकी मैं राह देख रही हूँ उसे। उस

के चक्षुओं में वह्नि है; उसके हाथों में विद्युत है; उसकी वाणी में वज्र है। वह आ रहा है—तेरे मरे हुए भाई को लेकर। जा, जल्दी जा।"

वितिहोत्र कुछ समझा, कुछ न समझा और आज्ञा का पालन करने के लिए दौड़ पड़ा। मानो उसके पैरों को कोई खींच रहा हो, ऐसे वह द्रुतवेग से जंगल के रास्ते पर बढ़ रहा था। उसका हृदय काँप रहा था।

गांव के कुछ ही दूर जाने पर उसे कुछ सुनाई पड़ा, जैसे सूखे पत्तों पर से होकर कोई आ रहा है। वह कुछ दूर पर ही खड़ा रह गया।

झाड़ों के झुरमुट के अंधकार में से दो व्यक्ति चाँदनी में आये। वितिहोत्र का शरीर जैसे ठण्डा पड़ गया। उनमें से एक व्यक्ति की आँखों में अग्नि थी, और उसके हाथों में बिजली थी; उसके साथ उस का मरा हुआ भाई भद्रश्रेण्य भी चला आ रहा था। वितिहोत्र काँपता, थरथराता आगे बढ़ आया।

"यादवराज!" उसने हाथ जोड़कर कहा। भद्रश्रेण्य पीछे हट गया और भार्गव ने परशु तान लिया।

"यह तो मैं वितिहोत्र हूँ," राजा ने कहा। दोनों भाइयों ने एक-दूसरे को भेंट लिया।

"भाई, आप हैं गुरुदेव भार्गव।"

वितिहोत्र को लग रहा था कि जैसे वह पागल हुआ जा रहा है; फिर भी उसने प्रणाम किया।

"राजन्! शत शरद् जियो!" भार्गव ने आशीर्वाद दिया।

"गुरुदेव! आपका स्वागत करने के लिए आया हूँ। कापालिकों की महादंती सिद्धेश्वरी ने अपनी समाधि से जागकर आपको लिवा लाने के लिए भेजा है। वे आपको बुला रही हैं।"

भार्गव मुस्करा आए—"देवी महादन्ती ने अभी समाधि त्यागी है? वे तो तीन वर्ष में एक बार समाधि त्यागती हैं न?"

"आपसे मिलने के लिए।"

वे तीनों जन कापालिकों की टेकरी पर चढ़ गए। चंद्रिका-से दो-दो नयन-युगल एक-दूसरे को देख रहे थे।

"राम! राम!" महादन्ती, के मुँह से निकल पड़ा।

"महादन्ती! अघोर-चक्र की अधिष्ठात्री! मेरा प्रणाम स्वीकार करिए।"

"तुम आ गए?"

"अपने पितृतुल्य गुरु डड्डनाथ से आपके सम्बन्ध में मैंने सुना था। मैंने आपके मंत्रों का जाप भी किया है।"

"मैंने तुम्हें वहाँ देखा था।"

"आपने—"

"राम! मैं तुम्हें वर्षों से देखती आ रही हूँ। आज दो सौ दस वर्ष से मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हूँ।"

भार्गव मुस्कराए—दीन भाव से।

"सृष्टि के सृजनकाल में स्थिति और लय पर ताण्डव करनेवाले, राग, भय और क्रोध के स्वामी मैं जानती थी कि तुम निश्चित रूप से आओगे, इसीसे तो मैं यह देह धारण किये हुए थी।" भार्गव के हृदय में जैसे किसी अविस्मृत गीत की प्रतिध्वनी-सी होने लगी।

"मैं तुम्हें जन्म लेते देख रही हूँ, अंबा के हाथ में झूलते देख रही हूँ। कवि चायमान के साथ मल्ल-युद्ध करते हुए, और दस्युओं के हाथ से छूटक जाते मैं तुम्हें देख रही हूँ, वरुओं के साथ संघर्ष करते मैं तुम्हें देख रही हूँ, गोमती बहाते हुए और शार्यातों का मर्दन करते राम को मैं देख रही हूँ।"

महादन्ती के स्वर में जैसे उन्माद था। ऐसा लग रहा था, जैसे उसकी आँखें चित्र देख रही हैं।

"मैं देख रही हूँ तुम्हें सहस्रार्जुन को कँपाते हुए, डड्डनाथ को वश करते हुए, मृगारानी को भार्गवी बनाते हुए—"

"देवी!" राम ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा—"आप कौन हैं?"

"मैं तुम्हारे ही समान भूत, वर्तमान और भावी'''जामदग्नेय ! मैं सर्वदिशाओं में तुम्हारी विजय-घोषणा की गूंज सुन रही हूँ। इस पृथ्वी के प्रत्येक खण्ड में तुम्हारे मन्दिर हैं, जगत् के नाथ ! भय का संहार करो और जगत का उद्धार करो।'

भार्गव स्तब्ध देखते रह गए।

"भगवान् जामदग्नेय !" महादन्ती ने पूज्यभाव से कहा—"मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते थक गई हूँ। मुझे स्वीकार करो !"

'भगवान जामदग्नेय !' राम को मृगा के शब्दों का स्मरण हो आया। दो सौ वर्ष की यह त्रिकालदर्शी सिद्धेश्वरी भी वही शब्द कह रही है।

झाड़ हिलने लगे। चन्द्रिका भी मानो अस्थिर हो गई। भार्गव की आँखों का तेज महादन्ती की आँखों के तेज में जा मिला।

"स्वीकार करो, मैंने बहुत दिन तुम्हारी प्रतीक्षा की है। महादन्ती ने दीन स्वर में कहा। कापालिक, भद्रश्रेण्य और वितिहोत्र यह भयानक संवाद सुन न सके।

"महादन्ती ! मैं स्वीकार करता हूँ," राम ने सिर नवाकर कहा।

महादन्ती ने एक गम्भीर ओंकार का उच्चारण किया।

चारों दिशाएँ गूंज उठीं। उसकी आँखों से अंगारे बहने लगे। एक वात्याचक्र उठा। चारो ओर एक किलकारी सुनाई पड़ी। अनिमेष नेत्रों से भार्गव देखते रह गए।

भद्रश्रेण्य और वितिहोत्र थर्रा उठे—जैसे प्रलयकाल ही आ पहुँचा हो। महादन्ती के चारों ओर तेज का वर्तुल प्रकट हो गया।

इस तेज के वर्तुल में उसके दो सौ वर्ष के सूखे अंग-प्रत्यंग और लटकती चमड़ी अदृश्य हो गई। उसकी मुद्रा एक नवयुवती की-सी हो गई। उसकी शरीर रेखाओं में एक मोहिनी झलक उठी। उसकी आँखों की दाहक अग्नि में एक सोलह वर्ष की नवयौवना की प्रेरकता आ गई।

उसने बड़ी छटा से हाथ जोड़कर भार्गव को नमस्कार किया।

"भगवान्!"

भार्गव ने हाथ जोडकर सिर नवा दिया।

महादन्ती भूमि पर से अधर में उठती दिखाई पडी। उसके तेज का वर्तुल उसे और भार्गव को लपेट रहा था।

वह ऊपर की ओर उठती ही चली गई। वह सूक्ष्म हो गई; एक तेज-बिन्दु मात्र रह गई। भार्गव खडे हो गए। उनके एकाग्र नयन ऊपर की ओर जाती हुई सूक्ष्म होती हुई सिद्धेश्वरी को देख रहे थे। उसके शरीर में अभेद्य तेज की धाराएँ बहने लगीं। बिजली जैसे धरती में समा जाती है वैसे ही वह तेज-बिन्दु भार्गव की आँखों में समा गया....

सूर्य का प्रकाश होने पर वहाँ महादन्ती का कोई नाम-चिह्न भी नहीं दिखाई पड़ा। निश्चल, एकाग्र, भयंकर भार्गव वहाँ चुपचाप खड़े थे।

: ३ :

पन्द्रह दिनों में प्रतीप द्वारा स्थापित यादव गोत्र के थाने में सहस्रों यादव और भृगु प्रयाण की तैयारी कर रहे थे। दिन और रात चारों ओर से लोग आते जा रहे थे। सहस्रार्जुन के सर्वनाशकारी क्रोध से बचने के लिए अज्ञात जंगलों, अनुल्लंघ्य पर्वतों तथा मानव-आक्रमण से अब तक अस्पर्श्य मरुस्थलों में होकर आर्यावर्त जाने के लिए यह मानव-समूह उद्यत हो रहा था।

तीन दिन पहले मार्ग-शोधक टुकड़ी आगे निकल चुकी थी। अगले दिन स्थान खोजकर विराम स्थल निर्दिष्ट करने वाली टोली भी जा चुकी थी। उसकी अगली संध्या को कुछ सैन्य लेकर प्रतीप मार्ग को निरापद करने के लिए आगे बढ़ गया था।

यादवों और भृगुओं का एक विशाल समूह आज सवेरे प्रस्थान करने वाला था। पहले ग्वालों का समूह ढोर-चौपायों को लेकर रास्ता बनाने को गया। उसके अनन्तर गाडियों में वृद्ध, स्त्रियाँ और बालक, बछड़ों, कुत्तों और घोड़ों के बच्चों को साथ लेकर आगे बढ़े। दो सहस्र गाड़ियां चल रही थीं। बारी-बारी से उतरकर स्त्रियां उन गाडियों के आस-पास

चल रही थीं। चारों ओर सैनिकों का व्यूह उन्हें घेरकर चल रहा था। लोमा, कूर्मा और विशाखा उस व्यूह के नायक थे। इस गोत्र के व्यूह के पीछे एक छोटा-सा सैन्य धीरे-धीरे आ रहा था। उज्जयन्त उसका नायक था।

इसके अनन्तर चुने हुए योद्धाओं का एक सैन्य आधे दिन के अन्तर से उस स्थल पर जा पहुँचा जहाँ प्रतीप ने यादव गोत्र बसाया था। भद्रश्रेण्य और विमद उसके अग्रणी थे। पीछा करने वाले किसी भी आक्रमणकारी सैन्य का सामना करके उसे रोकने का काम इस सैन्य को सौंपा गया था।

सहस्रार्जुन की आज्ञा की अवगणना करके, और उसके दूतों को फुसलाकर लौटा देने के उपरान्त, वितिहोत्र ने प्रयाण करने वाले समूह के लिए सारी व्यवस्था कर दी थी।

विदा का क्षण आ पहुँचा। बीचोंबीच भार्गव हाथ में प्रचण्ड परशु लेकर तेज के पुंज से आवेष्टित-से खड़े थे। पास ही खड़ा उनका तेज घोड़ा हिनहिना रहा था।

एक ओर भद्रश्रेण्य, विमद और ज्यामघ खड़े थे।

वितिहोत्र और उसकी रानियाँ आँखों में आँसू भरकर उन्हें नमस्कार कर रही थीं।

"भगवान् !" वितिहोत्र ने कहा—"हम लोगों पर कृपा बनाये रखना।"

"राजन्, तुम्हारी जय हो।"

रानियां भार्गव के पैरों पड़ीं। भार्गव ने छः रानियों में से चौथी की ओर देखा, और उसके माथे पर हाथ रख दिया।

"महिषी ! पुत्रवती होओ।"

आशीर्वाद के भार से रानी रो पड़ी। भार्गव हँस पड़े—"राजन् ! रानी को यदि पुत्र हो तो उसका नाम महादन्त रक्खें।"

"जैसी आज्ञा," हर्ष-विह्वल होकर वितिहोत्र ने कहा।

महादन्ती जब से अलोप हुई थी, तभी से सबको भार्गव के चारों ओर एक तेज प्रसारित होता-सा दिखाई पडता था। उनकी श्रद्धा प्रेरित करने की शक्ति भी अब बढ चली थी।

भार्गव ने आँखों के संकेत से ज्यामघ को पास बुलाया—"राजन्! अपने ज्यामघ को मैं तुम्हे सौंपे जाता हूँ।"

"मुझे?" ज्यामघ ने अचरज मे पडकर पूछा।

"ज्यामघ! तुझे अब छोडे बिना निस्तार नहीं है। कुछ ही दिनो मे यादवों और शार्यातो के बीच बडा ही घातक विग्रह आरम्भ होगा। तू शार्यातो का राजा है। भद्रश्रेण्य यादवों का राजा है। मैं उनका हूँ। तू यदि साथ रहेगा तो यादवों के मन मे सन्देह जागेगा।"

"गुरुदेव! मुझ पर आपको इतना भी विश्वास नही है?"

"पूरा विश्वास है, इसी से तो कह रहा हूँ। इस युद्ध मे अब तेरा स्थान शार्यातों के बीच है।"

"मैं तो इन युद्धों से थक गया हूँ। गुरुदेव! कब तक यह मार-काट चलती रहेगी? कब यह रक्तपात बंद होगा? आप ही इसका निवारण नहीं करेंगे तो और कौन करेगा?"

"ज्यामघ, मनुष्य के द्वेष पर केवल भय की मर्यादा है, और कोई मर्यादा नही। अपने आप ही अपने द्वेष को मर्यादित रख सकने वाले महात्मा तो कोई विरले ही होते हैं। इस मार-काट को रोकने का बस एक ही मार्ग है।"

"तो वही मार्ग आप क्यों नहीं दिखा रहे?" गिडगिडाकर ज्यामघ ने कहा।

"वही मार्ग दिखाने जा रहा हूँ। जो विद्वेष फैलायगा, उसके सिर पर जामदग्नेय का भय मंडरायगा।"

"तो शार्यातों, हैहयों—"

"मैं उनका द्वेष्टा नहीं हूँ। मैं द्वेषियों का द्वेष भुलाने वाला महाभय हूँ।"

"पर जो इस प्रकार हम एक-दूसरे का हनन करते ही जायँगे, तो द्वेष और भी बढ़ेगा।"

"जो मैं द्वेषपूर्वक मारूँ तब न! मुझे तो सभी प्रिय हैं। पर द्वेष के रोगियों का रोग मैं मिटाया चाहता हूँ। यदि मेरे मन में द्वेष ही होता तो मैं सहस्रार्जुन को सौ बार उसके महल में सोया हुआ मार सकता था।"

"गुरुदेव! गुरुदेव! पर आप मुझे क्यों छोड़े दे रहे हैं?"

"तू उपकारवश मुझे भेज रहा है। तू अभी भी मुझे समझ नहीं पाया है। जा, शार्यातों का राज्यपद ग्रहण कर। और जिस दिन तेरी समझ में आ जाय कि मेरी बात सत्य है, उस दिन मैं तेरा ही हूं।"

"मुझे कब समझ में आयगी यह बात?"

"इस क्षण तेरा हृदय रुधिर के प्रवाह से काँप रहा है। जिस प्रकार द्वेष बुरा है, वैसे ही यह भय भी बुरा है। इन दोनों ही को जब तू भूल जायगा, तब तुझे समझ में आयगा कि द्वेषोन्मत्त मानव को विशुद्ध होने के लिए अभी रुधिर के न जाने कितने सागरों में स्नान करना पड़ेगा।"

"भगवान्! भगवान्! मुझे नहीं समझ में आ रहा।"

"ज्यामघ! मैं तो केवल धर्म की रक्षा करता हूँ। जो धर्म लोपेगा, वह मेरी ज्वाला में जल मरेगा। राजा वितिहोत्र! ज्यामघ को ले जाओ! पधारो! शत शरद् जियो! भद्रश्रेण्य, मैं परसों मिलूंगा," कहकर भार्गव घोड़े पर चढ़ प्रयाण कर गए।

धूल के बगूलों में केवल काली जटा और चमकता हुआ परशु दिखाई पड़ रहे थे।

प्रचण्ड अजगर के समान यादवों और भृगुओं की गाड़ियों की श्रेणी योजनों तक फैली चली जा रही थी। चलते हुए पहियों की चूं-चड़ड़ ध्वनि, ढोरों और घोड़ों के शब्द और मानव-समूह के कोलाहल से निर्जन जंगलों में विचित्र प्रतिध्वनियां हो रही थीं।

सारा समूह एक तरंग में था। मानो किसी बड़ी यात्रा पर निकले

हों, यही सब अनुभव कर रहे थे। स्त्रियां गातीं, वृद्ध कीर्तन करते, और बालक उछल-कूद मचाते। सैनिक कभी चलते तो कभी दौड लगाते।

सारा वातावरण आशा और उत्साह से भरा था। सभी सहस्रार्जुन के भय की छाया में पले थे, जिये थे। आज वह भय दूर होता जा रहा था। स्वतंत्रता-प्रेरक वायु उन सभी मानवों को एक नवीन चैतन्य प्रदान कर रही थी।

पर भगवती की चिंता का पार नहीं था। कुछ ही समय में यह उन्माद जाता रहेगा, और इस भयंकर प्रयोग के परिणाम का प्रभाव पडना आरम्भ होगा। विशाखा और कूर्मा को साथ लेकर उन्होंने इस मानव-समूह की व्यवस्था करना आरम्भ कर दिया। प्रति दस गाडियों पर उन्होंने एक-एक नायक नियुक्त किया, और ऐसे पांच नायकों पर एक-एक मुखिया नियुक्त किया। कुछ अश्वारोही थोडे-थोडे अंतर पर इधर-से-उधर चक्कर लगाकर संदेश पहुँचा आते; और इस प्रकार सारे तंत्र का संचालन सरल हो जाता।

अवंतिनाथ ने प्रचुर खाद्य-सामग्री दे दी थी। उनके साथ भेजे हुए मार्गदर्शक जंगल-वासियों से मिलकर भी कुछ व्यवस्था कर दिया करते। पर अधिकांश को तुरंत आखेट करके ही खाना जुटाना पडता था, सो प्रत्येक नायक उसकी खोज में घूमा करता।

किसी नदी या प्रवाह के तट पर प्रवासी मध्याह्न और मध्यरात्रि में विश्राम करते, उस स्थान से आवश्यक पानी भरकर साथ ले लेते और आगे बढ जाते।

गोत्रों के प्रवास से परिचित लोगों को आरम्भ में तो यह सब सरल जान पडा। श्रद्धा की सरिताएं चारों ओर बह रही थीं, और सबको भिगो रही थीं। सामान्य प्रवासी को इस बात की चिन्ता नहीं थी कि इतना बडा समूह कैसे आर्यावर्त पहुँचेगा।

पुराने यादव सौराष्ट्र की याद दिलाकर भार्गव के सम्बन्ध में बात

चीत किया करते। नये आये हुए भार्गव और भृगु, माहिष्मती और वैदूर्य में भार्गव द्वारा दिखाये गए पराक्रमों की आख्यायिकाएँ कहते। भार्गव ने डड्डनाथ को कैसे वश किया, मृगारानी को कैसे भृगु बनाया, और महादन्ती सिद्धेश्वरी उनमें कैसे समा गईं, और भगवती कैसे आकाश-मार्ग से जाकर भार्गव से मिलीं आदि बातें वे सब लोग बड़े गौरवपूर्वक कहते-सुनते, और उनके हृदयों में भक्ति के ज्वार-से उभरने लगते।

अभिनिस्सरण के तीसरे दिन पीछे कहीं दौड़ते हुए आ रहे घोड़ों की टापों की गूँज सुनाई पड़ी। दौड़ते घोड़ों पर आकर मार्गदर्शकों ने सूचना दी, और तुरन्त भगवती और कूर्मा शस्त्र-सज्जित सैनिकों के साथ छोर पर आकर खड़े हो गए।

एक काले बड़े-से घोड़े पर भार्गव आ रहे थे। उनके पीछे कोई बीस-एक सवारों के साथ उज्जयंत आ रहा था।

भगवती और कूर्मा ने उनके चरणों की रज माथे पर चढ़ा ली। सबकी कुशल पूछते हुए भार्गव पैदल चलकर गाड़ियों के पास गये। गाड़ियाँ रुक गईं। लोग उतर पड़े और आ-आकर भार्गव के पैरों पड़ने लगे। भार्गव आशीर्वाद देते हुए, सस्मित वदन आगे बढ़ चले।

विशाखा अपनी गाड़ी के पास ही थी। उसने भी आकर प्रणिपात किया।

"विशाखा, तेरा सौभाग्य अमर रहे। और बच्चे कैसे हैं?"

प्रतीप की छोटी प्रतिमाओं-से तीन बच्चे दौड़ते हुए आये।

"गुरुदेव के पैर छुओ!"

बच्चे डरे-से खड़े रह गए। गुरुदेव की बातें तो नित्य ही हुआ करती थीं, पर उन्होंने उन्हें देखा नहीं था।

भार्गव हँस पड़े—मुख से, आँखों से, स्वर से।

"अरे वाह! मुझे ही नहीं पहचानते? आओ!" उन्होंने हाथ

फैला दिये, परशु उज्जयन्त को दे दिया। पर बच्चे उस प्रचण्ड मूर्ति को देख ठिठके-से खडे रह गए।

"नहीं आओगे ?" भार्गव के स्वर मे मृदुता थी—"अरे, ऐसा भी कहीं होता है। नहीं आओगे ?"

तीन वर्ष का छोटा बच्चा वश हो गया—"गुरुदेव, मै आता हूँ," कह कर वह भार्गव के हाथों मे आ गया। कुछ देर रहकर दूसरे दो बच्चो ने भी पास आने का साहस दिखाया।

एक साथ तीनों को उठाकर भार्गव ने छाती से लगा लिया।

रात होने पर गाडियां छोडकर सब लोग भोजन के आयोजन में लग गए। पडाव के चारों ओर, बनचरो को दूर रखने के लिए होलियां चेता दी गईं।

रात को सब मुखियागण गुरुदेव के पास आये। भगवती, विशाखा, कूर्मा और उज्जयन्त तो वहाँ पहले से ही उपस्थित थे।

"भगवती, हम यात्रा पर नही चले है। हमें सैकडों योजन जाना है। सवेरे मैं प्रतीप से मिलने जा रहा हूं। चौथे दिन फिर आ मिलूंगा। इस बीच प्रत्येक सशक्त पुरुष, स्त्री और बडे बालक का स्वधर्म निर्दिष्ट हो जाना चाहिए। पहला स्वधर्म है पूरा-पूरा भोजन जुटा लेना, दूसरे, यथासम्भव अधिक से-अधिक वेग से आगे बढना, तीसरे, चाहे पुरुष हो या स्त्री हो, लडका हो या लडकी हो, यथासम्भव युद्ध के लिए सदा प्रस्तुत रहना। भगवती ने चक्रवर्ती सहस्त्रार्जुन को पराजित किया था। तुम उन्हीं की शिष्या हो। सबको मेरी यह आज्ञा सुना देना। इस स्वधर्म की रक्षा मे ही मर जाना है। ऐसे मरकर ही जिया जा सकेगा।"

दो घडी के पश्चात् सब लोग सो गए। वहाँ स्थापित की गई एक वेदी के आस-पास भार्गव और भगवती बातें करते हुए लेटे थे, वे उठ बैठे।

"लोमा ! चलो, हम नहा आएँ।"

"चलो।"

एक-दूसरे से लगे-जुड़े-से दोनों नदी पर गये और साथ-साथ जाने कब तक स्नान करते रहे। फिर मृगचर्म पहनकर एक-दूसरे का हाथ थामे खड़े रह गए।

"राम," लोमा ने लजाते हुए कहा—"अब मैं अधिक समय तक शस्त्र प्रयोग नहीं कर सकूंगी।"

"क्यों?" भार्गव ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा।

लोमा राम से चिपट गई और अपना मुख उसने पति की छाती में छिपा दिया।

"तुमने वितिहोत्र की रानी को आशीर्वाद दिया था कि पुत्रवती होना!"

"हाँ—"

"वह मुझे फल गया।"

राम ने उल्लास के आवेग में लोमा को उठा लिया और अपना मुँह उसकी छाती में दाब दिया।

दोनों हँस पड़े।

फिर पहले-जैसे ही राम लोमा को उठाकर जहाँ वे पहले सोये थे, वहीं लिवा लाये।

: ४ :

प्रतीप का कर्तव्य सबसे टेढ़ा था। अवंतिनाथ के साथ भेजे हुए मार्गदर्शक रास्ता दिखाते जा रहे थे। जंगल की राह में स्त्रियों के साथ बातचीत चलानी पड़ती। जहां कभी मनुष्य का पदसंचार ही न हुआ होगा, ऐसे स्थलों में होकर मार्ग खोजना पड़ता था। कई बार योजनों तक ऊबड़-खाबड़ आड़े रास्तों से चलना पड़ता। जहां गाड़ी निकलने का रास्ता न होता वहां झाड़ कटवाने पड़ते। और पीछे आ रहे समूहों के लिए विश्रामस्थल तैयार करवाकर, यथासाध्य भोजन जुटाने का आयोजन भी करना पड़ता था।

प्रतीप ठुक-पिटकर अब एक महान योद्धा और व्यवस्थापक बन गया था। पर नये ही प्रकार का पराक्रम था, अतएव नई शक्तियाँ इसमें अपेक्षित थीं। दूसरे दिन रात को वह और उसके सैनिक एक टेकरी पर चढकर सोने की तैयारी कर रहे थे तभी आस-पास के पर्वतों पर से सैकडों सूअर उतर आए। मार्गदर्शक चारों ओर से चिल्ला उठे और घोडे हिनहिना उठे। किसी ने खड्ग सम्हाला, किसी ने तीर ताना। पर अंधेरी रात में उस लोमहर्षी भयंकरता के सम्मुख सबकी छाती बैठ गई।

तुरन्त ही प्रतीप ने जलते हुए अगारे में से एक अधजला लक्कड खींच लिया और उसे लेकर वह टेकरी के किनारे पर दौड आया। उसका अनुकरण करके अन्य लोग भी जलते हुए लक्कड हाथ में लेकर दौड पडे।

सूअर चिल्लाते हुए तथा एक-दूसरे से सिर टकराते हुए ऊपर की ओर आ रहे थे। सबसे आगे के सूअर जब दस हाथ की दूरी पर रह गए तो प्रतीप ने अपने हाथ का जलता हुआ लक्कड उन पर फेंक कर दे मारा। आगे की ओर दौड़े आ रहे सूअरों को जाकर वह लगा। वे जल गए, कुछ अटके और फिर लौट पडे। योद्धाओं ने ताक-ताककर जलते लक्कड फेंकना आरम्भ कर दिया। आगे आ रहे सूअरों की पंक्ति टूट गई और तुरन्त पीछे आ रहे सूअरों ने मुँह फेर लिया और प्राण लेकर भाग निकले। योद्धा तीर-पर-तीर बरसाने लगे।

सवेरा होने पर कुछ सूअर घायल पडे पाये गए। पीछे आते हुए समूह के लिए प्रतीप को उनसे अच्छी-सी खाद्य-सामग्री प्राप्त हो गई।

जंगलों में पक्षी, सूअर, हरिण और शशकों का आखेट तो पद-पद पर मिल जाया करता था। मनुष्य के भुक्कडपन से अपरिचित इस जंगल के प्राणी, अभी मनुष्य का पदसंचार सुनकर भागना नहीं सीखे थे। जंगलों में जंगली फल तो खाने वालों के अभाव में यों ही

कुम्हलाकर पड़े रह जाते थे। जंगल के निवासी भी यथासामर्थ्य उनका स्वागत किया करते।

भार्गव आकर प्रतीप से मिले और दो दिन उसके साथ भी रहे।

"प्रतीप, केवल तुझे ही मैं कह सकता हूँ। बन, बनचर, नदी और वर्षा ऋतु, ये जंगलवासी और पीछे आ रहे हैहय, तुंडिकेरा और शार्यात—सभी हमारे शत्रु हैं। इनको वश करने में ही इस समय हमारी सबसे बड़ी परीक्षा है।"

"आपके आशीर्वाद यदि साथ हैं, तो सारी परीक्षाओं में से हम पार उतर जायँगे।"

"वर्षा आने से पहले ही हमें आर्यावर्त पहुँच जाना चाहिए," भार्गव ने कहा।

"अब से दुगने वेग से हमें चलना चाहिए।"

"यह तो बहुत कठिन है।"

भार्गव ने मार्ग-दर्शकों को बुलाया और चारों ओर खोज करवाई। जंगलवासियों के एक बड़े राजा का ग्राम, यहाँ से कोई आधे दिन के प्रवास पर मिलता था। भार्गव उसे मिलने के लिए गये। प्रतीप ने भी उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट की।

"प्रतीप! मेरे साथ यदि कोई दूसरा होता है, तो मनचाहा काम हो नहीं पाता है। मैं तो अकेला ही भला हूँ।"

दो मार्गदर्शकों को लेकर भार्गव टेढ़े-मेढ़े पहाड़ों में होकर, बनवासियों के राजा से मिलने गये। पर्वत के ढाल पर चलते हुए, ज्यों-त्यों कर नदी लांघते हुए निदान वे बनवासियों के थाने में पहुँचे। वहाँ एक झरने के तीर पर जाकर भार्गव बैठ गए।

"जाओ," उन्होंने संदेशवाहकों से कहा—"यहाँ के राजा से या उनके गुरु से या कोई कापालिक यहाँ हों तो उनसे जाकर कहो कि 'महाअथर्वण ऋचीक का पौत्र और यादवों का गुरु, देवी महादन्ती

जिसमें समा गई है वह, वह अघोरी डड्डनाथ का दत्तक पुत्र भार्गवनाथ आपके द्वार पर आया है।"

थोड़ी ही देर में ढोल और शहनाइयाँ बजने लगीं और सारा गाँव राजा के पीछे-पीछे भार्गवनाथ का स्वागत करने के लिए बाहर निकल आया। फूल लेकर स्त्रियाँ भी आईं। बनवासी और देवियों के पुजारी भी आये। श्मशान में जो तीन कापालिक थे वे भी आये; अतएव अन्य लोग कुछ झिझककर खड़े रहे।

भार्गव ने उन्हीं की भाषा में उनसे डड्डनाथ का कुशल-संवाद कहा, और अपने पास ही उन्हें बैठने का इंगित किया। राजा ने आकर भार्गव के पैर धोये। स्त्रियों ने चन्दन और फूलों से उनका सत्कार किया।

"राजन्, सहस्रार्जुन के अत्याचारों से पीड़ित अपने शिष्यों को मैं आर्यावर्त लिये जा रहा हूँ। आपकी सहायता चाहता हूँ। सभी बनवासियों के राजाओं को कहलवा दीजिए कि वे हमारी सहायता करें, हमें रास्ता बताएँ और आवश्यक खाद्य-सामग्री जुटा दिया करें। हमारे पीछे सहस्रार्जुन का एक बड़ा-सा सैन्य चला आ रहा है। यदि वे आयेंगे तो हमारे प्राण ले लेंगे और तुम्हें भी मारेंगे। मैं तो केवल भिक्षा माँग रहा हूँ।"

राजा ने वृद्धों की ओर देखा। वृद्धों ने देवी के पुजारियों की ओर देखा। पुजारियों ने कापालिकों की ओर देखा।

राजा सावधान हो गए। उनके प्रजाजनों को विश्वास नहीं हो रहा था।

"आज तो गाँव में चलिए। कल विचार करेंगे।"

"राजन्! यदि आप मुझे यह भिक्षा देना स्वीकार नहीं करते, तो मैं आपका आतिथ्य कैसे स्वीकार कर सकता हूँ? कल आप फिर पधारें, मैं यहीं आपकी प्रतीक्षा करूँगा।"

आधी रात बीतने पर बनवासियों के राजा रोहिल्ल, उनके मंत्रीगण, देवी के पुजारी और कापालिक, सब चुपचाप भार्गव को देखने आये।

एक झाड़ के तले भार्गव सोये हुए थे। पगरव सुनते ही वे जागकर उठ बैठे। उनकी आँखें अँधेरे में दो जलते अँगारों-सी चमक रही थीं। उनके हाथ के परशु का फलक भी चमक रहा था।

पर्वत पर पवन सनसना रहा था। दूर से वनचरों के शब्द सुनाई पड़ रहे थे। आगन्तुक ठिठककर खड़े रह गए। जहाँ भार्गव बैठे थे वहाँ, उनके आस-पास मानो तेज प्रसारित होता-सा लग रहा था।

"राजन्," भार्गव ने धीरे से कहा—"क्या विश्वास नहीं होता? पर्वत की तलहटी में मेरे योद्धा पड़े हुए हैं। यदि मेरे मन में कोई खोट होती तो तुम्हारे गाँव को जलाकर भस्म कर देने में मुझे घड़ी-भर की भी देर नहीं लगती।"

भार्गव ने सभी को पहचान लिया, लज्जित होकर वे पास सरक आये। "कापालिको, तुम भी विश्वास नहीं कर सके? यदि विश्वास नहीं ही जम पाता हो तो मैं यह चला," भार्गव ने राजा से कहा।

"नहीं, नहीं, गुरुदेव!" रोहिल्ल ने कहा। भार्गव खड़े हो गए और पास आकर उन्होंने राजा के खवे पर हाथ रखा और बोले—"मैं तो चला ही जाऊँगा, पर आया हूँ तो तुम्हारा भला करता जाऊँ। अपने राजाओं से कहलवा देना कि हमारे पीछे तुंडिकेराओं के राजा और सहस्रार्जुन का सेनापति रुरु आ रहा है—सैन्य लेकर। वे बनों में आग लगायँगे और तुम्हारे गाँव उजाड़ेंगे; यदि बचना चाहें तो भागने की तैयारी कर रखें। अरुणोदय हो गया है। मैं सहायता की भिक्षा माँगने आया था, पर तुमने मुझे ठेलकर निकाल दिया है। मैं तो अब चला ही जाऊँगा, पर तुमने भी एक मित्र खो दिया है।"

राजा ने विवश दृष्टि से मंत्रियों, पुजारियों और कापालिकों की ओर देखा। सब चुप थे।

साथ के मार्गदर्शक को बुलाकर भार्गव पर्वत से उतरने लगे।

सवेरा हुआ। जहाँ भार्गव बैठे थे वहाँ एक अणिशुद्ध अघोरचक्र दिखाई पड़ा। कापालिकों ने पास जाकर देखा। वह सामान्य चक्र

नहीं था, प्रत्युत गुरु-चक्र था। उन्होंने भूमि पर पड़कर नमस्कार किया। रोहिल्ल राजा ने क्रोध-भरी दृष्टि से मंत्रियों और पुजारियों की ओर देखा—"क्या देख रहे हो? ढोंगी हैं? वे ढोंगी हैं? क्या लेने आये थे? रास्ता पाना चाहते थे? खाद्य-सामग्री चाहते थे? उसके लिए भी तुमने इन्कार कर दिया। इतनी पीढ़ियों के उपरांत मेरे कुल में आये अतिथि को तुमने ठेल दिया।' राजा ने पर्वत पर से देखा—"मेरे हाथों उन्हें धक्का देकर निकलवा दिया?" उसने उगते सूर्य की किरणों से बनी-सी मुक्त केशावलि और दाढ़ी से तेजोमान भार्गव को उतरते हुए देखा।

"गुरुदेव! गुरुदेव! पधारिए।"

भार्गव लौट पड़े।

"पधारिए, पधारिए!" रोहिल्ल ने पुकारा, और वह दौड़ता हुआ नीचे उतर आया।

"पधारिए, आप जो मांगेंगे वही दूँगा। लौट आइए।"

: ४ :

सेनापति रुरु का विशाल सैन्य उस स्थल पर आ पहुँचा, जहाँ प्रतीप का थाना था। प्रतीप को सूचना मिलने से पहले ही आक्रमण करके यादव गोत्र का सर्वनाश करने की उसकी उत्कट इच्छा थी।

पर सैन्य एकत्रित करने में कुछ समय लग गया, और मही नदी तक पहुँचने से पहले ही उसे पता लग गया कि प्रतीप अपना थाना छोड़ कर उत्तर को ओर चला गया है। रुरु गर्विष्ठ था। भद्रश्रेण्य और उसके पुत्र प्रतीप के भाग जाने की सूचना पाकर उसका गर्व संतुष्ट हुआ।

हैहयों के संघ में तुण्डिकेरा लोग सबसे अधिक जंगली थे, और नर्मदा के तीर पर चन्द्रतीर्थ से पूर्व की ओर रहा करते थे। रुरु गर्विष्ठ था और निष्ठुर भी था। रक्तपात उसे बहुत प्रिय था। भद्रश्रेण्य और मृगा के शासनकाल में तो वह माहिष्मती के राज्यचक्र की ओर आँख

उठाकर भी नहीं देख सकता था, पर अब वे दोनों चले गए थे; तालबाहु निकम्मा सिद्ध हो चुका था; सहस्रार्जुन का विनाशक उन्माद बढ़ चला था, अतएव रुरु अब उसका दाहिना हाथ हो गया था।

रुरु जिस योजना को सरल समझ रहा था, उसमें कुछ कठिनाइयां दिखाई पड़ीं। छोटे गांवों में भृगुओं और यादवों की खोज विफल सिद्ध हुई और उसमें बहुत समय नष्ट हो गया।

यादव और भृगु अपने कुटुम्बों सहित अदृष्ट हो गए थे। रुरु की समझ में आ गया कि इसमें कुछ गहरा रहस्य है।

उसने वितिहोत्र अवंतिनाथ को सैन्य लेकर उपस्थित होने का संदेशा भेजा। उत्तर मिला कि राजा तो रुग्ण हैं, पर सेनापति सैन्य लेकर मही पर आ मिलेंगे।

रुरु का सैन्य आगे बढ़ा। मही के तट निर्जन पड़े थे।

कई दिनों पहले भद्रश्रेण्य और प्रतीप निकल भागे थे। उनके साथ गुरुदेव भार्गव भी थे। उन्हें भी उसने भगा दिया है, यह जानकर रुरु को परम संतोष हुआ।

अवंतियों के सेनापति भद्राक्ष से रुरु की भेंट हुई। उसके साथ ज्यामघ भी आया था। उसकी इच्छा इस सैन्य के साथ जाने की नहीं थी, पर कुछ तो रुरु की आज्ञा के कारण और कुछ जो दो-एक सहस्र शार्यात प्रतिशोध लेने के लिए एकत्रित हुए थे, उनकी विनती मानकर ज्यामघ ने उनके साथ जाना स्वीकार कर लिया।

रुरु प्रतीप का पीछा करता हुआ आगे बढ़ चला। जंगलों में यहां-वहाँ पड़े हुए मार्ग के नये चिह्न निस्सरकों का मार्ग सूचित कर रहे थे। रुरु का सैन्य रथ, घोड़ों, पैदलों और गाड़ियों का बना था। एक संकरे मार्ग से जब वह जा रहा था तो दोनों ओर की खन्दकों से निकलकर उस पर भद्रश्रेण्य और विमद की टुकड़ियों ने आक्रमण कर दिया। इस अप्रत्याशित आक्रमण से सैन्य छिन्न-भिन्न हो गया। अवंति के सैनिक नौ-दो-ग्यारह हो गए। जैसे-तैसे रुरु अपने कुछ आदमियों को एकत्रित

करने लगा तभी सामने से असंख्य अश्वारोही आते दिखाई पडे। सबसे आगे भार्गव थे, उनके पीछे उज्जयंत था और उसके पीछे अनेक अश्वारोही झाडों की घनी झुरमुटों से निकले आ रहे थे। यादवों और भृगुओं ने गुरुदेव भार्गव का जय-जयकार किया। पवन पर सवारी करते-से अपने काले घोडे पर बैठकर आते हुए भार्गव को हैहय सैन्य ने देखा। उनमे से बहुतों के हृदय में तो उनके लिए पूज्यभाव था। उनके और डङ्कनाथ के सम्बन्ध की चमत्कारपूर्ण बातें भी उन्होंने सुन रखी थीं। महादन्ती सिद्धेश्वरी ने जो उन्हे तेज प्रदान किया था, उसकी दंतकथा भी उन्होंने अवंती के सैनिकों से सुनी थी। मनुष्य-बल से अस्पर्श्य गुरुदेव से वे लडने के लिए तैयार नहीं थे।

भार्गव वज्र के समान सैन्य पर टूट पडे; उनका प्रचण्ड परशु मनुष्यों और घोडों को धडाधड भूमात करता हुआ विद्युत की भाँति चमक रहा था। ऐसा आभास हो रहा था, मानो उनकी भयंकर आँखें अग्न्यास्त्र छोड रही हैं। हैहय सैनिक मुट्ठियाँ बाँधकर, एक-दूसरे को कुचलते हुए, वहाँ से भाग निकले, और प्रतीप के पुराने थाने पर पहुँचकर उन्होंने विश्राम लिया।

यादव और भृगु योद्धाओं ने केवल दिखाने-भर को पीछा ही किया। तुरन्त ही लौटकर उन्होंने हैहय सैन्य के पीछे छोड़े हुए घोडों और बैलों को साथ लिया, और झपटते हुए अपने गोत्र के संरक्षण के लिए आ पहुँचे।

रोहिलख राजा के प्रदेश की सीमा अब समाप्त हो चुकी थी। अब बनवासियों और आतिथ्य देने वाले जंगलों के स्थान पर मरुस्थल और खारे पानी के पोखरे ही चारों ओर दिखाई पडते थे; न तो कहीं आखेट ही मिलता था, और न झरनों में ही पानी था। धूप अंगारे बरसाया करती। प्यास और भूख अब निस्सरकों के नित्य के सहचर बन गए थे।

पाँच महीनों में युद्ध, भूख, थकान, तपन और रोगों से सहस्रों

मनुष्य मर-खप गए थे। रोगिष्ठ वृद्धों ने अनेक बार समूह के लिए खाद्य-पदार्थ और पानी की बचत करने के लिए, भार्गव की आज्ञा लेकर जंगलों में पीछे रह जाना स्वीकार किया था। स्त्रियां और बालक तो कुम्हलाये हुए फूलों के समान झर पड़ते थे। उन सबका अग्निदाह किये बिना ही निस्सरकों का समूह झपटता हुआ आगे बढ़ने लगा।

रोहिल्ल राजा के मित्रों की सीमा भी अब समाप्त हो गई थी। बन ज्यों-ज्यों कम होते गए, बनवासियों के थाने भी कम होते गए। अब जो भी थाने मिलते थे वे शत्रुत्व से ओत-प्रोत और रक्त-पिपासु थाने थे। प्रतीप के घोड़ों और गाय-बैलों को चुरा ले जाने के लिए वे सदा प्रस्तुत रहते।

क्षीण हो चला और अधभूखा प्रतीप अथक रूप से पड़ाव के स्थान खोजता हुआ आगे बढ़ता ही जाता। आवश्यकता पड़ने पर वह द्वेषी बनवासियों का संहार करता और उससे बलात् खाद्य सामग्री निकलवा लेता।

सबसे पीछे राजा भद्रश्रेण्य आ रहे थे। वे सचमुच अब बहुत वृद्ध हो गए जान पड़ते थे; उनकी आँखें बाहर निकल आई थीं; उनके हाथ सूखे बांस के समान हो गए थे।

रुरु का सैन्य क्षीण हो चला था। उसे भी भूखों मरना पड़ता था, पर थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर से माहिष्मती, अवन्ती और आनर्त से उसे कुछ मदद मिल जाया करती थी। कभी-कभी कुछ नये योद्धा भी उससे आ मिलते थे। उसके पीछे मित्रभूमि थी। पर निस्सरकों के लिए तो आगे और पीछे दोनों ओर आग लगी हुई थी।

रुरु सेनापति अवश्य था, पर सच्चा सेना-नायक तो ज्यामघ हो गया था। निरन्तर भद्रश्रेण्य का पीछा करते रहने और उसे छकाते रहने से, उसके हृदय में ढका हुआ शत्रुत्व का दावानल फिर से धधक उठा। जिस रात उसने अपने बाप, माँ और भाइयों को सोया हुआ छोड़ा था, उसे वह भूल नहीं पाया था। अगले ही सवेरे भद्रश्रेण्य ने

उसके बाप, भाइयों और स्वजनों का संहार किया था। उसकी माँ उस की रानी बन गई थी। उसकी भाभियाँ यादवकुल में ब्याह दी गईं थी। शार्यातों का नाम-चिह्न तक निःशेष कर दिया गया था। निदान उस दिन का प्रतिशोध लेने का प्रसंग आ पहुँचा था, इस विचार से उसे प्रोत्साहन मिला।

उसने युद्ध-पद्धति को ही बदल डाला। उसने यह भी स्पष्ट देख लिया कि यादव और भृगु योद्धा दिन-प्रतिदिन खपते जा रहे हैं। उज्जयन्त की अलग रहकर चलने वाली टुकड़ी भी अब योद्धाओं के अभाव में भद्रश्रेण्य की टुकड़ी में आकर मिल गई थी। नित्यप्रति रात और दिन ज्यामघ भद्रश्रेण्य की टुकड़ी को छेड़ा करता और उसके योद्धाओं का संहार किया करता। वह आक्रमण तो कभी न करता, पर भयंकर शत्रुत्व से प्रेरित होकर वह निरन्तर संताप देकर भद्रश्रेण्य की शक्ति को बूंद-बूंद चूसने लगा।

थोड़े ही दिनों में भद्रश्रेण्य का सैन्य खप जायगा, फिर एक ही चोट में यादवों और भृगुओं का संहार हो सकेगा—यही युक्ति उसने सोच रखी थी। केवल भद्रश्रेण्य और ज्यामघ के बीच का शत्रुत्व ही पराकाष्ठा पर नहीं पहुँचा था, प्रत्युत यादवों और शार्यातों के बीच का परम्परागत वैर भी इन दिनों विषाम्यता की चरम सीमा पर पहुँच गया था।

निस्सरकों के समूह में अब उत्साह और आनन्द नहीं रह गया था। व्याध के आगे-आगे दौड़ने वाले हिरण की-सी त्रास-भरी अधीरता ही अब उनके भागने में भी थी। भगवती की स्थिति अब घोड़े पर बैठने योग्य नहीं रह गई थी। विशाखा-मात्र एक अस्थि-पिंजर के समान दौड़-धूप किया करती। प्रायः पुरुष दिन में एक ही बार खाते। स्त्रियां तो कभी-कभी दो दिन में एक बार खातीं। पेट-भर भोजन न मिलने से बच्चे सारे दिन रोया करते। माताओं और गायों के दूध भी सूखने लगे। तप्त, खारा और रेत से भरा पवन आँखें लाल कर देता, मुँह सुखा देता और शरीर को शिथिल कर देता।

भार्गव केवल इसी चिन्ता में रहते कि किसी प्रकार गोत्र का उत्साह बना रहे, और प्रवास शीघ्रतापूर्वक होता चले। उन्होंने वृद्ध और बालकों की एक टुकड़ी तैयार करके भद्रश्रेण्य और गोत्र के बीच नियुक्त कर दी। दिन और रात गोत्र आगे ही बढ़ता चला जाता। अँधेरी रात की चिन्ता भी वे न करते। उतावली में बैल या घोड़ों के मरने की चिंता भी उन्हें नहीं थी। उन्हें तो जैसे-तैसे यह मरुस्थल पार करके सरस्वती के तट पर पहुँचना था।

विमद कुछ अश्वारोहियों को लेकर भृगु के आश्रम से सहायता लाने के लिए आगे निकल गया था।

भूखे, प्यासे, प्राणों की रक्षा के लिए भागते हुए निस्सरकों की दृष्टि एक-मात्र भार्गव पर ठहरी थी। जहां भी वे दिखाई पड़ते, वहीं विश्वास जाग उठता। वीर योद्धागण, रण में धराशायी होते समय 'जय गुरुदेव' कहकर प्राण त्याग देते। बालकों को दूध पिलाने में असमर्थ स्त्रियां अपने अन्तिम श्वास के क्षण में गुरुदेव का पाद-स्पर्श करने में ही अपना मोक्ष मानतीं। छोटे बच्चे भूख से आक्रन्द करते हुए और धूप से छट-पटाते हुए भार्गव की ओर देखते, और उनके हाथ का स्पर्श अनुभव कर एक मंद हास्य के साथ सदा के लिए अपनी आँखें मूंद लेते। घोड़े और गायें भी उनका पगरव सुनाई पड़ने पर भूखे पेट उत्साह-विह्वल गति से दौड़ने का प्रयत्न करते।

भार्गव कभी सोते नहीं; नाम-मात्र का भोजन करते। उनका प्रचंड शरीर भी कंकाल के समान दिखाई पड़ने लगा। उनकी आँखों का एकाग्र तेज पहले से भी अधिक दाहक हो चला था। उनके हाथ का परशु सदा की भांति अडिग था, और उनके ओंठों पर दैव की निश्चलता थी।

ज्यामघ की युक्ति सफल होने लगी। भद्रश्रेण्य की टुकड़ी समाप्त-प्राय थी। उसमें अब कठिनाई से पचास मनुष्य रह गए होंगे। सवेरे तक वे पूरे हो जायंगे और साँझ को रुरु और ज्यामघ अपना सैन्य ले कर गोत्र पर आ टूटेंगे।

सरस्वती के तट तक पहुँचने में अभी दो दिन का मार्ग शेष था। भद्रश्रेण्य और उसके अडिग योद्धा अन्तिम युद्ध के लिए कटिबद्ध हो रहे थे। उनकी सारी आशाएं समाप्त हो गई थीं। जगरे के आस-पास बैठकर वे चुपचाप शस्त्रों को साफ कर रहे थे। अंधेरी रात थी। निस्स-रकों के पड़ाव की ओर से घोड़ों की टापों का शब्द सुनाई पड़ा। थके हुए भद्रश्रेण्य ने सिर उठाकर देखा—"शायद गुरुदेव का संदेशा होगा।"

घोड़ा जगरे के उजाले में आ पहुँचा। गुरुदेव स्वयम् आये थे। भद्रश्रेण्य ने उठकर उनके पैर छुए, और पैरों की रज माथे पर चढ़ा ली।

"भद्रश्रेण्य! कितने दिनों से तुमने नहीं खाया है?"

"तीन।"

"यह कुछ लेता आया हूँ, खा लो।"

"आप लाए हैं? पर वहीं कोई भूखों मरेगा न?"

"कोई नहीं मरेगा, यह तो मेरे भाग का भोजन है।"

"पर आप? आपने कितने दिनों से नहीं खाया है?"

"पांच।"

"फिर?"

भार्गव हँस पड़े—"मैं तो अघोरियों का भी गुरु हूँ। मैं राख खा कर रह सकता हूँ। अघोरी वृद्धों की प्रतिस्पर्धा में मैंने दो महीनों के उपवास किये हैं।"

भद्रश्रेण्य ने खाकर जल पी लिया।

"राजन्! आप इन योद्धाओं को साथ लेकर चुपचाप गोत्र के पड़ाव पर चले जाइए," भार्गव ने कहा।

"क्या कह रहे हैं आप?" तब तो कल ही दोपहर को रुरु आकर गोत्र को पकड़ लेगा।"

"पकड़ कैसे लेगा? मैं जो हूँ!"

"अर्थात् आप यहां रहेंगे और मैं यहां से चला जाऊँ?" भद्रश्रेण्य ने दृढ़तापूर्वक गरदन हिलाई—"कभी नहीं।"

"भद्रश्रेण्य ! तुम्हें इस स्थिति में मैंने ही ला पटका है। और मैं ही इस स्थिति से तुम्हें उबार भी सकता हूँ।"

"इस सम्बन्ध में तो मुझे कोई शंका नहीं है।"

"परसों या फिर तरसों गोत्र सरस्वती के तीर पर आ पहुँचेगा। त्रिमद् सहायता लेकर उस तीर पर आ जायगा।"

"पर परसों का दिन हम देख सकें तब न ?"

"इसीलिए मैं आया हूँ। तुम यहां रहोगे तो कल खप जाओगे। संध्या तक हमारा संहार हो जायगा।"

"और यदि आप रहेंगे तो ?"

"मुझे मारने वाला कौन है ? दो व्यक्तियों ने तो मुझे भगवान् ही मान लिया है। तुम जानते हो ?"

"पर मैं कब नहीं मानता हूँ !"

"भद्रश्रेण्य, जो मैं कह रहा हूँ, वही ठीक है। या तो तुम सबको सरस्वती पहुँचाऊंगा, और या फिर तुम सबके खपने से पहले मैं ही खप जाऊंगा। इसके अतिरिक्त, किसी तीसरे मार्ग से मैं गुरुपद नहीं रख सकूंगा, जाओ !"

भद्रश्रेण्य की आँखों में पानी भर आया।

"आप नहीं आयंगे तो—"

क्षण-भर भार्गव चुप रहे।

"मैंने तो भगवती से कह रखा है। जामदग्नेय के शिष्यों के लिए केवल एक ही धर्म है।"

"कौनसा ?"

भार्गव चुप रहे। उनकी आँखें भयंकर हो गई। उनके मुख के आस-पास तेज का धुँधला-सा वर्तुल छा गया।

"अडिग भाव से मर जाने में ही जीवन है।" भार्गव ने स्पष्ट कह दिया।

"मैं समझ न सका।"

"स्त्रियाँ बालकों सहित अपनी गाड़ियों में जल मरे। पुरुष जहाँ खड़े हों वहीं लड़ते-लड़ते मर जायं।"

भद्रश्रेण्य अवाक् हो गया, और गुरुदेव की भयंकर मुखमुद्रा को देखता रह गया।

"पर भगवती? वे तो गर्भवती हैं।"

"मैं न आऊं तब न?" भार्गव ने हँसकर कहा—"वह तो मेरी ही अंग है। जब मैं ही मर जाऊंगा, तो वह कौन जीती रहने वाली है?"

: ६ :

शार्यातों की कोई पच्चीस योद्धाओं की टुकड़ी सवेरे ही भद्रश्रेण्य को सताने के लिए आ पहुँची। कोई भूला-भटका यादव पकड़ में आ जाय, इस विचार से झाड़ों के झुरमुटों में छिपते-छिपते वे आगे बढ़ रहे थे।

जहाँ पिछली रात को भद्रश्रेण्य का डेरा पड़ा हुआ था, वह स्थान अब निर्जन पड़ा था। केवल एक जगरे की राख और घोड़ों की लीद वहाँ पड़ी हुई थी। उनकी धारणा थी कि उस टुकड़ी में पांच सौ आदमी रहे होंगे। पर भद्रश्रेण्य की टुकड़ी कितनी क्षीण हो गई थी, इस बात की निश्चित जानकारी किसी को भी नहीं थी।

यह समझकर कि शार्यातों के झाड़ी में से बाहर आते ही भद्रश्रेण्य भाग निकला है, उनका नायक अत्यंत प्रसन्न हुआ। जाने कब तक वह चारों ओर चक्कर काटता रहा, पर कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ा। भद्रश्रेण्य की टुकड़ी में अब इतने कम आदमी रह गए होंगे, यह जानकर वह बड़े अचरज में पड़ गया। उसने वहाँ से लौटकर, कुछ ही दूर पर जो एक दूसरी टुकड़ी थी, उसके नायक को सूचना दी। निदान कोई एकाध योजन की दूरी पर जहाँ रुरु और ज्यामघ का पड़ाव था, वहाँ भी यह सम्वाद पहुँच गया।

इस छावनी में भी भूख और प्यास के चिह्न दिखाई पड़ने लगे थे।

कुछ दूर तक वे सावधानीपूर्वक आगे बढ़ते चले गए। मार्ग के दोनों ओर घने झाड़ों के झुरमुट थे।

कुछ दूर आने पर झाड़ों के उस ओर एक खुला मैदान दिखाई पड़ा। उस ओर जाने को वे प्रस्तुत हुए ही थे कि एकाएक रुक गए।

एक ऊंचे काले घोड़े पर व्याघ्रचर्म धारण किये, प्रचण्ड भार्गव धीरे-धीरे जंगल की पगडंडी से मैदान की ओर आते दिखाई पड़े। उनकी दाहक दृष्टि, सामने के झाड़ों की ओट से आते हुए सैनिकों की ओर ठहरी थी।

नायक और उसके मनुष्य अपने स्थान पर ही रुक गए। भार्गव के चारों ओर प्रकाशित तेज के वर्तुल को देखकर वे मुग्ध हो रहे।

"आओ! आओ!" भार्गव ने आज्ञा दी।

सैनिक यादवों का सामना तो प्रसन्नतापूर्वक कर सकते थे, पर अकेले भार्गव के पास जाने को वे तैयार न थे।

भार्गव का दुर्निरीक्ष्य स्वरूप देखकर नायक और उसके आदमी घबड़ा गए, और घोड़ों की बाग मोड़कर वे भाग छूटे। रुरु और ज्यामघ को जाकर उन्होंने सूचना दी कि भद्रश्रेण्य के स्थान पर गुरुदेव स्वयम् खड़े हैं। सारे सैनिक एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। गुरुदेव भार्गव के सम्मुख जाने का साहस उनमें नहीं था सो रुरु और ज्यामघ ने पड़ाव उठाने का विचार स्थगित कर दिया, और सुसज्जित होकर भार्गव की प्रतीक्षा करने लगे।

मध्यान्त हो आया, दोपहर भी हो चला, और सन्ध्या होने आई पर भार्गव नहीं आये। सांझ को सैन्य ने प्रस्थान कर दिया, और भद्र-श्रेण्य के पुराने पड़ाव तक वे जा पहुँचे। सारी रात वे शत्रु की प्रतीक्षा करते रहे, पर शत्रु कहीं न दिखाई पड़ा।

यादव गोत्र को एक दिन की छूट मिल गई। सवेरे एक घोड़ा कहीं हिनहिनाया। यह विचारकर कि कोई छोटी-सी टुकड़ी होगी,

ज्यामघ ने उसे घेरने के लिए आदमी भेज दिये और वह और रुरु भी आगे बढ़ते चले।

झाड़ों के झुरमुट से निकलकर अकेले भार्गव खड़े थे। उनके साथ कोई भी नहीं था। झाड़ों की ओट सौ आदमी तीर साधकर तैयार खड़े थे, और रुरु और ज्यामघ की आज्ञा की राह देख रहे थे। अकेले गुरुदेव को देखकर उन्होंने तने हुए तीर नीचे कर लिए। भार्गव कुछ पास आकर घोड़े पर से उतर पड़े और अपनी सदा की रीति के अनुसार परशु के डण्डे को फलक के पास से पकड़कर वे आगे आये।

"रुरु!" भार्गव ने हँसकर कहा—"मुझे मारने के लिए शर-संधान कर रहा है?" उनका स्वर मानो खिल्ली उड़ा रहा था। ज्यामघ ने रुरु को तीर चढ़ाते देख, तुरन्त उसका हाथ खींच लिया।

"नहीं," उसने आज्ञा दी।

"ज्यामघ! वत्स!" हाथ फैलाकर भार्गव ने कहा—"मैं लड़ने नहीं आया हूँ। मैं तो तुझसे मिलने आया हूँ।"

ज्यामघ की आँखों में पानी भर आया। घोड़े पर से उतरकर वह दौड़ता हुआ उनके पैरों पड़ने गया, पर उससे पहले ही भार्गव ने उसे गले से लगा लिया।

सैनिकों ने अपने साधे हुए तीर वापस खींच लिये।

"गुरुदेव! गुरुदेव!" ज्यामघ ने कहा—"इस समय आप यहाँ अकेले कैसे?"

"मुझे कब किसी के साथ की आवश्यकता है?"

गुरुदेव, रुरु और ज्यामघ के आस-पास कोई पांच सौ सैनिक घिर आये।

"आप कहाँ रहते हैं?"

"उस झाड़ के तले।"

"झाड़-तले रहते कितने दिन हो गए?"

"दो दिन हो गए हैं।"

"सो किसलिए ?"

"तुमसे मिलने के लिए।"

"तो पधारिए !" ज्यामघ ने कहा। रुरु को यह बात नहीं रुची, पर गुरु भार्गव का क्या किया जा सकता है ? और इस ज्यामघ का ही क्या किया जा सकता है ?

"हमारा आतिथ्य स्वीकार करिए।"

"छः दिन से मैंने कुछ खाया नहीं है," मंद हास्य के साथ भार्गव ने कहा।

सबने लौटकर गुरुदेव का स्वागत-सम्मान किया। खा-पीकर भार्गव ज्यामघ के साथ बातचीत करते हुए निकल गए। चलते-चलते वे बहुत दूर निकल आए।

"ज्यामघ !" भार्गव ने कहा—"यहाँ शार्यातश्रेष्ठ कितने हैं ?"

"तीन हैं।"

"उन्हें भी बुला ले। मुझे उनसे भी बात करनी है।"

तीनों शार्यातश्रेष्ठ आ गए।

"ज्यामघ, शार्यातो ! मैं इस समय एक याचना करने आया हूँ।"

"कौनसी ?"

"कल या परसों तुम यादवों का संहार कर सकोगे। अब अधिक समय नहीं रह गया।"

"हम उसी की प्रतीक्षा में हैं," एक शार्यात ने कहा।

"पर वह सब मैं देख नहीं सकूँगा। शार्यातराज को मैंने मारा है, मैंने ही शार्यातों का दलन किया है और शार्यात स्त्रियों को यादवों के साथ भी मैंने ही ब्याहा है। मैं हूँ तुम्हारे द्वेष का मूल।"

कोई कुछ बोला नहीं।

"ज्यामघ, मैं तेरे हाथों अपने शिरच्छेद की याचना करता हूँ। मैंने तुझे परशु चलाना सिखा दिया है। उसका उपयोग तू मुझ पर कर, यही मेरी तुझसे आज याचना है।"

ज्यामघ अवाक् हो गया। उसके हाथ का परशु भूमि पर गिर पड़ा।

"निर्बल न बन, ज्यामघ, उस भयंकर रात को, जिसके सपने तुझे अभी भी सताया करते हैं, मैं ही प्रतीप को लेकर आया था। कूर्मा और उज्जयंत को मैंने ही प्रेरित किया था। शार्यातों के सर्वनाश का निर्णय भी मैंने ही किया था। पहले मुझे मार ले, फिर कल उनको देख लेना।"

सब चुप थे।

भार्गव हँस दिये—एक मिठास के साथ। "तुम यादवों का संहार कर सको, उससे पहले मुझे तो मरना ही चाहिए। जो तुम अभी मुझे नहीं मारोगे, तो फिर कल तुम्हारा रास्ता खोजकर मुझे तो मरना ही है।"

"गुरुदेव! गुरुदेव! मैंने बहुत सहन किया है। अब क्या अपने हाथों आपको मारना ही मेरे लिए शेष रह गया है?" कातर स्वर में ज्यामघ ने कहा।

"क्यों नहीं? यदि यादवों के संहार में धर्म है, तो मेरे संहार में परम धर्म होना चाहिए। यदि मेरा संहार नहीं किया जा सकता, तो जिन्होंने मेरी आज्ञा का पालन किया है, उनका संहार कैसे किया जा सकता है?"

ज्यामघ आंसू-भरी आँखों से भार्गव के पैरों पड़ गया—"गुरुदेव! भगवती को मैंने मारा, तब भी आपने मुझे अपनाया। पशुपति के स्थानक पर मैं आपको मारने आया था, वहाँ भी आपने मुझे क्षमा कर दिया। आपने अपने प्राणों को संकट में डालकर भी मुझे मगर के मुँह में से निकालकर बचा लिया। अघोरी मुझे काट कर फेंक देते, पर आपने ही उन्हें रोका। उन दो वर्षों में मैं सिर पटककर मर जाता, पर आपके ही बल से जीवित रह सका हूँ। आपने ही फिर मुझे शार्यातों के पास भेजा। मैं आपको क्यों कर मार सकता हूं? तब तो फिर मैं ही क्यों न मर जाऊँ?"

"तो तेरे इस मरने से तो यही भला है कि तेरे भीतर का द्वेष ही क्यों न मर जाय? भद्रश्रेण्य तेरा पिता होने को तैयार है और तेरी ही माँ तो उसके घर में है। मैंने तेरी मां को वचन दिया है कि अपने जीते-जी मैं पिता और पुत्र दोनों को मरने नहीं दूंगा।"

"मेरी माँ—"

"हाँ, वह नित्य तेरे और भद्रश्रेण्य के बीच के शत्रुत्व को देखकर आँसू टपकाती रहती है। शार्यातो! तुम कभी दस सहस्र थे, आज केवल एक सहस्र हो। यादव भी तब दस सहस्र थे, आज पांच सहस्र भी नहीं रह गए। तुम अब भी अपने वैर को भूल नहीं सकोगे? मुझे थोड़ा तो अपने हृदय में बसने दो। मैं तुम दोनों कुलों को पहले से समृद्ध बना दूंगा।"

"आपने तो हमें कुत्ते की मौत मारा है," एक शार्यातश्रेष्ठ ने कहा।

"झूठ बात है। मैंने तो केवल आठ सौ शार्यातों को मारा था। पिछले छः महीनों में ही तुममें से बहुत-से कट मरे हैं। शार्यात और उनकी कन्याएँ तो अब दत्तक पुत्रों के रूप में और बहुओं के रूप में यादवों के पास हैं। जो तुम यादवों का संहार करोगे, तो तुम्हारे ही बेटे-बेटी और जँवाई मारे जायँगे। इससे तो यही अच्छा है कि तुम मुझे ही मार डालो, मेरा ही सिर ले जाकर सहस्रार्जुन के चरणों में धर दो। वह अत्यन्त प्रसन्न होगा और तुम्हारी वृद्धि करेगा। यदि वह किसी से डरता है, तो केवल मुझसे।"

सब चुपचाप गुरुदेव के वचनों को सुन रहे थे।

"ज्यामघ! किसलिए विलम्ब कर रहा है? चल मेरे साथ, वहाँ तेरे ही स्वजन तेरी राह देख रहे हैं, और नहीं तो फिर मुझे ही मार डाल। अपने कुल के वैर का प्रतिशोध कर और अर्जुन के मन की साध को भी पूरी कर दे।"

"गुरुदेव! गुरुदेव! मुझे कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। बताइये, मैं क्या करूँ?"

"चल मेरे साथ !" भार्गव ने आज्ञा दी। ज्यामघ धरती ताक रहा था।

"तुम क्या कहना चाहते हो ?" भार्गव ने शार्यातश्रेष्ठों से पूछा—"तुम हमारे साथ चलोगे, या रुरु के साथ जाओगे ?"

कुछ देर तक शार्यात एक-दूसरे का मुँह ताकते रहे।

"शार्यातवर्यो !" ज्यामघ ने कहा—"गुरुदेव मेरे सर्वस्व हैं। मैं प्राणांत की घड़ी तक इनके साथ रहूँगा। तुम भी आना चाहते हो ?"

"हां," श्रेष्ठों ने बाध्य होकर हामी भरी। सब लौट पड़े। तभी ज्यामघ खड़ा रहा गया।

"नहीं—नहीं—नहीं," उसने आक्रन्द किया।

"क्या नहीं ?" भार्गव ने पूछा।

"मैं नहीं आऊँगा। कैसे आ सकता हूँ, गुरुदेव ?" उसने काँपते स्वर में कहा—"मैं शार्यात नहीं हूँ। मैं वीर नहीं हूँ। मैं तो निर्बल हूँ। मैं तो केवल प्रवाहों में तैरने वाला एक तिनका हूँ। आप महान् हैं। भगवन् ! अपनी आग में अब मुझे भी जल जाने दीजिए। आप ही ने मुझे रुरु के पास जाने को आज्ञा दी थी। मैं अब उसे कैसे छोड़ सकता हूँ ? नहीं—नहीं—नहीं। मुझे तो अब यहीं रहकर मरना होगा। यही मेरा स्वधर्म है।"

भार्गव ने रोते हुए ज्यामघ के खवे पर हाथ रखा—"ज्यामघ, स्वस्थ होओ।"

"गुरुदेव, मुझे यहीं रहने दीजिए। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ। और कल जब युद्ध हो तो आप मुझे मार डालें, बस यही मेरी एक याचना है। मेरे न माँ है, न बाप है और न कोई स्वजन ही है। जो कुछ हैं बस आप हैं। चाहे आप मुझे शिष्य मानें, पुत्र मानें या भक्त मानें, पर मैं आपका ही हूँ। आपकी गोद में सिर रखकर रोया हूँ। दिन और रात आपने मेरे आँसुओं को थामा है। अब मैं थक गया हूँ। अब मैं जीना नहीं चाहता। कल मैं ही सबसे पहले आपके सामने पड़ूँगा।

तभी अपने हाथों मेरा शिरच्छेद कर देना। केवल इसी कृपा की, इसी प्रेमपूर्वक कृत्य की भीख में आपसे मांगता हूँ। माँ जैसे बालक को सुला देती है, वैसे ही आप मुझे अपने हाथों सदा के लिए सुला देना।" ज्यामघ रोने लगा।

"ज्यामघ! प्रिय वत्स! रो नहीं। तू दुःखी है, तेरे दुःख का निवारण करना मेरा कर्तव्य है। मैं तेरी इच्छा को स्वीकार करूँगा। और कुछ?"

उनके एकाकी घोड़े की टापों का शब्द बन की शांति में भयंकर प्रतिध्वनि उत्पन्न करता हुआ दूर होता जा रहा था।

: ७ :

जब भार्गव गोत्र के निकट पहुँचे तो उनकी आँखें और भी अधिक एकाग्र और भयंकर हो उठीं।

अभी परसों ही अक्षय-तृतीया गई है—उनकी जन्मतिथि थी वह। उस दिन सरस्वती में ज्वार आया था। उसके परिणामस्वरूप तट से जाने कितनी दूर-दूर तक पानी व्याप गया था। अब पानी उतर गया था। पर बड़ी दूर तक काला चिकना दलदल जम गया था। उसमें होकर कोई मनुष्य या ढोर नदी के पास नहीं जा सकता था।

निस्सरकों का सारा समूह उस दलदल के सामने, भूखा-प्यासा पड़ा हुआ कीचड़ सूखने की राह देख रहा था। पहले जो गाड़ियाँ कीचड़ में चली गईं थीं वे छटपटाते बैलों के साथ दलदल में धँस गईं थीं।

दो दिन की जो छूट बीच में मिली थी, उसमें सारा समूह एक प्राणांतक त्वरा से भागकर यहाँ चला आया था। सो उसके बदले में दो दिन यहाँ आकर पड़े रहना पड़ा।

सरस्वती सामने ही थी, पर उसे पाया नहीं जा सकता था। पल-पल रुरु का सैन्य पास आता जा रहा था। दैव ही मानो उनके विरुद्ध हो गए थे। प्रत्येक के मुख पर मृत्यु की छाया व्याप रही थी।

मृत्यु के त्रास से भयभीत होकर भागने वाले यादव और भृगु

अपनी स्त्रियों, बालकों और ढोरों को साथ लेकर, जो घर छोड़कर निकल भागे थे सो केवल निर्भय होने के विचार से। उन्होंने अनेक प्रकार की विपत्तियां झेली थीं। अब मृत्यु का भय नहीं रह गया था। मृत्यु स्वयम् मुँह खोलकर आगे आ गई थी।

जब मही के तट से वे चले थे, तो तीस सहस्र निस्सरकों का समूह लेकर चले थे। उस बात को अब पांच महीने हो गए थे। आज उनमें से अधिकांश नष्ट हो चुके थे। पच्चीस सहस्र मानवों, पन्द्रह सहस्र ढोरों और घोड़ों की हड्डियों से उनका निस्सरण मार्ग पट गया था।

पुरुष, स्त्रियाँ और बालक धूप, शीत, भूख और अनेक रोगों से मर चुके थे। सहस्रों मानव रणक्षेत्र में खेत रहे थे। केवल अशक्ति के कारण भी सैकड़ों जन राह में गिरकर मर गए थे। पर केवल रुरु के क्रोध से भाग छूटने की आशा उन्हें खींच लिये जा रही थी।

अब आगे भागना सम्भव नहीं था कोई पाव योजन का दलदल उनकी स्वतन्त्रता के बीच आकर बाधा रूप हो पड़ा था। उसमें कीचड़ कितना था, यह कहना सम्भव नहीं है। सरस्वती के उस तीर पर कीचड़ से बाहर सौ अश्वारोही खड़े हुए थे। वहाँ से धुँआ उठ रहा था। खाद्य-सामग्री लेकर विमद्र वहाँ मोक्षबिन्दु के समान प्रस्तुत था। पर निस्सरकों का आगे बढ़ सकना सम्भव नहीं था। और न पीछे ही लौट सकना सम्भव था। मोक्ष सामने ही खड़ा था, पर उसे पाया नहीं जा सकता था। निःसहाय, निरुपाय और हताश यहाँ बैठे रहकर रुरु के हाथों मारे जाने के अतिरिक्त उनके लिए और कोई मार्ग नहीं था। उन की निराशा अब पराकाष्ठा एर पहुँच गई थी। जिनके दर्शन मात्र से उन में चैतन्य जाग उठता था वे गुरुदेव या तो बन्दी हो चुके थे, या फिर उनका संहार हो चुका था। जन-जन में उनके भव्य आत्म-समर्पण की चर्चा चल रही थी। अब उनका अंत आ गया है, निस्सरकों में अब जीने की साध जैसे नहीं रह गई थी।

आशा अब नष्ट हो चुकी थी। यमराज मानो उनकी प्रतीक्षा में

खड़े थे। घोड़े की पद-चाप जब सुनाई पड़ी तो उस ओर ध्यान देने की चेष्टा भी किसी ने नहीं की। काला घोड़ा क्षितिज पर दिखाई पड़ा। सूर्य की किरणों में परशु चमक उठा। मरता हुआ मनुष्य जैसे ब्रह्म-दर्शन पाकर उल्लास अनुभव करता है, ठीक वैसे ही मरणोन्मुख निस्सरकों का समूह अपने प्राणतुल्य गुरुदेव को देखकर उल्लसित हो उठा। उनका संहार अभी नहीं हुआ था। जैसे थे, वैसे ही वे चले आ रहे थे। सभी निस्तेज, बावली आँखें श्रद्धा और भक्ति से ओत-प्रोत हो उठीं।

भार्गव ने आकर पूछा—"यहाँ क्यों बैठे हो?"

भद्रश्रेण्य ने कपाल पीट लिया—"यहाँ पड़े-पड़े दो दिन बीत गए हैं। मनुष्य सिर तक धँस जाय इतनी गहरी दलदल सामने है।"

भार्गव ने दलदल में फँसी पड़ी गाड़ियों और छटपटाते बैलों की ओर देखा।

"सूर्य अब तपने लगा है। सांझ तक या कल तक यह कीचड़ सूख जायगा," भद्रश्रेण्य ने कहा।

"आज सांझ को या फिर कल तक रुरु आ पहुँचेगा," भार्गव ने कहा।

सबके हृदय की धड़कन मानो एकदम रुक गई। भार्गव के नेत्रों की अग्नि के अतिरिक्त वे और कुछ भी नहीं देख पा रहे थे।

बिना एक शब्द कहे भार्गव ने एक गाड़ी की ओर देखा और बैलों की नाथ हाथ में लेकर उन्हें कीचड़ में हांक दिया। कोई कुछ कहने का साहस न कर सका।

वे बैलों को लकड़ी और चाबुक से मार रहे थे। कुछ ही आगे बढ़ कर बैल दलदल में डूबने लगे। गाड़ी और बैल धीरे-धीरे कीचड़ में धँस गए। बैलों का त्रास आँखों से देखा नहीं जाता था।

भार्गव गाड़ी पर से एक लम्बी अघोरी छलांग भरकर फिर किनारे पर आ गए। ज्यों-त्यों करके एक तीसरी गाड़ी और

उन्होंने दो गाड़ियों के बीच हांक दी। यह गाड़ी भी बैलों सहित दलदल में धँसने लगी।

दलदल चार हाथ से अधिक गहरा नहीं था। धँसती गाड़ी पर गाड़ी चढ़ाकर उसे आगे ढकेलने का भगीरथ प्रयत्न आरम्भ हो गया। दो-दो गाड़ियों को एक साथ रखकर धँसाया जाने लगा कि उनके ऊपर होकर तीसरी गाड़ी को निकाला जा सके। मध्याह्न का सूर्य तप रहा था। नीचे का दलदल अब सूखता चला। दो दिन और दो रात गाड़ियाँ ढकेली गईं। जहाँ आवश्यकता पड़ी, बैलों की बलि भी दी गई। इस परिश्रम में कितने ही मनुष्य मर मिटे।

तीसरे दिन सवेरा होते-होते केवल एक हाथ-भर दलदल रह गया था। जहाँ-जहाँ गाड़ियाँ और बैल धँसाये गए थे, वहाँ अब एक पुल बन गया था। हर्ष के नाद से लोगों ने ऊषा का स्वागत किया। उन धँसी हुई गाड़ियों और मरते-अकुलाते बैलों के भयंकर पुल पर से, निस्सरकों का पूरा समूह, सरस्वती के तट पर पहुँचने के लिए दौड़ता हुआ निकल पड़ा। पानी की प्यास से पागल हो रहे वृद्ध, स्त्रियाँ और बालक सरस्वती का जल पीने के लिए अधीर हो उठे। सबसे पीछे योद्धागण घोड़ों पर बैठकर प्रस्तुत हो रहे। रुरु कब आ पहुँचेगा, सो कुछ ठीक नहीं था।

मध्याह्न हो आया। दलदल सूखने लगा। जैसे-तैसे शीघ्रतापूर्वक लोग पुल पर से पार हो गए। उनके पीछे घोड़ों और सैनिकों ने पुल को पार किया। और सबसे अन्त में आये भार्गव और अन्य अग्रणी नेतागण।

सबके मन में उल्लास था। सरस्वती क्या मिली, मानो माँ ही मिल गई। मीठा पानी, मछलियाँ, सुभग स्नान, और उस तीर पर अभय मुक्ति। कई दिनों से बहुतों ने तो जी-भर पानी भी नहीं पिया था। घोड़ों को तो शायद ही कुछ पीने को मिला होगा। दिन का ताप प्रखर होता जा रहा था। दलदल में से होकर आ रहे समूह का

संयम जाता रहा। बिना विचारे ही सारे मनुष्य और जानवर सरस्वती के जल में आ पड़े। भार्गव तथा अन्य अग्रणीजन किसी को रोक न सके। इस पागलपन से बचकर वे पास ही वृक्षों के एक झुरमुट में चले गए। भगवती और विशाखा वहाँ पहले ही से चले गए थे; वहाँ बैठकर सब लोग पानी पीने लगे। दलदल के उस पार रुरु और श्यामघ की सेना दौड़ते हुए घोड़ों पर आ पहुँची। पल-भर के लिए दलदल के तीर पर रुके। दलदल केवल आधा हाथ गहरा रह गया था।

नाशोन्मत्त, भूखा और प्यासा रुरु का दल भी नदी की ओर टूट पड़ा।

जिस दलदल को लांघने में निस्सरकों को दिन युगों की भांति बिताने पड़े थे, उसे रुरु देखते-देखते लांघ गया।

उसके मनुष्यों और घोड़ों ने भी कई दिनों से पानी का मुंह नहीं देखा था, अतएव उसका सैन्य भी निस्सरकों के बीच पानी में आ धमका। दोनों समूह एक-दूसरे में घुल-मिल गए। इस क्षण पानी पीने के अतिरिक्त और कोई वृत्ति उन लोगों में नहीं थी।

पर रुरु की प्यास शांत होते ही उनकी वैर-वह्नि प्रज्वलित हो उठी। शार्यातों ने यादवों को देखा। जहाँ पानी पीने भर के लिए एकता थी, वहाँ विद्वेष का दावानल सुलग उठा।

जो खड्ग निकाल सके उन्होंने खड्ग निकाले, और जो ऐसा न कर सके वे हाथों-हाथ एक-दूसरे को मारने-डुबाने लगे।

धड़ाधड़ सिर कट-कट कर गिरने लगे। चीत्कारों से गगन गूंज उठा। पुण्यस्मरण सरस्वती माता का तट, वैर से उफनती भयानक अंजुलि के समान उबल उठा।

पुरुष, स्त्रियाँ, बालक, ढोर तथा घोड़े कट-कटकर उस उबाल में बुदबुदा रहे थे। कटे हुए विकृत मुण्ड रक्त से झरते हुए ऊपर-नीचे हो रहे थे। मृत्यु का भय सबके मुख पर छाया हुआ था। प्रतिशोध लेने का उन्माद सबकी आँखों में झूम रहा था।

भार्गव, भद्रश्रेण्य, प्रतीप आदि जिन लोगों ने संयम रखा था, वे इस जल-मंथन को देखकर अवाक् हो गए।

कौन मरता है और कौन जीता है, यह प्रश्न नहीं था। कोई किसी को रोकने में समर्थ नहीं था।

भार्गव उठकर नदी के तीर पर आये। उनकी आँखों में अगाध खिन्नता का भाव था। कन्धे पर से उन्होंने धनुष खींचा। एक, दो, तीन, इस प्रकार तीन तीर उन्होंने छोड़े, और रुरु के आस-पास लड़ रहे हैहयों के उस छोटे-से समूह में से तीन व्यक्ति घायल होकर गिर पड़े।

रुरु घबड़ाया-सा चारों ओर देखने लगा कि यह शर-वृष्टि कहाँ से हो रही है। चौथा बाण छूटते ही रुरु चीत्कार करके उछला और पानी में जा गिरा। भद्रश्रेण्य, प्रतीप, कूर्मा, उज्जयन्त आदि अग्रगण्यों के बाणों की वृष्टि होने लगी। भार्गव ने शंख फूंक दिया।

सामने के तीर पर विमद भृगुओं के साथ आ पहुँचा था। उसने शंखनाद का प्रत्युत्तर दिया।

उस तीर से छूटकर आती हुई नावें झपटती हुई इस ओर आने लगीं।

भार्गव और उनके साथी घोड़ों पर सवार हो पानी में उतर गए। घबड़ाये हुए हैहय और शार्यात तितर-बितर हो गए। उनमें से कुछ तो तैरकर उस पार जाने लगे। यादव और भृगु उन्हें डुबाने की चेष्टा में बराबर संलग्न रहे।

एक व्यक्ति तैरता हुआ भार्गव के घोड़े के पास आ पहुंचा। उसकी आँखें दीन भाव से गुरुदेव की ओर लगी हुई थीं।

"गुरुदेव! रुरु के लिए आपको बाण मिल गया, पर मेरे लिए नहीं मिल सका? मुझे अपनी मांगी हुई भीख भी आपने नहीं दी।"

"वत्स!" भार्गव ने कहा—"मैं तुझे उबारना चाहता हूँ।"

"उबरने की अधमता मुझे नहीं चाहिए," कहकर ज्यामघ ने ममता-

पूर्वक, आँखों-ही-आँखों में गुरुदेव को उलहना दिया। और वह पानी में डुबकी मार गया।

पानी पर बबूले दिखाई पड़े। कुछ दूर तक, एक बार, दो बार, तीन बार वह सिर ऊपर आता-सा दिखाई पड़ा।

ज्यामघ पर होकर बहता हुआ पानी निकल गया।

: ८ :

दो भृगुश्रेष्ठों की मुद्रा पर खेद छाया हुआ था। भार्गव की ओर दृष्टि उठाकर देखने का साहस उनमें नहीं था। आचार्य विमद अस्वस्थ थे। उनकी आँखों में आँसू उभर रहे थे।

भार्गव ने पूछा—"क्यों, क्या संवाद है?"

भृगुश्रेष्ठ कुछ बोल न सके। विमद ने खंकारकर कंठ का परिष्कार किया, और कुछ स्वस्थ होकर बोले—

"गुरुदेव! अधिकतर लोग दाशराज्ञ में लड़ने चले गए हैं।"

"और वृद्ध कैसे हैं?"

विमद की आँखों से आँसू टपकने लगे—"दो महीने हो गए, पिताजी पितृलोकवासी हुए—वे रणक्षेत्र में मारे गए।"

क्षण-भर नीची दृष्टि किये भार्गव ने माता, अपने सखा और परम गुरुस्वरूप, शस्त्र-विद्या के उस महानिष्णात को अपनी अंजलि अर्पित की।

"और सब कैसे हैं?"

फिर सब मौन हो रहे। भार्गव की दृष्टि स्थिर हो गई।

"गुरु विदन्वंत युद्ध में जाने के लिए प्रस्तुत हो रहे हैं। आपके अन्य दो भाई भी पितृलोकवासी हो गए।"

"श्रेष्ठो! पिताजी कैसे हैं?"

वृद्ध भृगुओं ने दृष्टि नीची कर ली। विमद और भी खिन्न हो आए। भार्गव ने पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

विमद ने हाथ जोड़ लिये।

"कह दे, क्या बात है ?"

"गुरुदेव ! भृगुश्रेष्ठ अकेले रह गए हैं। सरस्वती के तीर पर भटकते रहते हैं। वे किसी से बोलते नहीं हैं। अस्थि-पिंजर-मात्र धारण किये वे घूमते रहते हैं।"

"कारण ?" भार्गव के प्रौढ़ स्वर में कंप आ गया था। लज्जित होकर, अधमता का अनुभव करता हुआ विमद धरती ताकने लगा। वे वृद्ध भार्गव तो दृष्टि उठाकर देख ही नहीं पाते थे।

"और अम्बा ?" वे मानो चिल्लाकर पूछ उठे।

विमद रो पड़ा। तीनों भार्गव आँसू पोंछने लगे।

"अम्बा कहाँ है, बताओ न ?"

विमद सिसकने लगा। उस कठोर हृदय वीर के मुँह से एक शब्द भी न निकल सका।

"बोलो !"

सिसकियों के बीच विमद का रुंधता-सा स्वर सुनाई पड़ा।

"आश्रम छोड़ कर...... वे गांधर्वराज के यहाँ चली गई हैं।"

भार्गव में भयानक परिवर्तन हो गया। उनकी आँखों से अग्नि की सरिताएँ बहने लगीं। इतना ही नहीं प्रत्युत उनके सदा शांत रहने वाले कपाल पर कुछ ऐसा भ्रूभंग हुआ, मानो धनुष खींच रहे हों। वे खड़े हो गए। क्षण-भर वे मौन रहे। पृथ्वी मानो काँपती-सी प्रतीत हुई। उन्होंने हाथ के परशु को दृढ़तापूर्वक जकड़ा और छलांग मारकर वे बाहर निकल आये। व्यवस्था में व्यस्त हो रहीं भगवती से उन्होंने कहा—"मैं जाता हूँ। तू सबको आश्रम पर ले आना।"

सबके आश्चर्य का समाधान हो, इसके पहले ही भार्गव घोड़े पर बैठकर अदृश्य हो गए।

दो

आर्यावर्त

: १ :

एक प्रचण्ड घोड़ा प्रचण्ड गर्जना करता हुआ, भृगुओं के आश्रम में प्रविष्ट हुआ। उस पर उग्र, उज्ज्वलंत भार्गव त्रिलोचन खोलकर आ रहे शंकर के समान आरूढ़ थे।

भृगुश्रेष्ठ का आश्रम निर्जन और निस्तेज हो गया था। एक स्थल पर कुछ स्त्रियां काम कर रही थीं; उन्होंने खिन्न वदन से दृष्टि उठाकर देखा। बालक घबड़ाए-से अपनी झोंपड़ियों के द्वार पर खड़े हो, इस आँधी की भाँति आ रहे घोड़े को देख रहे थे। कहीं कोई वृद्ध उत्साह-विहीन धीमे स्वर से यज्ञ कर रहा था। किसी आगामी विनाश की प्रतीक्षा करता-सा आश्रम सूना पड़ा था।

भार्गव अपने पिता भृगुश्रेष्ठ की झोंपड़ी पर गये। वहाँ एक स्त्री झाड़ दे रही थी। वह चौंककर खड़ी रह गई। मानो किसी भयंकर स्वप्न में देखे-से इस पुरुष को देखकर वह स्तब्ध रह गई। भार्गव घोड़े पर से उतर पड़े।

"भृगुश्रेष्ठ कहाँ हैं? पिताजी कहाँ हैं?"

स्त्री रो पड़ी। छलांग भरकर वे उसके पास जा पहुँचे और उसे झकझोरकर पूछा— "पिताजी कहाँ हैं?"

"कौन, राम?" स्त्री ने उसे कुछ-कुछ पहचान लिया।

"पिताजी कहाँ हैं?"

"उस ओर नदी पर," आँचल के छोर से आँसू पोंछती हुई वह बोली। छलांगें भरते हुए भार्गव नदी के तट पर पहुँच गए। आश्रम की सीमा समाप्त होकर जहाँ से बन का आरम्भ होता था, वहाँ पहुँचते

ही उन्होंने एक मनुष्य को आते देखा, और वे वहीं ठिठक गए।

एक वृद्ध उनकी ओर आ रहा था। उसके शरीर की हड्डियां गिनी जा सकती थीं। उसके मुख पर की चमड़ी लटक आई थी, और हड्डियों का ढांचा उसमें से झांक रहा था। कपाल ऊपर को निकल आया था। धँसी हुई आँखें गुफा के भीतर से झाँकते दीपक के समान दिखाई पड़ रही थीं। उनकी दाढ़ी पीली और उलझी-उलझी-सी हो रही थी।

वृद्ध नीची दृष्टि किये हाथ में थमे डण्डे के सहारे चले आ रहे थे। भव्य मुख और विशाल काया वाले, सौम्यता और शक्ति के अवतार महर्षि जमदग्नि की यह करुणाजनक स्थिति देखकर भार्गव के हृदय ने अननुभूत कम्प का अनुभव किया।

उन्होंने परशु फेंक दिया और दौड़ते हुए जाकर पिता को प्रणाम किया और उनके पैर पकड़ लिये। जन्म लेकर जिनकी आँखें आज तक भय या दुःख से कभी फड़की तक नहीं थीं, वे इस क्षण रो रहे थे।

"पिताजी ! भृगुश्रेष्ठ !"

वृद्ध चलते-चलते रुक गए। उनकी अचेत आँखों में चैतन्य आ गया। उन्होंने मंद और काँपते स्वर में उत्तर दिया—

"जा भाई, चला जा यहाँ से। मैं भृगुश्रेष्ठ नहीं हूँ।"

"पिताजी ! पिताजी !" राम ने हाथ जोड़कर कहा—"यह क्या कह रहे हैं आप ? पिताजी ! मैं आपका पुत्र राम। पिताजी ! मुझे भूल गए ?" और राम का स्वर भी रो रहा था—"मैं राम।"

मानो बड़े परिश्रमपूर्वक किसी वस्तु पर ध्यान खींचा हो, इस प्रकार वृद्ध महर्षि पुत्र के सामने देखते रह गए। अभी भी उनकी दृष्टि में परिचय का भाव नहीं आया था।

धीरे से वृद्ध ने उत्तर दिया—"मैं पिता नहीं हूँ। मेरे कोई पुत्र भी नहीं है। तू कौन है, मैं तुझे नहीं जानता।"

भार्गव ने खड़े होकर हाथ जोड़ लिये—"पिताजी ! मैं हूँ राम—आपका छोटा पुत्र—सहस्रार्जुन जिसे उड़ा ले गया था वही। मुझे आप

नहीं पहचान रहे ?" राम अभी भी अपने आँसू न थाम सके—"महर्षि जमदग्नि ! महाअथवर्ण के पुत्र !"

वृद्ध ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक फिर दूसरी ओर से अपना ध्यान समेट कर एकाग्र किया।

"वत्स !" उन्होंने धीमे से कहा—"एक था जमदग्नि, महाअथवर्ण का पुत्र। वह मर चुका है। न तो वह पितृलोक में ही गया है और न यमलोक में। वह जाकर पड़ा है अधोगति के तल में। भृगुओं के महाप्रताप के उस उत्तराधिकारी ने अपने पूर्वजों की संस्कृति से द्रोह किया था। वह चला गया है, उसे अब भूल जा। उसकी स्मृति तुझे कलंकित करेगी।"

"क्या कह रहे हैं आप ? पिताजी ! पिताजी !"

"भूल जा उसे," मानो सपने में बोल रहे हों, ऐसे जमदग्नि बोले, "उसके पास प्रताप था, अथर्वणों की विद्या थी और शिष्य भी थे। पुत्र भी थे। पर वह उन सबके योग्य नहीं था। आर्यों के पारस्परिक विनाश को वह रोक न सका। विश्वामित्र को वह विजय न दिला सका। भृगुओं के तेज, वीर्य और शुद्धि की वह रक्षा न कर सका।"

"पिताजी ! यह आप क्या कह रहे हैं ? मैं आपका पुत्र वह सब लेकर आया हूँ—शिष्य भी और सामर्थ्य भी। मैं क्षण-मात्र में भृगुओं की कीर्ति को उज्ज्वल करूँगा।"

"मूर्ख ! मूर्ख !" मानो स्वप्न में बोल रहे हों, जमदग्नि बोले—"जमदग्नि कभी माना करता था कि उसके शिष्य हैं और पुत्र भी हैं। वह अपने को महर्षि कहलवाता था। आर्यत्व की सिद्धि के लिए जीने का वह व्रतधारी था। भृगुकुल के कलंक रूप उस अधम को झंझावात देखने का एक स्वभाव-सा हो गया था," उसने धीरे से भार्गव से कहा। वृद्ध कुछ देर चुप रहे और फिर कहते चले—

"वह विद्या की मूर्ति नहीं था। वह अंधा था और मूर्ख था। उसके शिष्यों में न तो विद्या ही थी, और न शौर्य था। न तो वह जीत ही सका

और न संहार को ही अटका सका। उसकी हड्डियाँ आज सियार और···भेड़िये···खा रहे हैं···उसकी शक्ति का ह्रास हो चुका है। रण में मरने का लाभ भी वह नहीं पा सका। उसके कोई पुत्र भी नहीं था।"

"पिताजी! मैं हूँ, गुरु विद्न्वन्त हैं।"

"जमदग्नि के कोई नहीं था।"

"क्या कहते हैं आप?"

"उसके पुत्रों की माता ने अपने पति की आज्ञा के विरुद्ध गान्धर्व-राज के साथ रहकर अपने पत्नीव्रत को लोप दिया है।"

भार्गव का सिर चकराने लगा। अम्बा, उसकी अम्बा, और गांधर्व-राज के साथ चली गई! और वह न तो आर्यत्व को स्वयम् ही रख सका और न दूसरों से रखवा सका!

जमदग्नि का स्वर भंग हो गया।

"पिताजी! पिताजी! झूठ बात है। अम्बा—आर्यत्व की जनेता—कल्याणी!"

जमदग्नि ने दीन मुख से राम की ओर देखा।

"लड़के, चला जा यहां से। मैं पिता नहीं हूँ, और तू पुत्र नहीं है। मेरा एक भी पुत्र ऐसा आर्य नहीं है जो रेणुका का वध करके, पिता के गौरव का सम्मान कर शुद्धि की रक्षा करता···पूर्वजों के बीच जाकर सम्मिलित होने को, जमदग्नि के लिए पितृलोक और देवलोक के द्वार बंद हो गए हैं। लड़के, चला जा यहाँ से, जहाँ से तू आया है वहीं लौट जा। भृगुओं की परम्परा समाप्त हो गई···" और उसे वहीं छोड़कर जमदग्नि, थरथराते हाथों से डण्डा टिकाते हुए हताश और भावनाभ्रष्ट व्यक्ति की दीन मूर्ति के समान वहाँ से चले गये।

थरथराते पैरों से दूर जाते हुए पिता को भार्गव देख रहे थे। महादन्ती के तेज को लजा देने वाली आँखों से अश्रुबिन्दु टपक पड़ा। उन्होंने भूमि पर पड़े हुए परशु को उठा लिया, और दौड़ते हुए आश्रम

में जा पहुँचे। वहाँ अपने ज्येष्ठ भ्राता विदन्वन्त से उनकी भेंट हुई। भाई ने भार्गव को छाती से दबा लिया।

"भाई, अम्बा कहाँ हैं?" भार्गव ने पूछा।

"गांधर्वराज के यहाँ।"

"वहाँ क्यों?"

"तू निश्चिन्त होकर बैठ, अभी सब बताता हूँ।"

"मैं नहीं सुनना चाहता। पर-पुरुष-सेविनी आर्या का धर्म है केवल मृत्यु।"

"पर—"

भार्गव ने बड़े भाई से हाथ छुड़ा लिया और वहाँ से चल पड़े।

: २ :

दूर पर हिमालय का शृंग उदय होते सूर्य के स्वर्ण-राग से झलमला रहा था। बीच में उतरते-चढ़ते अनेक शिखर नितान्त चौरस भूमि तक आ लगे थे। जहाँ सबसे छोटी पहाड़ी का अन्त होता था, वहीं एक छोटा-सा ग्राम था। वहाँ से कुछ ही दूर एक वृक्ष के तले भार्गव अकेले बैठे थे। पास ही उनका घोड़ा चर रहा था।

कोई तीन सौ बनवासी तीर लेकर पास ही खड़े थे। यह प्रचण्ड और सशस्त्र मानव उन्हें अच्छा नहीं लग रहा था, पर उसके यह कहने पर कि वह अम्बा का पुत्र है, उन्होंने उसे आने दिया था, अन्यथा वे तो उसे बींध देने को प्रस्तुत ही खड़े थे। वे सब अम्बा के भक्त थे। जिस प्रकार महर्षि विश्वामित्र वरुणदेव के सम्बन्ध में कहा करते थे, वैसे ही पूज्य-भाव से ये बनवासी पुरुष अम्बा के सम्बन्ध में बातचीत किया करते थे।

मुखिया की झोंपड़ी के पास ही अम्बा की झोंपड़ी थी। तीसरे पहर वे वहाँ आया करती थीं। सवेरे के समय वे पर्वत के प्रदेश में गांधर्व-राज के यहाँ जाया करती थीं। वहाँ उनके साथ दूसरा कोई नहीं जाता था। अम्बा की यही आज्ञा थी।

तीसरे पहर जब वे पर्वत पर से उतर कर आतीं, तो दूर-दूर से बनवासीगण उनकी पूजा करने आया करते। अम्बा उन सबको खिलातीं-पिलातीं; अम्बा के आशीर्वाद से ही धान्य पका करता; अम्बा की मनौती लेने पर सन्तान की प्राप्ति होती; अम्बा की झोंपड़ी के सामने के झाड़ की नित्य पूजा हुआ करती। भार्गव इस भक्ति को देखकर चकित हो रहे। उनकी तो धारणा थी कि अम्बा गान्धर्वराज के महल में कहीं भोग-विलास में मग्न होंगी। वही है यह लोगों की अम्बा, कल्याणी, वह पर-पुरुष-सेविनी!

भार्गव की आँखों की गहराई और भी गम्भीर हो उठी। अधर्म के उच्छेद की दिशा में उन्होंने जो-जो विकट अनुभव किये थे, उनमें यह सबसे विकट था। पर-पुरुष का सेवन करने वाली आर्या के लिए तो मृत्यु के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था—फिर वह कल्याणी हो कि अम्बा हो।

तीसरे पहर भार्गव ने अपनी माँ को टेकरी पर से उतरकर नीचे की ओर आते देखा। क्षण-भर के लिए उनके हृदय में एक ज्वार-सा आया। उनकी माँ, प्रेममयी, भोली, पतिपरायणाओं के बीच श्रेष्ठ, सबके दुख में दुखी होने वाली कल्याणी, जो पुत्रों में केवल उन्हें ही अपना मानती थी!

भार्गव ने देखा कि इन बीच के वर्षों में रेणुका में भारी परिवर्तन हो गया है। उनके केश श्वेत हो गए थे। उनका सुडौल शरीर पहले से अधिक स्निग्ध हो गया था। उनके मुख से जगज्जनी का सद्भाव बरस रहा था। पर उनके मुख पर, शरीर पर और चाल में एक अनिवार्य खिन्नता का भाव था। वे ऐसी लग रही थीं मानो किसी रोते हुए व्यक्ति के आँसुओं को ढालकर जैसे गढ़ा गया है। 'यह अम्बा, और कुलटा? पर-पुरुष-स्पर्शिनी? गांधर्व के साथ भागी हुई पतिता आर्या?' भार्गव विश्वास न कर सके।

रेणुका वहाँ आकर अपरिचित नयनों से उस प्रचण्ड और तेजस्वी

पुरुष को देखती रह गईं। फिर तुरन्त ही उन्होंने पहचाना।

उनकी आँखें हँस उठीं। उनके मुख पर लाली छा गई। उतावले पैरों के पास चली आईं—"राम पुत्रक!"

राम खड़े हो गए—कठोर और क्रूर।

रेणुका समझ गई और सकुचाई-सी खड़ी रह गई। उसका मुख किसी मूर्छित मनुष्य की भाँति निस्तेज हो गया।

"पिताजी ने मुझे भेजा है," राम के स्वर में रंच-मात्र भी भावना नहीं थी। रेणुका पीछे हट गई।

"जिस प्रकार तेरे बड़े भाइयों को उन्होंने मुझे मारने के लिए भेजा था, वैसे ही क्या तुझे भी भेजा है?" बरसों के दबे हुए खेद के स्वर में उसने पूछा।

"उन्होंने मुझसे मारने के लिए नहीं कहा है। मैं स्वयम् ही मारने आया हूँ। भृगुश्रेष्ठ की पत्नी यदि उनकी आज्ञा का उल्लंघन करती है और पर-पुरुष का सेवन करती है, तो वह धरती के लिए भार-रूप है।"

"मैं जानती हूँ। अनेक आर्यों और आर्याओं को मैंने यही शिक्षा दी है," रेणुका ने दुखित स्वर में कहा।

"तो फिर यहाँ क्यों आकर घुस बैठी है?"

"भृगुश्रेष्ठ बड़े हैं, विद्या और तप के स्वामी हैं। यह सच है कि मुझसे धर्म का लोप हुआ है। पर किस कारण मैंने धर्म का लोप किया है, यह जानने की चिन्ता उन्हें नहीं है। तू मेरा लाड़ला बेटा है, पर तू भी उस ओर ध्यान देना नहीं चाहता। मरने का भय तो मुझे रंच-मात्र भी नहीं है। पति की आज्ञा लोपने का अधर्म जिस दिन मुझसे हुआ, अपने लेखे तो मैं उसी दिन मर चुकी हूँ। मैं तो कभी से यमराज की प्रतीक्षा किये बैठी हूँ। सैकड़ों के लिए यमराज इस बीच आ गए होंगे, पर मुझ पर वे अभी तक भी प्रसन्न नहीं हो सके हैं। तू यमराज का रूप धरकर आया है। आ प्रिय पुत्रक, मुझे मार। जान-बूझकर जिस पाप में मैं पड़ी हूँ, उससे मुझे मुक्त कर।"

इन हृदय-वेधक शब्दों को सुनकर भार्गव चकित हो गए।

"तो आश्रम को लौट चलो।"

"नहीं," खिन्न पर दृढ़ स्वर में रेणुका ने कहा—"पुत्रक, भृगुलोग सुखी हैं, समृद्ध हैं। उनकी सुख-समृद्धि में भाग लेने योग्य मैं नहीं हूँ। उनके बीच आ रहूँगी तो मेरा अधर्म उनके आर्यत्व को भ्रष्ट कर देगा। पर यहां मैं कल्याणी हूँ। यमराज जब तक आकर नहीं ले जाते हैं, तब तक मुझे तो यहीं रहना है।"

"अम्बा! अम्बा! तुम्हारा स्थान यहाँ है?" भार्गव के मुख से आक्रन्दन फूट पड़ा।

"हां," त्यागमूर्ति की भांति रेणुका ने कहा—"इसीसे कह रही हूँ कि मार, बेटा, मार! तेरे बाप ने अपने तीन पुत्रों को मुझे मारने भेजा, पर वे साहस न कर सके। तू तो मेरा लाड़ला बेटा है। बेटा, देवों से अधिक पूज्य अपने पति की आज्ञा का जो लोप मैंने किया है, उसका दण्ड मैं झेलना चाहती हूँ। मुझे मुक्ति प्रदान कर, मुझे मार।"

क्रूर, घातक स्वर में, पर रोती हुई आँखों से राम ने कहा—"अम्बा! अम्बा! इस सबका भान यदि तुम्हें था तो फिर पूर्वजों को कलंकित किसलिए किया? पिता का तेज क्यों नष्ट किया? किसलिए भृगुकुल का सर्वनाश किया?"

"राम, मैंने तीस वर्ष तक तेरे बाप की और तेरे कुल की अनिमेष सेवा की है; तुझे और तेरे भाइयों को कुल के दीपक बनाने के लिए अपने सर्वस्व का दान किया है। पितृलोक में मेरे लिए स्थान नहीं है। यम के भयंकर कुत्ते मुझे इस लोक में नहीं जाने देंगे, मैं जानती हूँ, मैं सब जानती हूँ। मुझे मार—मैंने तुझे बहुत लाड़-दुलारों में पाला है, बेटा! तू अपनी जनेता की एक इच्छा पूरी कर दे।"

"अम्बा!" भार्गव ने कहा—"तू तो भृगुकुल के महर्षि की कुल-पत्नी है। तूने धर्म का लोप किया है। जब तक तेरा शिरच्छेद नहीं होता, पितृ-ऋण नहीं चुकाया जा सकता।"

"मैं जानती हूँ कि मैं कुल-कलंकिनी हूँ—पति की आज्ञा लोपने का अधर्म मैंने, महर्षि जमदग्नि की अर्धाङ्गिनी ने, किया है।" बहुत दिनों की हृदय-वेदना को रेणुका ने मुक्त कण्ठ से व्यक्त कर दिया—"पर वह अधर्म मैंने किसी मद या अज्ञान के वशीभूत होकर नहीं किया है। मैं वृद्ध हूँ। सदा से तेरे पिता के चरणों में रही हूँ। मैंने स्वयम् पति-परायणता का पालन किया है, औरों को उसकी शिक्षा दी है, और उसका पालन भी करवाया है। मैंने धर्म का लोप किया, एक दूसरे धर्म का पालन करने के लिए; पर वह तो मेरा ही दोष है। मेरे धर्म-लोप के लिए मेरा शिरच्छेद ही किया जाना चाहिए।" रेणुका ने हाथ जोड़ लिये—"बस, अब मुझे तू मार।" अम्बा ने गर्दन झुका दी, "बेटा, मैं प्रस्तुत हूं।"

भार्गव ने परशु उठाया।

"अम्बा! मृत्यु को छोड़ और कोई मार्ग तेरे लिए नहीं है। पर मेरे मारने से पहले तू एक बात मुझसे कह दे—सत्य—अपने पूर्वजों की शपथ लेकर।"

"कौनसी बात, बेटा?"

"ऐसा कौनसा धर्म तुझे दिखाई पड़ा कि तू—अंबा—कल्याणी—चलित हो गई?"

"बेटा, तो पल-भर के लिए विलम्ब कर। चल मेरे साथ गंधर्वों के ग्राम में।"

"वहाँ?"

"हाँ! यह जो पहाड़ी दीख रही है, इसीके पीछे, जहां गांधर्वराज के साथ मैं भागकर आई हूँ और पर-पुरुष का सेवन कर रही हूँ।"

: ३ :

भार्गव ने परशु भूमि पर टिका दिया और चुपचाप रेणुका के पीछे-पीछे चलने लगे। उस टेकरी पर, जहां अम्बा की दूसरी झोंपड़ी थी, उसे पार कर, पर्वत पर होकर एक छोटी-सी पगडण्डी से वे दोनों

जा रहे थे। जब अगली पहाड़ी की चोटी को लांघकर वे दोनों आगे बढ़े तो नीचे भग्न दशा में बिखरे पत्थरों के घर और कुछ झोंपड़ियों का एक उजड़ा-सा ग्राम दिखाई पड़ा। आगे-आगे रेणुका और पीछे-पीछे भार्गव एक पगडण्डी से चलते हुए नीचे उतर आए। गांव में प्रवेश करते ही, रक्त-पित्त से पीड़ित तीन मनुष्य, जो वहाँ बैठे थे, रेणुका को देखकर पागल-से हो गए।

"अम्बा! अम्बा!" उन्होंने भक्ति से विह्वल होकर आक्रन्दन किया।

"बेटा, आती हूँ, मैं अभी आई।"

"अम्बा!" पास ही एक ओर से एक रक्त-पित्त से भयंकर-सी हो गई लड़की दौड़ी आई। वह कोई पांच-छः वर्ष की थी। ममता से भरकर वह रेणुका से चिपट पड़ी—"अम्बा! अम्बा!"

"हाँ बेटा, तू जाकर सो जा। मैं अभी आती हूँ। ले यह पानी।" रेणुका ने पास ही पड़े हुए एक मटके में से लेकर उसे पानी पिला दिया।

"अम्बा! मेरे लिए बेर ला दोगी?"

"हाँ, बेटा! कल सवेरे।"

एक निर्जन गली में होकर माँ-बेटा आगे बढ़ चले। मार्ग में, चबूतरों पर, रक्त-पित्त के रोगी अनेक विचित्र अवस्थाओं में पड़े हुए दीखे। रेणुका को देखते ही उनके मुख सुख और आशा से प्रफुल्लित हो उठते। वे ममता से भरकर, "अम्बा" "अम्बा" पुकार उठते।

एक बड़े-से पत्थर के बने घर के निकट पहुँचकर रेणुका उसमें प्रवेश कर गई। वहां भी पाँच-छः रक्त-पित्त के रोगियों को आश्वासन देकर वह भीतर के भाग में चली गई।

चारपाई पर एक ऐसा व्यक्ति पड़ा हुआ था, जिसके हाथ-पैर खिर गए थे। उसके टूटे हुए हाथ-पैरों से पीप बह रहा था।

रेणुका को देख वह हर्षके आवेश से भर आया—"अम्बा! अम्बा! आज फिर तुम आ गईं। आज दोपहर को तुम्हें मैंने सपने में

देखा था और सोचा था कि तुम फिर आओगी। अम्बा! अम्बा!" उसने अपने दोनों ठुण्डे हाथों को जोड़कर कहा।

"गान्धर्वराज! यह मेरा पुत्र मुझसे मिलने आया था, इसे आप से मिलाने ले आई हूँ।"

भार्गव का सदा का दुर्धर्ष हृदय भर आया। उन्होंने परशु फेंक दिया, और दोनों हाथों से अपनी आँखें ढाँप लीं। "अम्बा! कल्याणी! क्षमा करो, क्षमा करो।"

"मेरे पुत्रक, सुन," रेणुका ने उसे छाती से चांप लिया—"आज से डेढ़ वर्ष पहले मैं पिता के घर से लौटकर आ रही थी, तभी गान्धर्वराज अपने आदमियों के साथ मुझे मार्ग में मिल गए। विदन्वन्त मेरे साथ था। गान्धर्वग्राम में तब उत्सव चल रहा था, अतएव दो दिन के लिए हम वहाँ चले गये। मार्ग में तू जहाँ मुझे मिला, वहीं हम लोगों ने विश्राम किया था कि तीसरे ही दिन तुग्रा का कोप हुआ और यह रोग फट पड़ा और कुछ लोग रक्त-पित्त से पीड़ित होने लगे।"

"अम्बा! अम्बा!" गान्धर्वराज ने अपने टूटे हाथ से आँसू पोंछ लिये।

"अपने साथ के जनों को मैंने आज्ञा दी कि वे रोगियों को उनकी नगरी ले चलें। उन सब लोगों ने ऐसा करना स्वीकार न किया। एकाएक रोग फट पड़ने से सवेरे ही साथ के प्रायः सभी लोग भाग गए। विदन्वन्त को मैंने जाने की आज्ञा दे दी, पर इन सबको मैं मार्ग में भटकते हुए न छोड़ सकी। बनवासियों के कंधों पर इन लोगों को उठवाकर मैं यहाँ लिवा लाई।"

"फिर?"

"अम्बा! अम्बा!" आनन्द के आवेश से भरकर गान्धर्वराज ने अम्बा को सम्बोधन किया।

"उठाकर लाने वाले कुछ बनवासी भी इस रोग के ग्रास हो गए; और इस प्रकार रोग का आक्रमण होते देख यहाँ के भी बहुत-से

गन्धर्व, अपने प्राण लेकर भाग गए और मैं अकेली ही रह गई। इन्हें पानी पिलाने वाला भी यहाँ कोई नहीं था। मुझे ये सब लोग देवी के समान मानने लगे। इन लोगों के हृदयों में कुछ ऐसी श्रद्धा जाग उठी मानो मेरे आशीर्वाद से ही ये अच्छे हो जायंगे।"

रेणुका कुछ देर चुप हो रही सद्भावपूर्वक उसने गांधर्वराज की ओर देखा और वह लौट पड़ी। मार्ग में चलते हुए उसने अपनी बात को आगे बढ़ाया—

"तेरे पिता उग्र हो उठे। मैंने यहाँ की सारी वस्तु-स्थिति भी उन्हें जताई, पर उन्हें सन्तोष न हो सका। मैं गांधर्वराज के यहाँ रहती हूँ, इस बात को लेकर समूचे आर्यावर्त में पुण्य-प्रकोप व्याप गया। अपमानित भृगुओं को भी विष के घूंट पीने पड़े। भृगुओं की कीर्ति पर कलंक लग गया। निदान महर्षि ने आज्ञा दी कि मुझे लौट आना चाहिए। पर मैं यहाँ से कैसे जा सकती थी? तेरे पिता के पास सब-कुछ है। इनके पास मुझे छोड़कर और कोई नहीं है। मैं किंचित् जाने का विचार करती हूं कि ये सब आक्रन्द कर उठते हैं।"

"सब गन्धर्व मिलाकर, ये लोग अस्सी थे। उनमें आज केवल तीस रह गए हैं। गांधर्वराज ने मुझसे वचन ले लिया है कि मैं यहाँ से न जाऊँगी। मैंने लौट आना स्वीकार न किया। मैं पागल नहीं थी। मैं पति की आज्ञा लोप रही थी; मैं पराये घर वास कर रही थी; पर-पुरुष की सेवा भी मैं कर रही थी। यों मैं पति का त्याग भी कर रही थी। पवित्र और उन्नत भृगुकुल के लिए मैं कलंक-स्वरूप हो गई। मेरा शिरच्छेद ही मेरे लिए योग्य दण्ड हो सकता है, इस बात को भी मैंने आनन्दपूर्वक स्वीकार कर लिया। पर इन दुखियों को मैं न छोड़ सकी। वहाँ तो तेरे पिता और तुम सब लोग कुल, पूर्वज, गोत्र, संस्कार, देवों और स्वर्गों के आधार पर आनन्द में मग्न रहते हो। पर इन सबकी आशा का आधार तो एक-मात्र मैं अकेली ही थी। मैं इन्हें कैसे छोड़ सकती थी?"

लज्जित होकर भार्गव ने आँखें नीची कर लीं।

"एक-एक करके तेरे भाइयों को महर्षि ने मुझे मारने के लिए भेजा। जो मैंने तुझसे कहा है, वही मैंने उनसे भी कहा। जो तूने देखा है, वही उन्होंने भी देखा और उनका हाथ उठ न सका। दुःख से कातर होकर वे यहाँ से चले गए।"

"न तो कुल का कलंक ही धुल सका और न कुल की शक्ति ही बढ़ सकी। न धर्म की रक्षा हुई और न अधर्म का नाश ही हो सका। और मेरे दोनों भाई युद्ध में मारे गए। न पिताजी ही स्वस्थ हो सके और न तू पाप से मुक्त हो सकी," भार्गव ने कहा।

रेणुका की आँखों से आँसू टपक रहे थे। पुत्रों के मरण की बात सुनकर अम्बा को आघात पहुँचा।

माँ और बेटा चुपचाप पर्वत से उतर आये।

झोंपड़ी पर पहुँचकर रेणुका ने कहा—"पुत्रक, अब तू समझ सका होगा कि किस कारण मैं मृत्यु की कामना कर रही हूँ। मेरी मृत्यु के बिना भृगुकुल का कलंक नहीं धुल सकेगा और न आर्यत्व की ही विजय हो सकेगी। केवल मारने वाले के अभाव में मैं जी रही हूँ। इन तीस जनों के मरने के उपरान्त मुझे अग्नि प्रवेश तो वैसे भी करना ही पड़ेगा। अब तू अपना कर्तव्य पूरा कर," ममतापूर्वक रेणुका ने पुत्र के परशु की ओर देखा।

"अम्बा! अब सवेरे देखा जायगा।" कहकर भार्गव मुखिया की झोंपड़ी में सोने के लिए चले गए।

"सवेरे मैं गन्धर्वों को खिला-पिलाकर जब लौटूँगी तभी मरूँगी," अम्बा ने कहा।

: ७ :

सवेरे उठकर रेणुका ने स्नान किया और सविता को अर्घ्य दिया। उसके उपरान्त कुछ बनवासी जो खाद्य-सामग्री लाये थे उसे अपने साथ

लिवाकर वे गन्धर्वों को खिलाने के लिए चल पड़ी। कुछ ही ऊपर जाने पर उन्होंने देखा कि पगडण्डी पर बैठे भार्गव पास ही से बहे जा रहे एक निर्झर में अपना परशु साफ कर रहे थे।

"अरे! तू यहाँ कैसे?" चकित होकर रेणुका ने पूछा।

"इससे पहले कि तू गन्धर्वों के पास जाय मैं तुझसे कुछ बात किया चाहता था।"

"तो चल मेरे साथ। क्या इतना उतावला हो पड़ा है? मुझे मारना चाहता है?"

"मारूंगा क्यों नहीं, भला?" ममतापूर्वक वे माँ के साथ चल पड़े।

"अम्बा! तू अब भी मुझे पुत्रक ही मानती है, यह बहुत बुरी बात है। मैं अब हैहयों का गुरुदेव हो गया हूँ। अघोरियों का गुरु भी मैं हूँ। मैं हवा में उड़ सकता हूँ। जानती भी है?"

"सचमुच!"

"मैं विनोद नहीं कर रहा हूँ। माहिष्मती में सभी लोग मुझे पशुपति के समान मानते हैं।"

"तू तो जन्म से ही देव है। मैं तुझे बटुकदेव कहा करती थी।"

"मेरे एक बहू भी है। उसकी बात तो कल करना ही भूल गया।"

"बहू!"

"मैंने लोमा से विवाह कर लिया है।"

"हाय मुई! तू छोटा था तभी से वह तुझ पर पागल थी," रेणुका हँस पड़ी।

"सरस्वती के तीर पर उसके श्वसुर महर्षि जमदग्नि हैं। और रेवा के तीर पर जहाँ अघोरी बसते हैं, वहाँ उसके श्वसुर गुरु डड्डुनाथ अघोरी हैं। डड्डुनाथ ने मुझे अपना पुत्र मान लिया है।"

"अच्छा!"

"अम्बा! तूने कहा था कि आर्यों में तेरा स्थान नहीं है, सो सत्य नहीं है।"

"सत्य कहती हूँ, आर्य मुझे कभी भी स्वीकार न करेंगे।"

"अम्बा!" मन्द हास्य के साथ भार्गव ने कहा—"तो जहाँ मैं गुरु-पुत्र होकर रहता हूँ, वहाँ कोई नहीं आ सकेगा। भयंकर मगर वहाँ नदी के मार्ग को रोके हुए हैं। भेड़िए और अजगर वहाँ भूमि का मार्ग रोके रहते हैं। वहाँ डड्डुनाथ अघोरी के प्रजाजनों को मानवों का राग-द्वेष छू तक नहीं गया है। अम्बा, मैं तुझे वहाँ ले जाऊंगा। मैं तुझे मगर पर बिठाकर नर्मदा पर विहार करवाऊँगा। माँ, मेरे साथ चलेगी वहाँ?"

"ऐसी पगली बातें न कर बेटा!"

"यह पागलपन की बात नहीं है, माँ! पिताजी अविश्वास से पागल हो गए हैं। पुत्रों को वे पितृ-द्रोही मानते हैं। भृगु बहुत अधिक संख्या में कट चुके हैं। तेरे कृत्य के कारण कुल की आन और प्रतिष्ठा समाप्त हो गई है; सिर उठाकर देखना अब कठिन हो गया है। तुझसे अब आर्यावर्त नहीं लौटा जा सकेगा। भृगुओं को तो अब त्यागना ही होगा।"

"ऐसी पगली बातें न कर, बेटा! भृगुकुल की शक्ति और पवित्रता की रक्षा मैं और तेरे पिता नहीं कर सके। तेरे दोनों भाई भी मारे जा चुके हैं। अब इस कर्तव्य का भार तुझ पर ही है। तू आर्यश्रेष्ठ जमदग्नि का पुत्र है। तू देव है। भृगुओं और आर्यों का उद्धार करने के लिए ही तेरा जन्म हुआ है।"

"तू नहीं लौटेगी?"

"नहीं। तेरा स्थान आर्यावर्त में ही है। तू आर्यावर्त का उद्धार कर, और मेरी चिन्ता छोड़ दे। मेरा तारनहार कोई नहीं है।"

"यह रहा मेरा घोड़ा। मैं तुझे फूल की भाँति उड़ा ले जाऊंगा। अम्बा, लोमा तेरे चरणों की दासी होकर रहेगी। चल, चल न!"

"तेरे गले का जंजाल होकर मुझसे न रहा जायगा। तेरी इच्छा हो तो भले ही मुझे मार डाल। इतना साहस यदि तुझमें नहीं है, तो मेरे

लिए तो निदान अग्नि-प्रवेश है ही। पर तेरे कुल का कलंक नहीं धुल सकेगा।"

"अम्बा ! तू भूलती है" भार्गव ने गम्भीर स्वर में कहा—"मैं धर्म का प्रतिपादन करने के लिए आया हूँ, लोप करने के लिए नहीं। तुझे मारूंगा तो मेरे हाथों धर्म का लोप होगा।"

"ऐसी पगली बातें न कर।"

"अम्बा !" भार्गव ने कहा—"पिताजी धर्म को भूल गए हैं। जान पड़ता है भृगुलोग भी धर्म को भूल गए हैं। समस्त आर्यावर्त धर्म को भूल गया है। तू जब मुझे यह मारने का कर्तव्य सिखा रही है तब तू भी धर्म को भूल रही है। तूने जो यह पर-पुरुषों की सेवा की है, सो तो तू ही कर सकती है। और तू इसलिए कर सकती है कि तू पति-परायण है—महर्षि जमदग्नि की परम विशुद्धि की सहयोगिनी। जहाँ विशुद्धि होती है, वहाँ अधर्म हो ही नहीं सकता। चल मेरे साथ, मैं पिताजी को समझाऊँगा। भृगुओं के गये हुए तेज का फिर से उद्योत करूंगा।"

"नहीं. मैं नहीं आऊंगी। तेरी बात कोई मानने वाला नहीं है। उलटे अपकीर्ति की ग्लानि का दाह तुझे सहना पड़ेगा। तू अपने लोगों को अभी भी ठीक से पहचानता नहीं है," कहकर रेणुका तुरन्त ही सकुचा गई।

भार्गव का स्वरूप बदल गया। मंद-मंद हँसता हुआ उसका ममतालु पुत्र वह नहीं रह गया था—दूर पर दीख रहे गौरीशंकर के समान अडिग, सनातन अस्पर्श्य और अमेय उसका प्रताप था। उसके स्वर की झंकार बदल गई थी।

"मैं धर्म का उच्चारण करूंगा, जगत् उसे मानेगा। उसे माने बिना उसका छुटकारा नहीं है।"

रेणुका के हृदय में किंचित् दर्प व्याप गया।

"चल !" भार्गव ने आज्ञा दी।

"नहीं," दृढ़तापूर्वक रेणुका ने कहा—"मेरे गन्धर्वों का भी कुछ विचार किया है ?"

"उनका विचार मैंने कभी से कर लिया है। उनमें से एक भी अब जीवित नहीं है। सवेरे जाकर मैं उन सबका शिरच्छेद कर आया हूँ।"

रेणुका चीख उठी। नितान्त ठण्डे हृदय से तीस मनुष्यों को मार कर आने वाले इस पुत्र की ओर वह क्रोधपूर्वक देखती रह गई।

"ओ घातक! तूने बेचारे तीस निःसहायों के प्राण ले लिये।"

"हाँ, जो जी न सके उसका मर जाना ही अच्छा है।"

"पापी, तूने यह क्या किया?" आँखों पर हाथ देकर रेणुका रो पड़ी।

"अम्बा! कल्याणी!" गुरुओं के गुरु भार्गव ने प्रोत्साहक स्वर में कहा—"तेरे आँसू सबल को सामर्थ्य देने के लिए हैं, मरते प्राणी की मृत्यु की घड़ी को बढ़ाने के लिए नहीं।"

रेणुका चीख उठी। उसकी अवगणना करके भार्गव ने उसे पैर पकड़कर उठा लिया और दौड़ता हुआ उसे पर्वत की तलहटी में ले आया। रेणुका रोते-रोते क्रोध के आवेश में पुत्र की छाती में मुक्कियाँ मार रही थी। भार्गव ने एक हाथ से उसे हृदय से चाँपते हुए कहा—"रो ले, रो ले, तूने बहुत सहन किया है।"

: ४ :

बनजारों का एक जत्था जा रहा था। इस जत्थे में सवा सौ मनुष्य, तीस बैल, सत्तर गायें, चार घोड़े, और तीन गाड़ियाँ थीं। बैलों पर अनाज लदा हुआ था। वृद्ध और रुग्ण लोग गाड़ियों में बैठे थे। बचे हुए सब लोग पैदल चल रहे थे। उनमें से कोई दस व्यक्तियों के पास भाले और तीर थे।

यह जत्था उत्तर की ओर से शतद्रु के किनारे-किनारे होकर दक्षिण की ओर चला आ रहा था। रात होने पर जत्था किसी भी स्थान पर

डेरा डाल देता; तब वहाँ स्त्रियाँ रास-नृत्य करतीं और पुरुष जगरे के आस-पास बैठकर गप्पें मारते।

नदी के तीर पर होकर राजमार्ग से यह जत्था धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। प्रतिवर्ष वृश्चिक पणी अपना जत्था लेकर बस्तीवाले प्रदेशों में आया करता और अनाज तथा आवश्यक ढोरों को बेचकर आवश्यक वस्तुएं ले जाया करता। इस मार्ग पर पड़नेवाली सभी बस्तियों के लोग उसे पहचानते थे, और उसके आने पर नया माल लेने अथवा बेचने के लिए उसके आस-पास घिर आया करते।

वृश्चिक एक हँसमुख वृद्ध था। उसका और उसके जनों का कुटुम्ब भी आनन्दी था। छः महीने तो जत्था प्रवास करता और छः महीने वह अपने गांव जाकर खेती करता और ढोर पालता।

एक दोपहर वृश्चिक पणी का जत्था एक झाड़ के तले विश्राम कर रहा था, तो कहीं जंगल के मार्ग से आते हुए किसी घोड़े का हँकार उसे सुनाई पड़ा। वह चौंककर उठ बैठा। उसके प्रहरी भी शस्त्र सम्हाल कर सावधान हो गए।

पगडण्डी पर एक घोड़ा चला आ रहा था। उस पर एक प्रौढ़ वय की स्वरूपवान और सौम्य मुद्रावाली स्त्री बैठी थी। एक प्रचण्ड युवा वल्गा से घोड़े को खींचते चले आ रहे थे। उस युवा के कन्धे पर एक बड़ा-सा तीर था। उसके दाएं हाथ में एक बड़ा-सा परशु था।

उस युवक को अकेले ही देखकर उसका भय जाता रहा, प्रत्युत एक सबल शस्त्रधारी का साथ हो जाना उसे अच्छा ही लगा। घोड़े पर बैठी आ रही उस स्त्री का मुख भी कुलीनता का परिचायक था। कुछ ऐसा भी याद आ रहा था, जैसे इसे कहीं देखा हो।

भार्गव घोड़े को पकड़कर आगे ले आए। रेणुका को उठाकर उन्हों ने नीचे उतार दिया, और घोड़े को नहलाने और पानी पिलाने के लिए वे नदी पर ले गए। वृश्चिक ने जान-पहचान करने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

"माँ जी, आओ। बहुत थक गई जान पड़ती हो। किरणी!" उसने अपनी बड़ी बेटी को पुकारा—"कहाँ गई थी? ये माँजी थकी हुई हैं।"

लम्बे चौड़े डीलडौल, बड़े ओंठ और बड़ी आँखों वाली किरणी आकर रेणुका का स्वागत-सत्कार करने लगी।

भार्गव ने पहले तो घोड़े को नहलाया फिर आप नहाए और अर्घ्य चढ़ाया। नदी से लौटकर उन्होंने वेदी बनाई, अग्नि स्थापित की और आहुति दी।

वृश्चिक जाकर उनके पैरों पड़ आया और साथ ही उन्हें भोजन का निमंत्रण भी दे आया।

भार्गव और अम्बा जत्थे के साथ-साथ चलने लगे। वृश्चिक ने उन दोनों का यथार्थ परिचय पाने के लाख प्रयत्न किये पर भार्गव ने केवल इतना ही बताया कि वे भृगु हैं और इस स्त्री को साथ लेकर वे सरस्वती के तीर पर जा रहे हैं; इसके अतिरिक्त और उन्होंने कुछ न कहा। बात करने में न उन्हें ही कोई रस था, और न अम्बा को। पर वृश्चिक को प्रतीत हुआ कि अवश्य ही यह कोई महापुरुष है, अतएव वह भार्गव की सेवा करने लगा। उसकी यह मान्यता थी कि महापुरुष की सेवा जितनी ही अधिक की जायगी, उतना ही धन अधिक मिलेगा। उसे अनुभव होने लगा कि यह अल्पभाषी ऋषि कोई बहुत ही चमत्कारिक व्यक्ति है। अतएव वह भार्गव के आगे अपने दुख का रोना रोने लगा।

पिछले साल अनाज का पाक ठीक नहीं हुआ था। एक लड़का भी उसका मर गया था। खेतों में टिड्डी-दल आ पड़ा था। रास्ते में आते-आते गायें भी मर गईं थीं। किसी ऋषिवर के आशीर्वाद के बिना अब उसका उद्धार नहीं था।

भार्गव यह सब सुनते रहे।

वर्षों से खोये हुए अपने पुत्रक को रेणुका ने नये रूप में देखा। उसका अंग-प्रत्यंग सुश्लिष्ट और सुन्दर था। वह केसरी की भांति डग भरता हुआ चलता। उसके शस्त्र अभूतपूर्व रूप से बड़े थे। उसकी

आँखों में शिशिर के सूर्य की आल्हादकता दिखाई पड़ती, तो कभी हिमवान पर्वत पर पड़ने वाली किरणों की तेजस्वी तटस्थता दिखाई पड़ती। कभी उनमें ग्रीष्म का मध्याह्न तपता हुआ दिखाई पड़ता, तो कभी बिजली चमकती, और कभी फूटती हुई वह्नि की सरिता दिखाई पड़ती। उसकी अल्पभाषिता मुग्ध-कर और हृदय-वेधक थी; उससे हृदय में विनाशकता, भक्ति और श्रद्धा के भाव जागते थे। कभी-कभी वह बहुत दूर जाकर एक विराट स्वरूप धारण करता-सा लगता, तब अपनी प्रशान्त और एकाग्र उग्रता में वह मग्न हो जाता। और तभी उसके आस-पास तेज का वर्तुल प्रकाशित होता-सा दिखाई पड़ता। शक्ति के अवतार-से इस पुत्र के सान्निध्य में रेणुका अपनी थकान, अपना अपयश, अकेलापन तथा पति और पुत्रों के वियोग का दुःख भूल गई थी।

धीरे-धीरे कई दिनों तक जत्था आगे बढ़ता चला गया, और निदान सपाट बस्ती वाले प्रदेश में आ पहुँचा।

एक सबेरे गिद्धों के झुंड उड़कर जाते दिखाई पड़े। वृश्चिक ने उसे अपशकुन माना और वह भार्गव के पास आशीर्वाद लेने के लिए आया। भार्गव ने आशीर्वाद दिया। दोपहरी में जत्था मार्ग में खड़ा रह गया। रास्ते में एक मनुष्य भूमि पर बैठा हुआ था, उसके पास ही एक दूसरा मनुष्य अचेत अवस्था में पड़ा हुआ था। कुछ ही दूर एक तीसरा मनुष्य मरा हुआ पड़ा था। वृश्चिक ने उस बैठे हुए मनुष्य को भोजन और जल दिया तथा उस मूर्छित मनुष्य की मूर्छा दूर की।

जब जत्थे ने वृक्षों-तले विश्राम करने के लिए डेरा डाला तो वृश्चिक ने उन दोनों व्यक्तियों से सारी बातें पूछनी चाहीं। महा-संग्राम चल रहा था। महर्षि वशिष्ठ और सुदास एक ओर थे; विश्वामित्र, पुरुकुत्स और अन्य नौ राजा उनके विपक्ष में थे। भेद राजा के गाँव के पास ही भीषण संग्राम चल रहा था, और ये तीन व्यक्ति वहीं से भागकर आये थे।

यह बात चल ही रही थी कि कुछ दूर पर उन सैनिकों ने अंबा को जाते हुए देखा। वे बात करते-करते रुक गए।

"क्या बात है ?" वृश्चिक ने पूछा। वे दोनों सैनिक कुछ ऐसे सिहर उठे जैसे अपशकुन हुआ हो।

"ये यहाँ कैसे ?"

"कौन ये ?" वृश्चिक ने पूछा—"ये भी कोई बटोही हैं।"

"यह तो नैष्ठ-पगी है," एक सैनिक ने कहा—"जमदग्नि की पत्नी रेणुका जो भागकर गन्धर्वों के यहाँ रहा करती थी, वही तो है यह। इसे कहाँ से साथ ले आए हो ? तुम्हारा काल आ पहुँचा जान पड़ता है। इसी के कृत्य से तो भृगुओं का सर्वनाश हो गया है।"

सुनने वाले अवाक् हो गए। आर्यावर्त में जो शाप के रूप में मानी जाती थी, जिसके लिए लोक में जमदग्नि की शपथ चारों ओर मान्य थी, उसे वह साथ कैसे ले आया ?

"पर उसके साथ जो ऋषि हैं, वे तो कहते हैं कि वह उनकी माँ है।"

"कोई ऋषि भी रेणुका के साथ रहेगा ! झूठी बात है यह। इस रेणुका के और कोई पुत्र हो यह तो हो ही नहीं सकता। इसके तीन पुत्र तो युद्ध में मारे जा चुके हैं। कल गुरु विदन्वन्त, इसका बड़ा पुत्र भी मारा गया है।"

"क्या इसके तीन ही पुत्र थे ?"

"एक चौथा भी था, पर कई वर्षों पहले वह अनूप देश में मर चुका है, या फिर उसे सहस्रार्जुन ने मार डाला।"

बात-की-बात में यह भयंकर वार्ता सारे जत्थे में फैल गई। अम्बा ने सबकी दृष्टियां अपनी ओर लगी देखीं और वह सावधान हो गई; ये सब लोग जो धीरे-धीरे बातें कर रहे थे, उनका उद्देश्य उसने भाँप लिया। उसका मुख गहरा लाल हो गया। उसकी आँखों से टप-टप आँसू टपक रहे थे।

"पुत्रक !" घोड़े की मालिश करते हुए भार्गव से जाकर अम्बा ने कहा, और वे रो पड़ीं।

"क्या बात है, अम्बा ?"

"मैंने तुझसे कहा नहीं था कि मुझे मर जाने दो। वे जो अनजान दो व्यक्ति आये हैं, उनमें से एक अपनी जटा से भृगु-जैसा दीखता है। उसने मुझे पहचान लिया है। यह सारा जत्था मुझे पतिता मानकर विद्वेष-भरी दृष्टि से देख रहा है। मैं अधम हूँ और अधम ही रहूँगी। मेरा यों अपमान कराने से तो यही अच्छा है कि तू मुझे कहीं ले जाकर मार डाल। तेरे पिता सच ही तो कहते हैं, मृत्यु को छोड़कर अब मेरे लिए शरण और कहीं नहीं है।" रोती-कलपती रेणुका सिर पर हाथ दे कर बैठ गई।

भार्गव एक मंद हास्य के साथ बोले—"अम्बा, घबड़ाती क्यों है ? तू चुपचाप बैठी रह। तुझे चाहे कोई अम्बा न माने, पर मैं तो मानता हूँ न ? तू मुझ पर कब विश्वास कर सकेगी ? मैं देख लूंगा, वे कौन हैं ?"

वृश्चिक और वे सैनिक जहाँ बैठे थे, भार्गव वहीं पहुँचे। उनकी जटा खुली हुई थी; अतएव उनका गोत्र पहचानना किसी के लिए संभव नहीं था। पास जाने पर, सबकी आँखों में से जो तिरस्कार का भाव उनके लिए था, वह उन्होंने ताड़ लिया। अम्बा की बात सच थी। इस क्षण इस जत्थे में ही क्या, आर्यों की किसी भी बस्ती में उनके और उनकी माँ के लिए स्थान नहीं था। वे आप अनजान थे, माँ पतिता थी, इस प्रकार जैसे जगत् के निर्जीव क्षुद्रों में मानो उनकी गिनती हो गई थी।

उन्हें हँसी आ गई। सहस्रों व्यक्तियों ने उन्हें पशुपति मानकर पूजा था, उनकी भक्ति की थी, उन्हें अपना सर्वस्व समर्पण किया था। उन के पैरों की रज माथे पर चढ़ाने में देवों ने दुर्लभ सुख माना था और इस क्षण यह नीच, स्वार्थी वृश्चिक उन्हें सहन तक करने को तैयार नहीं

था। ये मनुष्य कैसे मूर्ख हैं, और इन्हें इस मूर्खता में से उबार लेना भी सहज काम नहीं है।

वे वृश्चिक के पास गये। सभी की मुख-मुद्रा में एक अपमानजनक कठोरता स्पष्ट ही झलक रही थी।

"भृगु!" उन्होंने उस सैनिक से कहा—"तू रण-क्षेत्र से भागकर आया है? सवेरे गिद्धों को देखकर ही हमें निश्चय हो गया था कि निकट ही कोई रण-क्षेत्र होना चाहिए"—उस दृढ़ स्वर को सुनकर और उन तेजस्वी नयनों को देखकर वह भृगु कुण्ठित हो गया—"रण-क्षेत्र कितनी दूर है?"

"यहाँ से कोई दो योजन दूर होगा।"

"युद्ध किस-किस के बीच चल रहा है?"

"वशिष्ट और विश्वामित्र के बीच," भृगु ने तिरस्कारपूर्वक कहा।

"मुनिवर वशिष्ठ और महर्षि विश्वामित्र के बीच," कठोरतापूर्वक भार्गव ने कहा—"भृगु होकर इतना शिष्टाचार भी नहीं जानता?"

भृगु क्रोध के आवेश में उठ बैठा और सामने आकर खड़ा हो गया।

"मुझे शिष्टाचार सिखाने वाला तू कौन होता है?"

भार्गव हँस पड़े—"मैं न सिखाऊँगा तो तुझे और कौन सिखायगा?"

पल मात्र में उन्होंने भृगु को उठाकर एक छोटे बालक की भांति भूमि पर डाल दिया।

"यह बता कि युद्ध में क्या हो रहा है?" भृगु ने उससे पूछा।

कुछ देर ठहरकर भृगु ने उत्तर दिया—"वशिष्ठ मुनिवर की विजय हुई है। कल रात को महर्षि विश्वामित्र मारे गए, ऐसा संवाद भी मिला है। यत्किंचित् युद्ध तो सारी रात चलता ही रहा।"

"और राजा भेद?"

"सवेरे जब हम भागे उस समय गढ़ में आग लगा दी गई थी। राजा भेद कल दोपहर मारे गए।"

"और कौन मारा गया?"

"पुरुकुत्स राजा भी मारे गए हैं—महर्षि शक्ति, मुनिवर के पुत्र भी मारे गए और हमारे गुरु विदन्वन्त ऋषि भी।"

क्षण-भर के लिए भार्गव चुप हो गए—"वे युद्ध में कब आये थे ?"

"पाँच दिन पहले आये थे और कल मारे गए।"

उस भृगु को भयभीत अवस्था में छोड़कर भार्गव वहाँ से चले गए।

थोड़ी ही देर में रेणुका और भार्गव जत्था छोड़कर चल दिये। एक घड़ी-भर तक माँ और पुत्र एक शब्द भी नहीं बोले। माता का हृदय हताश हो गया था। उसके लाड़ले बेटे के सिर पर जो विपत्तियां मंडरा रही थीं, उन्हें देखकर वह थरथरा उठी थी।

एक प्रवाह के पास उन्होंने घोड़े को रोक दिया। दोनों ने हाथ-मुँह धोये, पानी पिया और कुछ देर बैठे रहे।

भार्गव की आँखें उड़ते हुए गिद्धों की ओर लगी थीं। उनके मुख पर एक निश्चल स्वस्थता थी। उनके मन में इस क्षण क्या विचार चल रहे होंगे, यह रेणुका की कल्पना में न आ सका। उसने पास आकर उन के सिर के बालों को व्यवस्थित कर दिया।

"पुत्रक ! किस विचार में है ?"

"अम्बा ! मुझे कोई विचार नहीं आता।"

"तो फिर चुप क्यों बैठा है ?"

"जो मुझे दीख रहा है वह यदि मैं तुझसे कहूँगा, तो तेरे दुःख का पार नहीं रहेगा।"

"बेटा, मेरे दुःख का तो अब पार है ही नहीं। मेरा हृदय तो अब वज्र का हो गया है। कह दे, क्या बात है ?"

"अम्बा ! तुझे मुझ पर विश्वास है ?" भार्गव ने पूछा।

"पुत्रक ! मेरे सर्वस्व में बस अब तू ही बचा है। तू ही मेरे इस जीवन का आधार है।"

"तू रोयगी तो नहीं न ?"

"नहीं रोऊँगी।"

"तो मैं तुझसे कहता हूं," भार्गव ने कहा। पल-भर दोनों चुप होरहे।

"अम्बा, समस्त आर्यावर्त छिन्न-भिन्न हो गया है," भार्गव ने धीर-गम्भीर स्वर में कहा—"महर्षि विश्वामित्र मारे गए, और ऋषिवर विदन्वन्त भी मारे गए।"

"क्या कह रहा है ?" दुःख के आवेश से आकुल होकर अम्बा ने कहा।

बड़े पुत्र की मृत्यु का सम्वाद सुनकर वह फूटकर रो उठना चाहती थी, पर भार्गव की गम्भीर मुद्रा देखकर, वह रोने का साहस भी न कर सकी।

"हाँ, तेरे पुत्रों में से केवल अब मैं ही बचा हूँ। भृगुश्रेष्ठ को चित्त-भ्रम हो गया है। भृगुओं की भगवती को सभी तिरस्करणीय मान बैठे हैं।"

"रो अम्बा ! जी भरकर रो ले ! उसके बिना तुझे आश्वासन नहीं मिल सकेगा। कवि चायमान चले गए। भृगुओं का तेज समाप्त हो गया। भरतों का प्रताप नष्ट हो गया है। महर्षिश्रेष्ठ विश्वमित्र चले गए, भरतश्रेष्ठ देवदत्त चला गया—उनका सेनापति जयंत भी चला गया।" अम्बा केवल सिसक रही थी।

"मुनिवर वशिष्ठ ने—उन विद्यानिधि ने—स्वयम् अपने हाथों यह सब किया है। वशिष्ठ के उत्तराधिकारी महर्षि शक्ति भी मारे गए हैं। राजा पुरुकुम्भ मारे गए और राज भेद भी मारा गया है। जिस रणक्षेत्र में हम जा रहे हैं, वहाँ आर्यावर्त का तेज और गौरव मिट्टी में मिल गया है।"

"पुत्रक ! पुत्रक ! अब क्या होने को है ?"

"यह तो आज तक की बात हुई। अभी तो विकराल सहस्रार्जुन सिंहों से भी भयंकर योद्धाओं को लेकर मुझ पर आक्रमण करेगा।"

"बेटा, तेरा क्या होगा ?"

"मेरा ?" और लज्जित होकर भार्गव हँस पड़े—"अम्बा, इस चोले में से अब नई सृष्टि रची जाने को है।"

"वह सब कैसे करेगा बेटा ?" निराशा के स्वर में अम्बा ने पूछा, "तू तो अब अकेला ही रह गया है। न बाप हैं, न भाई हैं और न भृगु ही तेरे साथ हैं।"

भार्गव हँस पड़े—"अम्बा ! कल्याणी ! फिर तू श्रद्धा खो बैठी ! पहले हम इस छिन्न-भिन्न सृष्टि के खोलों को विसर्जित कर दें। पहले जाकर मामा और भाई के शवों को खोजकर उनका अग्नि-संस्कार कर दें, फिर दूसरी बात। अम्बा ! तू भी मुझ पर श्रद्धा न करेगी ?"

रेणुका इस प्रभावमूर्ति पुत्र की मुख-रेखा को देखती रह गई।

"पुत्रक ! पुत्रक ! मैं अब कभी अपनी श्रद्धा को न खोऊंगी।" वह अपने पुत्र से चिपट पड़ी। भार्गव के नेत्रों से बहती हुई शक्ति उसे आप्लावित कर रही थी।

वे उठकर चलने ही को थे कि दौड़ते हुए घोड़े पर वृश्चिक आ पहुँचा। वह घोड़े पर से उतरकर भार्गव के पैरों में आ पड़ा।

"ऋषिवर ! बचाइए, बचाइए ! इस गरीब प्राणी को मरने से बचाइए !"

भार्गव चुप रहे।

"आपके जाते ही भटकते हुए सैनिकों की टोलियां उधर आने लगीं। बेचारे गरीब वृश्चिक के जत्थे में से लूट-लूटकर वे अनाज खाने लगे। दो व्यक्ति बिना पूछे ही घोड़े लेकर चलते बने। एक आदमी एक लड़की को उठा ले गया। बाप रे बाप ! मैं तो बिना मौत मारा गया। भागे हुए सैनिकों के दल-पर-दल चले आ रहे हैं। मुझ पर तो देवों का कोप ही छा गया जान पड़ता है। भगवती ! उन भृगुओं के कहने में आकर मैंने आपकी अवगणना की है। मुझे क्षमा करिए। मुझे बचाइए। जो चाहो प्रायश्चित्त करने को मैं तैयार हूं।"

"किसलिए बचाऊं तुझे ?"

"मैं आपकी शरण आया हूँ," उसने भार्गव के परशु और तीर की

ओर देखा—"सवेरा होने से पहले ही मैं लुट जाऊंगा और मेरे जत्थे की बालाओं पर अत्याचार होगा।"

"मैं तुझे क्योंकर बचा सकता हूँ। मैं तो स्वयम् ही अकेला हूँ। और मैं कौन हूँ सो भी तू नहीं जानता।"

"आप महर्षि हैं, आप सदेह उतर कर आये हुए इन्द्र हैं, आपको छोड़ मेरे लिए और कोई आधार नहीं है।"

"तेरा जत्था कहाँ है ?"

"जिस रास्ते होकर आप आये हैं उसी रास्ते पर मैं उसे ले आया हूँ। पर वे सैनिक जत्थे को आगे नहीं बढ़ने दे रहे हैं। वे सब इस समय बड़े आनन्द से भोजन करने में जुटे हैं, इसीसे मैं भागकर चला आया हूँ।"

"वृश्चिक, मैं तुझसे एक बात का वचन लेकर ही तेरा रक्षण कर सकता हूँ।"

"कहिए, आप जो चाहेंगे, वही वचन मैं आपको दूंगा।"

"यदि तेरा सारा जत्था मुझे गुरु के रूप में स्वीकार करे तो। इस युद्ध-काल में अपने शिष्यों को छोड़ मैं औरों की रक्षा नहीं कर सकता।"

"अवश्य गुरुदेव! मुझे बचा लीजिए। मरने की घड़ी तक भी मैं आपको नहीं भूलूंगा। मेरी सन्तानें आपका नाम स्मरण करके जीवन बितायेंगी।"

"अच्छी बात है, तो लौट जा। मैं अभी आता हूँ।"

"नहीं-नहीं गुरुदेव, आप जब तक यहाँ से नहीं चलेंगे मैं नहीं लौटूंगा।" इस मनुष्य की यह भय-त्रस्त दशा देखकर भार्गव को दया आ गई। उन्होंने वृश्चिक की पीठ थपथपाई—"अच्छा, तू घबड़ाना नहीं, मैं यह चला। तू अम्बा को लेकर आना।"

घोड़ा दौड़ाते हुए भार्गव उस स्थल पर आये जहाँ जत्था डेरा डाले हुए था।

कोई पच्चीस सैनिक वहाँ धमा-चौकड़ी मचाये हुए थे। दो-चार

व्यक्ति स्त्रियों के हाथ खींच रहे थे। एक व्यक्ति एक गाय को दुहकर उसका दूध पी रहा था। चार सैनिक निश्चिन्त पड़े खर्राटे भर रहे थे। कुछ लोग खाने में जुटे हुए थे। जत्थे के कुछ व्यक्ति सैनिकों की परिचर्या कर रहे थे। शेष व्यक्ति या तो जंगल में इधर-उधर भाग गए थे या फिर पास के एक वृक्ष पर चढ़ गए थे। जत्थे की जो स्त्रियां भाग न सकी थीं वे एक-दूसरी से चिपटकर चीख-चिल्ला रही थीं।

भार्गव ने शर-संधान किया और उस एक ही तीर ने वृश्चिक की पुत्री किरणी का हाथ खींचकर उसे चूमने को उद्यत एक सैनिक को धराशायी कर दिया। सब सैनिक चौंक उठे और दौड़कर उन्होंने अपने-अपने शस्त्र सम्हाले, और इस नये शत्रु का सामना करने को प्रस्तुत हो पड़े।

घोड़े पर से उतरकर, हाथ में परशु लिये, भार्गव आगे बढ़ आए। उनकी आँखों में विनाश झांक रहा था। एक सैनिक ने उन्हें तीर मारा। भार्गव ने परशु घुमाया और तीर परशु से टकराकर आड़ा हो, धरती पर जा गिरा।

इतना बड़ा परशु आर्यावर्त के सैनिकों के लिए सर्वथा अपरिचित था। अद्भुत कौशल से उसे विद्युत् की भांति सिर पर गिरते देख सैनिक अपने प्राण लेकर भागे। घबड़ाकर भागे हुए स्त्री-पुरुष धीरे-धीरे लौट आए। तभी वृश्चिक भी आ पहुँचा और गुरुदेव के पैरों में गिर पड़ा।

"वृश्चिक, अब भी मेरा गुरुपद तुझे स्वीकार करना है?"

"मैं तो आपका ही हूँ, गुरुदेव!"

"तो जत्थे को तैयार कर और दौड़ते हुए मेरे साथ चला चल।"

"पर कहां?"

"गुरु पर इतनी श्रद्धा यदि नहीं है, तो कैसे काम चलेगा?"

: ६ :

एक प्रहर के उपरान्त गिद्धों और चीलों के व्यूह आकाश में चक्कर काटते दिखाई पड़े। जलते हुए स्तम्भ और धुँए के पुँज भी आकाश की ओर जाते हुए दिखाई पड़े। राह में स्थान-स्थान पर मरे हुए मनुष्यों के शव भी पड़े दिखाई दिए।

एक प्रहर के अन्दर ही भार्गव ने जत्थे की सारी व्यवस्था अपने हाथ में ले ली। सैनिकों के नये शस्त्र उन्होंने रक्षकों को थमा दिये। जत्थे के घोड़ों पर तथा सैनिकों के छोड़े हुए घोड़ों पर जत्थे के अच्छे अश्वारोहियों को बिठा दिया।

सबसे पीछे गाड़ियों में स्त्रियां और बालक चले आ रहे थे। अम्बा वृश्चिक की स्त्री के साथ पीछे की एक गाड़ी में बैठी थीं।

सामने से कोई पचास सैनिकों की एक टोली दौड़कर आती-सी जान पड़ी। वे दस्यु थे और पानीदार घोड़ों पर दौड़ते चले आ रहे थे।

भार्गव ने शंख फूंक दिया। भृगुश्रेष्ठ का शंखनाद गगन में गूंज उठा। दौड़ते हुए आ रहे अश्वारोहियों ने एकाएक ठिठककर घोड़े थाम लिये। मित्र भृगुओं का यह विजयी शंखनाद, उन प्राण लेकर भागते हुए दस्युओं को ऐसा लगा, मानो प्यासे मरते चातक को स्वाति-बिन्दु मिल गया हो। सामने से आते हुए जत्थे को उन्होंने देख लिया। दो दिन के निराहार योद्धा भार्गव की ओर दौड़ आए।

दो योद्धा आगे बढ़ आये—"भृगुश्रेष्ठ ! हमें कुछ खाने को दीजिए कि हम जल्दी ही यहाँ से भाग जायं।" बोलने वाला व्यक्ति भय से व्याकुल होकर चारों ओर देख रहा था। "अभी-अभी हमारे पीछे तृत्सु लोग आ पहुँचेंगे।"

भार्गव हँस पड़े—"तुम्हारा कुछ न बिगड़ेगा। घबड़ाओ नहीं। कहाँ जा रहे हो ?"

"हमें भागकर पर्वतों में जा घुसना है। दस्यु-मात्र को पकड़कर दास बनाकर सुदास उन्हें तृत्सु-ग्राम ले जा रहे हैं।"

"पहले तुम अपने लिए खाद्य-सामग्री बाँध लो, फिर बातचीत होगी। वृश्चिक ! यदि कुछ खाद्य-सामग्री हो तो इन्हें दिलवा दे।"

"भागकर कहाँ जाओगे ?" भार्गव ने पूछा।

"दूर के पर्वतों में जा छिपेंगे।"

"और यदि पकड़े गए तो ?"

"हम मर मिटेंगे, पर दासत्व स्वीकार नहीं करेंगे।"

भार्गव हँस पड़े—"सचमुच ?"

"राजा भेद चले गये। हमारा स्वातंत्र्य नष्ट हो गया। यदि हम जीवित रहे तो किसी दिन दिवोदास का राज्य फिर से प्राप्त करेंगे। आज तो हमारा कोई नहीं रह गया है।"

"यदि मैं तुम्हारा हो जाऊं तो ?" भार्गव ने पूछा।

इस प्रश्न को सुनकर उस योद्धा को यह संशय हुआ कि इस प्रश्न के पूछने वाले का मस्तिष्क ठिकाने है या नहीं। "महर्षि विश्वामित्र और महर्षि विदन्वन्त भी मारे गए हैं, यह तो आपने सुना ही होगा। आप कौन हैं, ऋषिवर ?" शिष्टतापूर्वक उस योद्धा ने पूछा।

"मेरे साथ चलो तो बताऊं," मंद-हास्यपूर्वक भार्गव ने कहा।

"नहीं, हम तो चले जायंगे। आप कहाँ जा रहे हैं ?"

"रणक्षेत्र पर।"

"वहाँ तो केवल शव और गिद्ध रह गए हैं।"

"वहाँ महर्षि विश्वामित्र और विदन्वन्त, राजा पुरुकुत्स और राजा भेद पड़े हुए हैं। मैं उनकी उत्तर-क्रिया करने जा रहा हूँ।"

"उत्तर-क्रिया ?"

"हाँ, मेरा कहा मानकर मेरे साथ चलो। ऐसा करके तुम निर्भय हो सकोगे, और नहीं तो फिर जंगल-जंगल और गुफा-गुफा मारे-मारे फिरोगे।"

वे योद्धा इस विचित्र मनुष्य को देखते रह गए। उनकी शंकाएँ विचलित होने लगीं।

"मेरे साथ चलो—मेरे शिष्य के रूप में। फिर जब तक मैं जीवित

हूँ कोई तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा। पर तुम्हें श्रद्धा नहीं है। तुम्हारे भाग्य में भटकना ही लिखा है, तो फिर जाओ।"

योद्धा अपने घोड़े दौड़ाते हुए चले गये। जत्था झपटता हुआ आगे बढ़ने लगा। पद-पद पर सैनिकों के शव दिखाई पड़ते या फिर जंगलों में इधर-उधर भागते हुए सैनिकों का पगरव सुनाई पड़ता।

थोड़ी ही देर में उन दस्यु योद्धाओं में से आठ व्यक्ति लौटकर वापस आये।

'आपके साथ चलने को हम तैयार हैं, ऋषिवर! अब हम वृद्ध हो गए हैं, इधर-उधर छिपने फिरने की शक्ति अब हममें नहीं है। आप हमें अपने साथ ले चलें।'

"तुम अपने शस्त्र कहाँ छोड़ आए?"

"हम तो शस्त्र त्याग कर आपके शिष्यों के इस जत्थे में मिल जायेंगे।"

"पर मुझे तुम्हारे शस्त्र चाहिएं। तुममें से एक व्यक्ति जाकर उन्हें ले आओ। तुम्हारे लिए शस्त्र धारण करने की आवश्यकता नहीं है। मैं अकेला ही शस्त्र धारण करूँगा। जाकर जल्दी से ले आओ।'

"आप कहाँ मिलेंगे?' एक योद्धा ने पूछा।

"जहाँ जत्थे का पड़ाव होगा, वहाँ एक बड़ा-सा जगरा जलता दिखाई पड़ेगा। जाओ रात को वहीं आ जाना।"

तीसरे पहर जत्था जंगल से बाहर आया। एक भयानक दृश्य उनके सामने उपस्थित था। राजा भेद के गढ़ के आस-पास दूर-दूर तक मरे हुए मनुष्यों के ढेर पड़े थे। स्थान-स्थान पर घोड़े मृत्यु के मुँह में पड़े छटपटा रहे थे। टूटे हुए रथ यहाँ-वहाँ पड़े हुए थे। गढ़ एक विशाल चिता के समान दिखाई पड़ रहा था, और उसमें से रह-रहकर आग की ज्वालाएं उठ रही थीं। छटपटाते सैनिकों की वेदना-भरी चीत्कारों से सारा वातावरण भयंकर हो रहा था। पर राजा सुदास और वशिष्ठ के सैन्य की अन्तिम टुकड़ी अन्न-जल तथा विश्राम पाने के लिए अपने

पड़ाव की ओर जा रही थी। भार्गव ने दस्यु योद्धा को बुलाकर पूछा—

"पानी कहाँ है ?"

"नदी इस ओर है।"

"वृश्चिक! नदी के तीर पर पड़ाव डलवा दे। स्त्रियां भोजन का आयोजन करें। हम सब रण-क्षेत्र पर जायंगे और जो जी रहे हैं उन्हें लिवा लायंगे सोने-चाँदी के जो भी कंकण मिलेंगे वे सब तेरे होंगे।"

वृश्चिक ने आँख फाड़कर देखा। यदि यह गुरु के वचन का पालन करेगा तो उसे सहस्त्रों सोने-चाँदी के कँकण मिलेंगे। उसके पैरों में जैसे बल आ गया।

"पर कल सुदास के सैनिक लूट मचाने आयंगे तो ?"

"उससे पहले जो कुछ भी मिले वह तेरा।"

"पर वे मुझसे छीन लेंगे तो—"

"फिर तू श्रद्धा खो बैठा ? मेरे होते कौन ले सकेगा ?"

वृश्चिक के मन में किंचित् संदेह अवश्य था कि कहीं इस युवा ऋषि में कुछ पागलपन की सनक तो नहीं है। पर अपने वचनों को सार्थक करने में वह कुछ ऐसे चमत्कार दिखा रहा था कि उनके कारण वृश्चिक को अनायास यह प्रतीति होगई थी कि इस ऋषि के प्रताप से ही जैसे उसका दिन-मान बदल गया था।

पहले तो जत्थे के लोग रण-क्षेत्र में जाने का साहस न कर सके, पर भार्गव की आज्ञा का उल्लंघन करना सम्भव नहीं था। एक वज्र के समान दृष्टिपात के द्वारा उन्होंने कह दिया था कि "मेरी आज्ञा का उल्लंघन जो करेगा उसे मरना ही पड़ेगा।"

गिद्धों और चीलों के व्यूह-तले सहस्त्रों मरे हुए और मरण-तुल्य मानवों के बीच होकर उस भयानक रणक्षेत्र में भार्गव और वृश्चिक के आदमी जीवित मनुष्यों को खोजने लगे। अम्बा भी अपनी कोमलता को भुलाकर किरणी और अन्य स्त्रियों के साथ वहाँ आ पहुँची।

अंधेरा हो आया था, अतएव लकडियों को सुलगाकर उनकी मशालें बना ली गईं। एक टूटे हुए सुन्दर रथ के तले में किसी के कराहने का स्वर सुनाई पडा। भार्गव ने जाकर रथ के नीचे अपने कंधे का सहारा लगा दिया और वह कुचला हुआ व्यक्ति जैसे-तैसे घिसटकर बाहर निकल आया। वह घायल योद्धा चीत्कार कर रहा था।

"अम्बा!" भार्गव ने कहा—"इसे उठाकर ले जा। यह कोई वशिष्ठ जान पडता है। अब महर्षि शक्ति को खोज निकालता हूँ।"

"ए! ओ! महर्षिवर—"

"ले भाई, ले!" अम्बा ने दोनों हाथों की अंजलि में भरकर उसे पानी पिलाया।

"अम्बा!" भार्गव ने कहा।

उस घायल व्यक्ति ने आँखें खोलीं। उसे चेत आया—"अम्बा! भगवती अम्बा!" वह बुदबुदाया।

"हाँ बेटा, हाँ!" अम्बा ने कहा।

भार्गव मशाल ले आए, और रेणुका ने उस व्यक्ति को पहचाना, "कौन पराशर? बेटा, मैं हो हूँ।" अम्बा ने पराशर के सिर पर हाथ फेरा।

"अम्बा! अम्बा!" मुनि पराशर रो पडे और मूर्छित हो गए। अम्बा मुनिवर वशिष्ठ के पौत्र पराशर मुनि को उठाकर पडाव के पास ले आई।

महावीरों के शवों को खोज निकालना अब सरल हो गया। आस पास पडे सामान्य सैनिकों के शवों के ढेर, उनके अप्रतिम वीर्य की साक्षी दे रहे थे।

वहाँ पडे हुए थे मुनि वशिष्ठ के पुत्र, वीर और तपस्वी महर्षि शक्ति, वीरश्रेष्ठ अनुओं का राजा प्रचण्ड, और दस राजाओं के समूह के प्रमुख वृद्ध पुरुकुत्स, तृत्सु सेनापति हर्यश्व।

इसके अनन्तर विदन्वन्त ऋषि का शव हाथ लगा। भार्गव ने बडे

भाई के अवशेष को प्रणिपात किया, और स्वयम् ही उसे उठाकर रोती हुई माता को सौंप आए।

गढ़ धू-धू सुलग रहा था। उसकी ज्वालाओं के अस्थिर तेज में सारा रण-क्षेत्र एक अनंत श्मशान का आभास दे रहा था।

सौ मनुष्य हाथों में मशाल लिये शवों की खोज में भटक रहे थे। वे मानो किसी भूतों के समूह-से जान पड़ते थे। सन्ध्या होते ही हिंसक प्राणी आने लगे और उनसे शवों की रक्षा करना एक कठिन काम हो गया।

मध्यरात्रि होने पर कुछ सैनिक मशालें लेकर दौड़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। तृत्सु सैन्य इतना अधिक थक गया था कि तुरन्त ही किसी को रण-क्षेत्र पर भेज सकना सम्भव नहीं था। पर ज्योंही एक टुकड़ी खा-पीकर निवृत्त हुई कि तुरन्त उसे चीलों, सियारों तथा चोरों से रण-क्षेत्र की रक्षा करने के लिए भेज दिया गया। सवेरे कुछ और भी सैनिक आने वाले थे।

अँधेरी रात तो सदा ही भयोत्पादक होती है। और फिर कई दिनों के संघर्ष के उपरान्त मध्य-रात्रि में इस अघोर श्मशान भूमि का संरक्षण करने की बात सैनिकों को रंच-मात्र भी रुचिकर नहीं थी। ज्योंही वे रण-क्षेत्र के निकट पहुँचे कि एकाएक वे स्तंभित-से खड़े रह गए। उस सुनसान गढ़ के खण्डहर में से रह-रहकर उठ रही ज्वालाओं के प्रकाश में उन्होंने उस भयंकर स्थल पर भूतों और पिशाचों को घूमते देखा। उनके छक्के छूट गए। हाहाकार करके उन्होंने भूतों को भगा देना चाहा और अपने भीतर साहस बटोरने की वे भरसक चेष्टा करने लगे। उन्होंने अपनी मशालों की ज्योत को और भी तीव्र किया।

एकाएक एक प्रचण्ड परछाईं उनकी ओर आती दिखाई पड़ी। सिंह की आँखों के समान दो आँखें अन्धकार को भेद रही थीं। इस परछाईं के सिर के पास और ऊपर कुछ वर्तुलाकार-सा चमक रहा था।

जगलों मे से आ रही सियारों की पुकारें और कुत्तों के भूंकने के शब्द सैनिकों के हृदय मे भयानक प्रतिध्वनि उत्पन्न करने लगे।

वह परछाईं उनके पास आ पहुँची—"कौन हो ?" उसने भयंकर स्वर मे पूछा। सैनिक घबडा उठे।

"एक व्यक्ति ने कंधे पर से धनुष उतारकर काँपते हाथों तीर खींचा।

'सावधान !" भार्गव ने कहा।

उनकी विलक्षण आँखें अँधेरी रात मे भी शर संधान और तीर की दिशा को स्पष्ट देख सकीं। डड्डनाथ अघोरी से सीखी हुई कला के अनुसार, मनुष्य की शक्ति के बाहर की ऊँचाई तक वे उछले। तीर उनके नीचे होकर निकल गया।

इस चमत्कार से घबडाकर वे सैनिक मशालें फेंककर नौ-दो-ग्यारह हो गए।

"जाओ, जाकर राजा सुदास से कहना कि उसके मारे हुए और ये मरने को पडे हुए सारे व्यक्ति अब मेरे हैं।"

श्मशान से भी अधिक भयकर वह रण-क्षेत्र पिशाच के अट्टहास्य-सी 'हा-हा-हा' की हास्य-गर्जना से गूंज उठा।

बहुत देर तक परिश्रम करने के उपरान्त गढ के द्वार के सम्मुख राजा भेद का शव मिल सका। सैकडों तीरों से बिंधा हुआ, घोडों के पैरों के नीचे कुचला हुआ शव, दस्यु योद्धाओं ने बडी कठिनाई से पहचाना। भार्गव ने जाकर उस वीर नर के शव को अपना कंधा दिया।

बहुत खोज करने पर भी महर्षि विश्वामित्र के शव का पता न लग सका। उनका रथ टूटा हुआ पडा था। एक घोडा भी घायल होकर छटपटा रहा था, पर महर्षि का कोई चिह्न कहीं दिखाई नहीं पड रहा था।

दस्युओं के एक अग्रणी ने स्वयम् महर्षि को घायल होकर रथ में पडे देखा था।

क्या वशिष्ठ ने उन्हें पकड़ लिया ? क्या सैंकड़ों भरत यहाँ से भाग निकले ? क्या वे उन्हें अपने साथ ले गए होंगे ? या फिर वे इस गढ़ में जल मरे होंगे ?

निदान अरुणोदय होने पर भार्गव अपने डेरे पर लौट आए । घायल मनुष्यों को उन्होंने बचा लिया और मरे हुए महापुरुषों के शवों को उन्होंने अग्निदाह के लिए तैयार किया ।

अपना दुःख भूलकर घायलों की परिचर्या करती हुई अपनी माता से उन्होंने कहा—"अम्बा ! इस पृथ्वी के खण्ड-खण्ड में दुखियों के दुःख हरण करने वाली रेणुका माता के मन्दिर बनेंगे ।"

"पुत्रक ! मैं तो केवल तेरी माता होकर रहना चाहती हूँ । मुझे और कुछ नहीं चाहिए ।"

तीन

दूसरे दिन सवेरे

: १ :

दूसरे दिन सवेरे तृत्सुओं के राजा सुदास ने अपने पड़ाव से विजय प्रस्थान किया। एक सहस्र अश्वारोही, दो सहस्र पदाति सैनिक, चार सौ रथ, दो सहस्र बन्दी और एक सहस्र अन्य स्त्री-पुरुषों ने पड़ाव से निकलकर विजय-घोषणा करते हुए तृत्सुग्राम की ओर प्रस्थान किया। विजय के उत्साह में वे सब पागल हो रहे थे। वर्षों से चल रहे इस महायुद्ध का आज अन्त हुआ था। पुरुकुत्स आदि दस राजाओं का समूह मिट्टी में मिल गया था। उस समूह को प्रेरित करने वाले और इसका नेतृत्व करने वाले विश्वामित्र स्वयम् इस युद्ध में मारे गए थे। भरत, पुरु, भृगु, अनु, द्रुह्यु तथा तुर्वसु और दस्यु छिन्न-भिन्न होकर या तो भाग छूटे थे या फिर मर मिटे थे।

राजा भेद दस्युओं के राजा, शंबर के पुत्र और महर्षि विश्वामित्र के साले थे। इस दस्यु ने सुदास राजा के काका के पुत्र और सेनापति हर्यश्व की पुत्र-वधू शशियसी जैसी आर्य-श्रेष्ठा का हरण करके अक्षम्य अपराध कर डाला था। इस अधर्म से आर्यावर्त को मुक्त करने की प्रेरणा मुनिवर वशिष्ठ ने दी। वर्षों पूर्व आर्यावर्त ने रक्त की नदियाँ बहा कर उग्र तपश्चर्या की थी, आज वही तपश्चर्या फलित हुई थी। राजा सुदास की पालकी के पीछे की पालकी में राजा भेद की स्त्री शशियसी रो-रोकर अचेत हो गई थी, और स्त्री प्रहरियों से संवृत्त उसे तृत्सुग्राम ले जाया जा रहा था।

राजा सुदास परम आनन्द का अनुभव कर रहे थे। उनके जीवन

के केवल दो ध्येय थे—एक ध्येय था राजाओं के बीच सर्वश्रेष्ठ होने का और दूसरा अपने बालसहाध्यायी विश्वामित्र के प्राण लेने का। देवों ने आज उनके दोनों ध्येयों को सिद्ध कर दिया था। आज वे आर्यावर्त के चक्रवर्ती थे। विश्वामित्र कल मारे जा चुके थे। उनके पिता ने दस्युओं के राजा शंबर को जीता था और उन्होंने भरत, पुरु आदि दस राजाओं को जीता था।

राजा सुदास ने अपनी सेनाओं सहित वाद्य-ध्वनियों और जयकारों के बीच अपने डेरे से प्रस्थान किया। मुनिवर वशिष्ठ रण में खेत रहे महारथियों की उत्तर-क्रिया के लिए पीछे रह गए।

भार्गव दूर पर एक वृक्ष के पास खड़े हुए इस जयघोष करती हुई सेना को ध्यानपूर्वक देख रहे थे। उसके जाने पर वे धीर गति से चल कर पड़ाव पर आये, और उन्होंने मुनि से मिलने की इच्छा प्रकट की।

थोड़ी ही देर में एक सैनिक उन्हें पड़ाव के अन्दर होकर पीछे की ओर ले गया। आर्यावर्त का निस्तेज वातावरण वहाँ व्याप्त था। उनके आस-पास न तो युद्ध के चिह्न ही थे और न अशांति का वातावरण था। वहाँ विजय का उत्साह नहीं था और न शत्रुओं के नाश से उत्पन्न होने वाला संतोष ही था। चारों ओर पूज्यभाव से आप्लावित सौम्य और शांत वातावरण वहाँ व्याप्त था।

वशिष्ठ वेदी के पास बैठे थे—क्षीणकाय, ऊँचे, स्वस्थ, श्वेत दाढ़ी और जटा से देदीप्यमान। अपने प्रशांत मुख से मधुर स्वर में वे मंत्रोच्चार कर रहे थे।

भार्गव को वशिष्ठ मुनि की कोई स्पष्ट स्मृति नहीं थी। उन्होंने सौराष्ट्रों और आनर्तों के जंगल में आर्यावर्त की विशुद्धि के सपने देखे थे; उनकी कल्पना से भी अधिक सुन्दर रूप में वे स्वप्न इस क्षण तादृष्ट होकर उनकी दृष्टि के सामने थे। सारी रात परिश्रम करने के उपरांत वे वृद्ध मुनि को नम्रता का पाठ पढ़ाने आये थे, पर वहाँ तो उन्हें एक

नया ही दर्शन हुआ। जैसी उनकी धारणा थी वैसे महत्त्वाकांक्षी तपोनिधि मुनिवर वशिष्ठ नहीं थे, अपनी महत्ता के लोभ से प्रेरित होकर भृगुओं और भरतों को जलाकर भस्म कर देने वाली अग्नि वे नहीं थे, सैन्यों को प्रेरणा देने वाले विनाश के प्रतापी राज-पुरोहित भी वे नहीं थे। इस क्षण वे विद्या और तप के भीतर निःसृत होती हुई विशुद्धि की स्थिर और सम-ज्वाला की भांति लग रहे थे।

भार्गव ने अपना परशु और धनुष-बाण अग्निशाला के बाहर एक वृक्ष के सहारे टिकाकर रख दिया और वेदी के पास जा साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया।

"कौन ?" वशिष्ठ का मीठा ममता-भरा स्वर पूछ रहा था।

"मुझे नहीं पहचाना आपने ? मैं हूँ राम जामदग्नेय।"

"वत्स, तू यहां कैसे, इस समय ?"

वशिष्ठ खड़े हो गए और भार्गव को उन्होंने भुजाओं में भर लिया—"कुछ ही दिनों पहले मैंने सुना था कि तू आनर्त से लौट आया है। बैठ," उन्होंने कहा. "अभी कैसे आना हुआ ?"

"मैं एक याचना करने आया हूँ," भार्गव की चतुर दृष्टि एक निमिष के लिए, एक शब्द के द्वारा वशिष्ठ का अंतरंग जान लेने को अधीर हो उठी।

"कौनसी ?"

"आप मेरे साथ चलकर महर्षि शक्ति और महर्षि विदन्वन्त, राजा पुरुकुत्स और सेनापति हर्यश्व, राजा भेद तथा राजा प्रचंड की उत्तर-क्रिया करवाइए।"

"उत्तर क्रिया ?"

"दो कल युद्ध पूरा होते ही अपने शिष्यों सहित मैं रणक्षेत्र में जा पहुँचा था। सारी रात खोज-टटोलकर इन सब के देह मैंने प्राप्त किये हैं। आज मध्याह्न में आप अपने ही हाथों इन महात्माओं को पितृ-लोक के पथ पर विदाई दें, यही योग्य बात है।"

"मैं अभी ही सब ठीक करने को आ रहा था। और अपने आदमियों को जो मैंने वहां भेजा था उनका क्या हुआ ?"

"रात को मुझे देखकर वे भाग गए। मैं इन सब के देहों को समेट लाया था; उसके अनन्तर वे सवेरे से वहां आकर रण-क्षेत्र में इधर-उधर भटक रहे हैं, पर उन्हें कुछ मिल नहीं रहा है।"

"भार्गव ! पराशर का देह न मिल सका ?" वृद्ध मुनि का स्वर किंचित् अशांत हो गया—"क्या मुनि जी रहे हैं ?"

"वे रथ के नीचे दबे हुए पड़े थे। मैंने रथ उठाकर उन्हें बाहर निकाल लिया। अम्बा उनकी परिचर्या कर रही है।"

अम्बा का नाम सुनकर मुनिवर के मुख पर कुछ बादल-सा छा गया, पर तुरन्त ही वह छाया अदृश्य हो गई—"रेणुका तेरे साथ है ?"

"हाँ, अम्बा को मैं लिवा लाया हूँ।"

"महर्षि ?" मुनि ने पूछा।

"महर्षि का देह हाथ न लग सका, और न कोई चिह्न ही मिल सका है।"

"अरे-अरे, वह क्या हो गया ? कोई बनचर उनके देह को न खींच ले जाय, इसीलिए तो मैंने अपने सैनिकों को विशेष रूप से भेजा है।"

भार्गव को अपनी ओर एकाग्र दृष्टि से देखते हुए देखकर मुनिवर हँस पड़े।

"वत्स ! तू मेरी परीक्षा ले रहा है, क्यों ? आर्यों के बीच मेरे लिए कोई अपना-पराया नहीं है। इसीसे मैंने राजा सुदास को विदा कर दिया है, और यह समेटने का अन्तिम काम अपने सिर ले लिया है।"

भार्गव चुप रहे।

"भार्गव, मेरे लिए आर्यावर्त कभी भी दो नहीं थे और कभी होंगे भी नहीं।"

"इसीसे मैं आपसे यह विनती करने आया हूं। शक्ति और विद-

त्वन्त, भेद और हर्यश्व एक साथ ही यमलोक में जायें, यही आपके गौरव के उपयुक्त बात है।"

वशिष्ठ की निर्मल दृष्टि भार्गव पर स्थिर हो गई।

वत्स ! इस युद्ध में मेरे सम्बन्धियों और मित्र-कुल का बहुत अधिक संहार हुआ है इसलिए कदाचित तू मुझे क्षमा नहीं करेगा। पर बहुत वर्षों के उपरान्त आया है तू ! तू मुझे पहचानता नहीं है। किन्तु एक बात मेरी मान लेना, और तेरा जी चाहे तो किसी कसौटी पर उसे परख लेना। आर्यत्व का उद्धार करने के लिए ही मैंने इस युद्ध का आरम्भ किया था। और उसके परिणामस्वरूप आज आर्यत्व का उद्धार हो सका है। यह आर्यत्व हमें एक सूत्र में बाँध सके, इसी के लिए मैं जी रहा हूँ। महर्षि विश्वामित्र यदि जीवित हों तो उनके गले लग कर, मुझे उनसे यही याचना करनी है कि वे मुझ पर विश्वास रखें। और यदि वे जीवित न हों तो अपने हाथों उनका अग्नि-दाह किया चाहता हूँ। चलो हम वहाँ चलें।"

वृद्ध और युवक दोनों एक-दूसरे के अप्रतिम व्यक्तित्व से आकर्षित होकर साथ-साथ ही रण-क्षेत्र पर गये।

"राम !" वशिष्ठ ने कहा—"यह तो बता कि तूने क्या किया है ?"

: २ :

नदी के तीर पर शक्ति, त्रित्सवन्त, राजा पुरुकुत्स, राजा भेद, प्रचण्ड तृत्सु तथा सेनापति हर्यश्व आदि की छः चिताएँ चुनी गईं। कुछ ही दूर पर अन्य लोगों की चिताएँ भी चुन दी गईं।

शक्ति की चिता का अग्नि-संस्कार मुनि वशिष्ठ ने किया। संस्कार करने से पहले उन्होंने देवों को अंजलि दी।

"देवो ! इन्द्र, वरुण अग्नि, अश्विनो और मरुतो ! मेरी यह आहुति स्वीकार करो। तुम्हारी ही प्रेरणा से आर्यावर्त का उद्धार करने के हेतु मैंने इस रण-क्षेत्र का आरम्भ किया था। वशिष्ठों के कुलपति-पद

के मेरे इस उत्तराधिकारी को तुमने इस यज्ञ में आहुति के रूप में स्वीकार करके मुझे कृतार्थ किया है। पुत्र द्वारा पिता के अग्नि-संस्कार के नियम का अपवाद करके, इस धर्म-कार्य में अपने पुत्र का अग्नि-संस्कार करने का अवसर तुमने मुझे प्रदान किया है। देवो, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ।"

भार्गव ने अन्य सब लोगों का अग्नि-संस्कार किया।

जिन महारथियों ने कल एक-दूसरे के प्राण लिये थे, उनकी देहों का धुँआ एकाकार होकर गगन में लीन होने लगा।

"अब हमें महर्षि को खोज निकालना चाहिए," मुनिवर ने कहा।

"पहले आप चलकर मुनि पराशर से मिल लीजिए।"

"घायल अवस्था में क्या उन्हें उस अमराई के तले सुलाया है?"

"हां"

"मैं वहां नहीं आऊंगा। शायद रेणुका वहां होगी। मुझे देख वह लज्जा से व्याकुल हो उठेगी। उस बेचारी पर बहुत भारी विपत्ति आ पड़ी है। मैं जाकर उसके दुःख को बढ़ाना नहीं चाहता।"

"मुनिवर," भार्गव ने कहा—"आपको बुलाने जब मैं आया तो मैंने भी अम्बा से यही बात पूछी थी। उसने उत्तर दिया कि यदि उसके समान पतिता के निकट जाने में आपको आपत्ति न हो तो उसे रंच-मात्र भी आपत्ति नहीं है।"

वशिष्ठ ने सौम्य दृष्टि से भार्गव की ओर देखा—"भार्गव, रेणुका तो आर्याओं के बीच श्रेष्ठ है। वह जब बच्ची थी, तभी से मैं उसे जानता हूँ। वह तो विशुद्धि का सत्व रूप है। मैंने सदा से उसे पति-परायणता की मूर्ति के रूप में पहचाना है। उसके समान आर्द्र-हृदया कल्याणी समस्त आर्यावर्त में दूसरी कोई नहीं है। उसने यह सब क्यों किया, क्यों उसने महर्षि के द्वारा परित्यक्त होना भी स्वीकार कर लिया, क्यों यह मिथ्या आरोप उसके सिर पर आया, यही मैं नहीं समझ पाया हूँ। यदि मैं युद्ध में व्यस्त न होता, तो यह सब न होने देता।"

भार्गव ने रेणुका के सम्बन्ध की सारी यथार्थ घटना कह सुनाई। पूरी बात सुन लेने पर मुनि विचार मे पड गए।

"वत्स तूने यह जो कुछ किया है सो तो तू समझता ही होगा।"

"हां," मन्द हास्यपूर्वक भार्गव ने कहा—"अपने पिता की आज्ञा का मैंने उल्लंघन किया है। पतिता माता को मैं अपने साथ लिवा लाया हूँ, यही न? नहो, मुनिवर, अपने पिता की मैं पूजा करता हूँ। उनका संकल्प मेरे सिर-आँखों पर है। अम्बा के लिए भी उनका संकल्प वैसा ही शिरोधार्य है। उन्होंने मृत्यु-दण्ड दिया है, वह भी मुझे मान्य है। अम्बा भी उससे प्रसन्न है।"

"पर तू तो उनकी आज्ञा और संकल्प दोनो ही का बराबर उल्लंघन करता जा रहा है।"

"नहीं, मैं जो अम्बा को पिताजी के पास ले जा रहा हूँ सो उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए ही। उनके संकल्प को सार्थक करने के लिए मैं अम्बा का वध करूँगा।"

"पर अपने ही हाथो तू अपनी माँ को मारेगा? यह कैसे सम्भव होगा?"

"मेरे पिता की आज्ञा ही मेरा शासन है। पर मैं अपनी माता का ही पुत्र हूँ—और ऐसी आज्ञा का पालन करके मैं जीवित नहीं रहूँगा।"

वशिष्ठ चकित हो रहे—"तो तू क्या करेगा?"

"मैं भी अपनी माता की गोद मे ही लुढक पड़ूँगा, बालपन में जैसे उस गोद मे लुढक जाया करता था, वैसे ही मृत्यु में भी लुढक जाऊंगा।"

"तू विचित्र लडका है। अच्छा तू जा, मैं आता हूँ। अभी आकर रेणुका से मिलूँगा। तू तो उसे संकल्प की सिद्धि के हेतु लिये जा रहा है। उसमें अधर्म की कोई बात नहीं है, पर यह तो बडा भयंकर व्रत है।"

"मैं व्रत नहीं लेता। मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे प्राण के मूल्य पर भी पूरा करने के लिए ही मुंह से निकालता हूँ।"

वशिष्ठ इस विचित्र युवक की बात सुनकर मुग्ध हो गए।

"देखूं, मैं क्या कर पाता हूँ। पर अभी तो चलकर पराशर से मिल लूं!"

वे दोनों उन अमराइयों की ओर चल पड़े; ठीक तभी घोड़ों का पगरव सुनाई पड़ा, धूल के बगूले दिखाई पड़े और शंखनाद गूंज उठा। हाँ, भृगुओं का शंखनाद ही था, पर इसमें अपरिचित परिवर्तन वशिष्ठ के कानों ने अनुभव किया। "यह किसका शंखनाद है?" वे विचार में पड़ गए—"भृगुओं की किस नई शाखा का यह शंखनाद है?" वशिष्ठ का आश्चर्य बढ़ता ही गया। यह मोहक, दृढ़-निश्चयी तथा वीर, जमदग्नि का पुत्र, क्षीण हो चले भृगुकुल का अवशेष था, यह बात उनके ध्यान में अवश्य थी; पर वह इस नई शाखा से सम्बन्धित है, इस बात का उन्हें पता नहीं था। शंखनाद के उत्तर में भार्गव ने वैसा ही शंखनाद करके प्रत्युत्तर दिया। यह भला कौनसी शाखा थी, जिससे मुनिवर भी अनभिज्ञ थे!

"क्षमा करिए," कहकर भार्गव सामने से आते हुए घोड़ों की ओर बढ़ा।

तभी कोई डेढ़ सौ अश्वारोही वहाँ आ पहुँचे। सुन्दर घोड़ों, चमकते खाणों तथा प्रचण्ड परशुओं के साथ वह सैन्य क्या भेद की सहायता के लिए आया था? मुनिवर को उन योद्धाओं में एक निराला ही तेज, अनुशासन और शक्ति दिखाई पड़ी। कौन हैं ये लोग?

अश्वारोहियों के नायक घोड़ों पर से उतरकर भार्गव के पैरों पड़े—"गुरुदेव!"

"यह युवक और गुरुदेव?" वशिष्ठ विचार में पड़ गए।

"विमद, कूर्मा, उज्जयन्त, पहले गुरुओं के गुरु, मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ के पैर छुओ।"

वशिष्ठ की आँखें खुल गईं। इस युवक को हताश भृगुकुल के दुखी कुलपति का एकमात्र पुत्र समझकर उन्होंने स्नेहपूर्वक उसका स्वागत किया था। उसके व्यक्तित्व-चापल्य, और दीर्घदृष्टि पर वे मुग्ध हो गए थे। उसने सलज्ज-भाव से अपने सम्बन्ध में कुछ बातें भी बताई थीं, जिन्हें सुनकर मुनि के मन में उसके लिए सम्मान का भाव उत्पन्न हुआ था। पर शक्ति से फटे पडते योद्धाओं के वन्दन स्वीकार करते हुए, उसे साक्षात इन्द्र के समान सम्मुख खडा देखकर अकल्पित इतिहासों की प्रतिध्वनियाँ उनके कानों में गूँज उठीं। क्या दाशराज्ञ का उत्तरार्ध आरम्भ हो गया ?

"विमदाचार्य ! विदन्वन्त, महर्षि शक्ति और राजा पुरुकुत्स की चिताएँ वे सामने जल रही हैं, जाकर उन्हें नमस्कार कर आओ। कल राजा सुदास जीत गए, भरत, भृगु और दस्यु हार गए। दाशराज्ञ समाप्त हो गया। जिस आर्यावर्त को हमने देखा और जाना था, उसका तिरोभाव हो गया है।"

"पर मैं तो अभी हूँ," हँसकर मुनिवर ने कहा।

"आप केवल आर्यावर्त के ही नहीं हैं। आप तो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों ही कालों के हैं। चलिए, हम लोग जाकर पराशर मुनि से मिल आएँ। आचार्य ! उन नि.शस्त्र दस्यु-योद्धाओं को तुमने ही अपनाया जान पडता है। वे मुझे रास्ते में मिले थे। वे इस स्थान के मार्ग-दर्शक हैं। उन्हें लेकर चारों ओर घूम जाओ, और महर्षि विश्वामित्र को खोज निकालो। उनका देह अभी मिल नहीं सका है।"

मुनि को अनुभव हुआ जैसे वे पितृलोक में हैं—प्रेरणा-वाहक और सदा के पूजनीय, फिर भी संसार का निर्माण करने में असमर्थ। उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि यह युवक ही आर्यावर्त का भावी है, तो इसके साथ तादात्म्य साधने से ही आर्यावर्त की विजय हो सकेगी।

अमराइयों में सैकडों घायल मनुष्य पडे हुए थे। जत्थे के स्त्री-पुरुष

उनकी परिचर्या कर रहे थे। अम्बा व्यस्त भाव से इधर-उधर घूमती हुई उपचार करने-कराने में संलग्न थीं। जहाँ भी वे जातीं, वहीं दुःखीजन अपना दुःख भूल जाते। रास्ते से जाते हुए एक बटोही ने एक ही दिन में जो ये इतनी नई समस्याएं उत्पन्न कर दी थीं, और इतने जीवनों की जो व्यवस्थापूर्वक रक्षा कर रहा था, उसे देखकर एक नये ही प्रकार का प्रभाव वशिष्ठ के मन में झाँक उठा। मूक हृदय से उन्होंने देवों का आभार माना। छः महीने पहले यदि यह छोकरा आर्यावर्त में आ गया होता तो?

रेणुका आई और एक पतिता की भाँति ही दूर से पैरों पड़ी। वशिष्ठ मुनि गम्भीर भाव से हँस पड़े और ममतापूर्वक पास चले आये।

"रेणुका! तू पतिता नहीं है। वत्स ने मुझे बताया है कि महर्षि की आज्ञा स्वीकार करके तू स्वयम् ही अग्नि-प्रवेश करने का संकल्प कर बैठी है। इस क्षण तो तेरा संकल्प ही तुझे विशुद्ध किये दे रहा है। तेरा कल्याण हो।" मुनि ने आशीर्वचन कहे और रेणुका के सिर पर हाथ रख दिया। रेणुका की आखों में आँसू भर आये, इन महात्मा की दृष्टि में वह पापाचारिणी नहीं थी।

"रेणुका," मुनिवर ने कहा—"ऋषि विदग्वन्त ने अद्‌भुत पराक्रम दिखाया। उसने तेरी कोख को उज्ज्वल किया है।"

रेणुका की आँखों से आँसू टपकने लगे।

"मुनिवर! आपने पराक्रम करवाये और इन लड़कों ने किये, पर इसमें हमारी स्थिति का विचार भी आपने कभी किया है? हम नौ महीने गर्भ धारण करती हैं, आजीवन दुःख झेलकर हम इन बच्चों को पालती हैं, सो क्या इसलिए कि आप उन्हें इस प्रकार सियारों और गिद्धों को खिला दें। मैंने चार पुत्रों को जन्म दिया, उनमें से तीन आपकी इस क्रोधाग्नि में जल मरे। देवों की कृपा ही कहूँ इसे?" रेणुका ने आँसू पोंछ लिये।

रेणुका !" मानो छोटे बालक को समझा रहे हों, ऐसे स्नेह-भाव से वशिष्ठ ने कहा—"अपने मित्रों, शिष्यों और अपने समूचे कुल को मैंने होम दिया है सो क्या मुझे विचार नहीं आया होगा? मैं तो देवों का ऋणी हूँ कि उन्होंने मेरे पुत्र का अर्घ्य स्वीकार कर लिया।"

'पर इन सबने एक दूसरे का क्या बिगाड़ा था? आपने यह युद्ध खड़ा ही न किया होता तो कौनसी हानि थी? ये सब आज स्वजन बन-कर आनन्द भोगते होते। आज इनकी अभागिनी स्त्रियों का क्या होगा? इनके रोते-बिलखते बालकों का क्या होगा?"

"रेणुका, तू तो समझदार है। अधर्म के विनाश के लिए जिसे मरना नहीं आया, वह जिया तो क्या और न जिया तो क्या!"

"अधर्म!" रेणुका क्रोध में भर उठी, "शशियसी को राजा भेद उड़ा ले गया, इसी को अधर्म कहते हैं। और आज कितने आर्य और दस्यु एक-दूसरे के होकर रह रहे हैं? आपके सैन्यों में आर्यों और अनार्यों का भेद ही कहाँ रह गया है! आपने क्या प्राप्त कर लिया इस युद्ध में?" बहुत दिनों के दबे हुए क्रोध को अम्बा ने व्यक्त कर दिया।

"मैं अंधा नहीं हूँ। आर्य और दस्यु पहले केवल साथ रहा करते थे। वर्षों के युद्ध के फलस्वरूप अब वे एकाकार होने लगे हैं," साथ चल रहे भार्गव की ओर देख वशिष्ठ ने इस प्रकार उत्तर दिया, जैसे स्पष्टीकरण कर रहे हों।

"रेणुका, मैं देखता हूँ कि इस लम्बे युद्ध के परिणामस्वरूप आर्य और दस्यु एकाकार होने लगे हैं। पर इस एकाग्रता का स्वरूप सर्वथा भिन्न है। धर्म के बन्धनों को शिथिल करके उत्पन्न किया गया शंकर यह नहीं है। असंस्कृत मनुष्य ज्यों ज्यों धर्म को अंगीकार करता जाय, त्यों-त्यों समानता का अनुभव करता चले, और एक-दूसरे का भान उन्हें होता चले—ऐसा है इस एकाकारता का रूप। आँखें मूंद कर अधर्म को झुकाया नहीं जा सकता। आर्य लोग यदि इस वृत्ति को

अपना लेंगे, तो धर्म-वृत्ति विलुप्त हो जायगी और मनुष्य पशु बन जायगा।"

"आप यदि इस युद्ध का आरम्भ न करते तो क्या हम सब पशु हो जाते?" घायलों से मिलकर मुनि जब उन्हें सम्बोधन कर रहे थे, तभी रेणुका ने बात को आगे बढ़ाया। हरिश्चन्द्र के नरमेध के पश्चात् वह मुनि से मिली ही नहीं थी। हृदय में जो भी भावों के ज्वार उठ रहे थे, उन्हें वह प्रकट करने लगी।

"रेणुका! यदि मैंने युद्ध न घोषित किया होता तो शशियसी पर और अन्य सभी आर्यों पर किये गए अत्याचार शिष्ट माने जाते, आर्यों की रीति-नीति भुला दी जाती और दस्युओं का स्वेच्छाचार सर्वमान्य हो जाता। इसीसे धर्म की रक्षा के लिए मैंने आर्यों को मारने का आदेश दिया। दाशराज्ञ में बहाया गया रुधिर आर्यत्व की विशुद्धि को अभेद्य रख सकेगा। शशियसियाँ ही क्यों, मैं तो दस्यु-कन्याओं को भी आर्याएँ बनाना चाहता हूँ। और अम्बाओं के शशियसी होने का विरोध तो प्राणार्पण करके भी करना होगा," धीरे से, ममतापूर्वक, मधुर स्वर में वशिष्ठ ने सूत्रों का उच्चारण किया।

"रेणुका, तुम जैसी साध्वियाँ धर्म का पालन करने जाते हुए भी, यदि किंचित् मात्र भी शिष्टाचार से विचलित होती हैं तो उसका क्या परिणाम होता है, सो क्या तू नहीं जानती? स्त्री को स्वेच्छाचार का साधन मानना तो अनार्यों का दृष्टिकोण है। यह तो पिशाचों को ही शोभा दे सकता है। आर्य दृष्टिकोण तो यह है कि पत्नी अपने पति के रक्त-मांस में बिंधी होती है और वह उसके पुत्रों की माता होती है। यह नियम भंग हो रहा है, सो तो हम प्रतिदिन देख ही रहे हैं। पर इस नियम को भंग होते देख, यदि हम पुण्य-प्रकोप का अनुभव नहीं करते, तो हमारा आर्यत्व टिकने वाला नहीं है।"

अम्बा ने आँखें मींचकर कहा—"हाँ, सारा भार स्त्री ही के ऊपर तो है।"

"हाँ, स्त्री ही विशुद्धि का मूल स्रोत है। पुरुष जब पतित होता है, तो अकेला ही होता है। पर स्त्री जब गिरती है, तो अपनी समची सृष्टि को लेकर गिरती है।"

भार्गव चुपचाप इस भव्य वृद्ध के सूत्रों को सुन रहे थे। जो सत्य उन्हें दीख रहा था, मुनिवर उसे शब्द-देह प्रदान कर रहे थे। वे स्वयम् धर्म का आचरण कर सकते थे पर मुनि उसे सामने वाले के हृदय में उतार सकते थे।

पराशर का एक पैर कुचल गया था, इस कारण उन्हें असह्य वेदना हो रही थी। आँखें मींचकर, चित्त को एकाग्र करके, चुपचाप वे उस दुःख को सह रहे थे।

"पराशर !" रेणुका ने कहा—"पितामह पधारे हैं।"

पराशर ने आँखें खोलकर नेत्रों के द्वारा ही दादा को वन्दन किया। जैसे-तैसे कर उसने अपने मुख पर एक मन्दहास्य की रेखा झलका दी।

"क्या बहुत वेदना हो रही है ?" वशिष्ठ ने पूछा।

पराशर ने नेत्रों के संकेत से हाँ हाँ कह दिया।

"यहीं रहेगा या मेरे साथ आना चाहता है ?"

पराशर ने इंगित से अम्बा की ओर निर्देश किया।

"आपने मेरे एक पुत्र को मारा है, अब आपके पुत्र को मैंने अपना बना लिया है," दीन वदन से रेणुका ने कहा।

"रेणुका ! तुझसे अधिक अच्छी माता पाने का सौभाग्य भला किसे मिल सकता है ?" वशिष्ठ ने हँसकर कहा।

भार्गव अब तक ऐसे किसी व्यक्ति से नहीं मिले थे। उनके मन का पूज्य-भाव और भी अधिक बढ़ गया। प्रेममयी माता अपने इकलौते पुत्र को उसके स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जिस प्रकार ठण्डे पानी से स्नान करवाती है, वैसे ही उन्होंने विशुद्धि की रक्षा के लिए आर्यावर्त को रुधिर का स्नान करवाया था।

निदान भार्गव जाकर मुनिवर को उनके पड़ाव पर छोड़ आये।

: ३ :

तीनों लोक में यदि सबसे अधिक सुखी कोई था, तो वे थे ऋत्त ऋषि। ऊँचाई में वे बहुतों की अपेक्षा नाटे थे, पर आकार की विशालता में वे सबसे बढ़-चढ़ जाते थे। उनके गाल यों लटका करते थे जैसे दो बड़े-बड़े गोलार्ध बांध दिये गए हों, और उनके मुक्त-हृदय का विशाल हास्य इन दो गोलार्धों को यथासम्भव दूर ही रखा करता था।

चिन्ता और विषाद उन्हें छू भी नहीं गया था। जितना वे चाहते उतना उन्हें खाने को मिल जाया करता था; उनके सिर का सारा भार उनकी स्त्री अपने ऊपर ले लिया करती। उन्हीं के समान विस्तार वाली उनकी मोटी फूली हुई फूल की पंखड़ियों-सी संतति, उनके जीवन को वसन्त की भाँति प्रफुल्लित कर देती।

वे भरत-जाति के ऋषि थे; और दस्युराज दिवोदास के पुत्र राजा भेद के राज-पुरोहित थे। पर देवकृपा से अच्छा खाना, अच्छा पीना और अपने स्त्री-बच्चों के साथ आनन्द का जीवन बिताना, इससे बढ़कर अधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य जीवन में उनके लिए दूसरा नहीं था। कभी एक-आध बार गढ़ में जाकर यज्ञ कर देने के अतिरिक्त अपना अन्य सब कर्तव्य-भार उन्होंने विश्वामित्र ऋषि को सौंप रखा था। राजा भेद तृत्सु-ग्राम रहा करते थे, और बरस-दो बरस में एक-आध बार दो-चार दिन के लिए दस्यु-ग्राम आ जाया करते। अतएव उनके इस निश्चिन्त जीवन में राजा भी कोई बाधा पहुँचाने में असमर्थ था। अपने शिष्यों को वे कभी किसी प्रकार का दुःख न देते। एक आचार्य उन शिष्यों को पढ़ाया करता और जिनका जी चाहता वे पढ़ लिया करते।

पर वे तो पुरानी बातों में रस लिया करते। उन दिनों वे संध्या में बैठकर अपने सखा विश्वरथ की बातें अपने शिष्यों को सुनाया करते। बचपन में कैसे वे उसे अपने कंधे पर बिठाया करते और कमर पर कुदाया करते; अगस्त्य के यहाँ वे दोनों कैसे साथ-साथ पढ़ा करते थे और किस

प्रकार शम्बर उन दोनों को उड़ा ले गया था, शम्बर के गढ में वे स्वयम् कैसे गुरु के रूप मे स्वीकार किये गए थे, विश्वरथ कैसे विश्वामित्र बने, विश्वामित्र मे कितने गुण थे और कितने देव उनके आवाहन करने पर आ प्रकट होते, और विश्वामित्र के और उनके शरीर भिन्न होते हुए भी प्राण किस प्रकार एक था, अगस्त्य की पुत्री रोहिणी के साथ उन्होने कैसे विश्वामित्र का विवाह करवा दिया; शम्बर राजा की कन्या कितनी सुन्दर थी और उसने विश्वामित्र के साथ विवाह कैसे किया—ये सारी बाते वे नित्य-प्रति नये-नये संशोधनो और संवर्धनो के साथ अपने दस्यु शिष्यो को सुनाया करते और वे सब इस महापुरुष का पाद वन्दन किया करते।

दस्युओं पर उनका बड़ा अनुराग था। और वे भी इन्हे बहुत प्यार किया करते थे। दीन दासो के वे आश्रयदाता थे। किसी को भूखा देख लेते तो जब तक वह भोजन न पा जाता, वे आप भोजन न करते। उन का आश्रम नि सहाय भूखे अथवा रोगी दासो का स्वर्ग था, वहाँ उन्हे मुँह-मागा मिला करता था। ऋषि स्वयम् दुखी दासो के आश्रय स्थल थे। बिना मांगे और बिना संकोच किये जो चला आता उसके लिए वे छत्र बन जाते। कोई किंचित् भी अपने दु.ख की कहानी कहने लगता कि उनके विपुल गोलार्धों पर से अश्रुओं के निर्झर बहने लग जाते।

उनके इस संतोषी जीवनमे रण-दुंदुभी ने हलचल मचा दी। आर्यों और दस्युओं के बीच का वैर बढ चला। विश्वामित्र ने भरत दस्युओं का पुरोहित-पद त्याग दिया। राजा भेद युद्ध मे आ उतरे। चिंता के कारण ऋक्ष ऋषि के विशाल मुख पर झुर्रियॉ पडने लगीं।

बरस-पर-बरस बीतते चले और निदान एक दिन युद्ध घर के आंगन मे आकर खड़ा हो गया। इस गढ के सम्मुख महर्षि विश्वामित्र ने महा-व्यूह रचा। एक-दूसरे के गले लगने के स्थान पर मनुष्य एक-दूसरे के गले क्यों दाब रहे थे, यह ऋक्ष ऋषि की समझ मे न आ रहा था। पर

विश्वामित्र जो कुछ भी कहते और करते हैं, वह बात ठीक ही होती है, यह बात भी उनके जीवन में ध्रुव-तारे के समान अटल थी।

अन्तिम दिन आ पहुँचा। राज-पुरोहित के नाते उन्होंने राजा भेद को अन्तिम बार आशीर्वचन कहे। अन्तिम बार वे विश्वामित्र के पैरों पड़े; उन्होंने उन्हें आलिंगन किया। ऋत्त की आँखों से आँसू अविराम बह रहे थे।

उन्होंने गढ़ पर चढ़कर देखा कि एक साथ उछले-पले हुए तथा एक साथ पढ़े हुए सम्बन्धी किस प्रकार एक-दूसरे का संहार कर रहे थे। 'मनुष्य एक विशाक्त प्राणी है, यह उन्होंने गुप्त रूप से देवों को जता दिया।

फिर तो उनके आँसू भी सूख चले। उनके हृदय की गति जैसे अटक गई। महर्षि विश्वामित्र और महर्षि शक्ति के बीच भयंकर द्वंद्व-युद्ध चल रहा था। विश्वामित्र—विश्वरथ—सूर्य के समान तेजस्वी प्रिय वयस्य के शरीर में बाण बिंध रहे थे। उनके प्रफुल्ल नयनों में उन्हें वेदना दिखाई पड़ी। किसी का आश्रय खोजते हुए उनके हाथ को उन्होंने छटपटाते देखा।

ऋत्त ऋषि को समरांगण बहुत अप्रिय था। जहां वीर-गर्जना हो रही हो वहां से वे इतनी दूर जा बैठना चाहते कि वह सुनाई न पड़े; बस इसे ही उन्होंने अपने जीवन का परम सत्य माना था। शस्त्र की टंकार सुनते ही उन्हें अपने सागर के समान पेट के तल में पक्षियों के पंखों की फड़फड़ाहट सुनाई पड़ने लगती। आज इस सबके होते भी आश्रय खोजता हुआ उनके प्रिय मित्र का निष्फल हाथ उनकी आँखों में तैर रहा था। वे गढ़ के कंगूरे पर से उतरकर एक पिछली खिड़की से बाहर निकल आए और छिपते-छिपाते, घुटनों के बल सरकते वे रणक्षेत्र में आ पहुँचे। रथों के पीछे दुबकते हुए, लड़ते हुए मनुष्यों के झुण्डों से दूर भागते हुए, वे उस स्थान पर पहुँच गए जहां विश्वामित्र लड़ रहे

थे उन्होंने भूमि पर गिरे पड़े एक मनुष्य की ढाल अपने हाथ में उठा ली।

उन्होंने विश्वामित्र के एकाग्र नयनों को देखा, उन्होंने जो चाप चढ़ा रक्खा था वह भी देखा। उसमें से जो बाण छूटा था वह भी उन्होंने देखा। और अपने मित्र को अपने प्राण, शिथिल हाथों में धनुष-बाण छोड़कर रथ में गिरते देखा।

ऋक्ष के पैरों में जैसे शक्ति आ गई। उन्होंने अपने महा शरीर को रथ पर चढ़ा लिया और उसकी विशाल ढाल शत्रु के सन्मुख प्रस्तुत कर दी। उनकी पीठ में आ-आकर तीर भिदने लगे और उनके मुँह में वेदना की चीत्कारें निकल पड़ीं।

एकाएक कोलाहल मच गया। महर्षि शक्ति घायल होकर रण में धराशायी हुए थे। शत्रु सैनिक उनकी ओर दौड़ पड़े।

ऋक्ष ने सिर उठाकर देखा। उनके शरीर से रुधिर की सरिता बह रही थी। उन्होंने पास ही खड़े चार-पाँच भरत-दस्यु सैनिकों को सहायता के लिए बुलाया, और अपने जीवन में पहली बार एक अभूतपूर्व चापल्य का अनुभव करते हुए विश्वामित्र को लेकर वे रथ से उतर पड़े। सारथि और सैनिकों से उन्होंने कह दिया कि वे रथ को वहीं ले जाकर छोड़ दें जहाँ युद्ध चल रहा है।

थोड़ी ही देर में गढ़ का मुख्य-द्वार टूट गया। सबका ध्यान या तो गढ़ में प्रवेश करने की ओर अथवा अन्दर प्रवेश करते हुए शत्रुओं को रोकने की ओर गया। ऋक्ष के उस विशाल गोल-मटोल शरीर में अपार बल था। बड़े प्रयत्न से उन्होंने विश्वामित्र को पीठ पर उठाया और गढ़ की पिछली दीवार के सहारे छिपते-छिपते वे अपने आश्रम की ओर मुड़ गए।

ऋक्ष को बहुत घाव लगे थे। रक्त भी अबाध रूप से बह रहा था। उनकी आँखों पर मानो रक्त का आवरण ही पड़ गया था। पर अपने मूर्छित हो पड़े मित्र को शत्रुओं के पंजे से बचाने के अतिरिक्त और

किसी बात की ओर उनका ध्यान नहीं था। विश्वामित्र का शरीर बहुत भारी था। उनके भार से झुककर ऋच दुहरे हुए जा रहे थे और पद-पद पर उनके पैर लड़खड़ा रहे थे। पर यथासम्भव अधिक-से-अधिक त्वरा के साथ वे अपने आश्रम की ओर बढ़ने लगे। उन्हें भागते हुए दस्युओं ने अवश्य देख लिया था, पर इस बात की तो वे कल्पना भी न कर सके कि उनके विश्वरथ को दूसरा कोई उठाकर ले जा सकता है। बीच के चालीस-पचास वर्ष जैसे मन पर से हट गए·······

अगस्त्य के आश्रम में वे विश्वरथ को कन्धे पर उठाये फिरते थे। वह सुन्दर, सलौना, नन्हा-सा, सुवर्ण-केशी बालक था; और वे आप तो ऋच—रीछ थे। पर आज उस बालक का भार बहुत अधिक लग रहा था······

वे दोनों परम मित्र थे। जब विश्वरथ और अगस्त्य की पुत्री रोहिणी कुत्ते के बच्चों के साथ खेला करते तो वह खड़े-खड़े देखा करते, मुँह में अँगुली डाले हुए·········पर आज उसी मुँह से रक्त बह रहा था और उसका हाथ विश्वामित्र के शरीर पर था।

विश्वरथ—दैवी विश्वरथ—देवों का लाड़ला वह विश्वरथ उसका अपना था। स्त्रियां, बालक, मित्र सब यहां से दूर थे, पर वह और विश्वरथ तो एक ही थे। वे दोनों एक-दूसरे के अपने थे······विश्वरथ छोटा-सा था। उसे कहीं कुछ हो न जाय यह चिन्ता उन्हें सदा रहती, और आज भी थी।

अपनी आँखों पर पड़े हुए लाल पट पर उन्होंने रोहिणी, शम्बर-कन्या, अगस्त्य, लोपामुद्रा आदि के मुखों को रह-रहकर तैर जाते देखा। पर वे तो सब व्यर्थ ही थे। विश्वरथ उनके कन्धे पर बैठा था··· पर मार्ग में एक गड्ढा आया और वे दोनों उसमें जा गिरे········· अगस्त्य के आश्रम में जैसे वे गिर पड़े थे, ठीक वैसे ही······

जाने कितना समय बीतने पर ऋच ऋषि को चेत आया। घने जंगल में वे पड़े हुए थे। उन्होंने हड़बड़ाकर आँखें खोलीं। विश्वरथ भूमि

पर पड़े थे—लहूलुहान। उनके स्वयम् के शरीर पर भी रक्त की धाराएं बह रही थीं।

विश्वामित्र ने आँखें खोलीं—'ऋच ! चल तेरे आश्रम पर ही चलें।''

उनके कानों में एक विचित्र स्वर सुनाई पड़ रहा था। हाथों के बल वे उठे—फिर गिर पड़े—फिर उठे। हां, उन्हें आश्रम पर ही ले जाना है। विश्वरथ भला शत्रुओं के हाथ कैसे पड़ सकता है? जैसे-तैसे वे उठ बैठे। दोनों मित्रों ने एक-दूसरे का हाथ पकड़ लिया ···

जाने कब तक वे एक-दूसरे का हाथ थामे रहे। ऋच की आँखें नहीं खुल पा रही थीं। विश्वामित्र गिर पड़े थे—वे चल नहीं पा रहे थे। ऋच ने भूमि पर हाथ फैलाकर टटोला—वे धरती पर पड़े थे। उन्हें किसी भी तरह हो आश्रम पर तो ले ही जाना था। वहां ले जाकर उनकी परिचर्या करनी थी। उनके होते वे राह में कैसे पड़े रह सकते हैं?

ऋच ने बहुत प्रयत्न किया, पर वे विश्वामित्र को उठा न सके। फिर प्रयत्न किया। कुछ उठा पाये थे कि वे फिर गिर पड़े। उन्होंने फिर प्रयत्न किया और उन्हें जान पड़ा कि उनके मुंह से कुछ खारा-खारा-सा उमड़ा आ रहा था। वे चौंक उठे। वे रक्त उगल रहे थे। पर विश्वरथ को—अपने उस प्रिय मित्र को—आश्रम पर जो ले जाना था। उन्होंने विश्वामित्र को उठा लिया—अधिक-से-अधिक बल लगाकर ······वह तो उनका परम मित्र था—प्राणाधार······उनके कंधों पर तो वह सदा से बैठता आया था······

वे आगे बढ़ चले। एकाएक उनका पैर फिसल गया ·····वे और विश्वरथ बराबर नीचे की ओर लुढ़कते जा रहे थे······आश्रम ·· ·· उनका अगस्त्य का···विश्वरथ कन्धे पर क्यों नहीं बैठता?···विश्वरथ ··· · उनके गले में से मानो किसी जानवर का-सा स्वर निकल रहा था। वे विश्वरथ को अब नहीं उठा पा रहे थे क्या होगा। ऋच ऋषि के मस्तिष्क में अंधकार छा गया।

: ४ :

भार्गव और दस्यु-योद्धा गृध्र, ऋच ऋषि के आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ भयानक निर्जनता व्याप्त थी। केवल कोई हृदय-वेधक क्रन्दन स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था। आश्रम में बहुत-से मनुष्य छिपे हुए पड़े थे, पर सामने आने का साहस किसी में नहीं था।

निदान जहाँ से क्रन्दन का स्वर सुनाई पड़ रहा था, उस आंगन में वे जा पहुँचे। एक अत्यंत स्थूलकाय मनुष्य का शव झाड़ के थाले पर, फूलों के ढेर से ढांककर लिटा दिया गया था। पास ही बैठी एक दस्यु-स्त्री सिर पीट-पीटकर रो रही थी।

गृध्र ने उसे पहचान लिया, ऋच ऋषि की पत्नी है।

"भगवती! भगवती!" गृध्र ने कहा।

स्त्री रोती ही रही। अस्तंगत सूर्य की किरणों का प्रकाश उस शव पर और पास ही सोये हुए एक दूसरे व्यक्ति पर पड़ रहा था।

गृध का स्वर सुनकर उस सामने लेटे हुए मनुष्य ने सिर उठाया।

सूर्य की किरणों के सुनहले प्रकाश में भार्गव ने उस मुख को देखा, और तुरन्त पहचान लिया। सुन्दर मुख, विशाल नेत्र, भव्य कपाल, अभेद्य गौरव, सूर्य का आलिंगन करती-सी ममता, जगत् की वेदना से ओत-प्रोत नयनों का तेज। जिनकी स्वस्थता कभी डिग नहीं पाती थी, वे भार्गव भी एक पलक कम्प से भर उठे। वे दौड़कर उन चरणों में जा गिरे—"मामा! मामा!"

वेदना पर नियंत्रण करके महर्षि विश्वामित्र ने आँखें खोलीं—"कौन भाई?"

"मैं राम—भृगुश्रेष्ठ का पुत्र राम। अनूप देश से लौट आया हूँ।"

ओंठ काटकर वेदना को दबाते हुए विश्वामित्र उठ बैठे। ऋषि पत्नी ने उनकी पीठ को सहारा दिया।

"पुत्रक ! तू आ गया ? शत शरद् जियो ! अच्छा ही हुआ। सविता देव ने ही तुझे भेज दिया है। और युद्ध का क्या सम्वाद है ?" उन्होंने पूछा।

"राजा भेद मारे गए। रानी शशियसी को राजा सुदास लिवा ले गए। राजा पुरुकुत्स और प्रचण्ड मारे गए। मेरे बड़े भाई भी मारे गए। विपद् में महर्षि विदन्वन्त और हर्यश्व मारे गए। पराशर मरते-मरते बच गए। भरत और भृगु हार गए।"

उस ऋक्ष के सुन्दर मुख पर से वेदना के चिह्न दूर हो गए।

"राम, वत्स ! हमारी पराजय नहीं हुई है। हमारी तो विजय ही हुई है। वत्स, अब मेरी दो-चार घड़ी ही शेष है। मृगा के उगते ही मैं देह त्याग दूंगा। मैं इसी प्रतीक्षा में था कि देव किसी को मेरे पास भेज दें। अच्छा सुन !"

"जैसी आज्ञा।"

"यह है मेरा बाल-स्नेही ऋक्ष। इसने भेद का पुरोहित-पद ग्रहण किया था। इसके पत्नी है और बच्चे भी हैं। यहाँ कोई तीन सौ भेद के सैनिक छिपे हुए हैं। इन सबकी रक्षा करना।"

"जैसी आज्ञा।"

"चाहे तो इस आश्रम को तू अपना बना लेना, पर ऋक्ष के बच्चे निराधार न हो जाय, यह ध्यान रखना। अरुंधती ! रो मत। राम तुझे कष्ट नहीं होने देगा। यह मेरा भानजा है।"

"राम ! मेरे पास आ। शशियसी को सुदास ले गया है। उसकी शुद्धि करके सुदास उसका विवाह कृशाश्व के साथ कर देगा।"

"वह तो भेद की परम सती है। पूर्व काल में जैसे वशिष्ठ और अरुंधती थे, अत्रि और अनुसूया थे, वैसी ही उसे भी बना देना। भेद के पुत्र शिवि को भी वे साथ ले गए होंगे। यदि तेरा वश चल सके तो उसका पालन-पोषण करना, उसे यथेष्ट शिक्षा देना और राज्य-पद पर

आसीन कर देना।" बोलते-बोलते विश्वामित्र का सांस फूल उठा और उन्होंने रक्त वमन कर दिया।

"मामा! आप घबड़ाएं नहीं, आपके आदेश अक्षर-अक्षर मेरे सिर-आँखों पर हैं।"

"राम, मेरा राज्य-वंश समाप्त हो गया। देवदत्त चला गया, उसके भाई भी चले गए, रोती-अकुलाती रोहिणी भी चली गई, पर उसकी चिन्ता मुझे नहीं है..........आज मेरी विजय हुई है। संयम और तप महान् हैं, पर उनसे भी महानतर है आत्म-समर्पण का पराक्रम। वह पराक्रम करने का श्रेय देवों ने मुझे प्रदान किया है। मैं हारा नहीं हूँ। इस भग्न-प्राय आर्यावर्त के मस्तक पर मैंने एकता का ध्वज-दण्ड रोपा है। मेरे मरण से उस पर सुवर्ण-कलश चढ़ेगा। इस मृत्यु में भी आज मेरी विजय है। इतने वर्षों के युद्ध के फलस्वरूप भरत, पुरु, अनु, द्रुह्यु, तृत्सु और दस्यु आज एक हो गए हैं—संस्कारों और सम्बन्धों में फिर विश्वामित्र को खांसी आ गई और उन्होंने रक्त को थूक दिया। अरुंधती ने उन्हें पानी पिलाया।

"रंग, जाति और गोत्र के भेदों से ऊपर उठकर, अपने संस्कारों और सम्बन्धों में, अपने किये हुए पराक्रमों के गर्व से आर्य आज एक हो गए हैं, और मेरी स्मृति से उठती हुई ज्योति में वे सदा एक होकर रहेंगे।"

फिर महर्षि ने श्वास लिया।

"मेरी विद्या की रक्षा शुनःशेप करेगा। वह तेरा भक्त है। मेरी संतानें तो सब मर चुकी हैं, पर भरतों का राज्य-सिंहासन सूना न रहे, यही देख लेना।"

"किसे बिठाना है उस पर?"

"राम! हरिश्चन्द्र के नरमेध से निवृत्त होकर जब मैं लौट रहा था, तो निर्जन बन में मुझे मेनका मिल गई। कण्व ने हमारी पुत्री का पालन-पोषण किया, राजा दुष्यन्त के साथ उन्होंने उसका विवाह कर

दिया। उनका पुत्र भरत है। ऋषि कवष ऐलूष सब जानते हैं। उसी को भरतों के सिंहासन पर बिठाना ... जो कुछ मैंने कहा है, उसका रंच-मात्र भी शोक नहीं है। अपने रक्त की नदियाँ बहाकर हमने इस समूचे देश की एकता साधी है। भरत जब बड़ा हो जाय, तो उसे मेरा यह संदेशा कह देना—"इस भरत-खण्ड को देव-खण्ड से भी अधिक तेजोमय बना देना।"

"और क्या आज्ञा है?"

"कुछ नहीं, अभी मृगा के उदय होने में बहुत देर है। जमदग्नि से कह देना कि मैं और ऋच बालपन में साथ-साथ सोया करते थे, आज भी साथ ही सोने जा रहे हैं।"

"इन्हें क्या हुआ?" भार्गव ने पूछा।

"मेरा शव वशिष्ठ के हाथ में न जा पाये, इसीसे यह मुझे मेरे रथ में से उठाकर ला रहा था, उठाते समय उसे भी तीर लगे ..." फिर विश्वामित्र खांस उठे, और मुँह से रक्त के झाग निकलने लगे।

"यह स्नेह-मूर्ति अपने प्राणों को संकट में डालकर भी मुझे यहाँ उठा लाया—गिरता-पड़ता, लड़खड़ाता हुआ, मुझे और अपने आपको जैसे-तैसे घिसटता हुआ। मेरे गौरव की रक्षा के लिए इसने प्राण दे दिये हैं।"

"धन्य है!"

"बालपन का यह मेरा साथी है। इस जैसा मित्र ही मुझे साथ मरने का लाभ दे सकता है।"

"मामा! आप जो कहना चाहते थे वह सब कह चुके हो तो मैं मुनि वशिष्ठ को बुला लाता हूँ। वे आप से मिलने को बहुत उत्सुक हैं।"

"मुनिवर? देवों की कृपा का पार नहीं है। तू जाकर उन्हें बुला ला।"

विश्वामित्र के स्वर में विजयनाद गूंज उठा। उनकी प्रफुल्लित आँखें चमक उठीं।

"अरु, मुझे इस झाड़ के सहारे टिका कर बैठा दे। गृध्र, अग्नि-कुण्ड में ईंधन डाल दे। ज्वालाएँ उठने दे। विपुल···" उन्होंने खाँसकर क्षितिज पर दृष्टि गड़ा दी, वे गुनगुना उठे—"ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यम् भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।"

भार्गव वशिष्ठ मुनि को लेकर लौट आये।

"मुनिवर!" विश्वामित्र ने कहा—"शब्दों के द्वारा ही आपको प्रणाम कर सकता हूँ, क्षमा करना।"

"महर्षि विश्वामित्र! मेरे आशीर्वाद हैं तुम्हें," वशिष्ठ ने पास आकर ममत्वपूर्वक विश्वामित्र के बालों को ऊपर हटाकर उनके माथे पर हाथ रखा।

"मुनिवर! अभी-अभी मृगा का उदय होगा, मैं पितृलोक में जा रहा हूँ। जाने से पहले आपके दर्शन करके कृतार्थ हो गया हूँ। मैं आपके ऋण को स्वीकार करता हूँ।"

"मेरा ऋण!" वशिष्ठ ने कहा—"विश्वामित्र, मैं वृद्ध हूँ, फिर भी तुम्हारे सम्मुख क्षमा का प्रार्थी हूँ। तुम्हारे कार्यों में मैंने बहुत अंतराएँ डाली हैं।"

"मुनिवर, आपने कोई अन्तराएँ नहीं डालीं। आप ही के कारण तो मैं हूँ। वशिष्ठ न होते, तो मैं आज केवल विश्वरथ होता। आप ही की स्पर्धा से प्रेरित हो मैंने यह विद्या और तप की सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। आपके पुरोहित-पद का अनुकरण करके ही मैंने राज्य त्याग कर पुरोहित-पद स्वीकार किया। आपकी मंत्र-विद्या की स्पर्धा में ही मैंने यज्ञ-विधि की स्थापना की। आपका वर्ण-भेद का विष उतारने के लिए ही मैंने दाशराज्ञ की चुनौती झेली। आप गगनचुम्बी गिरिराज हैं। आपके पराक्रमों के शिखर लांघकर ही मैं सबल हो सका हूं।"

"ऋषिश्रेष्ठ, देवों ने हमें आँखें दी हैं—पर भिन्न-भिन्न सत्यों का

दर्शन करने के लिए। कौन जाने इसमें क्या रहस्य छिपा है? तुम्हारे सत्य का विरोध यदि न किया होता तो मैं भी आज क्या होता? पर एक ही बात का बड़ा खेद है मन में। मैं तुमसे वय में बहुत बड़ा हूँ। मुझे पितृ-लोक में जाना चाहिए था, पर मेरे बदले आज तुम्हीं चले जा रहे हो।

"मुनिवर मुझे खेद नहीं है। मैं तो कृतकृत्य हो गया हूँ। देवों ने बिन-माँगी ही सिद्धि मुझे दे दी है।" विश्वामित्र को फिर खाँसी आ गई। अपने तेजस्वी होने जा रहे नेत्रों को उन्होंने वशिष्ठ पर टिका दिया।

"वरुण के पुत्र, मुनि-श्रेष्ठ! भगवान् सविता ने मेरी सारी इच्छाएँ पूरी कर दी हैं। उन्हीं की कृपा से मैंने आर्यों और दस्युओं के बीच के भेद को मिटा दिया, शम्बर-कन्या को आर्या बनाया, मानव-मात्र के लिए आर्यत्व को सुलभ कर दिया। वशिष्ठों की विद्या के समक्ष ही मैंने विश्वामित्रों की विद्या को स्थापित किया है। मेरी विद्या का उत्तराधिकारी, शम्बरी का पुत्र शुनःशेप, उसको प्रसारित कर रहा है। जहाँ भी गायत्री का उच्चारण होगा, वहाँ विश्वामित्र की आत्मा मूर्तिमान हो उठेगी।"

विश्वामित्र की आँखें निस्तेज हो गईं, और वे थोड़ी देर चुप रहे। कुछ देर रहकर फिर प्रयत्नपूर्वक वे बोले—

"देवों ने मेरे हाथों मानवों के भीतर के देवत्व को सिद्ध करवाया है। उन्होंने कृपा करने में कुछ भी उठा नहीं रखा। मानव-मात्र के लिए मेरे आँसू बहे हैं और अपने आँसुओं की सरिता में मुझे सत्यों के दर्शन हुए हैं। मानव-मानव के बीच का भेद मैंने मिटाया है। आर्यत्व न तो रंग में ही है और न कुल में है, जहाँ देवों की शरण में जाने की शक्ति है, वहीं आर्यत्व है।"

"मुझे निमित्त बनाकर देवों ने यज्ञ के मार्ग का विधान किया, नरमेध को रोका, और नये आर्यत्व का सृजन किया है।"

"मुनिवर! जब मैं छोटा था तो आर्यों की पाँच जातियाँ थीं—और

दस्युओं का समूह था। आज यदु, पुरु, अनु, द्रुह्यु भरत और तृत्सु एक हो गए हैं। मुनिवर! क्या आपने मान लिया कि मैं भेद के अत्याचारों के पक्ष में खड़ा रहकर अधर्म का समर्थन कर रहा हूँ? नहीं...नहीं।" सब चुप थे विश्वामित्र बड़े प्रयत्न से फिर बोल सके—

"नहीं, नहीं, मैं तो केवल आर्यों और अनार्यों के बीच का भेद मिटाया चाहता था। आज दाशराज्ञ के परिणामस्वरूप आर्य और दस्यु राजा एक-दूसरे के समधी हो गए हैं। सहस्रों आर्य और दस्यु साथ-साथ रहे हैं, साथ-साथ सोये, विद्या सीखी और यमलोक गये हैं; सहस्रों आर्याएं दस्युओं की पत्नियाँ हो गई हैं; सहस्रों दस्यु स्त्रियों ने आर्यों को जन्म दिया है। आज जिसने मुझे गुरु माना है, वही भरत...."

"मानव-मानव के बीच का भेद तो आर्यत्व को कलंकित करता है। जहाँ संस्कार है, वहीं आर्यत्व है। मुनिवर! यह तो आपने ही सिखाया है। रक्त तो सबके भीतर वही है। स्त्री और पुरुष मात्र से सन्तान उत्पन्न होती है।"

"आप शायद मानते हों कि मैंने भ्रष्टाचार करवाया है। आर्यों और दस्युओं के वर्ण-भेद पर रची हुई सृष्टि तो एक महान् असत्य है। मैंने वर्ण-भेद को भुलाकर संस्कार-भेद की शिक्षा दी है। जो तप और विद्या को सिद्ध करे वही आर्य है। इसी देह में जो नवजन्म धारण करता है, वही आर्य है। इसी देह में जो नवीन-संस्कार-जन्म नहीं प्राप्त कर सकता, वही अनार्य है।"

"मुनिवर! सुदूर जंगलों में तप और विद्या से वंचित मानव पशु के समान विचरते रहते हैं।"

विश्वामित्र की आँखें प्रफुल्लित और तेजस्वी हो उठीं। अग्नि की ज्वाला में उनका सुन्दर मुख एक मोहक भव्यता से दीप्त हो उठा।

"मानव तो आर्यत्व के पथ पर चलकर देवत्व पाने को सिरजा गया है.......मुझे चारों दिशाओं में उसकी प्रेरणा व्याप्त होती दिखाई पड़ रही है..........द्विपद पशु विद्या और तप के द्वारा पुनर्जन्म पाते

दिखाई पड रहे है। भगत विश्वामित्र ने जिस मंत्र का दर्शन किया, वह दसो दिशाओ मे सुनाई पड रहा है।" स्वर शिथिल हो गया। कमल-पत्र-सी आँखे मुँद गई—"दस लक्ष योजन तक—काल के अन्त तक—यज्ञ की वेदी के समान यह खण्ड मनुजो को देवत्व प्राप्त कराकर सृष्टि का उद्धार कर रहा है···आओ, मै आँसू पोछता हूं ··मै हृदय से चाप लेता हूं। देवपद की प्राप्ति के दिव्य पथ पर मै इसे लिये जा रहा हूँ · राग-द्वेष मे परे ·· ··कोई रोओ नही ··वरुणदेव व्योम के द्वार खोल रहे है।"

' ·· ' आओ 'ऊपर, और ऊपर ·· स्वर मंद हो चला।

श्वास घुटने लगा। विश्वामित्र गुनगुनाये—"जमदग्नि ! भाई सृगा उदय हो गई ···· "

विश्वामित्र ने माथा ढुलका दिया।

भार्गव ने गिरते हुए ऋषि का शरीर थाम लिया।

मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ की आँखो मे आँसू टपक रहे थे।

· ५ ·

आर्यावर्त पर बिजली आ गिरी। ऋषियो के आश्रमो, राजाओं के ग्रामो, किसानो के पुरवो और दस्युओ की बस्तियो के हृदय बैठ गए। महर्षियो के मंत्र-दर्शन अधूरे रह गए। बनो मे बनवासियो की स्त्रियाँ चक्की पीसते-पीसते रुक गईं।

भयानक, अकल्प्य घटना घटने जा रही थी, उसी की चिन्ता से सबके चित्त उचाट थे और सब एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे।

राम भार्गव पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए पतिता माता को मारने को लिवा ला रहे थे। और माँ को मारकर, इस अधर्म का प्रायश्चित्त करने के लिए अपने स्वयम् के प्राण त्यागने की भीषण प्रतिज्ञा राम ने कर ली थी।

आर्यावर्त की सामुदायिक कल्पना पर भार्गव ने अपना प्रभुत्व

स्थापित कर लिया था। जन-जन के मुँह अभिवृद्धि पाती हुई दंतकथाएं बस्ती-बस्ती में फैल गईं। राम के जन्म के समय पर्वत फट पड़ा था। बचपन से ही उनके भीतर का देवत्व प्रकट हो चला था। दस्यु उन्हें मार न सके—और न पाणि ही उन्हें बेच सके। आठ वर्ष की वय में उन्होंने अकेले ही भेड़िये को मारा था। शुनःशेप को उन्होंने वरुण के दर्शन कराये थे, लोमा के लिए उन्होंने सहस्रार्जुन का गला दाब दिया था और सौराष्ट्र में उन्होंने अपने प्रताप से नदी बहा दी थी। उन्होंने नागों का उद्धार किया था, शार्यातों का संहार किया था, और माहिष्मती में उन्होंने सहस्रार्जुन को आतंकित कर उसकी रानी को अपनी शिष्या बनाया था तथा अघोरियों के गुरु को अपने अधीन कर लिया था। वे हवा में उड़े, पानी पर चले, महादन्ती सिद्धेश्वरी उनके भीतर प्रवेश कर गई। तीस सहस्र यादवों को आर्यावर्त लिवा लाये। रक्त-पित्त से पीड़ित गन्धर्वों का संहार करके, माँ को अपने कंधे पर उचका लाये, अकेले हाथों रातों-रात उन्होंने वीरों का अग्नि-संस्कार किया। विश्वामित्र ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। अब घायल योद्धाओं को धीरे-धीरे वे भृगुओं के आश्रम में भेज रहे थे। सबसे पीछे वे आयंगे—और फिर बलि चढ़ायंगे—अपनी माता की और अपनी।

अकल्प्य, भयंकर और हृदय थर्रा देने वाला था यह पराक्रम!

और पिता भी कैसे? विद्वान, तपस्वी, एकनिष्ठ। और कैसी माता? अम्बा, कल्याणी, अकेले हाथों जो रक्त-पित्तियों की सेवा करती थी और सहस्रों मरते हुए मानवों को जिसने यम के पाश से छुड़ा लिया था। उसने भी पति की आज्ञा को शिरोधार्य किया था। मरते हुए गंधर्वों की परिचर्या करने के लिए उसने पति की आज्ञा का उल्लंघन किया था। अब उसी का दण्ड उसे दिया जा रहा था। मरना उसका धर्म था। और उसे मारना यह पुत्र का धर्म था। कैसी पत्नी और कैसी माता?

अकल्प्य, भयंकर, हृदय हिला देने वाला धर्म-संकट था यह!

मुनिवर वशिष्ठ ने कहा था—"जमदग्नि की प्रतिज्ञा यदि निष्फल

हुई तो महर्षि का वचन टल जायगा। और रेणुका के समान कल्याणी का वध यदि उसका पुत्र करेगा तो यह अधर्म की पराकाष्ठा होगी। इस भीष्म कर्तव्य का पालन करके आर्य-धर्म का गोप्ता जामदग्नेय यदि देह त्याग देगा तो आर्यावर्त का भविष्य नष्ट हो जायगा। आर्यत्व के डूबने की घड़ी आ पहुँची थी। उसकी रक्षा करने के लिए देव-कृपा की याचना की जानी चाहिए। "प्रत्येक आश्रम में यज्ञों के द्वारा देवों का आराधन करो, और भी जिससे जो बन सके करो।" यह सन्देशा लेकर वशिष्ठ सारे आश्रमों के द्वार-द्वार घूम गए, प्रत्येक तपोवन में यह सम्वाद सुनकर हृदय विदीर्ण हो रहे थे।

महर्षिश्रेष्ठ वशिष्ठ, महर्षि कण्व, अगस्त्यों के अग्रणी श्वेतपाद, विश्वामित्र श्रेष्ठ शुनःशेप, ऋषि कवष ऐलुष, आंगीरसों के प्रमुख दीर्घतमस आदि सब भृगुओं के आश्रम में एकत्रित हुए और इस विपत्ति से आर्यावर्त को उबारने का सकल्प करने लगे।

सहस्रों मनुष्य आँसू टपकाते हुए, दिन-दिन निकट आते हुए, इस हृदय-द्रावक नाटक की भयंकर पराकाष्ठा को देखने के लिए आश्रम की ओर चल पड़े। इस व्यथा मे अभिभूत होकर सबके हृदय रेणुका की पूजा करने लगे और राम को अपने अंतर का अर्घ्य चढाने लगे। दो ही महीनों मे वे दोनों आर्यों के श्वास और प्राण बन गए।

: ६ :

भृगुश्रेष्ठ जमदग्नि का मस्तिष्क सदा विभ्रमित ही रहा करता था। वे नीची दृष्टि किये सरस्वती के तीर पर इधर-से-उधर चक्कर काटा करते थे।

अपने आदर्शों के भग्न और क्षुद्र अवशेष उन्हें अपनी कल्पना के सामने पडे दिखाई पडते। उनकी आत्म-श्रद्धा नष्ट हो गई थी, इतना ही नहीं प्रत्युत उन्हें इस बात का भी एक तीव्र भान दिन-रात जलाया करता था कि उन्होंने समग्र-सृष्टि का द्रोह किया है।

जिन भगवती अम्बा को उन्होंने आर्य स्त्रीत्व का परम आदर्श माना था, वे अब पराई हो गई थीं। जिन पुत्रों को उन्होंने कुल-तारक मान रखा था, वे कुल-कलंक सिद्ध हो चुके थे। कवि चायमान चल बसे थे। अथर्व-विद्या का उद्धार करनेवाला कोई नहीं रह गया था। भृगु छिन्न-भिन्न हो गए थे। अनु, द्रुह्यु और तुर्वसु परस्पर मार-काट मचा रहे थे। समूची सृष्टि चूर-चूर हो गई थी। वे केवल यम की कामना कर रहे थे, पर वह भी आ नहीं रहा था। आशा और उत्साह से शून्य जीवन में वे श्वास नहीं ले पा रहे थे।

इतने महीनों के उपरान्त अब राम भी आ पहुँचा था। वह भी अन्य पुत्रों की भाँति कायर और आदर्श-भ्रष्ट था। अभी तक वह लौटकर नहीं आया था। लौटकर आता भी कैसे? वह महर्षियों की सन्तान नहीं था, वह तो कुल-कलंकों का वंशज था। परिचित भृगु अग्रणी मर-खप गए थे। परिचित स्वर अनसुने हो रह जाते। चार पुत्रों में से तीन चले गए थे। चौथा अदृष्ट हो गया था—उनकी आज्ञा का पालन करने में अपने को कायर और असमर्थ पाकर। वह अभी लौटकर नहीं आया था।

आश्रम में कुछ विचित्र हलचल दिखाई पड़ रही थी। अपरिचित मनुष्य अनजाने शस्त्र लेकर आते-जाते दिखाई पड़ते। आस-पास के जंगल बड़ी शीघ्रता से कट रहे थे, और स्थान-स्थान पर नई झोंपड़ियाँ बनती जा रही थीं। नदी के उस पार भी झोंपड़े खड़े दिखाई पड़ते थे। स्वप्नाविष्ट मनुष्य जिस प्रकार किसी अचल सृष्टि को उलट-पुलट होते देखकर उसे भूलता जाता है, वैसे ही जमदग्नि इन नये परिवर्तनों को देखते और उन्हें भुला देते। उनके साथ जैसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। वे तो यमलोक को प्रस्थान किया चाहते थे। पर यमराज अभी आ नहीं रहे थे।

एक वृद्ध मनुष्य आकर उनके पैरों पड़ा करता था। कोई एक प्रतीप भी आया करता था। लोमा—हाँ, सुदास की बहन—और कोई

विशाखा उनके लिए भोजन लाया करती थी। ये सपने के समान उन्हें बहुत ही अरुचिकर जान पड़ते थे।

वे तो इन सब से दूर जाना चाहते थे—यमलोक में। पर अभी निमंत्रण नहीं आया था। वे स्वयम् भृगुओं के मात्र क्षुद्र अवशेष थे, एक प्रतापी कुल के कुठार-स्वरूप थे।

विमद आया और संवाद लाया कि राम रेणुका को लेकर आ रहा है। उसने कहलाया था कि 'पिताजी के चरणों में मैं अम्बा का शिरच्छेद करूंगा।" क्षीण हो चले जमदग्नि की तेज आँखों में जैसे तेज आ गया। एक पुत्र था अवश्य, जो कुल का गौरव था और पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार था। जलते हुए जंगलों पर जैसे वृष्टि हो जाती है, वैसे ही हृदय की ज्वालाओं की सर्वभक्षी लपटें पल-भर के लिए कुछ कम हो चलीं।

विमद और लोमा कभी-कभी राम के पराक्रम की बात छेड़ा करते थे। पर जमदग्नि उसमें कोई रस न लेते।

राम की भीष्म प्रतिज्ञा से आश्रम में हाहाकार व्याप गया था। 'पिताजी की आज्ञा है अतएव अम्बा का शिरच्छेद करूंगा, और माता का वध करके मैं जी नहीं सकूँगा।' राजा भद्रश्रेण्य, प्रतीप और विमद आदि के हृदय उचाट हो गए। अम्बा की परम पवित्र सेवाओं की बातें सुनकर जमदग्नि के हृदय को स्पर्श करने के उन्होंने बहुत प्रयत्न कर देखे, पर कोई भी सफल न हो सका।

दाशराज्ञ समाप्त हो गया था। भृगु, भरत, अनु, द्रुह्यु आदि भागकर चले आ रहे थे। अनुदेश में आये हुए स्त्री-पुरुष भार्गव के शिष्य होने के कारण, जन्म से भृगु न होते हुए भी भार्गव के नाम से ही पुकारे जाते थे।

लोमा और प्रतीप भार्गव की शिक्षा के फलस्वरूप व्यवस्था के कार्य में प्रवीण हो गए थे। आश्रम अब व्यवस्थित हो चला था। मंत्रोच्चार और शिक्षा, शस्त्र-विद्या अस्त्र-विद्या का अभ्यास आरम्भ हो गया।

था। घोड़ों और गायों का शिक्षण और प्रतिपालन व्यवस्थित रूप से होने लगा था। भार्गव की पद्धति के अनुसार नये योद्धाओं के शतक तैयार होने लगे थे।

विमद के साथ और उसके पश्चात् भी दिन-प्रतिदिन, स्वस्थ हो चले घायल जन तथा लंगड़े-लूले आश्रम में आने लगे। साथ-ही-साथ वे दस्यु योद्धा भी, जो रण में से भागकर इधर-उधर जा छिपे थे, भार्गव के शिष्यपद को स्वीकार कर आश्रम में आ पहुँचे। जन-जन के मुख पर अम्बा की प्रशंसा और भार्गव की भक्ति के गीत थे। अनेकों ने उनकी परिचर्या और प्रेरणा से पराजय को भूलकर फिर से मनुष्यत्व प्राप्त कर लिया था।

दिन और रात नये आये हुए समूहों का स्वागत कर उन्हें आश्रम की व्यवस्था में समाविष्ट करने का काम लोमा, प्रतीप और विशाखा मिलकर किया करते थे।

पर किसी के भी जी में निश्चिंतता नहीं थी। भार्गव की भीष्म प्रतिज्ञा आठों पहर उनके हृदय को कुरेदा करती थी। अधिकांश वृद्ध जमदग्नि को क्रोध की दृष्टि से देखा करते थे। सभी निःश्वास छोड़कर 'अम्बा! अम्बा!' का जाप किया करते थे।

जो भृगु अम्बा को कुलकलंकिनी मानते थे, वे भी भक्तिपूर्वक उनके आने की बाट जोह रहे थे। उनका नाम तक लेने में जिन्हें छूत लगती थी, ऐसे लोग भी अब उनके वात्सल्य का कीर्तन करने लगे थे।

लोमा, भद्रश्रेण्य और विमद बड़ी चतुराई से जमदग्नि के निकट अम्बा की चर्चा करने लगे। पर उनका नाम सुनते ही जमदग्नि काँप उठते और एक ही प्रश्न पूछते—"राम कब आयगा?"

रेणुका का नाम जमदग्नि की जिह्वा पर कभी न आता। पर उनके मन से उसका ध्यान कभी दूर नहीं होता था।

अम्बा की बलि चढ़ाये बिना जमदग्नि का प्रसन्न होना सम्भव नहीं था। और अम्बा की बलि देकर जीना भार्गव ने अस्वीकार कर दिया

था। वृद्ध जमदग्नि हिमालय के समान निश्चल पड़े हुए थे।

धीरे-धीरे रण-क्षेत्र पर से सभी लौट आये। डोली में बैठकर पराशर मुनि आये। रण-क्षेत्र से बटोरे हुए कंकण और कुण्डलों से धनाढ्य होकर वृश्चिक और उसका कुटुम्ब भी आ पहुँचा। सबकी आँखों में सम्मुख आ रहे भयंकर क्षणों के अशुभ चिह्न नाच रहे थे।

धीरे-धीरे समस्त आर्यावर्त वहाँ इस प्रकार आ जुटा जैसे कोई यात्रा का प्रसंग हो। सबके अन्त में महर्षि-वृन्द भी चिन्तातुर वदन लिये आ पहुँचा। यह केवल एक महर्षि का या किसी एक वशिष्ठ कुल का प्रश्न नहीं था। समूचे आर्यत्व की यह अंतिम कसौटी की घड़ी थी। विश्वामित्र के पुत्र शुन:शेप ने महर्षियों का स्वागत किया। लम्बी मंत्रणा के उपरान्त महर्षिगण वशिष्ठ-प्रमुख जमदग्नि के पास गये।

"भृगुश्रेष्ठ, शतजीव!" वशिष्ठ ने आशीर्वाद दिया। जमदग्नि की दृष्टि निश्चेतन सी ही बनी रही। वे कुछ पहचान न सके।

"मैं हूँ वशिष्ठ, महर्षि जमदग्नि! मुझे नहीं पहचाना?"

जमदग्नि काँप उठे और उनके पैरों पर गिर पड़े।

"महर्षि, क्या मेरी विडंबना करने आये हैं? पधारिए, मैं महर्षि नहीं हूँ।"

"आज तीसरे पहर रेणुका आ पहुँचेगी," वशिष्ठ ने कहा, और जमदग्नि के ओठ काँप उठे। महर्षि की ओर पीठ फेरकर वे वहाँ से चले गए। मानो किसी तीव्र वेदना से पीड़ित हो, ऐसे उनका सिर हिल रहा था।

मुनिवर वशिष्ठ के हृदय में निराशा व्याप गई, जमदग्नि के लिए अपनी प्रतिज्ञा को लौटा लेना सम्भव नहीं था। और महर्षियों की प्रतिज्ञा तोड़ी भी कैसे जा सकती है।

सबकी आँखों में आँसू भर आए।

आश्रम में एकत्रित जन-समूह सिसकियाँ भरता हुआ, आश्रम के प्रवेश मार्ग पर आकर खड़ा हो गया। उनके प्राण भार्गव आ रहे थे। पर

उनके सामने देखने और उनका स्वागत करने का साहस किसी में भी नहीं था।

कभी जिसकी कल्पना भी किसी ने नहीं की थी, ऐसा भयंकर क्षण निकट आता जा रहा था। देवाधिदेव-से गुरुदेव पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए परम कल्याणी अम्बा का शिरच्छेद करने वाले थे, और फिर—फिर—वे स्वयम् भी नहीं जियेंगे। भगवती लोमहर्षिणी की आँखें मानो फटी-सी रह गई थीं।

गर्जन करते हुए प्रमत्त घोड़े की पद-चाप पास आती सुनाई पड़ रही थी; यम के महर्षि के पगरव से भी अधिक भयंकर थी वह।

सब लोग रो पड़े। स्त्रियां सिर पीटने लगीं।

भार्गव के लिए प्रतिज्ञा तोड़ना सम्भव नहीं था। और भृगुश्रेष्ठ अपनी एक-मात्र इच्छा का त्याग कर सकें, यह भी सम्भव नहीं था।

गर्जन करते घोड़े की पद-चाप और भी पास आ गई। सबके हृदय फट पड़े।

उड़ती हुई धूल के बगूले वात्याचक्र के समान छा गए। काले बादलों के समान प्रचण्ड घोड़ा और परशु की विद्युच्छटा धूल के बादलों में चमक रहे थे। आंधी के वेग से घोड़े ने आश्रम में प्रवेश किया। लोग आक्रन्द कर रहे थे। फूलों की गेंद के समान अम्बा भार्गव के हाथों में थीं। रास्ते पर और आश्रम में सहस्रों पुरुष, स्त्रियाँ और बालक आक्रन्द करते हुए देख रहे थे।

"अम्बा! अम्बा!!" सबके आर्त हृदय पुकार उठे। पर्णकुटी के आगे विमद ने घोड़ा सम्हाला और भार्गव उतर पड़े। उनकी विकराल आँखें देखकर विमद के बोल गले में ही अटक गए।

भार्गव अम्बा को दोनों हाथों में लेकर छलांग मारते हुए आश्रम के पिछवाड़े जा पहुंचे, जहाँ जमदग्नि चक्कर काट रहे थे। उनके पीछे-पीछे विमद, भद्रश्रेण्य, प्रतीप, कूर्मा और उज्जयन्त आदि भी आ पहुँचे; लोमा और विशाखा वहाँ पहले ही से रोती हुई खड़ी थीं। महर्षिगण

वहाँ चिंतातुर मुख किये बैठे थे। वशिष्ठ मुनि खड़े हो गए।

भार्गव ने आकर अम्बा को पिता के चरणों में रख दिया। अम्बा खड़ी हो गईं और जमदग्नि के पैरों पड़ीं।

जमदग्नि बावले-से होकर उन्मत्त तेज-भरी आँखों से निहार रहे थे—अम्बा से भार्गव की ओर और भार्गव से अम्बा की ओर।

"पिताजी! पिताजी! अम्बा को लिवा लाया हूँ," गम्भीर स्वर में भार्गव ने कहा।

जमदग्नि बोले—"राम! तू आ गया?" उनकी आँखें निस्तेज हो गईं। थर-थर काँपते हुए उन्होंने आँखें मींच लीं।

"पिताजी! पिताजी! मैं राम, अम्बा को लेकर आ गया हूँ। भगवती अम्बा को।"

जमदग्नि ने आँखें खोलीं, और चारों ओर इस प्रकार देखते रह गए जैसे उनका श्वास रुँध रहा हो।

सारा समूह निःशब्द, अनिमेष देखता रह गया।

जमदग्नि की आँखों में तेज उभर आया, किसी ऊँचे गिरि-शृंग के समान राम पिता और माता पर आरूढ थे। उनके मुख पर एक अँधेरा बादल घिर आया था। उनकी दोनों आँखों से वह्नि की सरिताएं बह रही थीं।

"पिताजी! मैं राम अम्बा को लेकर आ गया हूँ। मैंने आपकी आज्ञा का पालन किया है।"

जमदग्नि की आँखों में कुछ चैतन्य-सा जाग उठा। उन्होंने अपने पैरों के पास हाथ जोड़कर घुटनों पर पड़ी हुई रेणुका को देखा, और इस प्रकार पीछे हट गए मानो असह्य ग्लानि से काँप उठे हों।

"राम! राम! तू मेरा पुत्र है?" उनके स्वर में वेदना थी।

"हाँ, पिताजी," राम ने संयमपूर्वक उत्तर दिया।

"मेरी आज्ञा का पालन करेगा न?"

"हाँ, पिताजी।"

"इस अनार्या का शिरच्छेद कर," जमदग्नि ने कहा।

मेदिनी काँप उठी। सिसकियों ने उस निःशब्दता को थर्रा दिया।

"हाँ, पिताजी," राम ने परशु उठाकर कहा—"अम्बा! अम्बा! कल्याणी, पिताजी की आज्ञा तेरे और मेरे सिर पर है। गरदन प्रस्तुत कर...." भार्गव के स्वर में मार्दव था—अथाह प्रेम से परिप्लावित।

"बेटा! यह ले। तेरे हाथों मेरी मृत्यु हो, केवल यही मेरी याचना है।"

वशिष्ठ मुनि पास सरक आए—"भृगुश्रेष्ठ जमदग्नि!" उन्होंने कहा।

जमदग्नि सचेत होते जा रहे थे और रेणुका, वशिष्ठ मुनि तथा राम की ओर क्रम-क्रम से देख रहे थे।

"राम!" जमदग्नि ने कहा—"सृष्टि के आदिकाल से आज तक आर्य-जीवन में यह कभी देखा-सुना नहीं गया कि कुलपति की अर्धांगिनी ने कभी पर-पुरुष का सेवन किया हो। वह मैंने देखा है अपने ही कुल में, अपने ही घर में। आर्य-जीवन की शुद्धि की रक्षा करने के लिए धर्म का अन्तिम बार पालन किया चाहता हूँ। मैंने अनेक कुलटाओं का शिरच्छेद किया है और करवाया है। आज अन्तिम बार फिर अपने उसी धर्म का पालन किया चाहता हूं।"

सिसकते हुए रेणुका ने आँखों पर हाथ दे लिये। भार्गव का मुख गहरा लाल हो गया। उन्होंने काँपते स्वर में कहा—"पिताजी! मैं भी पुत्र धर्म का पालन कर लूं—अन्तिम बार। पर—"

जमदग्नि चकित होकर सुन रहे थे।

"मैं अम्बा को मारूँगा अवश्य। पिता की आज्ञा को माथे पर चढ़ाऊँगा। किन्तु उसके अनन्तर फिर मैं आपके पितरों में जाकर नहीं मिलना चाहूँगा। मैं भी अम्बा का अनुगमन करूँगा। पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके अथवा माता की हत्या करके मैं आर्यत्व का उद्धार

नहीं कर सकूँगा और यदि वैसा भी कर सकूँ, तब भी मुझे फिर जीना नहीं है।'

"तू मरना चाहता है?" पुत्र की बात का अर्थ समझकर धीरे से जमदग्नि ने कहा।

'भृगुश्रेष्ठ! अब तक आपका पुत्र होकर मैं भान भूला हुआ था। अब आपके कहने से मैं भले ही आर्य हो जाऊँ, पर अपनी दृष्टि में तो मैं चाण्डाल से अधिक अधम हो जाऊँगा। जीवन-भर आपने आर्यत्व पर गर्व किया है। पर उसके सामर्थ्य से आप सदा ही भाग छूटे हैं। यदि आप चाहते तो महर्षि और मुनिवर के बीच के कलह को शांत कर सकते थे। आप यदि चाहते तो पलक मारते में आर्यावर्त को एक कर सकते थे। आप यदि चाहते तो जिस अम्बा ने जगत् को उज्ज्वला है उसके अंगीकार किये हुए परम धर्म को समझकर उसके बल से सब को बचा सकते थे। केवल आर्य-गौरव के काष्ठ-पिंजर को आपने आर्यत्व मान लिया है। उसके भीतर के प्राण को आपने नहीं पहचाना है। आपने औरों की आशा के आधार पर अपने जीवन की रचना की है; आपने किसी की भी आशा पूरी नहीं की।"

इस तेजस्वी स्वरूप और बहती हुई वाग्सरिता पर मुग्ध होकर वशिष्ठ बीच में नहीं बोले।

"राम! राम!" अम्बा खड़ी होकर राम से चिपट गई—"यह क्या कह रहा है?"

"सत्य! जो तुममें से किसी ने भी अब तक सुना नहीं था वह। मैं तेरा शिरच्छेद करता हूँ—पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए। इसके उपरान्त फिर मैं तुम्हारा नहीं हूँ। भृगुवंश में फिर मैं देह धारण नहीं करूँगा।" भार्गव के प्रौढ कण्ठ-स्वर की प्रतिध्वनि चारों ओर व्याप गई—आकाश में हलकी-सी गर्जना हुई, मानो उस स्वर का प्रतिघोष ही गूँज उठा हो।

"...आप," उन्होंने प्रौढतर स्वर में पिता को सम्बोधन किया,

"आपने अम्बा के समान सती को कुलटा कहा है। अपने चार-चार पुत्रों को आपने उसे मारने के लिए भेजा। पर आप अपने पैरों चलकर यह देखने नहीं गये कि वह किन गान्धर्वराज के चरणों की सेवा कर रही थी।"

"राम, चुप रह!" रेणुका ने बीच में आकर उग्र स्वर में कहा।

"मैं चुप नहीं रहूँगा। मेरे पास आँखें हैं, तुम सब अन्धे हो। ऐसा न होता तो मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए रक्त-पित्तियों की परम कल्याणी अम्बा को पापाचारिणी न मान बैठते। अधर्म आचार में नहीं है, पर उसके पीछे रहने वाली दृष्टि में है। तुममें से किसी भी अन्धे को यह नहीं सुझाई पड़ा।"

रेणुका रोती आँखों से बीच में आ पड़ी—"चुप रह राम! क्या बक रहा है?"

"मैं चुप कैसे रह सकता हूँ? आर्यत्व के मिथ्या अभिमान में आकर तुमने आर्यत्व का मूलोच्छेद किया है, और अभी और भी किया चाहते हो," भयंकर स्वर में राम ने पिता को लक्ष्य करके कहा।

जमदग्नि के ओंठ काँप उठे। रेणुका की मीठी आँखें उग्र हो उठीं। उसने कसकर राम को एक थप्पड़ मार दिया। कठोर स्वर में उसने पूछा—"राम, तू मेरी कोख को लजाना चाहता है?"

राम की अंगारों-सी आँखें सबको मुग्ध कर रही थीं, तिस पर भी रेणुका अडिग आँखों से उसे ललकार रही थी। क्षणमात्र में ही वह शान्त हो गई।

"बेटा! पिता की मान्यता को लोप रहा है। पैरों पड़कर क्षमा मांग।"

भार्गव सिंह के समान गर्व-भरे-से उग्रतापूर्वक देखते रह गए।

"राम! छोड़ दे तू अपना अभिमान।" ममता का अप्रतिरोध्य अधिकार उसके स्वर में था।

भार्गव की दृष्टि निर्मल हो चली।

"बेटा, यह मेरी अन्तिम आज्ञा है इसके पश्चात् तू मेरा शिरच्छेद कर।"

भार्गव पिता के चरणों में गिर पड़े—उग्रतापूर्वक बाध्य होकर।

रेणुका समझ गई। उसने ममतापूर्वक उसकी पीठ पर हाथ रख दिया।

"यों गर्विष्ठ भाव से नहीं। तू तो धर्म का त्राता है। पुत्र का सिर तो पिता के चरणों में ही हो सकता है," उसने कहा।

भार्गव की उग्रता तिरोहित हो गई। उन्होंने पिता के चरणों में सिर रख दिया और गद्गद कण्ठ से कहा—"पिताजी! क्षमा करिये।"

जमदग्नि पूर्ण रूप से सचेत हो चले थे। उनकी आँखों से आँसू टपक रहे थे।

वे नीचे झुक आए, और बेटे को छाती से चांप लिया।

"बेटा! शत-शरद जियो।"

"पिताजी! मैं आपकी आज्ञा का पालन करता हूँ," कहकर वह रेणुका की ओर मुड़ा।

"राम!" जमदग्नि ने धीमे स्वर में कहा—"तेरी बात सच है, मिथ्या अभिमान से नहीं, सामर्थ्य के द्वारा ही आर्यत्व की रक्षा सम्भव है।"

भार्गव ने परशु उठाया।

"पुत्र यह तू क्या कर रहा है?" मानो नींद में से जागे हों, ऐसे जमदग्नि पूछ उठे।

"आपकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। अम्बा का वध कर रहा हूँ।"

"रेणुका, रेणुका," रुदन के स्वर में जमदग्नि ने कहा—"मैंने तेरा वध करवाया। पर तेरे पुत्र ने तुझे जिला दिया। राम, परशु फेंक दे। अपनी प्रतिज्ञा को मैं लौटा लेता हूँ। रेणुका—"

पैरों में पड़ती हुई रेणुका को उन्होंने उठा लिया। जन-जन की आँखों से आँसू टपक रहे थे।

चार

वशिष्ठ मुनि को अर्घ्यदान

: १ :

सन्ध्या ढल रही थी। भृगु के आश्रम में चारों ओर प्रवृत्ति का चाञ्चल्य था। सरस्वती के तीर पर भार्गव बैठे हुए थे। उनके सामने विश्वामित्र की मंत्र-विद्या के अधिकारी, विद्यानिधियों में श्रेष्ठ, सौम्य सुन्दर, तेजस्वी शुनःशेप ऋषि बैठे थे। उनके पास ही कवष ऐलुष बैठे थे—अधेड़ वय, बड़ी आँखें, बड़ी नाक और बड़े-बड़े कान; निश्छल और खरी बात कहने वाले वे विश्वामित्र के प्रिय शिष्य थे। उनके पास ही अधेड़वयी राजा दुश्यन्त बैठे थे; माधुर्य के सत्व सी विश्वामित्र की पुत्री शकुन्तला के वे पति थे और उनके दौहित्र बालक भरत के वे पिता थे। वे यदुकुल के राजा इस क्षण विचार में पड़े हुए थे।

लम्बी और गम्भीर बातों में वे चारों व्यस्त थे। निदान शुनःशेप ऋषि ने कहा - "सब प्रकार से विचार कर लेने के उपरान्त मुझे तो यही समझ में आता है कि भरत को भरतों के राज्य-पद पर स्थापित कर देना चाहिए। जितना ही अधिक विलम्ब हो रहा है, उतनी ही हमारी शक्ति अधिक क्षीण हो रही है।"

"महर्षि की अन्तिम आज्ञा को शिरोधार्य करना मेरा धर्म है," दुष्यन्त ने कहा—"पर मेरा मन नहीं मानता है। भरत इस समय हत-वीर्य हो गए हैं। उनके पारस्परिक विग्रहों और द्वेषों में मैं अभी नहीं फँसना चाहता हूँ।"

"राजा सुदास अब चक्रवर्ती हो गए हैं। भरत-जाति-संघ के कुछ राजा तो उनके सामंत होने के लिए तैयार भी हो गए हैं। भरत को हम यदि इस समय राज्य-पद पर स्थापित कर देंगे, तो वे सब हम पर टूट

पड़ेंगे,'' कवष ऐलुष ने उक्त कथन का समर्थन किया। "और भरत आज इधर-उधर भूले-भटके-से घूम रहे हैं। जहाँ वीरता की ज्वाला थी वहाँ अब हताशा की राख शेष रह गई है।"

'क्या यह सब मैं नहीं जानता हूं ?'' शुन शेप ने अपने मीठे स्वर और अपूर्व उच्चारण से प्रश्न किया, "पर पराजय से भी उद्धार पाने का कोई मार्ग है या नहीं ?"

"ऋषिवर !" दुष्यन्त ने कहा, "आपको अभी भी हमारी पराजय का पूरा भान नहीं है। मैं तो नित्य योद्धाओं के बीच ही घूमता हूँ, और उनकी मनोदशा भी जानता हूँ। सभी शरीर, मन और पराक्रम से थक चुके हैं। उत्साह में किसी को भी कोई रस नहीं रह गया है। कल तक जिसको सब वीरता कहते थे, उसी में सबको आज मूर्खता दिखाई पड़ती है। सहचार किसी को भी पसंद नहीं है। सब अपने-अपने लाभ की सोच रहे हैं।"

"राजन,' शुन शेप ने कहा—"यह जो बातचीत हम कर रहे हैं, यह भी पराजय का ही प्रतिफल है। हम हार गए हैं—नितान्त हार गए हैं। इसमें तो किसी को रंच-मात्र भी संदेह नहीं है। पराजय छाती पर चढ़कर हमारी आत्म-श्रद्धा को कुण्ठित कर रही है। आप अपने पुत्र को चक्रवर्ती पद सौंपने से डरते हैं। कवष ऋषि के मन में भी संशय है।"

"ठीक बात है," सखेद शुन शेप ने कहा—"संशय हमारे प्रत्येक ध्येय को विदीर्ण कर रहा है। मेरे मंत्र-गान भी कुण्ठित हो गए हैं। भरतों के हृदय में जय-घोष के प्रतिशब्द अब नहीं गूंजते। इसी का नाम है पराजय। पर इससे छुटकारा पाने का उपाय क्या है ?"

"आप-से वीरों की यह कसौटी है," भार्गव ने मंद हास्य के साथ पहली ही बार मुँह खोला।

"इस समय वीरों का कौन ठिकाना है ? गुरुदेव ! इस विचार को इस समय त्यागे बिना निस्तार नहीं है," दुष्यन्त ने कहा।

"परसों जो महर्षिगण यहाँ से गये हैं, उन्हें भी इस शैथिल्य से छुटकारा पाने का मार्ग नहीं सूझ रहा था," कवष ऋषि ने कहा।

"वशिष्ठ मुनि स्वयम् भी कह रहे थे कि तृत्सुओं में अब उत्साह और आत्म-श्रद्धा नहीं रह गई है। उन्होंने आर्यत्व की साधना की है अवश्य, पर उसे टिकाये रखने की शक्ति अब उनमें नहीं रह गई है। दाशराज्ञ तो विजित और पराजित दोनों ही को हरा रहा है।"

"तो फिर आप सब लोगों की यदि यही इच्छा हो, तो इस प्रकरण को यहीं समाप्त किया जाय। देखा जायगा, समय स्वयम् ही अपना काम करेगा," शुनःशेप ने निदान स्वीकार कर लिया।

"निष्कर्म बैठे रहना भी कर्म तो है ही," ऋषि ऐलुष ने कहा—"कभी-कभी इसकी भी आवश्यकता होती है।"

"तो इस समय भरत को चक्रवर्ती-पद पर स्थापित नहीं किया जाय, यही आप सबका मत है," भार्गव ने निर्णय घोषित कर दिया।

"और हो ही क्या सकता है गुरुदेव?" दुष्यन्त ने पूछा।

"अच्छी बात है," कहकर भार्गव उठ खड़े हुए।

"पर आपने तो कुछ कहा ही नहीं," कवष ऋषि ने कहा।

"मरण की घड़ी में महर्षि ने जो संदेशा मुझे सौंपा था, वही मैंने आपको कह सुनाया है। और आपका निर्णय मानने को भी भरत बाध्य है," भार्गव ने तटस्थतापूर्वक कहा।

"पर क्या आप इससे सहमत नहीं हैं?" दुष्यन्त ने पूछा।

"मेरी सम्मति की चिन्ता आप न करें। मैं तो अपने मार्ग पर जाऊँगा ही।"

"पर आपका मत क्या है, सो तो बताइए," कवष ऋषि ने कहा—"हम जानें तो सही।"

"मेरा मन्तव्य आपके गले थोड़े ही उतरेगा? आप जिन्हें न पचा सकें, ऐसे घूँट आपको पिलाने से लाभ ही क्या है? आप यदि भरत

को अभी चक्रवर्ती पद पर स्थापित नहीं किया चाहते, तब भी मुझे तो अपना रास्ता खोजना ही होगा।"

"कौनसा रास्ता ?"

"समय आने पर मैं बताऊँगा।"

ऋषि कवष ऐलूष और राजा दुष्यन्त वहाँ से चले गए। भार्गव ने शुनःशेप के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"शुनःशेप! भाई, इनमें से किसी में भी शिथिलता को उखाड़ फेंकने की शक्ति नहीं रह गई है।"

"यह शिथिलता तो मुझे भी कुण्ठित कर रही है। मेरा मन्त्र-दर्शन अवरुद्ध हो गया है। पराजय इतनी भयंकर वस्तु होती है, यह तो मैंने कभी न जाना था।"

"पराजय तो महान् वस्तु है। मैं तो सदा ही उसका स्वागत करता आया हूँ," भार्गव ने कहा—"यह विपत्ति वीरों को तपाती है, उनके भीतर के कांचन को प्रकाशित करती है। सामान्यजन इसी से भागकर अधोगामी बनते हैं और शूर-जन अलग होकर उन्नति के मार्ग पर विहार करते हैं।"

"पर हम लोग हार गए हैं, यह तो सच ही है न?"

"हार क्या? जीत क्या? कायरों के इस शब्द-जाल का भेदन करना चाहिए। क्या हार-जीत मृत्यु पाये हुए वीरों की संख्या में है? क्या वह विनाश-प्राप्त समृद्धि की गणना में है? नहीं, नहीं, जो जीवन उन्नति करता है, वही विजयी है और जो उन्नति नहीं करता वही पराजित है।"

"पर जीवन उन्नत कैसे हो सकता है? आपने तो इस समस्या को सहस्रों बार सुलझाया है।"

"जहाँ श्रद्धा से प्रेरित उत्साह नहीं है वहीं पराजय है। पर जहाँ श्रद्धा और उत्साह है वहाँ पराजय कभी हो ही नहीं सकती है।"

"कहने को भले ही हम कह लें, पर आज न तो श्रद्धा ही रह गई है और न उत्साह। राजा दुष्यन्त और कवष ऐलूष में ही वह नहीं है,

तो और किसी में कहाँ से होगी ?" शुनःशेप ऋषि ने कहा—"ये सब तो मुझे भी मात कर रहे हैं। विश्वामित्रों और भरतों का प्रताप कैसा था और आज वह क्या हो गया है !"

"भाई, तुम्हारे मुंह से ये शब्द शोभा नहीं देते। तुम्हीं यदि जय-पराजय से ग्रस्त हो जाओगे तो फिर किसका धैर्य टिक सकेगा ? विजय ? विजय तो क्षणजीवी फूल है। इस क्षण वह विकसित होता है, और अगले ही क्षण कुम्हला जाता है। इससे भी परे चिरंजीवी है आत्म-श्रद्धा, अडिग शक्ति की जनेता, जो समय-बल और पशुबल से परे है। जब आत्म-श्रद्धा विचलित हो जाती है, तभी पराजय आती है।"

शुनःशेप ने बालपन से ही जिसे वरुणदेव माना था, अपने उस मित्र के मुख से बहते हुए वह्नि के समान ज्वलंत शब्दों को वह सुनता रहा।

"भार्गव, मेरी आत्म-श्रद्धा भी विचलित हो गई है। इस समय ऐसी कौनसी वस्तु प्राप्य है कि जिससे आत्म-श्रद्धा जाग सके ?"

"प्राप्य और अप्राप्य की चिन्ता करके ही तो हम अपनी आत्म-श्रद्धा को खो देते हैं। प्राप्य के लिए जो लड़ता है वह मनुष्य है। अप्राप्य के लिए जो जूझता है वह महात्मा है। प्राप्यता की मर्यादा निर्दिष्ट करने में ही पराजय की नींव पड़ती है।" भार्गव ने दूर सरस्वती के तीर पर दृष्टि स्थिर करके कहा—"शुनःशेप ! भाई ! मैंने तो अप्राप्य पर ही कमर कसी है। विश्वामित्र के आश्रम को तुम फिर मंत्र-गान से गुंजित कर दो; सहस्रों शिष्य तुम्हारी विद्या की परम्परा लेकर सिंधु से सिंहल तक घूम जायं, यही मैं चाहता हूँ।"

शुनःशेप आँखें फाड़कर देखता रह गया—"क्या कह रहे हैं आप ?"

"शुनःशेप ! तुम्हें जो अप्राप्य दीख रहा है, वह तो मुझे मेरी आँखों के आगे आता-सा दिखाई पड़ रहा है। तुम मेरे साथ विहार कर रहे हो—अनजान नदियों और गिरिवरों के पार—सहस्रों आश्रम स्थापित करते हुए, सिंधु से सिंहल तक विद्या, तप और संयम से आर्यावर्त की सीमा

का विस्तार करते हुए। विश्वामित्र ऋषि ने गायत्री के दर्शन किये थे—तुम्हारे और मेरे लिए नहीं, कण्ठ-कण्ठ मे उसे गुंजित कराने के लिए, दसो दिशाओं मे आर्यत्व को प्रसारित करने के लिए।"

"शुनःशेप," भार्गव कुछ देर चुप रहकर ममतापूर्वक उनकी ओर घूम गए "मै तो अप्राप्य का मन्त्र-द्रष्टा हूँ, इसी से विधि से भी अधिक वीर्यवान बन गया हूँ। मैं मरूँगा भी तो मृत्यु का स्वामी बनकर। मेरे मरण मे से उन्माद और श्रद्धा की चिनगारियाँ उडेगी। उनकी आँच आज नहीं तो आगामी कल के वीरो को अवश्य लगेगी। आर्यत्व की ध्वजा को वे फिर से खडी करेंगे, फहरायेंगे, और अनन्त काल तक आगे बढाते ले जायेंगे।"

शुनःशेप ने भार्गव के पास आकर उनके हाथ पर अपना हाथ रख दिया।

"भार्गव, वीरमूर्ति, मैं तुम्हारा हूँ—आजीवन तुम्हारा रहूँगा। कहो—कहो, क्या चाहते हो, कहो!"

"मै श्रद्धा का महास्रोत बहाना चाहता हूँ। मानवता के शृंग-शृंग पर उत्साह का दावानल सुलगाना चाहता हूँ। हृदय की शान्ति मुझे नहीं चाहिए। उस हृदय मे श्रद्धा और शक्ति का प्रभंजन जगाकर मैं जड़ जगत् को गगन तक ले जाना चाहता हूँ। तू रहेगा मेरे साथ?"

दोनो सरस्वती की साक्षी मे खडे थे—ठीक वैसे ही जैसे बालपन में एक दिन एक नाव मे खडे थे। वैसे ही पूज्यभाव से शुनःशेप ने अपने उस देव-स्वरूप मित्र को देखा और उसके प्रति अपना अर्घ्य चढा दिया।

"राम! मै तेरा ही हूँ। तू तो जय और पराजय दोनो ही का स्वामी है।"

: २ :

निस्तेज-स्वरूप मे और भी आकर्षक लगती-सी एक सुन्दरी तृत्सु-ग्राम मे विजयी सुदास राजा के महालय के एक बाडे मे पत्थर पर बैठी

हुई थी। उसका सर्वाङ्ग लालित्य से परिपूर्ण था, पर उसके सारे शरीर पर निराशा की एक अमिट छाप थी।

वह कुन्द के पुष्प के समान श्वेत थी। कोई छः वर्ष का एक किंचित् श्यामवर्ण बालक दौड़ता हुआ आया और रूठकर रोता हुआ बोला—"माँ! माँ! मैं यहाँ नहीं रहूँगा, मुझे पिताजी के पास ले चल।"

"शिबि!" सुन्दरी ने बड़ी कठिनाई से अपने आँसू रोकते हुए कहा—"ले जाऊंगी बेटा, ले जाऊंगी।"

"कब ले चलेगी? यहाँ तो सभी मेरा अपमान करते हैं।" किसी ने राजा भेद के पुत्र का अपमान किया था।

"कल ले चलूँगी, बेटा, कल।" और उस स्त्री की आँखों से आँसू टपक पड़े।

"अवश्य ले चलेगी?"

"हाँ, बेटा!"

"तू रो नहीं माँ, मैं कल सयाना हो जाऊंगा।"

सोमक राजा की पुत्री, चक्रवर्ती सुदास राजा के युवराज कृशाश्व की पूर्वाश्रम की पत्नी और राजा भेद की विधवा अपने पुत्र शिबि को झूठा आश्वासन दे रही थी। वह जानती थी कि कल सत्र प्रारम्भ होने के पश्चात् उसकी शुद्धि होगी और उसके उपरान्त मुनि वशिष्ठ और चक्रवर्ती सुदास, उसे फिर से कृशाश्व के साथ विवाह करने की आज्ञा देंगे। उसका वश चलता तो वह मर जाती, पर उसके पीछे शिबि का, भेद के एकमात्र पुत्र का, कौन होगा? उसके बाप की राज्य-लक्ष्मी लुट गई थी। उसकी प्रजा छिन्न-भिन्न हो गई थी। उसके गढ़ भूमिसात् हो चुके थे। वह यदि न रहेगी तो उसके पुत्र का क्या होगा?

महालय में और सारे तृत्सुग्राम में जो आनंदोत्सव हो रहा था, उसे

देखकर उसके हृदय में ज्वालाएँ धधक उठती थीं। इस सबके बीच वह नितान्त नि:सहाय थी।

ग्राम-ग्राम के राजा वहाँ आकर एकत्रित हुए थे। जो शत्रु थे वे उसके पति की पराजय का उत्सव मनाने आये थे, और मित्रों में से जो लोग बच रहे थे वे चक्रवर्ती की आज्ञा को शिरोधार्य कर, अपने को सुरक्षित बनाये रखने के विचार से आये थे।

सुदास की विजय को वशिष्ठ ने आर्यावर्त की विजय के रूप में घोषित किया था। उन्होंने साथ-ही-साथ एक वर्ष-व्यापी महासत्र का आयोजन भी किया था। चारों ओर के आश्रमों के ऋषिगण अपने शिष्यों सहित आ रहे थे। बारह महीनों तक वे सब साथ बैठकर मंत्र और विधि की पुनर्घटना करेंगे, और उसके पति तथा उनके मित्रों की लूटी हुई समृद्धि का शिरोपाव प्राप्त करेंगे। कल ही उस सत्र का आरम्भ होगा।

द्वार पर पहरा था। बाड़े की ईंटवालों के बाहर भी पहरा लगा हुआ था। पहरा हो या न हो, पर जगत में उसका अपना कोई नहीं था। कहीं से भी संरक्षण पाने की आशा उसे नहीं रह गई थी।

प्रणय-विह्वलता के आवेग में शशियसी ने तृत्सुओं का महिषीपद ठुकराकर, राजा भेद की प्रणयिनी होना अधिक पसंद किया था। उसने भेद और उसकी प्रजा दोनों ही का जीवन उज्ज्वल किया था। उसकी प्रजा के हृदय में उसने स्थान प्राप्त कर लिया था।

उसे वह दिन याद हो आया जब महर्षि विश्वामित्र अकेले उसके द्वार पर आये थे—उसे समझाकर लौटा ले जाने के लिए। राजा भेद गढ में नहीं थे। विश्वामित्र ने उसे बहुत-कुछ समझाया-बुझाया। उन्होंने यह भी चेतावनी उसे दी कि वशिष्ठ घर-घर आग लगा देंगे। वह स्वयम् महर्षि के सामने रो पड़ी थी।

"गुरुवर्य! मैं तो भेद की हूँ। मेरा स्थान यहीं पर है। भले ही मुझे मार डालो, पर उनसे मुझे न बिछुड़वाओ।"

निदान उसने उन उदारचरित महात्मा से विनती की—"एक महीने

के लिए आप हमारा आतिथ्य स्वीकार करें। उसके उपरान्त यदि उचित समझें, तो भले ही मुझे उनसे बिछुड़वा दें।"

महर्षि एक महीने तक उसके और भेद के साथ रहे और उनकी पारस्परिक तन्मयता को उन्होंने पहचान लिया। दस्युओं की माता होने की उसकी आकांक्षा को भी उन्होंने देखा। एक महीने में महर्षि का समाधान हो गया। उन्होंने उसे और भेद को बिछुड़ाने का आग्रह छोड़ दिया। उन्होंने विधिपूर्वक दोनों का विवाह करवा दिया, और उनका साथ देने का वचन दिया। और सर्वस्व देकर भी उस वचन को निबाहा।

अब राजा भेद पितृ-लोक को सिधार गए थे। गढ़ के छेद में से उसने अपने पति को अप्रतिम शौर्य के साथ लड़ते देखा था। सैकड़ों तीरों से घायल होकर उसे गिरते हुए भी उसने देखा था। उसके शरीर पर होकर निकल जाते हुए घोड़ों की हिनहिनाहट का भयंकर प्रतिशब्द आज भी उसके कानों में गूंज रहा था।

एक हरिणी की भाँति वह पकड़ ली गई। बन्दी बनाकर उसे यहाँ लाया गया। कल उसकी शुद्धि होगी, और फिर कृशाश्व के साथ उसका विवाह करवा दिया जायगा। उसका हृदय कटुता से उबल उठा। देव न्याय न कर सके तो न सही, पर उन्हें दया भी नहीं आई!

उसकी गोद पर सिर रखकर सो रहे शिबि की ओर उसने देखा। नींद में भी वह रह-रहकर निःश्वास छोड़ रहा था। शंबर के पौत्र का सम्मान यहाँ पद-पद पर घायल हो रहा था। तनिक-तनिक-सी बातों में वह रुष्ट होकर रो पड़ता। इस प्रकार प्राण धारण करने से तो प्राण खो देना उसे अधिक अच्छा लग रहा था। भेद के पत्नीत्व से वंचित होना—भ्रष्ट होना—घृणित कृशाश्व का हाथ पकड़ना, उसकी पत्नी बनकर तृत्सुओं की युवराज्ञी होना—इससे निकृष्ट अधमता और क्या हो सकती है, यह उसकी कल्पना में भी न आ सका। शशियसी को अब जीना नहीं था, केवल इस पुत्र के कारण प्राण धारण करना था।

कोई आता जान पड़ा। शशियसी किसी का मुँह भी नहीं देखना

चाहती थी। यह परिचित महालय उसे नरक की भाँति जलाये दे रहा था।

कृशाश्व आया। वशिष्ठ मुनि की आज्ञा थी कि शशियसी के दुःख को कम करना उसका धर्म है। आजकल प्रतिदिन सन्ध्या में वह आया करता था। जितनी देर वह शशियसी के निकट रहता, वे क्षण उसे विष के समान लगते।

युवराज कृशाश्व सामने आ खड़ा हुआ।

"शशियसी! कैसी है?"

"अच्छी ही हूँ।"

"क्या शिबि सो गया है?"

"हाँ"

दोनों चुप थे। कृशाश्व किंकर्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा रह गया; संवाद करने की उसकी शक्ति बहुत परिमित थी।

"कल हमारे लग्न होंगे।"

शशियसी ने उत्तर नहीं दिया।

"अपने महालय को मैंने सजाया है। पिछले भाग को मैंने फिर से बंधवाया है। नदी के तीर पर एक विशाल उपवन बनवाया है।"

शशियसी को वह स्थल याद था, जहाँ मध्य रात्रि के उपरान्त वह राजा भेद से मिला करती थी। पुरानी स्मृतियों से उसका हृदय काँप उठा।

"तू शोक न कर। जहाँ से भूले हैं वहीं से फिर गिनना आरम्भ कर देना है," दयार्द्र स्वर में कृशाश्व ने आश्वासन दिया। उसके और शशियसी के पुनर्लग्न पर समूचा आर्यावर्त टकटकी लगाए बैठा था, इस बात का उसे भान नहीं था।

"तृत्सुराज," शशियसी ने कहा—"तुमसे कितनी बार कहूँ? बीती बात लौटकर नहीं आती।"

"आयगी, अवश्य आयगी।"

"तुम्हारे और मेरे बीच तो राजा भेद के रक्त की सरिता बाधा बन कर पड़ी है। राजा और मुनिवर ने आज्ञा दी है, इसीसे तुम मेरे साथ विवाह करने को उद्यत हुए हो। ना कहना मेरे वश का नहीं है, क्योंकि मैं तो पराधीन हो पड़ी हूँ। पर तुम्हारा और मेरा विवाह हो नहीं सकेगा।"

"यह क्या कह रही हो?"

"युवराज!" शशियसी ने निराश स्वर में कहा—"तुम्हारे साथ ही यदि मैं संसार निबाह सकती तो तुम्हें छोड़कर ही क्यों जाती? और अब? मेरा पति मारा गया, मेरी प्रजा नष्ट हो गई, मेरे मित्र काटकर फेंक दिये गए; और अब मैं रहूँगी तुम्हारे घर में? यदि मेरे ललाट में यही अधोगति होनी लिखी है, तो उसे रोकने में तो कौन समर्थ है? पर युवराज तुम आर्यावर्त के चक्रवर्ती होने वाले हो। दाशराज्ञ जीतकर राजा सोमक की पुत्री को पुनः लौटा लाने का पराक्रम भी तुमने दिखाया है। संसार तुम्हारे सिर पर मेरे पाणिग्रहण का मुकुट शोभित होते हुए देखना चाहता है। तुम और मैं तो मात्र गुड्डे-गुड्डी हैं। इसके अतिरिक्त और कुछ तुम इसमें नहीं पाओगे।"

"मुनिवर कहते हैं कि समय अपना काम करेगा।"

"मुनिवर के लिए अभी यह जानना शेष रह गया है कि कुछ सम्बन्ध ऐसे भी होते हैं कि जो स्थान और काल से परे होते हैं।"

"जो कुछ मुझसे हो सकेगा, वह मैं करूंगा।"

"मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मैं तो गाय की भांति हरण करके यहां लाई गई हूँ। गोशाला में कुछ घास-चारा डाल देना, और कुछ मैं नहीं मांगती। अपने इस छोटे-से पुत्र का पालन-पोषण मुझे करने देना। और यदि दया कर सको तो इसके बड़े होने पर, एक छोटा-सा गांव इसके लिए निकाल देना। तुम्हारे इस उपकार को मैं कभी न भूलूंगी। पर अपनी अतिरिक्त आशाओं से मेरे इस जन्म को नष्ट मत

कर देना," दीन स्वर में शशियसी ने कहा। उस गर्विणी स्त्री का गर्व आज चूर-चूर हो गया था।

कृशाश्व को कोई उत्तर नहीं सूझा—वह धीरे-धीरे वहाँ से चला गया। उसका दाम्पत्य-जीवन समूचे आर्यावर्त की संपत्ति हो गया था। न तो उस पर उसका अपना स्वामित्व ही था और न उसे विसर्जन करने का अधिकार ही उसे था। अंधेरा हो चला था। शशियसी निःश्वास-पर-निःश्वास छोड़ रही थी। सारे संसार में उसका अपना कोई नहीं था। उसके चारों ओर अंधकार था। एकाएक वह डर गई। बाड़े पर झुक आए झाड़ की डाल पर से कूदकर एक बिल्ली महालय के छप्पर पर आ गई। धीरे-से शिबि को उठाकर वह अन्दर जाने को ही थी कि तभी उसका ध्यान उस बिल्ली पर जा पहुँचा। छप्पर पर होकर धीमे पैरों वह उसकी ओर आ रही थी।

इतनी बड़ी बिल्ली पहले उसने कभी नहीं देखी थी। उसने अपनी कमर पर कुछ बांध रखा था। वह और भी पास आ गई और छप्पर से नीचे कूदकर खड़ी हो गई।

शशियसी घबड़ाई-सी खड़ी रह गई। उसे निश्चय हो गया कि वह बिल्ली नहीं थी। उसे लगा कि वह अभी-अभी चीख उठेगी।

एकाएक वह बिल्ली अपने चारों पैरों पर खड़ी हो गई और दौड़ती हुई उसके निकट आई, उसके सामने आकर वह खड़ी हो गई और उसने उसके मुख पर हाथ रख दिया। उसकी किलकारी गले में ही रुंध गई।

गुरु डड्डुनाथ के यहां से भगवती लोमहर्षिणी कुछ बिना सीखे ही नहीं लौट आई थी—"मैं लोमा हूं, चुप रह।"

"लोमा!"

'पगली मुझे नहीं पहचानती? लोमहर्षिणी—सुदास की बहन।"

"तू यहाँ कैसे?"

"चुप, चुप," लोमा ने शशियसी का कान पकड़ लिया।

"चल! शिबि को मैं उठाए लेती हूं।"

"कहाँ ? तू कहाँ से आ रही है ?"

"गुरुदेव बुला रहे हैं।"

"गुरुदेव !" चौंककर शशियसी पीछे को हट गई।

लोमा ने फिर उसका कान मल दिया।

"पहले जैसी ही मूर्ख तू अभी भी बनी हुई है। वशिष्ठ नहीं, भगवान् जामदग्नेय।"

"कौन ?" घबड़ाई हुई-सी शशियसी को कुछ समझ में न आया।

"महर्षि जमदग्नि के पुत्र राम—मेरे वर—अब तो समझी ? विश्वामित्र ने उनसे वचन ले लिया था कि वे तुझे बचा लेंगे।"

शशियसी का हृदय हर्ष से नाच उठा—"मैं इस छपरे पर चढ़ जाती हूँ। तू शिबि को मुझे दे देना। फिर तू उस दीवार से चढ़ना; मैं तुझे ऊपर खींच लूंगी।"

शशियसी को यह सब स्वप्न लग रहा था। लोमा बिल्ली की भांति चौपदी होकर कूदी और छपरे पर जा बैठी। और वहां से उसने शिबि को ले लिया। उसने दीवार के उस ओर जाकर बच्चे को उज्जयन्त के हाथों सौंप दिया।

लोमा लौटकर फिर आ गई। शशियसी कूदकर दीवार पर चढ़ गई। क्षण-मात्र में ही वे दोनों दीवार के उस ओर कूद पड़ीं।

कुछ ही देर में वे नाते-दजाते उत्सव-मग्न स्त्री-पुरुषों में जाकर मिल गईं।

: ३ :

मध्याह्न में सत्र आरम्भ होने को था। सवेरे ही चक्रवर्ती सुदास एका-एक मुनि के आश्रम में आ पहुँचे। वे अब वृद्ध हो चले थे। उन्होंने विजय प्राप्त की थी अवश्य, पर वर्षों की चिन्ता और परिश्रम ने उनके शरीर पर अपने पद-चिह्न छोड़ दिए थे। इस समय वे क्रोध में भराए हुए थे।

"आइए राजन्, विराजिए। क्यों इस प्रकार क्षुब्ध दीख रहे हैं आप? मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ ने पूछा।

"अभी-अभी एक संवाद आया है।"

"क्या?"

"भृगुओं के आश्रम में ऋषि कवष ऐलुष भरतश्रेष्ठ का राज्याभिषेक करने जा रहे हैं। उसका निमंत्रण आया है।"

'भरतश्रेष्ठ कौन?" वशिष्ठ ने पूछा।

'राजा दुष्यन्त का बालक पुत्र—महर्षि विश्वामित्र का दौहित्र भरतों के सिंहासन पर बैठने वाला है।"

"दुष्यन्त! हां, समझ गया।"

"क्या?"

"वह भरत महर्षि विश्वामित्र की कण्व के द्वारा पालित पुत्री शकुन्तला का पुत्र है। वह भी योग्य है," वशिष्ठ ने कहा।

"इसमें मुझे कोई योग्यता नहीं दिखाई पड़ती। यह तो हमें चुनौती देने के लिए किया गया है। भृगुओं का आश्रम अब ऋषियों का आश्रम नहीं रह गया है। वह तो अब शस्त्र-विद्या का एक महान् विद्यापीठ हो गया है।"

"हाँ, उसके अधिष्ठाता भार्गव हैं।"

"मुझे यह सब समझ में नहीं आ रहा है। कहा जाता है कि वह दस सहस्र शिष्यों का स्वामी है। उसके शिष्य शस्त्रास्त्र लेकर ऋषियों के आश्रमों की रक्षा के बहाने चारों ओर त्रास फैला रहे हैं। इस राज्याभिषेक में भी मैं उन्हीं का हाथ देख रहा हूँ।"

"राजन्! भरत अपने सूने राजसिंहासन पर यदि विश्वामित्र के दौहित्र का राज्याभिषेक करते हैं, तो उसमें कौनसी बुराई है?"

"मुझसे पूछना तो चाहिए था?" सुदास ने अपने चक्रवर्ती पद का गर्व दरशाया।

"भरत हार गए। उनका राजा रण-क्षेत्र में मारा गया। पर उन्होंने

अपने को झुकाया नहीं और न सामन्तपद ही स्वीकार किया। फिर वे तुमसे क्यों पूछने लगे ?"

सुदास ने ओंठ काट लिये। युद्ध जीत लेने के उपरान्त वशिष्ठ चक्रवर्ती के पुरोहित-पद का पालन करने के बदले अब आर्यावर्त की विद्या और तप को व्यवस्थित करने में संलग्न हो गए थे, यह बात राजा सुदास को नहीं रुची। और वह ऋषि-पुत्र भार्गव नया बल एकत्रित कर रहा था; उसके लिए भी वशिष्ठ के मन में इतनी अधिक प्रीति थी कि उस के विरुद्ध वे कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे।

"और आपने और मैंने कितनी ही बार निमंत्रण भेजे, पर भार्गव नहीं आये, क्यों नहीं ही आये ?"

"राजन् ! वह यदि यहाँ आता तो मैं स्वयम् पैरों चलकर उसे लेने के लिए सामने जाता, पर उसने मुझे मना कर दिया है।"

"आपने स्वयम् उससे कहा और उसने नहीं माना ?"

"भार्गव किसी की मानने वाला नहीं है।"

"वह कौन है ? कैसा है ?"

"पराशर से पूछ देखो, वह उससे भली भांति-परिचित है।"

"पर आप सब लोग उसे ऋषि मानते हैं। उसके पास राजाओं से भी बड़ा सैन्य है, और सुनने में आया है कि वह सैन्य भी ऋषि के शिष्यों का ही बना है। थोड़े ही समय में सारे आर्यावर्त में उसका भय व्यापने लगा है।"

"राजन् ! पिछले कई महीनों में भार्गव के शिष्यों ने अत्याचारों का दमन किया है, तपोवनों को निरापद बनाया है, गायों की लूट को रोका है और स्त्रियों के अपहरण को बंद किया है। उनमें से किसी ने भी कोई अन्याय किया है क्या ? आर्यावर्त में भार्गव का भय नहीं व्यापा है, प्रत्युत जहाँ अत्याचार का भय व्याप्त था वह भार्गव के कारण अदृष्ट हो गया है।"

"और राजा लोग उसके पैरों पड़ने लगे हैं।"

"जो धर्म-गोप्ता है, उसके पैरों पड़ना तो स्वाभाविक ही है।"

"मैंने सुना है कि सिन्धु और पारासिक देश के चक्रवर्ती मांधाता के यहाँ उसने अपना शिष्य भेजा है।"

"यदि भार्गव उसे अपने अधीन करना चाहेगा तो वह उसके अधीन हो जायगा।"

चक्रवर्ती सुदास बड़े झल्लाये।

कृशाश्व और सेनापति दौड़ते हुए आ पहुंचे, पर मुनिवर को देख सकोच में पड़ गए। वे दोनों बहुत घबड़ाये हुए थे।

'आओ युवराज ! आओ सेनापति ! क्या बात है ?"

'शशियसी और शिवि को कोई उड़ा ले गया।'

'हैं !' सुदास ने कहा।

'सारा गाँव छान डाला पर कहीं कोई नाम-चिह्न भी नहीं मिलता," सेनापति ने कहा।

किसी को भी बोल नहीं सूझा। मुनिवर अग्निकुण्ड की ओर देख रहे थे। "राजन् !" उन्होंने धीरे से कहा—"राजा भेद और शशियसी का लग्न-विच्छेद देवों को रुच नहीं रहा है।"

मुनिवर के इस विचित्र उत्तर से सब अचम्भे में पड़ गए।

"कैसे जाना आपने ? मैं सारे आर्यावर्त में कहीं से भी खोजकर उसे फिर लौटा लाऊंगा।'

"यह सब करने की आवश्यकता नहीं है." वशिष्ठ मुनि ने कहा—"वह तो राजा भेद की पत्नी होने के लिए ही सृजी गई है। महर्षि विश्वामित्र ने इसीसे उसका विवाह भेद के साथ करवा दिया था।"

"आप ! मुनिवर ! आप यह सब कह रहे हैं ?" वशिष्ठ के इस परिवर्तन पर आश्चर्य प्रकट करते हुए सुदास ने कहा।

"राजन् ! सुनो ! देवों ने तुम्हें विजय प्रदान की है। इस विजय से ही संतोष कर लो। देवों की इच्छा अब कुछ और ही है। मैंने वह सुनी और देखी है।"

"आपने ?" सुदास ने उलझन में पड़कर पूछा—"किस प्रकार ?"

"जिसकी तुम बात कर रहे थे उसे—तुम्हारे उस बहनोई को जब मैं मिला था तब—"

"भार्गव ?"

"हाँ"

"तब तो शशियसी को भी वही उड़ा ले गया है। मैं जाकर शशियसी को उसके पास से लौटा लाऊंगा।"

"तुम उसे लौटा लाओ, यह सम्भव नहीं, और तुम भार्गव के साथ युद्ध में उतर सको, यह भी सम्भव नहीं। उस युद्ध में मैं योग नहीं दे सकता। शंबर के बालक पौत्र से प्रतिशोध लेने में कोई तुम्हारी सहायता नहीं करेगा। यह कड़वा घूंट तो निगलना ही पड़ेगा।"

"मुनिवर ! आज आप इतने हताश क्यों हो गए हैं ? हमने दाशराज्ञ को जीता है, सो क्या यह सब अपमान सहने के लिए ?"

"राजन् ! देवों ने दाशराज्ञ में हमें इसलिए विजय प्रदान की है कि वह धर्म-युद्ध था। पर उस विजय का उपयोग यदि हम विद्वेष और अभिमान के पोषण में करेंगे, तो क्या देव हमें ऐसा करने देंगे ? तुम और मैं अब वृद्ध हो गए हैं। हमें तो अब ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि जिससे धर्म की रक्षा हो सके। देव हमसे केवल इतना ही चाहते हैं।"

"पर उसके लिए इस भार्गव को हम क्यों अपनी राह में आने देंगे ?"

"इसलिए कि तुम और मैं तो विगत काल के व्यक्ति हो गए हैं, पर वह आज का व्यक्ति है, आगामी कल का व्यक्ति है।"

"ऐसा भला कौन है वह ?"

"देख लेना, उसकी इच्छा के बिना आर्यावर्त में एक तिनका भी नहीं हिल सकेगा। राजन् ! हम सबका पुरोहित युग अब समाप्त हो गया है। जो उसे गुरु स्वीकार करेगा, उसी की रक्षा हो सकेगी। यदि मेरा कहा मानो, तो उसे जाकर सत्र में लिवा लाओ, और मेरे पद पर

स्थापित करो। अब वशिष्ठ तुम्हें कुछ नहीं दिलवा सकेगा। विद्या और तप मेरी समूची शक्ति माँग रहे हैं।"

· ४ ·

जिनकी आँखें सदा निर्मल रहा करतीं, वे मुनिवर वशिष्ठ भी असमंजस में पड़ गए। दाशराज्ञ की राख सँवारने की शक्ति उनमें नहीं आ रही थी। अभिमान का त्याग किये बिना भार्गव को जीतना सम्भव नहीं था।

उन्होंने राजा सुदास से विनती की और शशियसी की बात को सबने भुला दिया। युवराज कृशाश्व को शशियसी न मिली, सो नहीं ही मिल सकी।

सत्र का आरम्भ हो गया, और दूसरे दिन ही मौन-प्रिय मुनि पराशर तृत्सु-सेनापति को साथ लेकर भरत के राज्याभिषेक में गये। वशिष्ठ ने उन्हें आज्ञा दी कि सत्र की पूर्णाहुति के समय वे सबको अपने साथ यहाँ आने के लिए विनती करें।

भृगु के आश्रम में उन्होंने आश्चर्यजनक परिवर्तन पाया। विश्वामित्र और जमदग्नि के आश्रम एक हो गए थे। और एक योजन के विस्तार में एक विशाल ग्राम की रचना हो रही थी। नदी के उस पार के जंगल कट रहे थे और आश्रम का विस्तार वहाँ तक बढ़ गया था।

इस प्रवृत्ति को देखकर पराशर मुनि चकित हो गए। यहाँ थकान नहीं थी, दिन और रात नहीं थे, पराजय के निःश्वास भी नहीं थे, यहाँ तो विश्वामित्र-श्रेष्ठ ऋषि शुनःशेप कोकिलकण्ठ से मन्त्रोच्चार कर रहे थे, और सहस्रों शिष्य विद्या और तप की अभिवृद्धि कर रहे थे। अथर्वण-श्रेष्ठ ऋषि विमद सबको मंत्र-विद्या और शस्त्र-विद्या की शक्ति प्रदान कर रहे थे। यहाँ दुष्यन्त राजा के पुत्र भरत और राजा भेद के पुत्र शिबि, दोनों ही के राज्याभिषेक का आयोजन चल रहा था।

गोशालाओं में गायों की भरमार थी। सिन्धु-प्रदेश से नये आये

हुए घोड़ों से अश्वशालाएँ उन्नत हो रही थीं।

सौम्य और शान्त, महर्षि जमदग्नि अब अपना सारा समय तपश्चर्या में ही बिताया करते थे। कौमुदी के समान आल्हादक और अमिय-वर्षिणी रेणुका अपने पौत्र-पौत्रियों के लिए सूत कातती और सबको दर्शन दिया करती। पराशर उसे सगी माँ से भी अधिक मानते थे। अपनी सदा की चिन्तनचर्या के कारण दुबले और फीके-से लगने वाले मुनि लाठी का सहारा लिये एक पैर से कुछ लँगड़ाते-से आये और अम्बा के पैरों की रज माथे पर चढ़ाकर कृतार्थ हो गए।

"अम्बा, तुझे तो आना ही पड़ेगा। पितामह ने बहुत आग्रह किया है। और मेरा भी यही अनुरोध है।"

"भृगुश्रेष्ठ यदि आयेंगे, तो मैं भी आ जाऊँगी।"

"तो मैं तेरा पुत्र नहीं हूँ?"

"तो फिर बाप की आज्ञा मानकर ही निस्तार है।"

गंधर्वों तथा घायलों को दिये गए जीवन-दान तथा भार्गव द्वारा इनको दिये गए जीवन-दान की दंत-कथा ने अम्बा को देवी बना दिया था। लोग उनके दर्शनों को आया करते और निःसंतान जन उनकी मनौती लिया करते। दुखियों के आँसुओं को भुला देने वाली उनकी ममता-माया माता के पय से भी अधिक प्राणदायिनी मानी जाती थी।

राम के भी अब एक पुत्र हो गया था, जो दादी माँ की गोद से नीचे उतरने का नाम ही न लेता था।

समूचे आश्रम के वातावरण में वेग और व्यवस्था थी। प्रत्येक क्षेत्र में बृहद् आयोजन चल रहे थे। अस्त्र-विद्या, मल्ल-युद्ध तथा अश्व-विद्या में अद्भुत विकास का साधन होते देखकर पराशर मुनि अचरज में पड़ गए। क्या दूसरे महायुद्ध का आयोजन चल रहा था? दाशराज्ञ के पश्चात् युद्ध से उन्हें अरुचि हो गई थी। मानवों के निरर्थक विनाश का विचार करके वे काँप उठते।

भार्गव के जो शिष्य शिक्षा पाकर तैयार होते वे भिन्न-भिन्न

बस्तियों में बँट जाते। राज-मार्गों का रक्षण, विद्या-व्यासंगियों का रक्षण तथा गाय-घोड़ों का परिपालन, यह उनका कर्तव्य हो गया था। "गाय और विद्या को जो पीड़ा करेगा उसे मरना होगा।" भार्गव की इस आज्ञा का वे पालन किया करते। और निराधारों के ये आधार योजनों के विस्तार में घूम जाते।

भार्गव भी आ गए। सरस्वती, प्रतीप कूर्मा और उज्जयन्त को लेकर वे सरस्वती के दक्षिण तीर पर शिवि के लिए नया ग्राम बनवाने गये हुए थे।

पराशर ने भार्गव को छाती से लगा लिया। राज्याभिषेक के अवसर पर मुनि और तृत्सु सेनापति के आगमन के लिए भार्गव ने मुनि वशिष्ठ का भार माना। तदुपरान्त पराशर ने उन्हें निमंत्रण दिया।

"मुनिवर की आज्ञा को मैं यथासम्भव शिरोधार्य करूँगा। महर्षि आयेंगे या नहीं, सो तो मैं नहीं कह सकता। ऋषि शुनःशेप अवश्य आयगे। वशिष्ठ और विश्वामित्रों के बीच के शत्रुत्व को अब भुलाना ही होगा। भद्रश्रेण्य आयगा। विमद अथर्वण विद्या के स्वामी हैं, वे भी शिष्यों सहित आयेंगे।"

"भरत?"

"राजा दुष्यन्त आयेंगे, भरत और शिवि नहीं आ सकेंगे।"

"पर आप?"

"मुनिवर्य, मुझे अपना स्थान वहाँ नहीं दिखाई पड़ता। वशिष्ठ मुनि सुदास के पुरोहित हैं।"

"पर आपकी यदि ऐसी ही इच्छा हो तो सुदास स्वयम् आपको लेने आयेंगे। आपके आये बिना आर्यावर्त की एकता नहीं साधी जा सकेगी।"

"सो तो मैं जानता हूँ। मैं आऊंगा—किन्तु तभी, जब मुझे विश्वास हो जायगा कि यह विद्या का मन्त्र समस्त आर्यावर्त का है।"

"पर इसका निश्चय कैसे हो?"

"पहले मुनिवर पुरोहित-पद छोड़ दें। वे एक राजा के होकर नहीं रह सकते। वे तो तपोनिधि हैं; राग-द्वेष से परे वे तो आर्यत्व की मूर्ति हैं। वे राजाओं के गर्व-पोषण का साधन नहीं हैं।"

"वे तो पद छोड़ने के लिए जाने कब से तैयार बैठे हैं; कोई उत्तराधिकारी मिले तब न!"

"मैंने भी उस पद को अस्वीकार कर दिया।"

"क्यों?"

"मैं पुरोहित-पद के योग्य नहीं हूँ। मेरा स्थान है तपोवनों में, गिरि-शृंगों पर, एकान्त में। मुझे संसार से ग्लानि होती जा रही है।"

"धन्य है!" भार्गव ने कहा—"सो तो मैं जानता ही था। वशिष्ठ की परम्परा तो अद्भुत है।"

"पर आप और क्या आश्वासन चाहते हैं?"

"मुनिवर तो आर्यत्व की जीती-जागती ज्योति हैं। उनके चरणों में तो सभी चक्रवर्तियों को आ जाना चाहिए। सिंधु के उस पार मांधाता गरज रहा है। वह आर्यावर्त पर टकटकी लगाये बैठा है। उसे यदि नहीं अपनाओगे तो तुम्हीं उखड़ जाओगे। वह बहुत सबल होता जा रहा है। चार चक्रवर्तियों के पायों पर ही मुनिवर वशिष्ठ का मंच स्थापित हो सकेगा।"

"चार?"

"तीसरा होगा दौष्यन्ति भरत और चौथा राजा भेद का पुत्र शिबि। इस सत्र के पूरा होने से पहले ही इन जंगलों में उसकी एक-चक्र सत्ता स्थापित हो जायगी।"

"आप उन्हें लेकर आयंगे?"

"हाँ, चारों चक्रवर्तियों के आ जाने पर मैं और लोमा आयंगे और आर्य-श्रेष्ठ मुनि वशिष्ठ को अपने हाथों अर्घ्यदान करेंगे। वे केवल आज के ही नहीं हैं, वे तो सनातन हैं। मानवों की विशुद्धि की धारा के समान वे हमें गगन पर चढ़ा ले जाने के लिए जी रहे हैं।"

स्वदा के प्रशंसा-मुग्ध पराशर प्रज्ञभाव से देखते रह गए।

"पराशर, तुम और कृशाश्व जाकर मांधाता को लिवा लाना। पर उसका आना सहज सम्भव नहीं है। उससे जाकर कहना कि वह आयगा, तो ही भार्गव आयेंगे, और नहीं तो नहीं आयगे—तब वह अवश्य आयगा।"

राज्याभिषेक सम्पन्न हो गए। कवप शैलूष ने भरत का अभिषेक किया, और ऋषि विमद ने शिवि का। शशियसी राजमाता बन गई।

पराशर मुनि ने वहाँ से प्रस्थान किया। भार्गव और लोमा बड़ी दूर तक उन्हें पहुँचाने आये।

'भार्गव!' पराशर ने भार्गव को भेंटकर खिन्न स्वर से कहा—"मुझे यह युद्ध की तैयारियां अब नहीं रुचतीं। मैं फिर युद्ध नहीं देखना चाहता।"

"सो त, मैं भी नहीं देखना चाहता, पर यह अपने हाथ की बात नहीं है।"

"यदि सभी वैर बिसार देंगे तो यह रक्तपात बंद हो जायगा।"

"पर विसार दे तब न—" भार्गव हँस आए।

डोली में बैठकर मुनि बहुत दूर निकल गए, तब भी मानवता के परिपाक-स्वरूप एक-दूसरे में समाये खड़े इन अर्ध-नारीश्वर को वे पूज्य-भाव से भरे नेत्रों से देखते रह गए।

: ५

जिस प्रकार वरुण की दृष्टि पक्षियों के पंथ को भी जान लिया करती है, वैसे ही भार्गव की दृष्टि सिंधु से सिंहल तक व्याप्त थी।

विद्या और तप की अभिवृद्धि तथा उनके संरक्षण और विस्तार की शक्ति—यही दोनों उनके धर्म के निश्चल पाये थे। सौराष्ट्र में उन्होंने जिस पद्धति का आरम्भ किया था, उसी में संशोधन-परिवर्धन करके उन्होंने उसे अधिक सशक्त बना दिया था। बस्ती-बस्ती में भार्गवों के थाने स्थापित

हो गए थे। वे राज-मार्ग की रक्षा करते, गाय-घोड़ों का परिपालन करते और शस्त्र-विद्या का प्रचार किया करते। वे विद्या की रक्षा करते और अधर्म के आचरण पर नियंत्रण रखते। मार्ग निरापद हो गए थे। व्यापार में उन्नति हुई थी। आश्रमों में विद्या का प्रचार होने लगा था। पाँचसौ शिष्यों सहित भार्गव एक राज्य से दूसरे राज्य में जाते, राजाओं की उलझनों को सुलझाते और स्वेच्छाचार पर नियंत्रण स्थापित करते। आर्यावर्त में नया जीवन भय से मुक्त हो चला। भार्गव का शासन भी वरुण के समान ही था; वे स्वयम् प्रकट न होते तब भी उनका प्रभाव सबका नियमन किया करता था।

कई महीने बीत चले। मुनि वशिष्ठ के आरम्भ किये हुए सत्र में विद्या का नवीन सर्जन हो चला। मंत्रों का पाठ होता, रचना होती और उनमें संशोधन होते। यज्ञ-विधियों की तुलनाएं की जातीं। महर्षिगण अपने ज्ञान और तप से प्राप्त की हुई समृद्धियों का आदान-प्रदान करते। सहस्रों शिष्य महात्माओं के दर्शन करके प्रेरणा प्राप्त किया करते। महानुभाव वशिष्ठ मुनि के छत्र-तले जीवन-कलह नहीं था, पर आत्म-विशुद्धि का अटूट प्रयोग चल रहा था।

वशिष्ठों की परम विद्या के स्वामी मुनिवर ने सुमधुर कण्ठ से शब्द-ब्रह्म की पूजा सिखाई। सबल शब्दों में उन्होंने राग-द्वेष और क्रोध के विनाश का उपदेश दिया।

नित्य प्रातःकाल वे उपदेश किया करते। जीवन का ही नाम है विशुद्धि। विशुद्धि की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई उत्कण्ठा ही आर्यत्व है। यही आर्यत्व मानवता का ध्येय है; सफलता और उस विशुद्धि को सदेह मूर्तिमान करके उन्होंने उसको साक्षात्कार कराया।

भार्गव और भगवती लोमहर्षिणी भी शिष्यों सहित वहाँ आ पहुँचे और मुनि तथा राजा सुदास उनका स्वागत करने के लिए तृत्सुग्राम से बाहर आये।

शस्त्र-विद्या के महागुरु स्वरूप भार्गव एक सहस्र भार्गवों के दण्ड-वन

मे घिरे हुए आये। पर शस्त्रो का त्याग करके उन्होने मुनि को प्रणिपात किया। कितने ही वर्षो के पश्चात लोमा उन्हे मिली थी—शस्त्रो से सुसज्जित भार्गव की अर्धांगिनी के रूप मे। भार्गव के साथ चक्रवर्ती भरत और शिबि, महिषी शशियसी, राजा भद्रश्रेण्य, प्रतीप और विशाखा तथा कृमा और उज्जयन्त भी आये थे।

सिन्धु-तट का स्वामी चक्रवर्ती मांधाता भी भार्गव से साक्षात्कार करने के लिए आया था। वह भार्गव से भी अधिक दीर्घकाय और विशाल-बाहु था। सिन्धु से पारसिक प्रदेश तक उसकी धाक जमी हुई थी। कितने ही वर्षो से आर्यावर्त पर आधिपत्य स्थापित करने की महत्वाकांक्षा वह लिये हुए था। उसका विचार था कि दाशराज्ञ समाप्त होने के उपरान्त जब लोग थके हुए हो, तभी वह आर्यावर्त पर आक्रमण करे। पर इस बीच भार्गव की दंतकथाएं उसने सुनी थी। भार्गव का शिष्य उज्जयन्त उसके यहा घोडे लेने गया था। तभी घोडो की भेंट भिजवाकर उसने भार्गव से मैत्री स्थापित करना आरम्भ कर दिया था। इसी बीच यह निमंत्रण भी आ पहुँचा। वह स्वयम् ही जाकर आर्यावर्त की शक्ति का अनुमान पाना चाहता था।

जब से वह आया था तभी से भार्गव के प्रभाव की गूंज उसे चारो ओर सुनाई पड रही थी। आज उसने उस तेजस्वी मुख और भभकती आंखो के प्रभाव का दर्शन किया।

"गुरुदेव! मै आपके लिए दो सौ घोडे लाया हूँ।"

"इस समय तो यह भेंट मुनिवर के चरणो मे ही चढाई जा सकती है," भार्गव ने उत्तर दिया।

पूर्णाहुति हो गई। एक सहस्र यज्ञ-कुण्डो मे अन्तिम आहुति दी गई। दस सहस्र कण्ठो ने स्वस्ति-वाचन किया।

श्वेत वस्त्रो से सुशोभित, श्वेत शरीर और उससे भी अधिक श्वेत दाढी से विशुद्धि के अवतार-से लगते मुनि वशिष्ठ ने भार्गव को अर्घ्य-दान किया।

काली दाढ़ी और जटा, पत्थर में खुदे-से लगनेवाले सुगठित और सुरेख स्नायु, भभकते नयन, और अपनी दुर्धर्षता में अभेद्य गौरव और उससे भी अधिक आतंक प्रसारित करने वाले पराक्रम—इस सबका स्वामी वशिष्ठ को अर्घ्यदान कर रहा था।

शक्ति ने संस्कार का साम्राज्य स्थापित किया। सारे ग्राम में विजय-घोषणा गूंज उठी।

"मुनिवर!" भार्गव ने नम्रतापूर्वक कहा—"आप तो मूर्तिमान आर्यत्व है। आप से हमें आर्यत्व की प्रेरणा लेनी है। ये चार चक्रवर्ती आपके सामने हैं, इन्हें आज्ञा दीजिए—आर्यत्व का रक्षण और प्रति-स्थापन यही इनका धर्म हो, यही इनकी जीवन-प्रतिज्ञा हो।"

मांधाता सोच-संकोच में पड़ गया। यहाँ बुलाकर क्या मुझसे इन्हें यही प्रतिज्ञा लिवानी थी? पर यज्ञ-मण्डल का वातावरण उसके संस्कारों का परिष्कार कर रहा था। भार्गव के प्रताप को देखकर उनका क्रोध बटोरने की इच्छा उठते ही दब गई। वह सामने आया।

सुदास, मांधाता, भरत और शिबि, इन चारों ने मुनिवर के पैर धोये।

"राजन्यो! धर्म का संरक्षण और प्रवर्तन करो, इसमें तुम्हारे चक्रवर्ती पद की सार्थकता है, और गुरु भार्गव, आपको क्या आशीर्वाद दूँ मैं!" और कैलास पर जैसे चन्द्रिका का आह्लाद फैल जाता है, वैसे ही वशिष्ठ के मुख पर हास्य फैल गया।

"मैं तो एक ही आशीर्वाद चाहता हूँ। सिंधु से सिंहल तक आर्या-वर्त का प्रसार हो जाय—"

"तथास्तु"

मुनिवर ने भार्गव को छाती से लगा लिया।

रात की चाँदनी में मुनिवर भार्गव के डेरे पर आ पहुंचे।

"भार्गव! यह क्या कर रहे हो? पराशर कह रहा था कि तुमने युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी है।"

"यह तैयारी यदि न होती तो क्या मांधाता आज आधिपत्य स्वीकार कर लेता ? आपने नहीं देखा कि प्रतिज्ञा लेने में पहले वह कैसा झिझक रहा था ?"

"हाँ, भार्गव ! तुम्हारे चक्षु दिव्य हैं। मुझे अब समझ में आया कि तुमने मांधाता को क्यों बुलाया है।"

"मुनिवर ! भार्गव हँस पड़े, "आप विशुद्धि को प्रेरित करने वाले शब्द हैं। मैं विशुद्धि का पालन कराने वाला भय हूँ।"

"जहाँ भय होगा, वहाँ क्या विशुद्धि हो सकेगी ?" मुनि ने पूछा।

"आर्यत्व को जिसने सिद्ध कर लिया है, उसे तो स्वयम् विशुद्धि प्राप्त होती है, पर सामान्य जनों में आर्यत्व अकेली प्रेरणा से नहीं जाग सकता। उनके राग-द्वेष को तो भय से ही जीता जा सकता है।"

"इस प्रकार तो मानव कायर हो जायगा।"

"मुनिवर क्षमा करिए। मैंने जो राग-द्वेष के चढाव-उतार देखे हैं, उनकी तो आर्यावर्त में कल्पना भी नहीं की जा सकती। गुरु डड्डुनाथ कह रहे थे कि सबसे अधिक हिंसक प्राणी मनुष्य है। अदृष्ट और सर्व-व्यापी भय यदि न हो तो नर-पिशाच धर्म को स्वीकार नहीं करेंगे, और आप जैसों को कोई जीने भी नहीं देगा।"

"क्या ये चक्रवर्ती अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे ? भार्गव ! आर्यों और दस्युओं का भेद अदृष्ट हो गया है। आर्यों की विशुद्धि—क्या राजा आर्यों की विशुद्धि का संरक्षण करेंगे ?"

"जब तक ये धर्म के चक्र से प्रवर्तित रहेंगे, तब तक तो पालेंगे ही।"

"तो एक विनती करूँ ?"

"आप और विनती करें ! यह कैसे हो सकता है मुनिवर ?"

"भार्गव, पुरोहित-पद छोड़ने का जो वचन मैंने तुम्हें दिया था, उसका पालन मैंने आज किया है। पराशर उसे स्वीकार करना नहीं चाहता। मेरी विनती है कि तुम उसे स्वीकार करो। राजा सुदास को यह प्रस्ताव स्वीकार है। ऋषि कवष ऐलुष तो भरतों का पुरोहित-पद

त्याग देने को तैयार हैं। वह भी तुम्हीं ले लो। विमद ऋषि का स्थान तो तुम्हारा ही है। मैंने मांधाता के साथ आज बहुत-कुछ बातचीत की है, महर्षियों की सम्मति भी मैंने ले ली है, सबकी इच्छा है कि चारों चक्रवर्तियों का पुरोहित-पद तुम्हीं स्वीकार करो। आज तक ऐसा कभी हुआ नहीं है। समस्त आर्यावर्त की एकता और शक्ति तुममें एकत्रित हो जायगी।"

भार्गव लजाकर मंद-से मुस्करा दिए।

"मुनिश्रेष्ठ ! आपने मुझे यहां बुलाया सो क्या इसीलिए ? पर मुझे क्षमा करिए। यह चतुष्कोणपद मैं नहीं ले सकूंगा।"

"भार्गव ! भार्गव ! आर्यावर्त को सशक्त बनाने का ऐसा प्रसंग देव ने किसी को भी नहीं दिया है।"

"मुनिवर, मेरा मार्ग तो सबसे निराला है," धीरे से भार्गव ने कहा—"आपको आर्यत्व के क्षीण होने का भय है। उसे विशुद्ध रखने का एक ही मार्ग है—विद्या, तप और संयम के साधकों को निर्भय करना, जहाँ राज्यशक्ति और वैश्यवृत्ति उनका स्पर्श न कर सके वहाँ उन्हें रखना।"

"इसीलिए यह चार चक्रवर्तियों के पुरोहित-पद की योजना मैंने की है।"

"नहीं, इसमें तो भय व्यापेगा। आर्यत्व राज्यभय पर अवलंबित हो जायगा।"

"तब फिर ?"

"मैं तो राजा और पुरोहितों से अलग ही खड़ा रहूँगा। विद्या, तप और संयम—वह आर्यत्व, जो आप में पराकाष्ठा पर पहुंचा है, उसके पाये मैं ऐसे कच्चे नहीं रहने दूँगा कि किसी दिन उखड़ जायं।"

"सो कैसे ?"

"उसका संरक्षण करने के लिए मरने तक को तत्पर रहें, ऐसा सामर्थ्य ब्राह्मणों और राजन्यों को प्राप्त हो जाना चाहिए।"

मुनि वशिष्ठ ने सिर झुका लिया ।

"भार्गव ! वह दिन तो मैं नहीं देख सकूँगा । जहाँ तुम्हारी दृ
जाती है वहाँ मेरी तो कल्पना भी नहीं पहुँच पाती ।"

'मैं सबसे कुछ विलक्षण अवश्य हूँ," हँसकर भार्गव ने कहा

पान्च

ताण्डव

आसिन्दिवत में सन्ध्या हो रही थी। सारे गाँव में युद्ध की तैयारियाँ चल रही थीं। लोग उत्साहपूर्वक इधर-उधर घूमते, कोलाहल मचाते, शस्त्रों को घिसते, गरजते-चिल्लाते और लड़े हुए युद्धों के संस्मरणों की पुनरावृत्ति कर रहे थे।

राजा पुरुकुत्स के पौत्र त्रैयारुण राजा के महालय में हलचल मची हुई थी। अश्वारोही इधर-से-उधर आ जा रहे थे। बाहर घोड़े हिनहिना रहे थे। गाड़ियों में सामग्रियाँ भरी जा रही थीं।

मधु-मक्खियों के छत्ते में जैसे किसी ने मशाल छुआ दी हो और मधु-मक्खियाँ भिनभिनाती हुई चारों ओर उभर रही हों, ऐसे ही गाँव में मनुष्य उभर रहे थे।

सम्वाद आया था कि अनूप देश का चक्रवर्ती सहस्त्रार्जुन आर्यावर्त पर आक्रमण करने आ रहा है। उसकी सेना की गिनती नहीं थी, और उसे रोक सकना किसी के लिए भी सम्भव नहीं था। पुरुओं के राजा त्रैयारुण क्रोध से भर उठे।

"आर्यावर्त पर आक्रमण करने का साहस करने वाला यह कौन है? किसकी स्पर्धा है कि पुरुष-श्रेष्ठ की आन का उल्लंघन करे?" उन्होंने ग्राम-ग्राम में संदेशे भेज दिए। गांव-गांव से राजन्य और योद्धागण आ रहे थे। वीरता का प्रवाह उछाले खा रहा था। सहस्त्रार्जुन को तो यों चुटकी बजाते में सीधा कर देंगे; दुम दबाकर उसे अनूप देश भागना पड़ेगा।

महालय के सामने के चौक में ग्राम की यज्ञ-शाला थी। वहाँ लोगों

को लटनी लगी हुई थी।

कौन वीर पुरुषों का सामना कर सकेगा?' यह जंगली हैहय भला क्या समझता है?, 'इसे तो स्वाद चखाना ही होगा", "इसे तो पलक मारने से धूल चाटता कर देंगे छाती ठोक-ठोककर योद्धा लोग इस प्रकार गरज रहे थे।

जन-समूह में जब शौर्य का वातावरण व्याप जाता है तो तनिक-सा भी विचार करनेवाला मनुष्य कायर और मूर्ख समझा जाता है। जिह्वा होते हुए भी उसे गूंगा बना दिया जाता है। जो जितनी ही अधिक डींग हाकता है, उसे उतना ही अधिक सम्मान मिलता है।

एक व्यक्ति ने यह प्रकट करने की धृष्टता की—"सहस्रार्जुन बहुत प्रबल है।'

"हां," पांच जने बोल उठे "तेरी छाती तो अभी से ही बैठ रही है।"

"गुरुदेव भार्गव बड़ी कठिनाई से यादवों को उसके क्रोध से बचा कर लाये हैं', उस व्यक्ति ने किंचित साहस दिखाया।

"तू भी शायद उनके साथ भागकर आया होगा." एक व्यक्ति ने पूछा।

"उसका सैन्य बहुत बड़ा है।"

'स्त्रैण! कायर! जा, तू जाकर उसमें मिल जा। द्रोही! नपुं-सक!" चारों ओर से फटकारें पड़ीं।

"भाई!" वह व्यक्ति गिडगिडाने लगा, "मै तो यह चला लडने को। पर जो सच बात है वही कह रहा हूं।"

"तू अपने घर मे बैठ जा," एक व्यक्ति ने कहा।

"तू लहँगा पहन ले," दूसरे ने कहा।

"तू अपनी स्त्री को लडने भेज दे,' तीसरे ने कहा।

सैकड़ो धिक्कारो की बौछार से घबडाकर उस मनुष्य ने वहाँ से पिंड छुड़ाया। तभी किसी ने कहा कि पराशर मुनि अपने झोपडे के एकाकी-

पन को त्यागकर राजा से मिलने नगर में आ रहे हैं। पहले तो किसी ने इस बात को माना ही नहीं। अभी भला वे यहाँ क्यों आने लगे!

एक वर्ष से मुनि पराशर यहाँ से कुछ ही दूर पर, जंगल में एक टीले पर अपनी कुटिया बाँधकर तपश्चर्या कर रहे थे।

पूरे वर्ष-भर में पराशर ने एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया था। निरन्तर मौन साधते हुए वे मुनि नीची दृष्टि किये नित्य यमुना पर नहाने जाते और वैसे ही लौट आते। कोई श्रद्धालुजन यदि दूध दे जाता तो पी लेते, नहीं तो जो कुछ फल-मूल मिल जाता उसी का आहार कर लेते। रात को अपनी कुटिया के आगे एकाग्र ध्यान लगाकर वे बैठ जाते। हरिण, पक्षी और सर्प भी उनके पास आ, निर्भय होकर बैठ जाते।

उन्होंने तृत्सुओं के पुरोहितपद को त्याग दिया था; विद्या के केन्द्र-सा पितामह का आश्रम त्याग दिया था। सैकड़ों शिष्यों की सेवा भी उन्होंने त्याग दी थी। उन्होंने राजा त्रैयारुण के निमंत्रण की अवगणना कर दी थी। अपने एकाकीपन में अन्तर की गहराइयों में उतरकर वे जगत के दुःखों के नाश का उपाय खोजा करते थे। आज मुनिवर अपने आप ही गाँव की ओर चले आ रहे थे। कुछ विचित्र-सी बात लग रही थी। जो किसी के सामने तक नहीं देखते थे, वे मनुष्यों से मिलने आ रहे थे। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। अवश्य ही मुनिवर योद्धाओं को आशीर्वाद देने को आये होंगे।

पराशर मुनि अपने दण्ड का सहारा लिये, एक पैर से लंगड़ाते हुए, धीरे-धीरे यज्ञशाला की ओर आये। उनका मुख दुबला और चिन्तन-शील था। उनकी विरल-सी दाढ़ी उनके मुख को और भी अधिक कृश बनाये हुए थी। उनकी आँखों में एक गहरी वेदना थी और उनके कपाल पर रेखाएँ थीं। लोगों के उत्साह को देखकर उनकी आँखें गीली हो आईं।

"मुनिवर महालय में जा रहे हैं!" "रास्ता छोड़ो!" "रास्ता

छोड़ो !" "राजा को आशीर्वचन देने जा रहे हैं !" "ये हैहय को अपने शाप से जलाकर भस्म कर देंगे !"—लोगों की भीड़ में से ऐसे वाक्य सुनाई पड़ रहे थे। कुछ लोगों ने मार्ग छोड़ दिया। कुछ लोग राजा को सूचना देने के लिए जा पहुंचे।

लोग उत्साह के आवेश में सामने घिर आए और मुनि के पैरों पड़े : "मुनिवर ! आशीर्वाद दीजिए," एक व्यक्ति ने कहा।

"मुनिवर !" दूसरे ने कहा, "हम सहस्रार्जुन को चूर-चूर कर देंगे। हमारी बाहुओं को वीर्यवान बनाइये।"

"आप-से महानुभाव का एक शब्द भी उसे जलाकर भस्म कर देगा।"

"पधारिए, पधारिए इस ओर !" लोगों ने उनका स्वागत किया।

मुनि ने मूक-मूक ही हाथ फैलाकर आशीर्वाद दिया और लंगड़ाते हुए वे आगे चलने लगे। लोगों ने उनका जय-जयकार किया। मुनि ने एक गहरा निःश्वास छोड़ा।

"पराशर मुनि आ रहे हैं !" "मुनि आ रहे हैं !" "मुनि आ गए !" राज-महालय में जन-जन के मुख पर यही बात थी। त्रैयारुण पुरुराज तुरन्त उठ खड़े हुए। पहले वे तीन बार मुनि से मिलने जा चुके थे पर वे बोले नहीं थे। आज वे अपने आप ही कैसे चले आ रहे हैं ? क्या कारण है ? सभी विस्मित हो रहे।

राजा बाहर निकल आए। उन्होंने मुनि के चरण धोये। उनका सत्कार कर उन्हें अन्दर लाकर बिठाया, और गन्ध तथा माल्य से उनकी पूजा की।

"मुनिवर, आपने बड़ी कृपा की है। इस क्षण आपके आशीर्वाद की आवश्यकता है," राजा त्रैयारुण ने कहा।

बारह महीनों के उपरान्त मुनि ने मौन तोड़ा।

"राजन् ! मैं आशीर्वाद देने नहीं आया हूँ," उन्होंने धीरे से, दयार्द्र और कम्पित स्वर में कहा।

राज-सभा स्तब्ध रह गई।

"मैं सावधान करने आया हूँ, सावधान करने।" राजा चकित हो रहे।

"राजन्, आठ दिन से मुझे बड़े भयानक दृश्य दिखाई पड़ रहे हैं। अहोरात्रि मुझे प्रेरणा हो रही थी कि मैं तुम्हें सावधान करूं। इसीसे मैं आया हूँ।"

सब चुप हो रहे।

"मुझे आसिन्दिवत जलता हुआ दिखाई पड़ता है, उसकी गलियों में रक्त की नदियाँ बहती दिखाई पड़ती हैं। राजन्! क्षमा करना, मुझे आप दिखाई पड़ते हैं—"

"हाँ?"

"रणक्षेत्र में रौंदे हुए—" साश्रु नयन हो मुनिवर ने कहा—"तुम्हारा माथा और धड़ मुझे अलग-अलग पड़े दिखाई पड़ते हैं।" सभा स्तब्ध हो गई। कुछ लोगों के मुख पर क्रोध का आवेश छा गया। बहुतों के हृदय का साहस जाता रहा।

इस पराजय के मंत्र-द्रष्टा की बात सुनकर उनके प्रति जो सबके मन में पूज्य भाव था वह कुछ कम हो गया। वे अब तक मौन थे, तो अभी भी मौन ही क्यों न बैठे रहे!

"मुनिवर, आप अस्वस्थ हैं। आप निश्चिन्त होकर रहें। किसी की हिम्मत नहीं है कि मेरे होते आर्यावर्त में पैर भी रख सके।"

मुनि ने सिर हिलाया—"मुझे वह आता दिखाई पड़ रहा है—हिंसा का सागर—उछलता हुआ, गरजता हुआ, आर्यावर्त का सर्वनाश करता हुआ।"

"कभी नहीं, कभी नहीं। मैं और मेरे वीर मार्ग रोककर खड़े हैं," राजा ने झुंझलाकर कहा।

"हिंसा से कुछ भी होने वाला नहीं है, केवल हिंसा बढ़ेगी," मुनिवर ने कहा।

"तब फिर क्या करें ? हाथ बांधकर बैठे रहें ?" झल्लाकर सेनापति ने पूछा।

"तैयारी करना छोड दो," मुनि ने कहा।

"तो क्या मैं कायर होकर उसे आत्म-समर्पण कर दूं—या फिर भाग जाऊँ ?" तनिक क्रुद्ध होकर त्रैय्यारुण ने पूछा।

"क्या पुरुश्रेष्ठ पीछे हट जायेंगे ?" सेनापति ने पूछा।

"पुरुश्रेष्ठ पर देवों की कृपा है," पुरोहित ऋषि मेधातिथि ने कहा "विजय इन्हीं की है।"

पराशर मुनि ने अपने दोनों हाथों को मिलाकर मानो वेदना में मसल डाला—"राजन ! मैं तुम्हें कैसे समझाऊँ ? मुझे जो दिखाई पड रहा है वह कैसे कहूं ? हिंसा न तो कभी जीती है, और न कभी जीतने ही वाली है। देवों ने मुझे इतना वाग्बल नहीं दिया है कि मैं तुम्हें इस बात का निश्चय करा सकूं।"

"हैहय आर्यावर्त पर आक्रमण करें और कोई उनका सामना ही न करे, यह कैसे हो सकता है ? मुनिवर ! आप अपनी यह चिन्ता छोड दीजिए।"

"नहीं। उसकी शरण में जाओ। अपनी अहिंसा से उसकी हिंसा को जीत लो। और नहीं तो फिर आमिन्दिवत छोडकर जंगलों में चले जाओ, जहाँ इस दावानल की आंच न पहुँच पाए।"

"आप मुझसे कायर होने को कह रहे हैं।" तिरस्कारपूर्वक राजा ने कहा।

"नहीं, मैं आपसे इस सामुहिक उन्माद से बचने के लिए विनती कर रहा हूँ। चारों ओर से जब द्वेष सुलग उठे तब द्वेषी होने में वीर्य नहीं है, तब तो इस द्वेष को जीतना ही सामर्थ्य का लक्षण है।"

"मैं हैहय की शरण में जाऊं—और नहीं तो भाग जाऊं ? मुनिवर ! आप पधारिए। निर्भय होकर रहिए। आपके सपनों ने आपको पराजित कर दिया है।"

"राजन् ! मेरे कहने को तुम कायरता समझ रहे हो। मैं तो मरा हुआ हूँ। मुझे तो कुछ भी बचाना नहीं है जो खोने का डर हो, पर अपनी बात का निश्चय मैं तुम्हें कैसे कराऊं ?"

"वह कभी होना ही नहीं है। मैंने देवों की पूजा की है। मेरे पूर्वज सदा ही ऋत के मार्ग पर चले हैं। मैंने हैहयनाथ को कभी सताया भी नहीं है। फिर मुझे विजय क्यों नहीं मिलेगी ?" राजा ने कहा—"मेरे हृदय में उत्साह उछल रहा है। मैं दिशाओं को हैहय-विहीन कर दूंगा।" उसने गर्वपूर्वक कहा।

पराशर मुनि ने सिर हिलाया।

"मुनिवर !" जैसे पागल व्यक्ति सहिष्णुता से बात करते हैं वैसे ही ऋषि मेधातिथि ने कहा—"आप निश्चिंत रहें। देवों ने पुरुश्रेष्ठ को कभी नहीं छोड़ा है।"

"ऋषिवर !" मुनि ने खिन्न स्वर में कहा—"आप कभी समरांगण पर नहीं गये हैं। मैं तो गया हुआ हूँ। मैंने योद्धाओं के प्राण भी लिये हैं। मैं तो मरते-मरते बचा हूँ। मैंने महर्षि शक्ति और पुरुश्रेष्ठ पुरुकुत्स को मरते देखा है। समरांगण में एक-दूसरे पर कैसा विष उछाला जाता है ? पारस्परिक संहार का उन्माद कैसा तीव्र हो उठता है ? क्या यही है देव-कृपा ? क्या यही है देवों की आज्ञा ?" निराश स्वर में मुनि ने कहा। "कब आयगा वह दिन जब तुम लोग इस संहार की निरर्थकता को समझ सकोगे ?"

राजा त्रैयारुण का धैर्य टूट गया।

"मुनिवर ! आपने चेतावनी दी सो तो आपकी कृपा है। पर मेरा धर्म यही है कि मैं हैहय का सामना करूं ; उसका मार्ग रोकूं। मेरी मृत्यु चाहे इसी क्षण क्यों न हो जाय, पर मेरा कर्तव्य तो युद्ध ही है।"

"कोई देखने वाला नहीं है; कोई सुनने वाला नहीं है ?" मुनि ने अपना दण्ड हाथ में लिया और खेद से सिर हिलाया—"चारों ओर दावानल सुलग उठा है। मैं आर्यावर्त को भस्मसात् होते देख रहा हूँ। देव !

देव ! क्या मेरी बात कोई नहीं सुनेगा ? मानव पशु अपने द्वेष को नहीं छोड़ेगा ?"

इस पराजय के द्रष्टा के आक्रन्द को सब तिरस्कारपूर्वक सुन रहे थे।

मुनि अकेले ही लंगड़ाते-लंगड़ाते महालय से बाहर निकल आए। बाहर उत्साही योद्धाओं का समूह एकत्रित था।

"मुनिवर आशीष दीजिए!" एक ने कहा।

"देव तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करें।"

"ऐसी आशीष दीजिए कि हमें विजय प्राप्त हो।" एक व्यक्ति ने कहा।

"सो मैं क्योंकर दे सकता हूँ? वह फलने वाली ही नहीं है।" मुनि ने निराश स्वर में कहा।

महालय के भीतर से एक योद्धा ने आकर दूसरे से कुछ कहा। उत्साह के आवेग से उभरते योद्धा क्रोध से भरा उठे।

"आशीर्वाद नहीं देंगे?"

तभी महालय में से बाहर आये हुए एक योद्धा ने कहा—"मुनि तो घबड़ा गए हैं। उन्हें तो आर्यावर्त का नाश निकट ही दिखाई पड़ रहा है। या तो आत्म-समर्पण कर दो, या फिर भाग जाओ, यही कहने वे अभी राजा के पास गये थे।"

"क्या हम शरण जायं? भाग जायं? शस्त्र-त्याग कर दें? क्या हम इतने पुरुषार्थहीन हैं?" जन-जन के मुँह से क्रोध के उद्‌गार निकलने लगे।

चुपचाप वेदना से सिर नीचा किये, मुनि पराशर इस क्रोधाविष्ट मेदिनी के बीच होकर आगे बढ़े। उनके द्वारा राजा को सुनाया हुआ संदेश ज्योंही लोगों में फैला, तो चारों ओर एक हलचल-सी मच गई।

"हमारी तो विजय ही होगी," एक जन ने कहा।

"पापी हैहय की मृत्यु निकट आ गई है," दूसरे ने कहा।

"क्या हम युद्ध से पीछे हटेंगे?" तीसरे ने कहा।

"ऐसे अशुभ वचन कहने वाला वह कौन व्यक्ति है?" पहले ने कहा।

"वह है वशिष्ठ मुनि का पौत्र! उसका मुँह तो देखो!" चौथे ने कहा।

"अरे वह मुनि है कि मूषक?" पाँचवें ने कहा।

"मूषकमुनि! भाग जाओ। यह तुम्हारा काम नहीं है।" पहले योद्धा ने मुनि के पास जाकर सबको सुनाते हुए कहा।

"तुम ठपकारो, मूषक मुनि!" पाँचवें ने पराशर मुनि को आज्ञा दी।

"अरे इससे तो यही अच्छा है कि सहस्रार्जुन के पास चले जाओ," पहले व्यक्ति ने कहा और सब हँस पड़े।

"अरे हाँ! आपको पुरोहित-पद पर स्थापित कर देंगे," चौथे ने कहा।

"ऐं, क्या हम शरण में जायं?" एक योद्धा ने कहा।

"क्या पुरुषों ने भी कभी पीठ दिखाई है?" छठे योद्धा ने कहा।

"कभी नहीं, कभी नहीं," सब लोग बोल उठे।

"विजय तो पुरुषों को ही होगी," पहले योद्धा ने कहा, और उसने मुनिवर पर थूका।

"मूषक मुनि, पधारिए—पधारिए!" सबने खिल्ली उड़ाकर कहा।

मुनि चुपचाप आगे बढ़ते ही चले गए। उनकी आँखें भीग आई थीं। उनके पीछे खिल्ली उड़ाते हुए युवक चले आ रहे थे।

अंधेरा हो आया। एक युवक ने उठाकर पत्थर फेंका। वह जाकर मुनि को लगा और वे गिर पड़े। वे निठल्ले युवक खिलखिलाकर हँसते हुए वहाँ से चले गए।

गाँव में युद्धोत्साह व्याप रहा था। मशालें लेकर इधर-से-उधर घूमते हुए लोग तैयारियों में व्यस्त थे।

पराशर मुनि उठे और अपना डण्डा हाथ में पकड़कर लंगड़ाते-लंगड़ाते धीरे-धीरे वहाँ से चले गए।

• २ •

बीस दिन के उपरान्त—

पराशर मुनि यमुना के तीर पर खड़े थे। उनकी आँखें अश्रुपूर्ण थीं। उनके मुख पर अवर्णनीय खेद छाया हुआ था।

आमिन्दिवत एक विशाल चिता के समान हो गया था। उसमें से धुँआ उठ रहा था। कभी-कभी चीत्कारें सुनाई पड़तीं। जब-तब आक्रन्द सुनाई पड़ता। मुनि जहाँ खड़े थे, वहाँ से चारों ओर स्थान-स्थान पर शव पड़े दीख रहे थे।

उनके स्वप्न भयानक रूप से सत्य हुए थे। चार योजन की दूरी तक राजा त्रैयारुण और उनके वीर योद्धा मरे हुए पड़े थे—गिद्ध, कौवों और शृगालों के आहार बनकर। आमिन्दिवत की गलियों में रक्त के पनाले बह रहे थे। उसका महालय छार-छार होकर पड़ा था। पुरु मर मिटे थे उनकी स्त्रियाँ पशुवृत्ति की ग्रास बनकर लहूलुहान पड़ी थीं। उनकी आक्रन्द करती संतानों को भयंकर मुद्राओं वाले हैहय भाले और परशु पर चढ़ाकर घुमा रहे थे।

जिनसे भागा जा सका, वे भाग निकले थे। दो पैरों वाले पशु चारों ओर फेरी लगा रहे थे। उनका निर्दय हास्य निर्जन मार्गों पर गूंज उठता।

"मैं कैसे समझाऊं? मेरा कहा मानते तो क्या यह दिन आता? न जाने क्या होने को है? देव! देव! मनुष्य के द्वेष का पार भी है या नहीं? देव! वह सब पहले से देख पाने की शक्ति तुमने मुझे दी थी, तो इसे रोकने की शक्ति क्यों न दी?" मुनि की आँखों से आँसू टपकने लगे। उन्होंने निःश्वास छोड़ा, नदी में से अपना घड़ा भर लिया और उसे कन्धे पर रखकर कुटिया की ओर चल पड़े।

नदी की रेत के बगूले उठने लगे और कोई सौ-एक अश्वारोही आते दिखाई पड़े। वे भयंकर और शक्तिशाली थे। उनकी हुंकारों से नदी का संगीत खण्डित हो रहा था। उन अश्वारोहियों के आगे-आगे दो व्यक्ति

चल रहे थे। उनमें से एक व्यक्ति प्रचण्ड और भयानक था। उसके शस्त्र अन्य सबके शस्त्रों को अपेक्षा बड़े थे। उसकी विकराल आँखों में आनन्द छाया हुआ था। एक दूसरा योद्धा आमिन्द्रवत की भस्मसात भूमि उसे गर्वपूर्वक दिखा रहा था।

मुनि ने तुरन्त पहचान लिया। उस भयानक व्यक्ति को उन्होंने अपने सपनों में देखा था। इसी व्यक्ति को वर्षों पूर्व पितामह के आश्रम में देखा था। वह स्वयम् सहस्रार्जुन ही था। उस हिंसामूर्ति को देख कर मुनि काँप उठे। कितने मनुष्यों का संहार करके, यह कितनी स्त्रियों को भ्रष्ट करके, कितनी बस्तियों को भस्म करके, यह भूखा दावानल शांत हो सकेगा ?

मुनि ने घड़ा नीचे रख दिया और उन्होंने आगे आकर सहस्रार्जुन के घोड़े की रास पकड़ ली। अपने घोड़े की रास पकड़ लेने वाले उस धृष्ट व्यक्ति की ओर सहस्रार्जुन ने कठोर दृष्टि से देखा। उसके साथी ने खड्ग उठाया।

"क्या चाहता है, जोगड़े ?" सहस्रार्जुन ने अधीर होकर पूछा।

"हैहयराज ! मैं तुमसे विनती करता हूँ कि तुम लौट जाओ। तुम जो कर रहे हो, उसका भान तुम्हें नहीं है। हिंसा के बीज बोने से विष के बन उगेंगे। रुधिर की प्रत्येक बूंद में से रुधिर बहाने वाले उत्पन्न होंगे। हैहयराज ! तुम जगत के स्वामी हो, पर यह निरर्थक विनाश कहाँ तक चलाओगे ? द्वेष ने किसी को तारा नहीं है और न तुम्हें ही तारेगा। वह तुम्हें जलाकर भस्म कर देगा। तनिक रुको, विचार करो, और पीछे लौट जाओ।"

इस पागल मनुष्य के वाक्यों को सहस्रार्जुन ने तिरस्कारपूर्वक सुना; फिर क्रूर हँसी हँसकर मुनि पराशर के मुख पर आड़ा वार किया।

योद्धाओं का समूह खिलखिलाकर हँस पड़ा। मुनि के मुंह से रक्त बह चला और वे बेभान होकर धरती पर लोट गए। सहस्रार्जुन

और उसके नायक उस पगले की ओर देखे बिना ही, घोड़े दौड़ाते हुए अदृष्ट हो गए।

उस रात दस्युओं की पाशवता से सैंकड़ों असहाय स्त्रियों के शील की आहुति दी गई। सवेरे तक विजयी योद्धा रंगरेलियां करते रहे।

मुनि पराशर बेभान होकर पड़े रहे।

चन्द्रमा उदय हुआ।

एक धीवर की नाव झपटती हुई आकर इस किनारे पर रुक गई। उसमें से दो धीवर अपनी टोकनियां लेकर आम्मिन्दिवत में मछलियां बेचने के लिए उतरे। इस ग्राम में उनकी पुरानी ग्राहकी थी।

नाव में से तेरह वर्ष की एक कन्या भी नीचे उतर आई। उसने मात्र एक छोटा-सा कछौटा मार रखा था। उसके हाथों और पैरों में चांदी के आभूषण थे।

उस चन्द्रिका में वह अद्भुत दिखाई पड़ रही थी। वह सांवली थी और चन्द्रमा के प्रकाश में ऐसी लग रही थी, मानो तप्त ताम्र की बनी हो। उसके सुडौल गालों पर आनन्द छाया हुआ था। पुष्पों की कलियों के समान उसके छोटे-छोटे नवीन स्तन उसे और भी मोहक बना रहे थे।

वह नाव पर से पानी में उतर आई, और वहाँ से उछलती-कूदती किनारे पर आ गई। वह एक पैर से कूद रही थी। ताल देने के लिए अपने हाथों को वह ऊंचा-नीचा कर रही थी। कुछ ऐसा लग रहा था, मानो चन्द्र-किरणों पर झूलने का प्रयत्न कर रही हो।

उसने कुछ ही दूर, भूमि पर पड़े हुए एक मनुष्य को देखा, और वह दौड़कर उसके पास गई। मुनि पराशर बेसुध पड़े हुए थे। उनके मुंह से रक्त बह रहा था। बालिका चीख उठी।

वह एकाएक नीचे झुक गई और उसने मुनि को पहचान लिया। जब उनकी नाव यहां आया करती तो उसके माता-पिता उसे लेकर पास ही के जंगल में, उस टीले पर स्थित मुनि की कुटिया पर जाया

करते थे। वहाँ वे लंगड़े मुनि के लिए दूध धर आया करते। वे मुनि कुछ बोलते नहीं, केवल हाथ के इंगित से आशीर्वाद दे दिया करते।

इस लड़की को मुनि बहुत अच्छे लगते थे। उनके मुख पर अगाध प्रेम का भाव था। उनकी आँखों में दया थी। मुनि को देखकर उस लड़की को रंचमात्र भी डर नहीं लगता था। वह उनके पास जाकर बैठ जाती और अपने सुन्दर हाथों में मुंह धरकर मौन मुनि की स्नेह-पूर्ण आँखों को ताका करती।

उन्हीं मुनि को आज इस मूर्छित अवस्था में पड़े देखकर उस बाला के हृदय पर आघात-सा लगा। 'मुनि मर गए?' उनके ठीक पास जाकर जो उसने रक्त बहते हुए देखा तो वह रो पड़ी।

"मुनि! मुनि! मुनि!" पास जाकर उसने पुकारा।

मुनि निश्चेष्ट पड़े रहे। उस बाला की छाती बैठ गई। मुनि की छाती पर सिर रखकर वह रोने लगी। उसके रोने का स्वर सुनकर, उसकी माँ तुरन्त भागी हुई बाहर आई। "मेरी मत्स्यगंधा को क्या हो गया?" वह किनारे पर आ गई। "मत्स्यगंधा! क्या हो गया तुझे?" उसने पुकारा।

"माँ, माँ, मुनि मर गए," मत्स्यगंधा ने रोते हुए कहा। माँ ने बेटी को मुनि की छाती पर से उठाकर, मुनि की आँखों पर हाथ रखा। मुनि ने आँखें खोलीं, और फिर मूँद लीं।

"अरे जी रहे हैं—जी रहे हैं—"

एकाएक वे धीवर दौड़ते हुए आये और उन्होंने स्त्री और बालिका से नाव पर चले जाने के लिए कहा।

"चलो, चलो यहाँ से, आसिन्दिवत तो आधा जलकर भस्म हो चुका है। यहाँ तो अब राक्षसों का वास है। मेरा सारा टोकना छीनकर उन्होंने मुझे मारा है, चलो यहाँ से।" मत्स्यगंधा के पिता ने कहा।

"पिताजी, ये मुनि जी मर रहे हैं," मत्स्यगंधा ने कहा।

कौन मुनिजी !" उसके बाप ने नीचे की ओर दृष्टि डाली—"उन राक्षसों ने ही इन्हें मार डाला है।"

"इन्हें भी उठाकर अपने साथ ले लो। फिर इनकी परिचर्या करेंगे।" धीवर के भाई ने कहा।

वे दोनों पराशर मुनि को उठाकर अपनी नाव पर ले गए, और उन्हें एक ओर लिटा दिया। मत्स्यगंधा की माँ ने पानी लेकर उनका मुंह धोया।

त्वरापूर्वक नाव वहाँ से चल पड़ी। मध्यरात्रि हो आई। सब धीवर सो रहे थे। निस्त्राण मुनि, अर्धमूर्छित अवस्था में पड़े थे। कौमुदी उनके फीके, खेदयुक्त, स्वरूपवान मुख को एक अपरिचित मार्दव प्रदान कर रही थी।

बड़ी देर तक मत्स्यगंधा मुनि के मुख को ताकती रही। फिर वह कुछ आगे खिसक आई और मुनि के सिर को अपनी गोद में लेकर धीमे स्वर में लोरियां गाने लगी।

जगत के विद्वेष से घायल मुनि के हृदय को उन लोरियों के स्वर से शांति प्राप्त हुई।

. २

भृगु के आश्रम में जब सहस्रार्जुन के आसन्न आक्रमण का सवाद पहुंचा, तब भद्रश्रेण्य और विमद ऋषि दोनों वहां उपस्थित थे। भार्गव और भगवती चक्रवर्ती मांधाता के यहां गये हुए थे। उनके साथ चक्रवर्ती भरत, शिबि तथा प्रतीप भी गये हुए थे। कृमी और उज्जयंत थानों पर पहरा देने गये हुए थे।

भद्रश्रेण्य सहस्रार्जुन को भली भाँति पहचानते थे। इधर-उधर बिखरे बल के द्वारा, प्रलय-समुद्र के समान उसकी सेना को रोकना संभव नहीं था। इस बात को भली-भांति समझकर ही उन्होंने अपना निर्णय किया और तदनुसार सबके पास संदेशा भेज दिया। ऋषि, स्त्रियां

और बालकों को किसी एकांत जंगल में, पर्वत पर, और हो सके तो सिंधु के तीर पर चले जाना चाहिए; योद्धागण सिंधु के तीर पर जाकर भार्गव से मिलें; उनसे मिले बिना कोई भी अपनी शक्ति का अपव्यय न करे।

जब भद्रश्रेण्य ने जमदग्नि ऋषि से अपने साथ चलने के लिए कहा तो उन्होंने सिर हिलाते हुए कहा—

"नहीं भद्रश्रेण्य, मैं तो ऋषि हूँ। उसका परम्परागत गुरु हूँ। मैं तो यहीं रहूंगा।"

"पर महर्षि, वह तो सर्वभक्षी है। फिर कोई तपस्वी हो कि शीलवती स्त्री हो, किसी के लिए भी उसके मन में सम्मान का भाव नहीं है।"

"माना कि वह बलवान है, पर ऐसे बलियों की शक्ति परिमित होती है। वह मार सकता है, पर तपस्वियों के तप को भंग नहीं कर सकता। तुम सब यहां से चले जाओ। किसी शस्त्रधारी को आश्रम में नहीं रहना चाहिए। यदि कोई शस्त्रधारी यहां रह जायगा, तो उसके पशुबल को उत्तेजन मिलेगा। यदि मैं अकेला ही यहाँ रहूँगा, तो वह उंगली भी नहीं उठा सकेगा।"

"महर्षिवर, उस दुष्ट की क्रूरता की सीमा नहीं है।"

"तो उसके प्रभाव की सीमा है, यह तो किसी-न-किसी को उसे बताना ही होगा। मैं वृद्ध हूँ। बरस-दो-बरस जी लिया तो क्या, और मर गया तो क्या? हर जमदग्नि अपने शापित शिष्य के भय से भाग कर जाय। यह नहीं हो सकता," महर्षि ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"मैं महर्षि के साथ ही रहूंगी," रेणुका ने कहा।

महर्षि टस-से-मस न हुए। और भद्रश्रेण्य तथा ऋषि विमद पांच वृद्धों को छोड़, और सब को साथ ले, आश्रम छोड़कर चले गए। भद्रश्रेण्य ने चारों ओर संदेशे भिजवा दिए, और भार्गवों तथा अन्य राजाओं को अपने सैन्य लेकर सिंधु-तट पर आने के लिए कहलवा

दिया। ऋषिगण स्त्रियों, बालकों तथा गायों को साथ लेकर धीरे-धीरे वहां से चल पड़े। कुछ शस्त्र सज्जित भार्गव थानों पर संदेश पहुचाने चले गए।

भरतो ने भद्रश्रेण्य की आज्ञा का तुरन्त पालन किया और उनके योद्धा भी साथ हो लिये। राजा सुदास दिवंगत हो चुके थे और राजा कुशाश्व अब तृत्सुओं पर राज्य करते थे। उन्होंने अपना गांव छोडना अस्वीकार कर दिया और एक विशाल सैन्य एकत्रित कर, वे सहस्त्रार्जुन का सामना करने को तैयार हो गए।

वशिष्ठ मुनि अब पुरोहित पद से निवृत्त होकर आश्रमवासी हो गए थे। उनका आश्रम विद्या का परम धाम था। सहस्रों शिष्य वहां विद्याध्ययन किया करते थे।

उस परम धाम मे जब राजा भद्रश्रेण्य का संदेशा पहुंचा, तो पहले शिष्यों ने उसकी बड़ी हँसी उडाई। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ के पवित्र आश्रम को कौन मूर्ख स्पर्श कर सकता है? पर इसके पश्चात् त्रैयारुण के मरण का समाचार आया, ऋषि मेधातिथि के आश्रम के जलकर भस्म हो जाने का सम्वाद आया, फिर आसिन्दिवन के भस्मसात होने का सम्वाद भी आ पहुचा। चारो ओर से लोग भाग-भागकर आ रहे थे। जब यह सम्वाद मिला कि सहस्त्रार्जुन का सर्वनाशकारी सैन्य यमुना के तीर से सरस्वती की ओर मुड रहा है तो वशिष्ठ मुनि के आश्रम के तपस्वी घबरा उठे।

वशिष्ठ मुनि ने अपने शिष्यों को बुलाकर कहा—'तपस्वियो! आर्यावर्त मे दावानल सुलग उठा है। भार्गव के अतिरिक्त और कोई उसे नही रोक सकता, और उन्हे आने मे अभी देर लगेगी। तुममे से जो भाग सकें वे भाग जायं, और हो सके तो हिमालय के किसी गिरि-शृंग मे जाकर छिप रहे। पर वशिष्ठों की विद्या की रक्षा करना," वशिष्ठ मुनि ने कहा।

"पर गुरुदेव! आपका क्या होगा?"

"मैं यह आश्रम नहीं छोड़ूंगा!"

"तो फिर हम—"

"वत्सो! आपत्काल आया है तो आपद्धर्म को स्वीकार करना ही होगा। मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम सब यहाँ से चले जाओ।"

"पर आपको छोड़कर?"

"वत्सो! मेरी चिन्ता न करना। राजा दिवोदास और गाधिराजा के समय से मैंने आर्यावर्त की विद्या, शौर्य और समृद्धि को विकास पाते देखा है। उस विकास के लिए मैंने अहोरात्रि अविश्रान्त श्रम किया है। आज उसी आर्यावर्त को जलाकर भस्म कर देने वाला आ पहुँचा है। अब मेरा कोई उपयोग नहीं है। मैं उसे पिघलाकर आर्यावर्त को बचा लूंगा; और नहीं तो इस प्रयत्न में मर मिटूंगा और अविस्मरणीय कीर्ति-कथा की धरोहर तुम्हारे लिए छोड़ जाऊंगा," मुनि ने कहा। "मुझे छोड़कर चले जाओ और वशिष्ठों की विद्या का संरक्षण करो, बस यही तुम्हारा धर्म है।"

मुनिदेव का निश्चय टलना सम्भव नहीं था। रोता-अकुलाता शिष्य समुदाय गुरुदेव के पैरों की रज सिर पर चढ़ाकर उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए आश्रम छोड़कर चला गया। मुनिवर और कुछ वृद्ध शिष्य आश्रम में रह गए।

दसवें दिन सहस्रार्जुन का सैन्य सरस्वती के तीर पर आगे बढ़ता हुआ वशिष्ठ मुनि के आश्रम तक आ पहुँचा। हैहय सेना विजय के उन्माद में डूबी हुई थी। आसिन्दिवत भस्मसात् हो चुका था। वहाँ कुछ लोग तो मर मिटे थे और कुछ वहाँ से भाग निकले थे।

बहुत बड़ी संख्या में गायें और घोड़े हैहयों के हाथ लगे थे; कुछ आर्यों को रस्सो से बाँधकर अपनी गाड़ियों के पीछे-पीछे घसीट लाए थे। सैकड़ों स्त्रियों ने अत्याचार सहन किया था। सैकड़ों ने नदी में कूद कर या फिर जीभ काटकर अपने प्राण दे दिये थे। सैकड़ों स्त्रियों को वे

बलात्कारपूर्वक अपने साथ घसीट लाए थे, जो कि सैनिकों के आनन्द-विनोद का साधन हो गई थीं।

सरस्वती के तट पर अपरिचित ध्वनियाँ गूंज उठीं। हुंकारें, अपशब्द, ढोरों और मनुष्यों पर पड़ने वाले कोड़ों की मार का शब्द, वेदना का चीत्कारें, हृदय-वेधक आक्रन्द, वर्षों से सदा हरे रहने वाले तपोवन की समृद्धि की आग मे धू धू सुलग उठने का शब्द। और इस सबके उपरान्त भी यहाँ आकर वह विजयी सेना विस्मय मे पड़ गई। ऐसा कोई सम्वाद नहीं मिल रहा था कि कोई राजा सामना करने आ रहा है। जहाँ भी वे जाते निर्जन बस्तियाँ और आश्रम उन्हे मिलते थे। लोग अपनी गायों और घोड़ों तक को साथ लेकर वहाँ से चले गए थे। सेना की प्रगति मे कोई बाधा नहीं दे रहा था, इसीसे उसका लड़ने का उत्साह भी क्षीण होता जा रहा था।

सहस्रार्जुन आर्यावर्त मे जाकर भृगुओं के आश्रम पर अधिकार करने का संकल्प लेकर चला था। अपने शत्रु भार्गव को मारना उसका सर्वप्रथम लक्ष्य-बिंदु था। उसे निश्चित विश्वास था कि न तो वह छिपेगा ही और न कहीं भागकर जायगा। पर उसका कोई भी चिह्न जब उसे नहीं मिला, तो वह विचार मे पड़ गया।

वशिष्ठ मुनि के आश्रम के सामने ही सहस्रार्जुन ने सरस्वती को पार किया। सामने विशाल आश्रम की विकसित बन-राशि वर्षों की समृद्धि और शांति की साक्षी दे रही थी। सहस्रार्जुन वशिष्ठ पर दांत गड़ाये हुए था; वर्षों पहले इस सयाने वशिष्ठ ने उसे कई बार उलहने दिये थे। अब वह उसके हाथ चढ़ा था। अब वह उसे रीति-नीति का पाठ सिखलायगा।

नदी लांघकर सहस्रार्जुन आश्रम के पास आया; वहाँ चारों ओर निर्जनता व्याप्त थी। किनारे पर कोई मनुष्य नहीं दिखाई पड़ता था। कहीं कोई गाय तक चरती दिखाई नहीं पड़ रही थी। केवल आश्रम के भीतर से एक धुँए की पंक्ति ऊपर की ओर उठती दिखाई पड़ रही थी।

वशिष्ठ के आश्रम को निर्जन देखकर सहस्त्रार्जुन किंचित् असंतुष्ट हुआ। उनके शिष्यों के समक्ष ही मुनि वशिष्ठ को सीधा करने का उसका संकल्प फलीभूत न हो सका। वह और उसका सैन्य आश्रम में प्रवेश कर गए।

उसके योद्धागण धीरे-धीरे आकर वृक्षों-तले विश्राम करने का आयोजन करने लगे। सहस्त्रार्जुन आगे बढ़ा, पर कोई भी सामने नहीं आया।

आंगन में मुनि की कुटिया के सामने स्वयम् मुनि वशिष्ठ तथा अन्य पांच वृद्ध बैठे अग्नि में आहुति दे रहे थे। क्षण-भर के लिए सहस्त्रार्जुन ठिठक रहा। उसे कुछ ऐसा आभास हुआ मानो वृद्ध मुनि और वे दूसरे गौरव-भरे वृद्ध उसकी भर्त्सना कर रहे हैं। अगले ही क्षण, संकोच को टालकर, मूंछें मरोड़ता हुआ वह आगे बढ़ आया।

"वशिष्ठ मुनि!" उसने उद्धत स्वर में मुनिवर को पुकारा।

मुनिवर एकाग्र चित्त से आहुति देते ही चले गए। उन छःहों वृद्धों में से किसी ने भी सिर उठाकर नहीं देखा। सहस्त्रार्जुन किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया, इसलिए वह कुछ देर चुपचाप खड़ा रहा। फिर उसका धैर्य जाता रहा।

"वशिष्ठ मुनि—ए—"

वशिष्ठ मुनि ने सिर उठाकर देखा और हाथ के संकेत से चुप रहने का आदेश किया।

सहस्त्रार्जुन के नायक आ पहुँचे थे और उनके सामने वह अपनी प्रतिष्ठा खोना नहीं चाहता था।

"बहुत हुआ अब। मुझे पहचान तो लिया न?"

दर्भ के द्वारा आहुति देकर वशिष्ठ मुनि ने सामने देखा।

"मैं तुझे बचपन से ही जानता हूँ," उन्होंने शांतिपूर्वक कहा।

"सो कुछ नहीं। अब मैं आर्यावर्त का काल होकर आया हूँ।"

मुनि ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"तुम मुझे आर्यावर्त की रीति-नीति सिखाने आये थे, अब तुम्हें मेरी रीति-नीति के अनुसार रहना पड़ेगा।"

"वशिष्ठ एक ही रीति से रहता है—देवों की आज्ञा के अनुसार।"

"हा, हा, हा, हा," सहस्त्रार्जुन खिलखिलाकर हँस पड़ा—"देवों की यही आज्ञा है कि तुम्हें मेरी आज्ञा का पालन करना चाहिए। मैं आर्यावर्त को जलाकर भस्म करने आया हूँ, जानते हो?"

"कृतवीर्य के पुत्र!" मुनिवर ने कहा, "तू तो सदा का पाजी रहा है। लूट-फांट करना, संहार करना, जलाकर भस्म कर देना—यह सब तो कोई भी कर सकता है।"

"तुम्हारा सब-कुछ जलकर भस्म हो जायगा, तभी तुम्हें समझ में आयगा।"

"देवों की कृपा से हमने जो बोया है, उसका तू नाश कर ही नहीं सकता है। ज्यों-ज्यों तू उसे जलायगा, त्यों-त्यों उसमें से नई कोपलें फूटेंगी।"

"ये सब बातें बनाना अब बन्द करो, वशिष्ठ मुनि! उठो और अपने शिष्यों से कहो कि वे हमारा आतिथ्य करें।"

"वशिष्ठ के आश्रम में किसी भी आततायी का आतिथ्य-सत्कार नहीं होता," कठोर स्वर में वशिष्ठ ने कहा।

सहस्त्रार्जुन क्रुद्ध हो उठा। वह खड्ग लेकर आगे बढ़ आया।

"अर्जुन यह क्या कर रहा है? ब्रह्म-हत्या का पाप बटोर रहा है?"

"मुझे कोई नहीं रोक सकता।"

"मेरी विशुद्धि तो देवों के हाथ में है।" मुनि ने उत्तर दिया।

सहस्त्रार्जुन हँस पड़ा और मुनि की दाढ़ी पकड़ने के लिए झपटा।

मुनि ने आँखें मूँद लीं। सहस्त्रार्जुन ने हाथ बढ़ाया, पर वह स्पर्श कर पाए इसके पहले ही मुनि जहाँ थे वहीं ढुलक पड़े। सहस्त्रार्जुन पीछे हट गया। वशिष्ठ का अपमान करने की उसकी साध अपूर्ण ही रह गई।

"जब से मृगारानी ने उसके पैरों में गिरकर प्राण दिये थे, तब से

सहस्त्रार्जुन मार सकता था, पर मरे हुए का मुख वह नहीं देख सकता था। इस क्षण निश्चेत पड़े मुनिवर का निरा श्वेत मुख वह देख न सका। आँखों पर हाथ देकर वह पीछे हट गया।

"तालजंघ! इस आश्रम को जलाकर भस्म कर दे। इसके आश्रम को ही इसकी चिता बना दे।"

: ४ :

भृगुश्रेष्ठ जमदग्नि का मन इन दिनों रञ्च-मात्र भी अस्वस्थ नहीं था; वे सहस्त्रार्जुन की प्रतीक्षा लगाए बैठे थे। अम्बा उनके पास ही बैठी थीं। जो थोड़े-से भृगु यहाँ रह गए थे, वे भी उनके साथ ही बैठे थे।

वशिष्ठ का आश्रम जलाकर सहस्त्रार्जुन का सैन्य बाढ़ की भांति भृगुओं के आश्रम की ओर बढ़ रहा था। पानी की घरघराहट की भांति उनका पगरव निकट-से-निकटतर आता सुनाई पड़ रहा था। थोड़ी ही देर में कुछ सैनिक हुँकारते हुए आगे बढ़ आए और झोंपड़ियाँ खोलकर उन पर अधिकार जमाने लगे।

सहस्त्रार्जुन का समस्त द्वेष इस आश्रम पर ही केन्द्रित हो गया था। वह भार्गव से प्रतिशोध लेना चाहता था—मृगा का, रुरु का और सहस्त्रों मरे हुए योद्धाओं का—यही उसका प्रधान लक्ष्य था। पर उसका मन असमंजस में पड़ गया था। भार्गव का सामना करके वह उसे मारने को उद्यत था, पर वह कहीं दिखाई न दे और उसकी प्रतीक्षा करनी पड़े, इस बेढब स्थिति को सामने पाकर वह क्षुब्ध हो उठा।

आश्रम में प्रवेश करते समय सैनिक अस्वस्थ हो चले थे। डड्डूनाथ अघोरी का शिष्य, और महादन्ती सिद्धेश्वरी का उत्तराधिकारी कहीं से निकलकर उन पर टूट न पड़े—यही उनके मन में सबसे बड़ा डर था। भृगुओं के आश्रम में कोई भी नहीं दिखाई पड़ रहा था। कुछ

गायें थी और दो-एक मृतप्राय पांडे वहाँ थे। भार्गव का तो कोई नाम-चिह्न भी वहाँ नही था।

गर्विष्ठ हँसी हँसते हुए सहस्रार्जुन ने वहाँ प्रवेश किया। 'यहीं पडाव डाल दो," उसने आज्ञा दी।

यह अखण्ड निर्जनता उसे नही रुची। बीच के प्रांगण मे जमदग्नि बैठे थे। उनके पास ही रेणुका भी बैठी थी। वार्धक्य से शोभित उस युगल जोडी को सहस्रार्जुन ने पहचान लिया। उसके मन मे प्रश्न उठा—"क्या यह बुड्ढा भी वशिष्ठ की ही भाँति मर जायगा?" अभी भी मुनिवर का वह फीका मुख उसकी आँखो मे तैर रहा था।

"कौन भृगुश्रेष्ठ? महर्षि जमदग्नि?" सहस्रार्जुन ने खिल्ली उडाते हुए कहा—"मै सहस्रार्जुन—कृतवीर्य का पुत्र—आपको प्रणाम करता हूँ।"

"यदि तू शापग्रस्त कृतवीर्य का पुत्र है," जमदग्नि ने कठोरतापूर्वक हैहयराज की ओर देखते हुए कहा—"तो इस आश्रम को तूने भ्रष्ट कर दिया है। महाअथर्वण ऋचीक का शाप अभी भी तेरे कुल से उतरा नहीं है।"

"इसीलिए तो मै यहाँ आया हूँ," खिलखिलाकर हँसते हुए सहस्रार्जुन ने विनोद में कहा—"तुम्हारे पिता ने मेरे दादा को शाप दिया था, वही उतारने के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ।"

"व्यर्थ ही आया है तू," जमदग्नि ने कहा—"भृगुओं का शाप तो सहस्र जिह्वा सर्प बनकर डसता ही जायगा।"

"इस समय तो मैं सबका काल बनकर आया हूँ। कहाँ चले गए तुम्हारे सब शिष्य, तुम्हारी धेनुएं—और वह तुम्हारा पुत्र?" सहस्रार्जुन ने खिल्ली उड़ाई।

"तेरी घडी जब आ पहुँचेगी, तभी वे तुझसे आ मिलेंगे," महर्षि ने उत्तर दिया।

"भृगुश्रेष्ठ!" सहस्रार्जुन गम्भीर हो गया—"यह विचार छोड़

दीजिए। मैंने पुरुओं के राजा त्रैयारुण को रण में रौंद दिया है, और आसिन्दिवत को जलाकर भस्म कर दिया है। वशिष्ठ के आश्रम को भी मैंने छार-छार कर दिया है। और अभी-अभी भरतग्राम पर भी अधिकार कर लूंगा। बात-की-बात में मैं आधे आर्यावर्त को जीत लूंगा। आप मेरे परम्परागत गुरु हैं। आप ही मेरे पुरोहित हो जाइए। फिर मैं आपके शिष्यों और धेनुओं का कुछ नहीं बिगाड़ूंगा। आप यही चाहेंगे तो मैं और भी धेनुएँ आपको दे सकूंगा।"

"तू तो प्रचण्ड अभिमान का धनी है। तुझे भला पुरोहित की क्या आवश्यकता?" जमदग्नि तनिक हँस दिये।

"आप यदि पुरोहित हो जायंगे तो मेरे हैहयों को शान्ति प्राप्त होगी और मेरी प्रतिष्ठा बढ़ेगी," सहस्रार्जुन ने कहा।

"और तू आशा करता है कि मैं तेरा पुरोहित हो ही जाऊँगा?"

"इसमें आशा की तो कोई बात ही नहीं है। आपको शाप लौटा लेना पड़ेगा।"

"मेरी विद्या और मेरा तप अत्याचारियों के लिए नहीं है," जमदग्नि ने निश्चलतापूर्वक कहा।

सहस्रार्जुन और उसके नायक किंचित् क्षुब्ध हो गए। इन भृगुकुल के गुरुओं का प्रभाव उनके हृदयों पर बहुत गहरा था।

सहस्रार्जुन जब क्षुब्ध हो जाता तो उसके स्वभाव में क्रूरता उभर आया करती थी।

"भृगुश्रेष्ठ, आप मेरी मांग को स्वीकार नहीं करेंगे? क्या आप मेरे गुरु नहीं होंगे?" उसने आँखें निकालकर क्रुद्ध स्वर में पूछा।

"जिसका उद्धार ही सम्भव नहीं, उसका गुरु भला कौन होगा?'

"तो मेरी आज्ञा नहीं मानोगे, यही न?"

"आज तक किसी मानव ने मुझे आज्ञा देने की धृष्टता नहीं की है। पिता और गुरु को छोड़ और किसी की आज्ञा मैंने नहीं मानी है।"

"जानते हो, इसका परिणाम क्या होगा ? मैं तुम्हारे प्राण ले लूंगा।"

"बस !" महर्षि ने तुरन्त उत्तर दिया—"सो तो सिंह, भेड़िये और सांप भी ले सकते हैं।"

"मैं तुम्हारे आश्रम को जला दूंगा। तुम्हारे शिष्यों का वध करूंगा, और तुम्हारी गायों को लूट ले जाऊँगा।"

"यही सब तू न करेगा, तो फिर नर-पिशाच कैसे कहा जायगा ?"

"ओ हो," उग्र होकर सहस्रार्जुन ने कहा, "क्या तुम भी वशिष्ठ की भांति मेरे हाथ से बचकर निकल जाना चाहते हो ?"

"मुनिवर कैसे बच निकले सो तो मैं नहीं जानता, पर मैं तो तेरे हाथ में कभी था ही नहीं। तू मेरे पिता के शाप में छटपटा रहा है।"

"अच्छा ! यह बात है !" सहस्रार्जुन चिल्ला उठा—"तालजंघ ! इसको पकड़कर उस झाड़ से बांध दे। बोलो ! शाप को लौटाकर मेरा पुरोहित-पद स्वीकार करते हो या नहीं ?"

"आतंक दिखाकर और लोभ से ललचाकर तू मेरा आशीर्वाद प्राप्त किया चाहता है ? पतित ! जमदग्नि का आशीर्वाद यों नहीं मिला करता।"

जमदग्नि उठे और सहस्रार्जुन के दिखाये हुए झाड़ के पास जाकर खड़े हो गए।

"बता, मुझे कैसे बाँधना चाहता है ?"

सहस्रार्जुन इस शान्त प्रतिरोध से अधिकाधिक क्रोधाविष्ट होता गया।

"बांध इसे," उसने आज्ञा दी।

तालजंघ ने महर्षि जमदग्नि को झाड़ से बांध दिया।

"बोल ! शाप उतारेगा या नहीं ?"

जमदग्नि मौन, शान्त भाव से खड़े रहे। उनके भव्य मुख, श्वेत दाढ़ी तथा स्थिर आंखों में किंचित्-मात्र भी अन्तर नहीं आया।

सहस्राजुर्न ने अपने तरकश में से एक तीर निकाला।

"क्यों ?" वह गरज उठा।

जमदग्नि की आंख भी नहीं फड़की।

सहस्राजुर्न ने लक्ष्य साधकर एक तीर हाथ से ही मारा; वह जाकर जमदग्नि के खवे में धँस गया। मूक वेदना के गौरव में जमदग्नि स्वस्थ रहे।

"क्यों ? नहीं है अब भी विचार ?" सहस्राजुर्न ने पूछा, "अच्छी बात है, तालजंघ, तू इस पर पहरा देना। बुढ़िया, तू अपने पति की सेवा करना," कहकर वह ढीठतापूर्वक हँस पड़ा, और घोड़े पर बैठकर भरत-ग्राम पर अधिकार करने के लिए चल दिया।

अम्बा ने साश्रु नयनों से, घाव में से बहते हुए रक्त को पोंछा और महर्षि को पानी पिलाया। जमदग्नि ने मंद और ममता-भरी मुस्कराहट से इस परिचर्या का स्वागत किया।

रात को भरत-ग्राम की रही-सही समृद्धि को लूटकर सहस्राजुर्न लौट आया। हैहय सेनाओं ने भृगु और विश्वामित्र के आश्रमों तथा भरत-ग्राम पर अधिकार कर लिया। सारी रात महर्षि जमदग्नि झाड़ से बँधे रहे। रेणुका उनके चरणों में बैठी थी। घाव में से अभी भी रक्त बह रहा था।

"महर्षि, क्या बहुत वेदना हो रही है ?"

"नहीं, रेणुका।"

"राम कब आयगा ?" रेणुका ने पूछा।

"आयगा, इसकी मृत्यु तो मुझे निकट ही दिखाई दे रही है।"

सवेरे सहस्राजुर्न फिर महर्षि के पास आ पहुँचा।

"क्यों ? शाप उतारोगे या नहीं ?" उसने व्यंग के स्वर में पूछा।

महर्षि ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सहस्राजुर्न ने फिर एक तीर उठा लिया और ताककर हाथ से ही मारा। वह महर्षि के दूसरे खवे में जाकर गड़ गया। पल-भर के लिए

उन्होंने आँख मूँद ली। उनके मुँह से एक भी शब्द न निकला। घाव में से रुधिर का प्रवाह बह रहा था और उनकी श्वेत दाढ़ी पर रक्त के दो-चार छींटें आ पड़े थे।

"महर्षिवर, इस वेदना को कब तक सहन करना होगा?" अम्बा ने पानी पिलाते हुए गद्गद् कण्ठ से पूछा।

"यह वेदना नहीं है। यह तो पशु और आर्य के बीच युद्ध चल रहा है। इसमें तो आर्यत्व की ही विजय होगी।"

"और आपका क्या होगा?"

"अपना मनचाहा वह नहीं करवा सकेगा। उसे तो निदान हाथ मलते हुए ही मरना पड़ेगा।"

सहस्रार्जुन चला गया। सारे दिन और रात महर्षि मूक भाव से उस वेदना को सहन करते रहे। अम्बा सजल नयनों से अगले दिन की प्रतीक्षा करती रही।

"राम! राम! तू कब आयगा?" उसके रोम-रोम में यही स्वर गूंज रहा था।

"महर्षि! इस प्रकार कब तक तिल-तिल खपते रहेंगे?"

सवेरे फिर सहस्रार्जुन महर्षि के पास आया।

"कहो महर्षि, क्या विचार है?"

महर्षि ने उत्तर नहीं दिया।

"अच्छा?"

सहस्रार्जुन ने क्रम-क्रम से तीन तीर उठा-उठाकर मारे। महर्षि के शरीर से तीन नये प्रवाह बहने लगे। क्षण-भर की वेदना अदृष्ट हो गई, और उनके मुख पर गौरव छा गया। उनकी आँखें मूक भाव से देव का आराधन करती हुई, तेजस्वी और दयार्द्र हो उठीं।

महर्षि के मुख से सिसकारी तक नहीं फूटी, और न वे झुके ही। उससे चिढ़कर सहस्रार्जुन ने चौथा तीर भी फेंक मारा।

"तालजंघ ! तीर निकालकर इन्हे खाने को दे। कही ये जल्दी ही न सटक जायं।"

अम्बा के लिए आँसू के घूंट उतारते जाना अब सम्भव नही था। महर्षि पर होने वाला एक-एक आघात उसके हृदय मे सहस्र-सहस्र आघात कर रहा था। श्वास-श्वास मे उसके अन्तर मे एक ही प्रार्थना निकल रही थी—"मेरे राम ! तू कब आयगा ?" उसकी दृष्टि क्षितिज पर टकटकी लगाए थी। उसके कान घोडे की पदचाप की प्रतीक्षा लगाए थे, "कब आयगा वह ?" राम की प्रतीक्षा भी अब तो असह्य हो पडी थी।

दोपहर मे सहस्रार्जुन अपना सैन्य लेकर राजा कृशाश्व से युद्ध करने तृत्सुग्राम की ओर चल पडा।

मध्यरात्रि में तालजंघ महर्षि के पास आया—"महर्षि ! गुरुदेव ! चक्रवर्ती आपको मारे बिना नही मानेगा।"

जमदग्नि ने अपनी सूजी हुई आँखें खोली। "मै जानता हूं," उन्होंने कहा।

"यदि आपकी आज्ञा हो तो मै आपको इस दुःख से मुक्त कर दूं।"

"किस प्रकार ?" अम्बा ने पूछा।

"मैं छोड तो नहीं सकता हूँ। आप यहाँ से भागकर भी नहीं जा सकते हैं। यदि आपकी आज्ञा हो तो एक तीर से आपके प्राण लेकर इस वेदना का अन्त कर दूं।"

"वत्स ! जमदग्नि वेदना से नही डरता है। मै तो देखना चाहता हूँ कि सहस्रार्जुन मे कितनी पाशवता भरी है," कहकर महर्षि ने आँखें मींच लीं, और अशक्ति से उनका माथा, एक ओर झुके हुए कन्धे पर आ ढुलका।

"रेणुका !" थोडी देर रहकर जमदग्नि ने फिर आँखे खोली।

"नाथ !"

"यदि राम मिले तो उसे एक ही संदेशा कह देना।"

"क्या ?"

"इस क्षण-क्षण में जिस आर्यत्व का मैं अनुभव कर रहा हूँ वह पशुबल से और मृत्यु से भी कहीं बहुत अधिक वीर्यवान है। इसकी पराजय होती ही नहीं है। इसकी विजय तो स्वयम् सिद्ध है—" और महर्षि को मूर्छा आ गई।

आठ दिन के पश्चात् लौटते हुए हैहयदल की हुंकारों और पगरव से धरणी कांप उठी। उसने तृत्सुओं पर विजय प्राप्त कर ली थी।

कृशाश्व को हराकर और उसे मारकर, तृत्सुग्राम की समृद्धि को लूटकर तथा सहस्रों बन्दियों को साथ लेकर सहस्रार्जुन लौट आया। अगले दिन हँसता हुआ और मूंछों पर ताव देता हुआ सहस्रार्जुन महर्षि के पास आया।

"महर्षि!" उसने उद्धत स्वर में पूछा—"आर्यावर्त का चक्रवर्ती धूल में मिल गया है। मैंने तृत्सुग्राम को जलाकर भस्म कर दिया है। मैंने आर्यावर्त का सर्वनाश कर दिया है। मैं दो सहस्र पुरुष और पाँच सहस्र स्त्रियों को बन्दी बना लाया हूँ। मैं तृत्सुओं की धेनुएँ लूट लाया हूँ। अब क्या विचार है? शाप उतारना है या नहीं? मेरा पुरोहित-पद स्वीकार करोगे या नहीं?"

किंचित प्रयत्न से महर्षि ने आसन्न मूर्छा को वश में कर लिया और स्थिर दृष्टि से सहस्रार्जुन की ओर देखते रह गए। उन आँखों में निश्चलता थी। वह दृष्टि स्पष्ट रूप से सहस्रार्जुन से कह रही थी कि शक्ति की तुलना में तो वह हार गया था।

उसकी डींग हांकने की वृत्ति अब जाती रही। उसका हाथ खड्ग खींचने ही जा रहा था कि उसने वापस खींच लिया। उसने अपने तरकस में से खींचकर चार तीर निकाल लिए।

"क्यों?" उसने पूछा।

उत्तर नहीं मिला। ओंठों पर ओठ पीसकर उसने एक-एक कर चारों तीर फेंक दिये। वे चारों तीर जाकर महर्षि के शरीर में भिद गए। चारों बार जमदग्नि ने आँखें मींच लीं। अम्बा सिसकने लगी। महर्षि

ने एक तिरस्कार-भरी दृष्टि हैहयराज पर डाली और वे मूर्छित हो गए।

"तालजंघ, देखो, इसे जीवित रखना होगा, यह मुझे बहुत अच्छा लगता है।" पर सहस्त्रार्जुन के क्षोभ का पार नहीं था। आर्यावर्त को उसने राख मे मिला दिया था, पर जमदग्नि उसके सामने नहीं झुक रहे थे।

: ४ :

सिंधु नदी के तीर पर भार्गव का पडाव था। चक्रवर्ती मांधाता का पुत्र हरित अपने चुने हुए योद्धाओ के साथ वहाँ उपस्थित था। अठारह वर्ष का चक्रवर्ती भरत, शिबि, यदु, तुर्वसु, अनु और द्रुह्यु योद्धाओ के साथ वहाँ आ पहुँचा था। भद्रश्रेण्य और विमद ऋषि भी भार्गव योद्धाओ को लेकर आ पहुँचे थे। भार्गवो के थानो से आये हुए योद्धा उज्जयंत के नेतृत्व मे लडने के लिए तत्पर खडे थे। पदाति, रथ और घोडे चारो ओर से उमड रहे थे। परशु, खड्ग, गदा और धनुषो के मानो बन-के-बन वहाँ चारो ओर फैल गए थे। चारो ओर से भागकर आये हुए और आते हुए वृद्धो और स्त्रियो को सिंधु-पार ले जाया जा रहा था। कूर्मा उन सबकी व्यवस्था कर रहा था।

एक टीले पर भार्गव खडे थे। उनके पास ही भगवती और प्रतीप भी थे। आस-पास अन्य महारथी भी तैयार खड़े हुए थे।

चारों ओर कोलाहल और दौड-धूप मची हुई थी। भार्गव अकेले ही अपनी प्रशान्त उग्रता मे स्तब्ध थे। उनकी भौहें, उनकी विकराल आँखों पर कुछ झुक आई थीं। उनकी दृष्टि विद्युत की भाँति एक ओर से दूसरी ओर चमक रही थी। उनका मौन वाणी से भी अधिक भयंकर था। उनके आस-पास असह्य तेज का वर्तुल प्रकाशित हो उठा था। जो रात और दिन उन्हे देखा करते थे, उनके लिए उन्हे देखना और सहन करना असम्भव हो गया था। जब से उन्होंने चार चक्रवर्तियो के पुरोहित-पद को अस्वीकार कर दिया था, तब से वे चक्रवर्तियो के भी

पूज्य हो गए थे। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ जैसे महापुरुष भी उनके अनुकूल होने मे आनन्द मानते थे। महर्षि शुन.शेप तो उन्हे साक्षात् देव ही मानते थे। आश्रमो और राजमार्गों मे निरापद हो गए स्त्री-पुरुष उनका नाम सुनते ही वंदना मे नत हो जाया करते।

ज्यो-ज्यो उनकी शक्ति बढती गई थी और उनकी ओर लोगो का पूज्यभाव बढ़ता गया था, त्यो-त्यों वे निःसीम प्रभाव की सरिता के दुर्गम मूल की भांति दूरस्थ, गगनचुम्बी और अभेद्य वातावरण से संवृत्त होते चले थे। निर्मल हास्य से उल्लास जगाते हुए, प्रखर नयन-तेज मे सबको मुग्ध करते हुए, भयंकर भ्रूभंग से हृदयो को कम्पित करते हुए, वे एक अलंघ्य दूरी पर रहकर सबकी भक्ति को अपनी ओर आकर्षित किया करते थे। किन्हीं अनजान पलो मे उनके हृदय का प्रसाद झेलकर भगवती लोमहर्षिणी शक्ति के स्रोत के समान बन गई थीं, अतएव वे उनकी महत्ता की प्रेरणा सबको पिलाया करती थीं।

निदान भगवान् जामदग्नेय बोले। उनका स्वर गुफाओं में गूँजने वाले गर्जन की भाँति गूँज उठा।

"हरित! तू सिधु के किनारे-किनारे ही आगे बढता जा। भरत और सेनापति गृध्र तुम पर्वत के सहारे-सहारे शतद्रु तक धीरे-धीरे बढ़ चलो। ज्यो-ज्यो आगे चलो, राह के थानों को अभेद्य बनाते चलो। ऋषियों, स्त्रियों तथा बालको की सुरक्षा का प्रबन्ध करो। आज से पच्चीसवें दिन भृगु के आश्रम मे आकर एकत्रित हो जाना। मैं वहीं पर आ मिलूंगा, जिसने आर्यावर्त को भस्मीभूत किया है, उसका एक अवशेष भी लौट कर नहीं जायगा।"

"उज्जयंत, तू अपने योद्धाओ को साथ ले जाकर थानो पर अपना अधिकार जमा ले। धीरे-धीरे जाना, पर जहाँ भी जाय, वहाँ अपनी शक्ति को अभेद्य बना देना।"

"तुम सब जाओ और चारों ओर यह संदेशा पहुँचा दो कि भार्गव आ रहे हैं।"

भार्गव की आज्ञा को शिरोधार्य करके हरित, भरत, शिबि, गृध्र और उज्जयन्त गुरुदेव के पैरो पडकर वहाँ से विदा हो गए।

"प्रतीप !" भार्गव ने कहा—"परशुधर भार्गव के साठ शतक है। तीन दिन मे सबको कटिबद्ध हो जाना चाहिए। चौथे दिन ब्रह्म मुहूर्त मे हम यहाँ से प्रस्थान करेंगे।"

वातावरण मे जितना उत्साह था, उतनी ही उग्रता भी थी।

चौथे दिन सवेरे भार्गव ने प्रस्थान किया। अन्य सैन्यो की भाँति उनके सैन्य मे रथ, टट्टू और पदाति नही थे। छः सहस्र सुन्दर घोडे, छः सहस्र कसे हुए भार्गव योद्धा, छः सहस्र प्रचण्ड परशु, छः सहस्र महाधनुष—ये सब एक प्रचण्ड आत्मा की प्रेरणा और भक्ति से अभेद्य बनकर, मानो किसी पर्वत पर से गर्जन और बिजली के साथ उतरकर आते हुए झंझावात की भाँति आर्यावर्त पर उतर आए।

"भार्गव आ रहे है !" भागते हुए स्त्री-बालको को हृदय के आश्वासन मिला।

"भार्गव आ रहे हैं !" पर्वतो और गुफाओ मे छिपे हुए ऋषिगण एक-दूसरे से मंगल-वचन कहने लगे।

"भार्गव आ रहे हैं !" प्रत्येक थाने पर चर्चा चल पडी।

"भार्गव आ रहे है !" त्रस्त, घायल और अत्याचार-ग्रस्त जन आशापूर्वक कहने लगे।

"भार्गव आ रहे है !" तृत्सुग्राम मे पडाव डाले हुए हैहय सेनापति ने सुना। "भार्गव आ रहे हैं !" उडते हुए घोडे पर हैहय सैनिक सहस्रार्जुन के पास संदेशा लेकर गया। "भार्गव आ रहे हैं !" हैहय योद्धाओ मे से प्रत्येक के मुख से वाणी फूट पडी और उनके हृदयो मे आतंक व्याप गया।

"भार्गव आ रहे है ?" सहस्रार्जुन गरज उठा—"सैन्य को रण-सज्जा मे प्रस्तुत करो।"

"भार्गव आ रहे है!" सिन्धु नदी की ओर से आते हुए समाचार

मिले। "भार्गव आ रहे हैं!" पर्वतों पर से आता हुआ संवाद मिला। "भार्गव आ रहे हैं!" उत्तर की ओर पता लगाने के लिए भेजी गई टुकड़ी के नायक ने सहस्रार्जुन के पास संवाद भेजा।

"भार्गव आ रहे हैं!" तालजंघ ने रेणुका से कहा और उसका हृदय हर्ष के ज्वार में उमड़ने लगा।

"राम आ रहा है!" उसने महर्षि से कहा।

"मैं जानता था," महर्षि ने मन्द स्वर में श्रद्धा प्रकट की।

पर भार्गव कहाँ से आ रहे हैं और कितने सैन्य के साथ आ रहे हैं, इसका उत्तर किसी के पास नहीं था। चारों ओर से केवल यही शब्द सुनाई पड़ रहे थे कि भार्गव आ रहे हैं। झाड़ों में से, नदी के भीतर से और मरुतों के मुख से केवल यही शब्द सुनाई पड़ रहे थे कि भार्गव आ रहे हैं।

सहस्रार्जुन ने सैन्य को सज्जित करके प्रस्तुत किया। सभी दिशाओं में उसने खोज करवाई। पर समझ में नहीं आ रहा था कि भार्गव कहाँ से आ रहे हैं। सामान्य सैनिकों को मानो कुछ ऐसा आभास होने लगा जैसे हवा भार्गव को उड़ाकर ला रही हो। अब तक सुनी हुई दंत-कथा उन हृदयों पर छा गई। वे महाप्रतापी गुरुओं के उत्तराधिकारी, शापित हैहय जाति के काल, डड्डनाथ अघोरी के सहचर और महादन्ती सिद्धेश्वरी की शक्ति के स्वामी, अकल्प्य प्रभावमूर्ति उनकी ओर धँसे आ रहे थे। हैहय सैनिक नर्मदा के तीर से सरस्वती के तट तक जय-घोषणा करते हुए उनकी खोज में गये थे। पर अब वे स्वयम् आ रहे थे; और उनके नाम की प्रतिध्वनि चारों ओर गूँज रही थी।

टुकड़ियाँ पता लगाकर लौट आईं। ऐसा सुना गया था कि तीनों दिशाओं में से भार्गव आ रहे थे। सहस्रार्जुन ने भृगु के आश्रम के सम्मुख ही अपने सारे सैन्य को एकत्रित कर अपने शत्रु से युद्ध ठानने का निश्चय कर लिया था। महर्षि जमदग्नि अभी भी झाड़ से बंधे हुए थे। अभी भी, जब सनक आ जाती, सहस्रार्जुन जाकर उन्हें एक तीर मार आया

करता था। अम्बा मे अब आँसू बहाने की शक्ति नहीं रह गई थी। ताल-जंघ हाथ मे खड्ग लेकर वैसे ही पहरा दिया करता था।

"भार्गव आ रहे है!" इस सर्वव्यापी ध्वनि की प्रतिध्वनि सहस्राजु'न के हृदय ने बज रही थी। अपनी जागृति मे वह उस भय को स्वीकार न करता, पर रात मे उसे भयंकर सपने आया करते।

एक दिन सवेरे वह महर्षि के पास गया।

"क्यो महर्षि! अब भी शाप उतारना चाहते हो या नही?" पर अब उसके स्वर मे खिल्ली उडाने का भाव नही था।

महर्षि ने वेदना पर नियंत्रण करने के लिए ओठ-पर-ओठ दाब लिये। बडी कठिनाई से उन्होने आँखें खोलीं, और स्थिर दृष्टि से क्षण-भर सहस्राजु'न की ओर देखते रह गए। उन्होने कोई उत्तर नही दिया।

हैहयराज ने चार तीर निकाले और एक-एक कर जमदग्नि को मार दिये। चार रुधिर के प्रवाह बह चले। महर्षि के मुँह मे झाग भर आए और वेदना का एक नि:श्वास निकल पडा।

"तुम्हारा बेटा आ रहा है," सहस्राजु'न ने व्यंग के स्वर मे कहा—"अब दोनो बाप-बेटे को यहाँ साथ ही बांध दूंगा।"

महर्षि की आँखो मे तेज उभर आया। उन्होने उपकृत भाव मे आँखो ही-आँखो में देवो को अर्घ्य चढाया, और उन्हे मूर्छा आ गई।

सबसे पहले हरित का सैन्य, सरस्वती के तीर पर आ पहुँचा। और सहस्राजु'न उस पर टूट पडा। तृत्सुग्राम से हैहय सेनापति भी अपना सैन्य लेकर आ पहुँचा। दोनो के बीच हरित जकड लिया गया। एक सहस्र मनुष्यो का संहार हुआ। सरस्वती मानो रक्त की ही होकर बहने लगी। हैहय सेना की विजय हुई।

हरित ने प्राण खो दिए, पर सहस्राजु'न पूरी-पूरी व्यवस्था कर ही न पाया था कि भरतों का सैन्य भी आ पहुँचा। सहस्राजु'न का सैन्य थका हुआ था, पर विजय के मद मे चूर था। उन्मत्त होकर वह भरतो के साथ भिड़ गया।

पहले हैहय दल ने यह मान लिया था कि भार्गव हरित के सैन्य मे होंगे। फिर उन्होंने सोचा कि शायद वे भरतों के सैन्य मे होंगे। जिन्हें देखने की दर्प-भरी कामना सबके हृदयो मे बसी हुई थी, वे भार्गव इस सैन्य मे भी उन्हें नही मिले। सूर्योदय के समय से युद्ध आरम्भ हो गया। बडी देर तक दोनो मे से एक भी सैन्य टस-से-मस न हुआ। पर हैहय सैन्य संख्या मे बहुत बडा था। विजय के उत्साह मे वे आगे बढते ही आ रहे थे। विजय पर उनका जीवन अटका था, अतएव उनके उन्माद मे रंच-मात्र भी अन्तर नहीं आया था।

चक्रवर्ती भरत ने तो भार्गव से ही युद्ध-विद्या सीखी थी। अत्यन्त धीरता, दृढ़ता और कुशलतापूर्वक वे युद्ध का खेल खेल रहे थे।

भार्गव के सचोट और स्वस्थ युद्ध-कौशल की शिक्षा पाये हुए भरत की यह परीक्षा की घडी थी।

: ६

मध्याह्न तक दोनो में से कोई भी सैन्य टस-से-मस न हुआ। मध्याह्न के सूर्य का प्रखर प्रकाश चारो ओर व्याप्त था। तब भी उस टीले पर से आने वाले मार्ग पर एक बिजली-सी चमक उठी। एक नही, अनेक भरत सैन्य घोषणा कर उठे—"गुरुदेव की जय!" प्रत्येक के मुख पर जामदग्नेय का नाम था।

मानो कोई उसका मुख पीछे से खींच रहा हो, ऐसे सहस्रार्जुन ने उस टीले की ओर देखा।

टीले पर घोडे झुक-झूम रहे थे। असंख्य परशुओ के बन वहाँ खड़े थे। सबके बीच और सबसे आगे एक काला घोडा आ रहा था—अग्नि-ज्वालाओं के श्वास-निःश्वास लेता-सा। उस पर वही शरीर—वही मुख, वही काली जटा और दाढी, पर कुछ अधिक भरी हुई, वही परशु, पर कुछ अधिक बडा, वही आँखें, उसे बींधती-सी, जलाती-सी!

झंझावात जिस प्रकार बन को विदीर्ण कर देता है, उसी प्रकार

उस सैन्य ने हैहय दल को विदीर्ण कर दिया। उनको अप्रतिहत वीर्य, दारुण टक्कर से हैहय-समूह थर्रा उठा, मुंह मोड चला, और छिन्न-विच्छिन्न होकर भाग निकला। कुठारो के आघात से शिरच्छेद हुए और धड भूमि पर आ गिरे। घोडो ने मनुष्यों को कुचल दिया, रथो को उलट दिया, और यो भार्गवो के घोडे एक-दूसरे से जुडे-गुथे-से गरजती हुई बाढ के समान वेग-भरे आगे बढते ही चले गए।

सहस्रों हैहय मारे गए, सहस्रो कुचल दिये गए और सहस्रो नदी मे कूदकर डूब गए। कई सहस्र भाग निकले—या तो पैरो से दौडकर या फिर नदी तैरकर।

भरत शौर्य से उन्मत्त हो उठे। वे भी ताण्डव-नृत्य करने लगे। हैहयो ने भी अपने वीरत्व को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया। सहस्रार्जुन ने अतुल पराक्रम दिखाया। उसने अपनी गदा मे सहस्रो घोडों का संहार किया, सहस्रो योद्धाओं के सिर फोड दिए। जहाँ जहाँ भी वह दिखाई पडता, वहाँ मरे हुए वैरियो के अम्बार लग जाते।

सहस्रार्जुन का थोडा-सा सैन्य पीछे हटता हुआ भृगु के आश्रम में प्रवेश कर गया। भार्गव और भरत उसके पीछे पड गए। इस संहार-ताण्डव मे सहस्रार्जुन और भार्गव एक-दूसरे को खोज रहे थे। निदान दोनो एक-दूसरे के सामने आये। भार्गव ने परशु उठाया। अर्जुन ने गदा उठाई। दो प्रचण्ड शस्त्र टकरा उठे। चिनगारियाँ बरसने लगी। अर्जुन की गदा की मूठ टूट गई और उसने उसे फेंक दिया। भार्गव का परशु गदा के संघर्ष से लक्ष्य चूक गया और उसने अर्जुन के घोडे की गरदन काट डाली।

अर्जुन गिरते हुए घोड़े पर से कूदा और गरज उठा। उसने अपना खड्ग निकाला और वह भार्गव पर टूट पडा।

पचास परशु उसे मारने के लिए उद्यत हो पड़े। भार्गव ने हाथ ऊँचा करके आज्ञा दी। सब पीछे हट गए।

सब योद्धा स्तब्ध हो गए। चक्रवर्ती सहस्रार्जुन और भगवान् जाम-

जमदग्नेय का संघर्ष अस्खलित वेग से, भयंकर परिणाम की ओर बढ़ता जा रहा था। उनके शस्त्र अधर में थमे रह गए।

भार्गव अपने स्थान पर ही खड़े रहे, और परशु के द्वारा अपने ऊपर चढ़ आ रहे अर्जुन के हाथ से खड्ग को उड़ा दिया। अर्जुन इस शस्त्र-संघर्ष के वेग से पीछे हट गया।

भार्गव स्वस्थ और शांत भाव से खड़े रहे। उनकी आँखें उन्मत्त अर्जुन को ललकार रही थीं।

अर्जुन की आँखों से मानो शोणित की धाराएं फूट रही थीं। द्वेष की पराकाष्ठा को अनुभव कर उसका मुख विक्षिप्त, विकृत और भयंकर हो उठा। हाथों की उंगलियों को मोड़ता हुआ वह भार्गव की ओर टूट पड़ा और उछलकर उनके गले को धर दबाना चाहा कि बीच में ही वह अटक गया, और उलटे पैरों पीछे खिसक गया।

उसकी रक्ताक्त आँखों ने देखा कि भगवान् जामदग्नेय विराट हो उठे हैं। उनका मस्तक गगन का स्पर्श कर रहा है। उनका परशु मध्याह्न के प्रखर सूर्य के समान तप रहा है। उनकी आँखों से अग्नि की सरिताएं बह रही हैं।

पहले कब देखा था यह स्वरूप? याद आ रहा था—पर कहाँ? मृगा जब मरी थी, तब।

क्या इस गगन-चुम्बी परशु से वह उसका शिरच्छेद करेगा।

मंद मुस्कान के साथ भार्गव ने परशु फेंक दिया और एक पग आगे बढ़ आये। उस क्षणिक भय पर सहस्रार्जुन ने नियंत्रण किया और उछलकर वह भार्गव पर टूट पड़ा। भार्गव ने पीछे हटकर, उस संघर्ष के बल को झेल लिया, और उसे पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाए। अर्जुन हाथ से छटककर निकल गया। पीछे हटकर वह फिर झपटा। राम उससे भिड़ पड़े और जूझने लगे।

दोनों ही प्रचण्ड थे। अर्जुन अधिक भारी था, तो भार्गव अधिक स्वस्थ थे। दोनों एक-दूसरे की बाहुओं में जकड़ गए। अर्जुन ने अपना

समस्त बल एकत्रित कर भार्गव को गिराने का प्रयत्न किया। पर जिस प्रकार मरुत पर्वत-शृङ्गो पर निष्फल झंझावात बनकर टकराते है, ठीक उसी प्रकार अर्जुन की टक्करें निष्फल हो गई।

अर्जुन अपना समस्त बल एकत्रित कर भार्गव पर टूट पडा। उसके हाथ भार्गव का गला टटोलने लगे। चपलतापूर्वक भार्गव पीछे खिसक गए, और तुरन्त उससे चिपट पडे और गरदन, हाथ, शरीर के भार तथा पैरो के चापल्य मे अर्जुन के शरीर के साथ एकाकार हो गए। स्नायु तड-तडा उठे और अर्जुन सीधा-सपाट लम्बा होकर धरती पर लोट गया।

भार्गव उसकी छाती पर चढ बैठे और उसके मुँह पर घूँसे मारते गए। अर्जुन मरते हुए प्राणी की भांति चीत्कार कर उठा और भार्गव के पैरो के पाश से छूटकने के लिए छटपटाने लगा। निदान उसके प्रयत्न शिथिल हो चले···मंद हो चले···और अर्जुन मूर्छित हो गया।

"विमद, इसे बाँध ले।"

भार्गव अर्जुन का शरीर छोडकर उठ खडे हुए। खडे होते ही उनकी दृष्टि पिता पर पडी।

झाड से बँधे हुए महर्षि जमदग्नि, टकटकी लगाए इस द्वंद्व को देख रहे थे। उनका अग-प्रत्यंग रस्से से बँधा हुआ था। अनेक घावो से रक्त बह रहा था। अनेक छेदो से पीप निकल रहा था। चार तीर उनके शरीर में गडे हुए थे।

महर्षि नितान्त निर्गत हो गए थे। उनकी गर्दन और सिर की नसें वेदना से तनकर तैर आई थीं। उनकी असाधारण रूप से बडी हो उठी आँखो मे अपार्थिव और चंचल तेज झलक रहा था।

पास ही अम्बा खडी थी।

महर्षियो मे श्रेष्ठ, अपने पूज्य पिता की यह अवस्था देखकर भार्गव के मुँह से भयंकर गर्जना फूट पडी।

"पिताजी! पिताजी!" पुकारते हुए वे उनके पास दौड आए।

स्तब्ध हो रहे योद्धागण तुरन्त भान में आये, और भार्गव तथा

भरत हैहयो को मारने और पकडने के लिए दौड पड़े ।

इस हलचल के बीच ऋषि विमद और प्रतीप अर्जुन को बाँधने लगे ।

भार्गव पिता के निकट पहुँच गए ।

सहस्रार्जुन की मूर्च्छा दूर हो गई थी, पर वह अभी भी मूर्छित होने का ढोंग कर रहा था। उसने एक धक्के से ऋषि विमद और प्रतीप को दूर ठेल दिया, पास ही पड़े हुए दो तीर उठा लिये, और एक हाथ टिकाकर वह अध-बैठा-सा हो गया ।

एक ही हाथ से दो तीरो के द्वारा, दो भिन्न-भिन्न व्यक्तियो को मारने का कौशल अर्जुन दिखाना चाहता था । उसने एक हाथ से दोनो तीर फेंके ।

पास ही खडी भगवती लोमहर्षिणी, प्रतीप तथा विमद ऋषि चिल्ला उठे । झाड के पास खडी अम्बा ने आँखो पर हाथ दे लिये और उनके मुँह से गगन-भेदी चीत्कार फूट पडी ।

अम्बा की फिर दूसरी चीत्कार सुनाई पड़ी । एक तीर महर्षि जमदग्नि की छाती में भिद गया ।

भार्गव ने सनसनाते हुए तीरों को देखा; उनके मुख से सियार के आक्रन्द के समान भयंकर शब्द फूट पडा—ऐसा कि जैसा पहले कभी किसी ने सुना नहीं था।

किसी की समझ में न आया, कि यह सब क्या हो रहा है। एका-एक सब अवाक् हो गए । ज्यों ही वह तीर उडता हुआ आया कि उन सबों ने भगवान् जामदग्नेय को हवा मे अधर, वृक्षो के शिखर से ऊपर उडते देखा। उन्हें लक्ष्य करके मारा गया तीर आकर भूमि पर गिर पडा ।

भार्गव के चमत्कारों की बातें सबने सुनी थीं, पर यह चमत्कार भगवती को छोड़ और किसी ने नहीं देखा था ।

भार्गव गगन में ऊपर उड़ते ही चले गए । उनके मुख से भयंकर

अट्टहास फूट पड़ा। सबके हृदय की धड़कन मानो रुक-सी गई।

बीच का अंतर भांपकर, भार्गव कूदकर वहाँ जा पहुँचे जहाँ सहस्रार्जुन विमद को पकड़ रहा था। उन्होंने कब भूमि को स्पर्श किया, कब वे फिर झपटे, सो किसी ने नहीं देखा। अपने हाथों को लटकाकर उन्होंने अर्जुन के मुख पर दे मारा।

अर्जुन की आँखें मारे भय के फटी रह गईं। भार्गव के नख अर्जुन के गले में भिद गए।

रुधिर की धाराएँ फूट पड़ीं।

अर्जुन का सिर धड़ से विच्छिन्न होकर दूर जा गिरा।